विषय	पृष्ठ
मोहना	१६०—१६२
एक वीर स्त्री	१६२—१६४
वेदवती पार्वती	१६४—१७०
पति पतिनी स्नेह	१७१—१७३
लोपामुद्रा अपला देवहूति	१७३—१७४
लक्ष्मीदेवी आदि	१७४—१७६
वीरमती	१७७—१८७
किरणमयी	१८७—१९७
दत्तात्रेयी	१९८—२०८
१५ पत्र माता, पुत्रि, पिता, पुत्र, भगिनी, गुरुमाता सखी, पति, पतिनी आदि पढ़ने योग्य	२०१—३३६
माताओं से निवेदन	३३७—३७२
पारिवारिक दृश्य	३७४—३८०
ईश्वर और उसका अवतार	३८०—४०८
स्वामी दयानन्द आर्य्य समाज	४०८—४४४
भारत के कई प्रसिद्ध त्योंहार की मीमांसा, व्यास पूजा, दशहरा दिवाली होली नौव्रत आदि	४४४—४७७
७ भजन	४७८—४७९
औषधि विचार	४७९—५०३
विदेशी शक्कर	५०३—
पहेलियां	५०४—५०७
जापान की १२ शिक्षायें	५०७—५०८
पाक विधा	५०९—५१३
अन्तिम व उत्तम शिक्षायें	५१४—५२५
एक बढ़िया पद्य	५२६—५२८

प्यारे बहिन भाइयो! शरीर के एक फोड़े फुंसी के दूर करने और यथाशक्ति उसके आराम करने के लिये मनुष्य परिश्रम करता है, धन भी व्यय करता है, वैद्यों की शरण भी जाता है, परन्तु आज आधा शरीर रोगग्रस्त होरहा है ऐसे मनुष्य बहुत थोड़े हैं, जिनको उसकी ओर ध्यान है, नहीं तो अधिकतर ऐसे मनुष्य हैं जिनको किंचिन्मात्र इस की ओर ध्यान नहीं। देखो हमारी सबकी अर्द्धांगिनी स्त्रियां आज अधरांग रोगादि से भी बुरी दशा में हैं; इसमें स्त्रियों का ही अपराध नहीं है, किन्तु पुरुषों का अधिक पाप है। पुरुषों ने अपनीही उन्नति में समय लगाया, उनकी ओर ध्यान नहीं दिया। उन्हें तोते, मैनों से भी गिरा दिया, उन्हें पढ़ाया पर स्त्रियों को पढ़ाने से रोका, जिसका फल आज प्रत्यक्ष है कि देश में सहस्र पीछे एक भी पूर्ण विद्यावती नहीं। मैंने इस आवश्यकता अर्थात् स्त्रीजाति के शिक्षार्थ व सुधारार्थ नारीधर्मविचार' पुस्तक लिखी थी, लिखते समय मुझे यह ही निश्चय था कि यह पुस्तक ग्रामीण स्त्रियों पर जो नितान्त मूर्खा हैं कुछ प्रभाव डाल सकेगी। परन्तु जो समालोचना 'सत्यधर्मप्रचारक. हितकारी, आर्य्यमेसेञ्जर, आर्य्य गज़ट, सहायक जालन्धर, इन्द्र,

हिन्दुस्तानी' आदि पत्रों में प्रकाशित हुई और बहुत से महाशयों ने सम्मति भेजी जिस के कारण मेरे विचार से बहुत अधिक उसका मान हुआ और मेरी प्रतिष्ठा। उसका ही प्रभाव है कि वह बहुतायत से हाथों हाथ बिक रही है। अब मेरे कई मित्रों ने साधारणतया और महाशय अवधबिहारीलाल चाँदापुर निवासी ने विशेषतः से दूसरा भाग बनाने की प्रेरणा की और महाशय मोतीलाल जी पुत्र लाला जगन्नाथप्रसाद शाहजहांपुर मुहल्ला बहादुरगंज ने सहायता की जिनको मैं धन्यवाद देता हूं। जिस समय नारीधर्मविचार रचा था उस समय यह ध्यान ही न था कि इसका दूसरा भाग भी लिखना पड़ेगा नहीं तो उसके टाइटिल पर प्रथमभाग तो लिख ही दिया जाता इस द्वितीय भाग के बनाने में इस बात का पूर्णतया ध्यान रक्खा गया कि जो विषय प्रथमभाग में आगये हैं वह इसमें न आने पावें, तथापि जो ऐसे विषय हैं कि प्रथम में अति संक्षेप से दिखाये हैं उनको विस्तार से दिखलाना आवश्यक है वा ऐसे हैं जो प्रथम भाग में ही बढ़ा दिये जाने पर उन में बढ़ाये न जासकने से यदि लिख गये हों और वह पाठकों को भी लाभदायक प्रतीत हों और उन से माताओं को लाभ पहुंचना और उन से जानकार होना आवश्यक हो तो आप क्षमा करें और जहां कहीं भूलचूक होगई हो और आपके दृष्टिगोचर हो तो कृपया सूचना दें जिस से आगामी एडीशन में शुद्ध करदी जावे।

इस पुस्तक को चार अध्यायों में विभक्त किया है और उन अध्यायों का निम्नप्रकार से वर्णन है:—

(१) प्रथम अध्याय में नित्यनैमित्तिक कर्मों का वर्णन है।

(२) द्वितीय अध्याय में नित्यनैमित्तिक कर्मों के पालन करने वाले धर्मात्माओं का वर्णन है। जिसके दो खण्ड हैं।

(३) तृतीय में नित्यनैमित्तिक कर्मों के त्यागन करने से जो २ हानियां हुई उनका वर्णन है।

(४) चतुर्थ में नित्यनैमित्तिक कर्मों के करने की पुनः प्रार्थना की गई है जिन में से कई का वर्णन है।

आप का हितैषी—

इन्द्रजीत पेशकार, मुंसिफी,

शाहजहांपुर.

* ओ३म् *

ईश्वर प्रार्थना ।

ओं तेजोऽसितेजो मयि धेहि,
ओं वीर्य्यमसि वीर्य्यं मयि धेहि ।
ओं बलमसि बलं मयि धेहि,
ओं ओजोऽस्योजो मयि धेहि ।
ओं मन्युरसि मन्युं मयि धेहि,
ओं सहोऽसि सहो मयि धेहि ॥

य० अ० १६ । मं० ९ ॥

कवित्त ।

मात तुही गुरु तात तुही मित भ्रात तुही धनधान्य हमारो ।
ईश तुही जगदीश तुही मम लाज तुही प्रभु राखनहारो ॥
राव तुही उमराव तुही सतभाव तुही मम नैन को तारो ।
सार तुही करतार तुही घरबार तुही परिवार हमारो ॥

हे परमात्मन्! आप प्रकाश के भी प्रकाश हैं, आप बलों के भी बल हैं, आप ही वीर्य्यमान्, सामर्थ्यवान् हैं. जिस प्रकार सब प्रकाशमान् पदार्थ आप से प्रकाशित हैं उसी तरह सारी व्याकुल आत्मायें चारों ओर से धाय अन्त को आप ही के शरण जाकर शान्ति पाती हैं। आप दयानिधान

हैं हम दुष्ट और मूर्ख महान् हैं, यदि आपकी दया का वारा पार नहीं तो हमारे पापों का भी शुमार नहीं। भोले इतने हैं कि अधम, पातकी, अविद्या अंधकार में ग्रस्त होकर भी आप से प्रकाश और आनन्द की प्राप्ति के अभिलाषी हैं, अपनी निर्लज्जता के कारण आप से याचना करने का साहस नहीं कर सकते, आप से प्रार्थना करते हैं इस लिये कि आप हार्दिक भावों और किये हुये कर्मों को जानते हैं।

का मुख ले विनती करूं, लज्जा आवत मोहि।
तुम जानत अवगुण किये, कैसे भावों तोहि॥

हा मुझ पापी ने इतनी अधिक आयु होजाने पर भी अब तक आप तक पहुँचने की प्रथम सीढ़ी यम की भी पूर्ति न कर पाई, न अपना हृदय कुसंस्कारों से ही खाली कर पाया कि जिसमें कोई अच्छी बातें भरी जा सकतीं। जिसने आपकी समस्त आज्ञाओं का उल्लंघन ही उल्लंघन किया हो वह क्या अधिकार रखता है कि वह आप से किसी भलाई की याचना करे और आप के सामने मुँह खोलने का साहस करे। परन्तु बालक बार २ ताड़े और मारे जाने पर भी अन्त को माता पिता ही के चरणों में गिरता है क्योंकि उनसा उसका कोई सहायक नहीं, इसी भांति हे प्रभु परमात्मन्! हमारा भी आप के अतिरिक्त और कोई नहीं, हे अन्तर्यामिन्! यह बात आप पर भी भली भांति विदित होचुकी है कि यह अब सब से मुँह मोड़ के केवल आपकी शरणागत आगया है इसका और कोई सहायक नहीं, इस लिये आप शरण गहेकी लाज कीजिये, हा! मैंने अज्ञान के कारण जिसको सुधा समझा था वह विष निकला, जिसको

सुख जाना था वह दुःख ही था, उस समय परिणाम का ध्यान ही न आया। यदि समय पर न चूकता तो महाराज न जाने मेरा हृदय कैसा प्रफुल्लित और उत्साहित होता। आप भी हर्ष से समीप बिठाते, गोद में लेने को तैयार होते। कौन दुर्गंधित मैले कुचैले वस्त्र धारण किये हुये को पास बिठाता है और कब मैला पुरुष शुद्धस्वरूप के निकट बैठने का साहस कर सकता है। हा एक आपही हैं जो सुगंधित दुर्गन्धित सारे पदार्थों में रहते हुये भी निर्लेप रहते हैं, इस लिये कर जोड़ कर, शिर नवा कर हे दयास्वरूप, दीनानाथ करुणासागर, दीनबन्धो! प्रार्थना है कि आप इसे उठाइये, धैर्य्य बँधाइये, इस समय पापों के स्मरण से भयभीत हुई इसके मन की नौका तृष्णारूपी वायु के झकझोरों से महा-पापों के बोझ से बोझिल हुई डावाँडोल होरही है, अब डूबी अब डूबी का शब्द सुना रही है, किञ्चित् संदेह नहीं यह टकरा कर टूट जावेगी वा डूब जावेगी, इस समय बिना आप के करुणारूपी खेवट के इसे कोई रोक नहीं सकता, डूबते को तृण का सहारा बहुत होता है। पतित पावन! मैंने आप पर विश्वास किया है, आप सहायता करें जिस से मैं सदैव आप ही के गुण गाता रहूं और पवित्र बनूं। आप मेरे मनको जो मुझे कांटों में घसीटे लिये जारहा है शुद्ध कीजिये और बुद्धि रूपी सारथी जो स्वतन्त्रता से मनरूपी बाग को ढीली छोड़कर इन्द्रियों के घोड़ों को स्वतन्त्र किये हुये शरीर रूपी गाड़ी को चकना चूर किये डालता है जिस से जीवात्मा रूपी रथी दुःखी और विकल होरहा है। उसको जीवात्मा का हितैषी और उसके आधीन बनाइये। यह भलीभांति जान ले कि यदि तू इतना जानने

पर भी ईश्वर की ओर नहीं झुकता और उसके दिये हुये में सन्तोष नहीं करता तो कोई दूसरा स्वामी ढूंढ़ ले जो अधिक दे; परन्तु जान चुका कि उस दूसरे का अभाव है। जो कर्म परमात्मा ने बुरे बताकर तेरी आत्मा में भय, लज्जा, शंका उत्पन्न कर रक्खी है, उनसे बच, नहीं तो उसके देश से बाहर चला जा; पर कोई ऐसा देश नहीं जहां उसका राज नहीं वा जो तू पाप को छोड़ना नहीं चाहता तो प्रथम कोई ऐसी जगह ढूंढ़ जहां वह तुझे न देखे, नहीं तो पाप मत कर अथवा उसकी स्तुति, प्रार्थना, उपासना करना चाहे तो कर नहीं तो उसका दिया हुआ दान अन्न, जल, वायु सेवन करना छोड़ दे जो तेरे बल से बाहर है। इस कारण अब यह दृढ़ प्रतिज्ञा करता है कि इन आज तक के किये हुए पापों को क्षमा कीजिये। आप की दया के सामने तो यह पाप तृण से भी तुच्छ हैं, अब से ही इसका पग आप को यथार्थ जानकर धर्म पथ पर डट जावे और किसी प्राणी से वैर न हो, सदा दूसरों के हित में लगा रहे। इसका सदैव ध्यान रहे कि (राइट इज़ माइट) अर्थात् सचाई में बल है कभी यह विचार न उत्पन्न हो कि (माइट इज़ राइट) अर्थात् जिसकी लाठी उसकी भैंस। यदि इसे किसी प्रिय से प्रिय मित्र का ध्यान हो तो सत्याचरणी होकर आप के चरणों का; यदि इसे किसी की प्राप्ति की इच्छा हो तो सत्संग की, यदि किसी को नीचा दिखाना हो तो अहंकार और अभिमान को, यदि अपना दास बनाना हो तो तृष्णा को लोकैषणा को, इसे यदि किसी पर विश्वास हो तो आप की दया पर, सहायक समझे तो आप को, पालक समझे तो आप को, इसे डर हो तो आप का,

बल हो तो पुण्य का, यही आप से अन्तिम प्रार्थना है कि आप दया कर अब इसे पवित्र बनाइये, सारे दुर्गुण छुड़ाकर शुभ गुणों की ओर झुकाइये।

ओ३म् शान्तिः शान्तिः शान्तिः।

आवश्यक सूचना।

—:o:—

इस द्वितीय भाग का तीसरा एडीशन अब आप की भेंट हो रहा है- अबकी वार भी इस में कुछ आवश्यकीय बातें बढ़ा दी हैं॥

आप सज्जन महाशयों से तथा अपनी प्यारी भगिनियों से इसके एक वार पुनः पढ़ने की प्रार्थना करता हूं और इस पुस्तक का जैसा आपने मान किया है उसका आप को धन्यवाद देता हूं।

इन्द्रजीत,

* ओ३म् *

नारीधर्म-विचार ।

द्वितीय भाग ।

प्रथमोध्याय आरम्भः ।

नित्यनैमित्तिक कर्मों के लिये चेतावनी

कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छत ँ समाः
एवन्त्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्मलिप्यते नरे ॥

य० अ० ४० मंत्र २ ॥

प्यारी बहिनो व माताओ ! देखो सृष्टिकर्ता परमात्मा ने पृथिव्यादि लोकों को और उनके अन्तर्गत अनेक प्रकार की विचित्र सृष्टि को रचकर अपनी अपार दया से विचित्र रचना युक्त मनुष्यादि शरीरों को देकर पश्चात् सर्व विद्या का भण्डार जिसके द्वारा यथावत् कार्य्य करने की शिक्षा दी गई है ऐसे सर्वोत्तम वेदों के ज्ञान को भी सृष्टि उत्पन्न होने के समय पवित्र ऋषियों द्वारा प्रकाशित किया, उन्हीं वेदों में सर्व विद्याओं को बीजरूप से प्रकाश करते हुए यजुर्वेद के अन्तर्गत जिस में (कर्मकाण्ड) अर्थात् कर्म करने का विधान प्रकाशित किया, वहां पर सब के हित के लिये कर्म

करने के विषय में यह उपदेश किया। (कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतं समाः) अर्थात् हे मनुष्यो! तुम सब संसार में धर्मयुक्त कर्म करते हुए ही सौ वर्ष अर्थात् जन्म-पर्यन्त जीने की इच्छा करो।

(एवं त्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरे) अर्थात् इस प्रकार धर्मयुक्त वेदोक्त कर्म करने से तुम को धार्मिक स्त्री पुरुषों में में किसी प्रकार से भी अवैदिक अधर्म युक्त नहीं लिपायमान होंगे अर्थात् जब तुम्हारा धर्मयुक्त कर्म करने का स्वभाव हो जायगा उस समय तुम से अधर्मयुक्त कर्म नहीं होंगे तो तुम को किसी प्रकार का दुःख नहीं प्राप्त होगा (इतः अन्यथा न अस्ति) अर्थात् वेदोक्त कर्मों से भिन्न अन्य किसी प्रकार अधर्मयुक्त कर्म न लगने का अभाव नहीं है। अर्थात् धर्मयुक्त कर्म न करने से अधर्मयुक्त अवैदिक कर्म आप को अपनी ओर अवश्य खींच लेंगे जिस से अधर्मात्मा होकर दुःखों से नहीं बच सकोगी। इस कथन का अभिप्राय यह है कि परमात्मा सारे संसार के प्राणियों के सुख के लिये वेदों को रचकर यह उपदेश देते हैं कि तुम सब मेरी वेदोक्त आज्ञानुसार यदि अपने नित्य नैमित्तिक कर्मों को धर्मानुसार करोगे तो सब प्रकार के सांसारिक पारमार्थिक सुखों को प्राप्त होंगे।

प्यारी बहिनो! देखो परमात्मा की यह आज्ञा हमारे तुम्हारे सब के लिये सर्वांश में सुखदायक है, क्योंकि यह प्रत्यक्ष दृष्टिगोचर होती है कि—

'कर्म प्रधान विश्व रच राखा। जो जस करै सो तस फल चाखा'

अर्थात् परमात्मा ने एक कर्म ही प्रधान रच रक्खा है इसी के द्वारा जो जिस प्रकार का कर्म करता है वह उसी

प्रकार के फल को उसकी न्याय व्यवस्थानुसार प्राप्त होता है और यह भी निश्चय है कि जब तक मनुष्य शरीर धारण किये हुए है तबतक निष्क्रय किसी प्रकार से नहीं हो सकता अर्थात् जबतक शरीर के साथ जीवात्मा का सम्बन्ध है तब तक कुछ न कुछ कर्म अवश्य ही करोगी चाहे वह कर्म धर्मयुक्त हो चाहे अधर्मयुक्त जब यह सर्वथा निश्चय है कि किसी प्रकार से भी कोई निष्क्रय नहीं हो सकता तभी तो हमारी तुम्हारी पूर्व मातायें इस वेदाज्ञा को जानकर जैसी जैसी उक्त मन्त्र में कर्म करने की आज्ञा दी है अपने नित्य, नैमित्तिक कर्मों को यथावत् करती हुई अपने जीवन को उसकी आज्ञा पालन में लगाकर सर्व प्रकार के सुखों को प्राप्त हुई जिनका नाम अबतक सारे संसार में प्रशंसा पूर्वक लिया जाता है। उन माताओं ने परमात्मा की वेदाज्ञानुकूलही अपने नित्यनैमित्तिक कर्मों को किया था इसी कारण वह स्वयं सर्वप्रकार के सुखों को प्राप्त होकर संसार भर के लिये अपने जीवन को सुख का साधन बना गईं, इसी कारण उनका नाम आज तक प्रशंसा के साथ लिया जाता है और उनको अन्नपूर्णा, सरस्वती, देवी, लक्ष्मी, श्रीजगदम्बा, जगज्जननी आदि पदवी प्राप्त थीं और इन्हीं पदवीयुक्त माताओं के कारण संसार सुखधाम बना हुआ था, परन्तु आज समय के हेर फेर से वर्त्तमान की हमारी मातायें परमात्मा की इस वेदाज्ञा को भुलाकर अपने नित्य नैमित्तिक कर्मों को उसकी आज्ञा के विरुद्ध करती हुई महान् दुःखों को भोग रही हैं जिनके दुःखी होने के कारण आज संसार नरक धाम अर्थात् दुःख दायक बन रहा है, जैसा मनुस्मृति के निम्नलिखित श्लोक से चरितार्थ होता है।

स्त्रियां तु रोचमानायां सर्वं तद्रोचते कुलम् ।
तस्यां त्वरोचमानायां सर्व मैव न रोचते ॥

मनु० अ० ३ श्लोक ६२।

(स्त्रियां तु रोचमानायाम्) अर्थात् जिस कुल की स्त्रियां सुखी व प्रसन्न हों (तु) तो ·तत्कुलं सर्वं रचित) वह कुल सर्व प्रकार से प्रसन्नता शोभा और सुख को प्राप्त होता है और जिस कुल में (तस्यां अरोचमानायाम्) अर्थात् जहां स्त्रियां अप्रसन्न रहती हैं (सर्वं एव न रोचते) सब प्रकार से दुःख अप्रसन्नता व अशोभा निवास करती है. इसका स्पष्ट अभिप्राय यह है कि जहां स्त्रियां सुखी रहती हैं वहां सब सुख निवास करते हैं और जहां स्त्रियां दुःखी रहती हैं वहां दुःख के अतिरिक्त अन्य कुछ नहीं रहता।

इस कारण, मेरी प्यारी बहिनो ! जब एक कुल के लिये विद्वानों की यह सम्मति है तो जिस देश में स्त्रियां निरन्तर दुःखही दुःख भोग रही हैं वह देश सुखधाम कभी हो सकता है कदापि नहीं, इसी कारण मेरी प्रार्थना वर्त्तमान की माता व भगिनियों से यही है कि आप जान गई होंगी कि संसार भरके दुःख का कारण आपके ही दुःख हैं यदि आप सर्व उत्तम गुणों से युक्त होतीं, प्रसन्न और हर्षित रहतीं तो तुम्हारी सन्तानें भी गुणवान् और सुखी होतीं, परन्तु क्या किया जावे आपने अपने दुखों के बीज बोये हैं जिन के फल सन्तानें भी खाकर क्लेशित हो रही हैं। हमको विद्वानों की सत्य सम्मतियों और अपने अनुभव से निश्चय हुआ है कि जब तक स्त्रियां योग्य और सुखी नहीं होंगी तब तक

संसार सुखधाम बन ही नहीं सका। इस कारण यदि तुम पूर्व माताओं के समान स्वयं सुख प्राप्त कर संसार को सुखधाम बना कर सारे संसार के प्राणियों को सुख पहुंचाना अपना धर्म समझती हो, यदि तुम संसार में जगज्जननी की पदवी पाना चाहती हो, यदि तुम सच्ची अन्नपूर्णा देवी बनना चाहती हो, यदि तुम सच्ची देवी, सच्ची लक्ष्मी, सच्ची भारतमाता, सच्ची परोपकारिणी बन कर स्वयं सुखी हो कर अपनी संतानों के साथ सच्चा प्रेम दिखाती हुई उनको सुख देना चाहती हो तो चेतो और आंख उघारके देखो कि तुम्हारी और तुम्हारे संतानों की क्या दशा हो रही है। जिनको तुम स्वप्न में भी दुःखी देख कर शान्त नहीं रह सकतीं किन्तु अपनी शक्तिभर उनके दुःख दूर करने में उपाय करतीं, परन्तु क्या किया जावे तुम उपाय ही उलटा जानती हो, न जाने आज तुमको क्या हो गया है कि आप स्वयं भी दुखी हो और अपने दुःखों का प्रभाव अपनी प्यारी सन्तानों पर भी डाल रही हो और त्राहिमाम् २ करती चिल्ला रही हो, पर न करवट बदलती न गर्दन सरकाती हो। तुम्हारी सन्तानें तुम्हारी प्यारी गोद को छोड़कर औरों की गोद की ओर जा रही हैं। हा! ऐसे समय में वह तुम्हारा सच्चा प्रेम कहां गया जो तुम्हारी पूर्व माताओं के हृदय में था, क्या तुम्हारी माताओं ने तुम्हारे हृदय से वह प्रेम की दृष्टि उठाली जो तुम सन्तानों के सुख के लिये अपना सारा पुरुषार्थ लगाना धर्म और अपना कर्त्तव्य कर्म नहीं जानतीं। नहीं नहीं माताओं! मैं शोक जोश में आकर यह सब कह गया, मैं अवश्य जानता हूं कि माता अपने बालकों को दुःखी देख कर निरुद्योग

नहीं रह सकी, स्वयं चाहे जैसे कष्ट सहन पड़ें परन्तु माता होकर बालक के दुःख दूर करने में अवश्य अपनी शक्ति अनुसार प्रयत्न करती हैं। किन्तु जिस प्रकार से प्रेम तुम्हारी मातायें तुम्हारे साथ करती थीं आज तुम उनसे किसी अंश में अधिक करती हो, परन्तु सन्तानों को जो दुःख यथावत् में मिल रहे हैं उनको तुमही वास्तव में नहीं जानतीं, फिर उनके कारणों की ओर तुम्हारी दृष्टि जाना कैसे सम्भव हो सकती है। यदि तुम जानती होतीं तो तुम अवश्य ही उन दुःखों के दूर करने में अपने जीवन को लगा देतीं। शोक! अविद्या अज्ञान के कारण आपकी वह ज्ञानशक्ति जाती रही, जिससे तुम अपने दुःख सुख को अनुभव करती हुई अपनी सन्तानों को जान कर और दुःख भरे शब्दों को सुनकर उनका और अपना दुःख यथावत् जान सकतीं; परन्तु तुम्हारे समीप उक्त कथनानुसार ज्ञानशक्ति नहीं रही जिससे तुम दुःखों को जान कर पूर्व माताओं के समान उसके दूर करने का कोई उपाय कर सकतीं। हे माताओ! ऐसी दशा आपकी देखकर मुझको ही नहीं किन्तु सारे संसार के विचारवान् स्त्री, पुरुषों को दुःख हो रहा है, इसी कारण ऋषि के प्रताप से सारे संसार के दुःख दूर कराने के लिये आपको स्मरण कराता हूं कि तुम अपने २ सम्बन्धी नित्यनैमित्तिक कर्मों को वेदाशानुकूल करो जिनके करने से ही पूर्व माताओं के समान सुखी होकर हमारे सबके सुख का कारण बन सको। देखो, पूर्व समय की माताओं ने कैसे २ कष्ट उठाकर सृष्टिकर्त्ता परमात्मा की आज्ञापालन करते हुये अपने धर्म के रक्षार्थ नित्यनैमित्तिक कर्मों को कैसी योग्यता से यथावत् पालन किया, जिनका

अनेक स्थानों में विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया है। आप भी अपनी पूर्व माताओं के जीवनचरित्रों को स्मरण करती हुई (जिनमें से किन्हीं २ का चरित्र प्रथमभाग में लिखा है और किन्हीं का इसमें भी लिखा जावेगा) अपने नित्य-नैमित्तिक कर्मों को यथाविधि वेदाज्ञानुसार करना प्रारम्भ कर दो। तुम्हारे नित्यनैमित्तिक कर्मों के सुधरने से न्याय-कारी परमात्मा अपनी न्यायव्यवस्था से तुम को अवश्य सच्चा सुख देंगे, जिसको पाकर तुम संसार को सुखधाम बना सकोगी। यदि इस समय आप इस पुस्तक को पढ़कर ऐसा विचार करें कि हम परतंत्र और निर्बल होरही हैं, हम किस प्रकार पूर्व माताओं की भांति अपने नित्यनैमित्तिक कर्मों को कर सकें. हम पुरुषों के बन्धन में हैं, जिसके कारण आपके लेखानुसार कर्म करना अति कठिन है। इस विषय में मैं निवेदन करूंगा कि यह आपका विचार ठीक नहीं। जिसने कर्म करने के लिये नाना प्रकार की विचित्र रचनायुक्त मनुष्य शरीर आपको दिया है आप उसकी विश्वासिनी बनिये। आप तो परमात्मा जगत्-रचयिता के भी अधीन नहीं रहीं, यदि होतीं तो उसकी आज्ञा का उल्लंघन न करतीं आप परतन्त्र हो हमको और आपको सबको उसके नियमों. सुलाइटों के नियमों के पालन में रहना चाहिये, तभी सुधार होसकेगा। यदि आप स्वतन्त्र न हो जातीं तो कदापि नित्यनैमित्तिक कर्मों को त्याग न बैठतीं। उससे कोई बलवान् नहीं उससे सायं प्रातः उस की आज्ञा पालती हुई याचना करो वह तुम को कर्म करने के लिये बल देगा। बस, अब यह विचार कर उसकी आज्ञापालन में लगजाओ, तब ही आपको सुख मिल सकता

है। सुख स्वरूप परमात्मा ही हैं, उनकी शरण गये बिना सुख मिल ही नहीं सकता। इस स्थानपर अपनी पूर्व माताओं का स्मरण करो क्योंकि सारा संसार उनका मान करता था, इसी लिये कि उनका जीवन औरों के लिये पूर्ण परमात्मा की आज्ञापालन के लिये था। इस कारण आप भी पराधीनता और निर्वलता का ध्यान छोड़कर अपने को अवला नहीं, वरन् सवला जानकर सच्चे प्रेम से उसकी आज्ञापालन में लगजाओ। यदि आपको अपनी और अपनी सन्तानों के दुःख दूर करने की सच्ची अभिलाषा है तो उठो और अपने नित्यनैमित्तिक कर्मों को जिस प्रकार तुम्हारी मातायें क ती थीं उसी प्रकार करो, जिससे सर्व प्रकार के आपके और आगामी सन्तानों के दुःख दूर हो जावेंगे। यदि इस समय कर्मों के यथावत् पालन करने में आपको कुछ कष्ट प्रतीत हो तो उसको सहन करना आपका धर्म है क्योंकि वर्तमान में भी तो आप वालकों को दुःख से वचाने के लिये नित्य दुःख सहती हो, उसी प्रकार सहन करो। स्मरण रक्खो जो गलता है, वही फलता है। जिन पूर्व माताओं का चरित्र आपने पढ़ा है वा पढ़ोगी, उनका नाम इसी कारण प्रसिद्ध हुआ है कि उन्होंने ने महान् कष्ट सहकर धर्म की रक्षा की है वैसे ही आप को करना उचित है।

❀ प्रथम ब्रह्मयज्ञ अर्थात सन्ध्या ❀

इस संसार में अति कठिन है ईर्षा, द्वेष, छल, कपट, लाभ मोह से हृदय शुद्ध हो, झूठ बोलने से बचें। मनुष्य

अनेक प्रकार की बुराइयों में फँसे देख पड़ते हैं, सदैव बुरे काम होते रहते हैं, परन्तु करने के पश्चात् पछताते हैं, पुनः वही लोभ, मोह आजाते और हृदय को दूषित करदेते हैं। जब तक परमेश्वर का भय न हो तब तक बुरे कामों से बचना कठिन है। जैसे बन्दीगृह व क़ानून व पुलिस के जिस के भय से पाप से बचते हैं, पर जहां मजिस्ट्रेट क़ानून की पहुँच नहीं वहां लोग छुपकर बुरे काम करलेते हैं, क्योंकि उनको परमेश्वर का भय नहीं। परमेश्वर जिससे कोई स्थान खाली नहीं, जो हर मनुष्य के भीतर और बाहर और साथ है, उसका भय करके किस प्रकार कोई बुरा काम करसक्ते हैं। कभी चोर पहिरेवाले के भय से गृह में नहीं घुसता, यदि कभी घुस भी जाता है तो भय के कारण पैर कांपने लगते हैं। यही कारण है हथियार बांधे हुये चोर घर में घुसते हैं, परन्तु तनिक चूहों के खड़खड़ करने से भागजाते हैं। कोई पुरुष जब उस पुरुष के सम्मुख झूठ बोलने से, जो उस के हाल से जानकार होजाता है, भय खाता है, साहस नहीं पड़ता। जब हम उनसे, जो हमारे मनकी बात नहीं जान सकते, हम इतना डरते हैं तो क्या परमेश्वर से नहीं डरेंगे। पर हमारा परमेश्वर पर विश्वास नहीं; यदि हमारा पूर्ण विश्वास होजावे तो बुरा काम तो करना एक ओर रहा, हम स्मरण भी नहीं कर सकते। जब हम समझ लें कि ईश्वर है और देखता भी है अवश्य दंड देगा, वह सर्वव्यापक, न्यायकारी, सब पदार्थों में विद्यमान है और सब पदार्थ उसी के हैं तो सब प्रकार के पापों से छूट सकते हैं। परमेश्वर का गुण जानलें और एक गुण को भी समझ लें कि ईश्वर

हर जगह मौजूद है, हमारे आचरण उसी की आज्ञा के अनुकूल शुद्ध होजावें इस लिये आवश्यक है कि ईश्वर का ध्यान करें। जो ध्यान करता है, गुणानुवाद गाता है, उसे उसकी अपेक्षा जो कभी ध्यान नहीं करता, अच्छे कर्मों के करने और बुरे कर्मों से बचने का अवश्य स्मरण रहता है। परमात्मा का जिसने नाना प्रकार के पदार्थ हमें दान दे रक्खे हैं यदि धन्यवाद न दें और गुणानुवाद न गावें तो हमसे अधिक और कौन कृतघ्न हो सकता है। सन्ध्या में हम शुद्ध अन्तःकरण से उसका धन्यवाद देते और गुणानुवाद गाते हैं। सन्ध्या अर्थात् परमेश्वर के ध्यान के विना कोई अच्छे काम करही नहीं सकता; जैसा कि उपर्य्युक्त कथन से प्रकट है। ईश्वर का भय बुरे कामों से बचने को अभीष्ट है। हम नित्य नहाते हैं फिर शरीर मैला होजाता है, सड़क बुंहारी जाती है फिर कूड़ा करकट आजाता है। नाली परनाली धोई जाती हैं फिर मैली हो जाती हैं फिर साफ़ करने की आवश्यकता होती है, चार दिन तक यदि घरके बरतन न साफ़ किये जाँय तो क्या दशा होजाती है। जैसी सांसारिक सृष्टि की दशा है वैसी ही आत्मिक की है। एकान्त में शुद्ध मन होकर जब ईश्वर के गुणों का ध्यान करता है तब ईर्षा, द्वेष, लोभ, मोह से हृदय शुद्ध हो जाता है और मन बुरे कामों से ग्लानि करता है। जैसे जल की धार से दुर्गंधि नालियों की वहजाती हैं वैसेही परमेश्वर के ज्ञान की अमृतरूपी धार से जितनी बुरी वासनायें हैं वे सब वह जाती हैं; मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार शुद्ध होजाता है। परन्तु वह फिर संसार में रहता है; ईर्षा, द्वेष फिर मन में भर जाते हैं, फिर वैसाही दूषित

होजाता है, वही पाप फिर उसको घेरलेते हैं; फिर परमेश्वर के ध्यान रूपी अमृत की वर्षा से साफ़ होजाता है उसका हृदय फिर शुद्ध होजाता है। फिर क्या कोई निश्चय कर सकता है कि अब हृदय शुद्ध होगया, छल कपट फिर न घेरेंगे, बुरे भाव फिर नहीं भरजावेंगे, असम्भव है कि जबतक प्रतिदिन सायं व प्रातः ध्यानरूपी अमृतजल से न धोया जावे, साफ़ रह सके। इस से आवश्यकता है कि नित्य प्रति प्रातः सायं अपने हृदय की नालियों को संध्यारूपी ईश्वरीय ध्यान के अमृतरूपी जल से ईर्षा, द्वेष, छल, कपटरूपी मल को साफ़ रक्खें। जैसे चलने फिरने से बल क्षीण होजाता है, भोजन करने से जो कि बलकी आवश्यकता है फिर आजाता है, जैसी शरीर की दशा है वैसी ही आत्मा की। जैसे शरीर की शुद्धि और पुष्टि के वास्ते स्नान भोजन की ज़रूरत है वैसे ही आत्मा के वास्ते ध्यान और संध्या की। यही वेदों में परमधर्म है, यही मोक्ष का मार्ग है, इस लिये आपसे प्रार्थना है कि आप संध्या का त्याग कदापि न करें। देखो सामवेद अ० १ खंड २ मंत्र ४ में बताया है—

ओ३म् उपत्वाग्ने दिवे दिवे दोषावस्त-
र्धियावयम् नमोभरन्तएमासि ॥

कि हे ज्ञानदाता परमात्मन्! ऐसा दृढ़ ज्ञान, श्रद्धा, भक्ति हमको दें कि हम लोग प्रतिदिन सायं और प्रातः विनय पूर्वक मन, बुद्धि से आपकी उपासना करें।

कठोपनिषद वल्ली चतुर्थ अध्याय २ में बताया है—

स्वप्नान्तं जागरितान्तं चोभौ येनानुपश्यति ।
महांनतं विभुमात्मानं मत्वाधीरो न शोचाति ॥

मं० ४ । ५ ।

जो पुरुष स्वप्न के अन्त में अर्थात् प्रातःकाल और जागृति के अन्त में अर्थात् सायंकाल इन दोनों समयों में संध्या करता है वह शीलवान् ज्ञानी पुरुष सब में व्यापक परमात्मा को जानकर घबराता नहीं। उक्त प्रामाणों से दो काल अर्थात् सायं, प्रातः संध्या का समय सिद्ध है, और—

पूर्वां संध्यां जपंस्तिष्ठेत्सावित्रीमार्कदर्शनात् ।
पश्चिमांतुसमासीना सम्यगृक्षविभावनात् ॥

मनु० अ० २ श्लो० १०२ ॥

अर्थात् प्रातःकाल की संध्या सूर्य्य के निकलने तक और शाम की संध्या तारों के निकलने तक समाप्त होना चाहिये। एक २ घंटे तक नित्य करना चाहिये। स्मरण रहे कि मनु ने बताया है कि जो प्रातः, सायं की संध्या नहीं करता उसको द्विजों से पृथक करके शूद्रों में सम्मिलित कर देना चाहिये, जैसा कि—

न तिष्ठति तुयःपूर्वां नोपास्ते यश्च पश्चिमाम् ।
स शूद्रवद् बाहिष्कार्यः सर्वस्माद्द्विजकर्मणः ॥

मनु० अ० २ । श्लो० १०३ ॥

तुम यह सोचो कि चिड़ियां तक सवेरे उठकर परमात्मा का यश गाती हैं। कैसे शोक की बात है कि तुम सबसे

उत्तम मनुष्योनि पाकर परमेश्वर के यशगान के समय सोकर वा ठाली बातों में लग कर गँवादो। यह उत्तम योनि बार २ नहीं मिलेगी, जो नित्य करने को पञ्चयज्ञ बताते हैं उनमें प्रथम ब्रह्मयज्ञ अर्थात् सन्ध्या का करना ही है, जैसा कि—

> अध्यापनं ब्रह्मयज्ञः पितृयज्ञस्तु तर्पणम्।
> होमोदैवो बलिर्भौतो नृयज्ञोऽतिथिपूजनम्॥

मनु० अ० ३। श्लो० ७०॥

यह भी जान लीजिये कि सन्ध्या को जड़ बताता है और कर्मों को डाली पत्ते इस कारण जड़ की रक्षा सब से अधिक होनी चाहिये, जैसा कि:—

> विप्रो वृक्षस्तस्य मूलं च सन्ध्या वेदः शाखा धर्म कर्माणि पत्रम्। तस्मान्मूलायत्नतो रक्षणीयं छिन्ने मूले नैव शाखा न पत्रम्॥

वृद्ध चाणक्ये, अ० १०। श्लो० १३॥

अर्थात् विप्ररूपी वृक्षकी जड़ सन्ध्या है, वेद डाली हैं, धर्म कर्म के पत्ते हैं, इसलिये जड़ की यत्न से नष्ट होने से न डाली रह सकती है न पत्ते। अब विधिमंत्र अर्थ सहित आगे लिखते हैं।

अथ ब्रह्मयज्ञः।

अब प्रथम ब्रह्मयज्ञ की रीत्यादि का वर्णन किया जाता है। 'ब्रह्मयज्ञ' को सन्ध्या कहते हैं (सन्ध्या यन्ति सन्ध्यायते

वा परब्रह्म यस्यां सा संध्या) अर्थात् जिसमें सृष्टिकर्त्ता परब्रह्म का ध्यान करते हैं वा किया जाय वह सन्ध्या है। इसके करने की रीति इस प्रकार से है। रात और दिनके संयोग से जो सायं, प्रातः दो सन्धि होती हैं, उस समय अर्थात् प्रातःकाल सूर्य्योदय के पूर्व शौच आदि से निवृत्त होकर और सायंकाल सूर्य्यास्त के समय एकान्त में बैठकर परब्रह्म परमात्मा की शुद्धमन से स्तुति प्रार्थना, उपासना के जो मंत्र आगे लिखे जायंगे उनसे अर्थ विचार पूर्वक करे। अर्थात् जिस प्रकार मंत्रों में स्तुति, प्रार्थना, उपासना की रीति वर्णन की है उसी प्रकार यथावत् जानकर करे, परन्तु सन्ध्या करनेवालों को सन्ध्या करने के पूर्व सर्वप्रकार से पवित्र रहना उचित है क्योंकि जब तक शुद्ध व पवित्र न होगा तब तक संध्या करने का फल प्राप्त न होगा। इस कारण जिस प्रकार महाराज मनु ने शुद्ध होने की रीति बतलाई है किः—

अद्भिर्गात्राणि शुध्यन्ति, मनः सत्येन शुध्यति।
विद्यातपोभ्यां भूतात्मा, बुद्धिर्ज्ञानेन शुध्यति॥

मनु० अ० ५। श्लो० १०६॥

अद्भिः=जलसे। गात्राणि=शरीर। शुद्धयन्ति=शुद्ध होता है। सत्येन=सत्याचरण से। मनः=मन। शुद्धयति शुद्ध होता है। विद्यातपोभ्यां=विद्या और तप से। भूतात्मा=जीवात्मा और ज्ञानेन=ज्ञानसे। बुद्धिः=बुद्धि। शुद्धयति=शुद्ध होती है॥

इसी प्रकार जलसे शरीर को और सत्य बोलने आदि से मनको; विद्या और तप से अपनी आत्मा को, ज्ञान से बुद्धि को शुद्ध वा पवित्र करके पश्चात् परमात्मा की प्राप्ति

के लिये उसकी स्तुति, प्रार्थना, उपासना करनी चाहिये। परन्तु परमात्मा की स्तुति, प्रार्थना, उपासना करने में शरीर शुद्धि की अपेक्षा अन्तःकरण की शुद्धि करना आवश्यक है। इसी की शुद्धि सर्वोत्तम है, क्योंकि सर्व प्रकार के सुख प्राप्त कराके परमपिता परमात्मा को प्राप्त करने का यही एक साधन है। इस कारण आत्मादि को शुद्ध व पवित्र करके सायंकाल व प्रातःकाल नित्य सन्ध्यार्थ सुखदायक एकान्त स्थान में वैठकर प्रथम गायत्री मंत्र से अपने विखरे हुए केशों को वा शिखा को बांधकर नीचे लिखे मंत्र से तीन तीनवार जल से आचमन करे। आचमन करने से कण्ठ के कफआदि की निवृत्ति होजाती है। यदि जल न हो तो न करे। परन्तु इस मंत्र को अर्थ सहित स्मरण करते हुए परमात्मा से अवश्य प्रार्थना करे और जैसी प्रार्थना इस के द्वारा करे उसी प्रकार अपने कर्मों को सुधारने का भी प्रयत्न करे।

* ओ३म् *

आचमन मन्त्रः।

ओं शन्नो देवी रभिष्टय आपो भवन्तु पीतये शंयोरभिस्रवन्तु नः। य० अ० ३६ मं० १२। ऋ० मं० १० । अनु० १ सू० ६ । मं० ४ सा० पू० प्रपा० १ अर्द्ध प्र० १ दश० ३ मं० १३ अथर्व० का० १ । अ० २ सू० ६ । मं० १ ॥

देवीः—हे सर्वप्रकाशक सर्वानन्ददायक। आपाः—सर्वव्यापक सर्वान्तर्यामी ईश्वर। नः—हमारे। अभिष्टये—सांसारिक सुख के लिये। पीतये—परमार्थिक सुख के लिये। शमः कल्याणकारी। भवन्तु—हो। अर्थात् जिस अभिलाषा में हम आपकी स्तुति, प्रार्थना, उपासनादि करने को तत्पर होते हैं। हे परमेश्वर, वह अभिलाषायें हमारी आप पूर्ण कीजिये। क्योंकि हम में ऐसा गुण व बल नहीं है जिससे हम आपकी आज्ञानुकूल यथावत् कर्मों को करके आपसे मनोवाञ्छित फल प्राप्त करसकें। इस कारण, हे सर्वसुखदाता! आप (नः) हमारे ऊपर (शंयोः) सुखकी (अभिस्रवन्तु) वर्षा कीजिये, अर्थात् हम आपके गुण यथावत् धारण करते हुये आप के सुखरूपी वृष्टि को पाकर सर्वानन्द को प्राप्त हों।

इस के पश्चात् इन्द्रियस्पर्श नीचे लिखे मन्त्रों से क्रमानुसार करे और नित्य इसके साथ यह स्मरण करता रहे कि इन इन्द्रियों में जो कुछ शक्ति है वह जगदीश्वर परम पिता परमात्मा की दी हुई है, स्वयं अपने २ कर्त्तव्य में लगी है। इन्द्रियों को नित्य स्पर्श करने का अभिप्राय उनको नित्य शुद्ध करने से है, यदि कोई इन्द्रिय उस समय अशुद्ध प्रतीत हो तो जल से मार्जन अर्थात् शुद्ध करलेवे। इसीलिये इन्द्रियस्पर्श के पश्चात् मार्जन मंत्र लिखे हैं यदि इन्द्रिय अशुद्ध न प्रतीत हों तो मार्जन करने की अधिक आवश्यकता नहीं है, परन्तु इन मंत्रों द्वारा अपनी इन्द्रियों की शक्ति के लिये ईश्वर से प्रार्थना अवश्य नित्य किया करे।

इन्द्रियस्पर्शमन्त्राः।

ओं वाक् वाक्। इस से मुख स्पर्श करे।

ओं प्राणः प्राणः। इससे नासिका स्पर्श करे।

ओं चक्षुः चक्षुः। इस से नेत्र स्पर्श करे।

ओं श्रोत्रं श्रोत्रम्। इस से कर्ण स्पर्श करे।

ओं नाभिः। इस से नाभि स्पर्श करे

ओं हृदयम्। इस से हृदय स्पर्श करे।

ओं कण्ठः। इस से कण्ठ स्पर्श करे।

ओं शिरः। इस से शिर स्पर्श करे।

ओं बाहुभ्यां यशोबलम्। इससे बाहुओं को स्पर्श करे

ओं करतलकरपृष्ठे*। इस से दोनों हाथों को स्पर्श करे

(ओं वा०) हे सर्वप्रकाशक परमात्मन्! आप के नियम से ही वाणी और मुख अपने २ व्यवहारों को सिद्ध करते हैं, और

(ओं प्रा०) हे ज्ञानस्वरूप! आपकी शक्ति से प्राण अर्थात् नासिका और सूंघने की शक्ति अपने २ कर्त्तव्यपालन में हर समय लगे हुए हैं।

(ओं च०) हे सर्वव्यापक परमात्मा! आप के प्रकाश से गोलक और चक्षु इन्द्रिय भी प्रकाशयुक्त होकर सर्व पदार्थों को यथावत् दिखाने में समर्थ हैं।

(ओं श्रो०) हे सर्वाधार! आपकी धारणशक्ति से श्रोत्र भी अपनी श्रवणशक्ति को धारण किये हुये हैं।

(ओं ना०) हे सर्वदायक परमात्मन्! जिस प्रकार

* उक्त मन्त्र, अथर्व काण्ड १९। अनु० ७। सू० ६०। मं० १-२ के आधार पर है। जिसका वर्णन आगे आचमन मंत्र में आवेगा।

संसार में जितने पदार्थ हैं उनको आपसे ही बल प्राप्त है, इसी प्रकार शरीर के सब अवयवों में नाभि द्वारा ही रस वा बल प्राप्त होता है यह भी आपकी ही विचित्र रचना है

(ओं० हृ०) हे तेजस्वरूप परमात्मन् ! आप के तेज से ही हृदय प्रकाशमान् ! होरहा है।

(ओं क०) हे सर्व ऐश्वर्य्यवान्। आपकी ही विचित्र रचना में कण्ठ द्वारा शरीर के भोजनादि से कार्य्य सिद्ध होते हैं।

(ओं शि०) हे सत्यस्वरूप ! आपकी सत्ता से ही शिर सब शरीर की ज्ञान शक्ति को धारण किये हैं।

(ओं बाहु०) हे न्यायकारिन् ! आपके बल से ही दोनों बाहु अपने में यश और बल को धारण किये हैं।

(ओं करत० हे सर्वगुणसम्पन्न परमात्मन् ! आपकी दानरूपी शक्ति से ही दोनों हस्त अपने दानादि व्यवहार को सिद्ध करते हैं, अर्थात् हमको यह निश्चय है कि यह शरीर आपकी रचना से हमारे लिये सुखदायक है।

अथेश्वरप्रार्थनापूर्वक मार्जनमन्त्राः।

ओं भूः पुनातु शिरसि। इससे जल द्वारा शिर को पवित्र करे।

ओं भुवः पुनातु नेत्रयोः। इस से जल द्वारा नेत्रों को

ओं स्वः पुनातु कण्ठे। इस से कण्ठ को।

ओं महः पुनातु हृदये। इस से हृदय को।

ओं जनः पुनातु नाभ्याम्। इस से नाभि को।

ओं तपः पुनातु पादयोः। इस से दोनों पग को।

ओं सत्यं पुनातु पुनश्शिरसि । इस से फिर शिर को ।
ओं खंब्रह्म पुनातु सर्वत्र । इस से सब शरीर को ।

(ओं भूः०) हे सर्वप्रकाशक, प्राणों से प्रिय सर्व सुख-दायक, परमात्मन् हमारे शिर में इस प्रकार का बल और पवित्रता प्रदान कीजिये, जिस से हम आपके ज्ञानानन्दों को यथावत् अनुभव कर सकें ।

(ओं भुवः०) हे ज्ञानस्वरूप सर्व दुःखनाशक ! हमारे नेत्रों में इस प्रकार की दृष्टि शक्ति दीजिये जिस से हम पापाचरण की ओर कभी दृष्टि न दें जिस से आपकी न्याय व्यवस्था से दुःखित न होना पड़े ।

(ओं स्वः०) हे सर्वव्यापक, सर्वकर्त्ता परमात्मन् ! आप हमारे कण्ठ में भी इस प्रकार की शक्ति प्रदान कीजिये जिससे हम कण्ठ द्वारा सदैव सत्य और मधुर और प्रिय भाषण करें ।

(ओं महः) हे सर्वाधार महान्स्वरूप सर्वपूज्य परमेश्वर ! आप हमारे हृदय में इस प्रकार आत्मिक बल दीजिये जिस से हम आपके नियमानुकूल कार्य्य करने में किसी प्रकार भयभीत न हों ।

(ओं जनः) हे सर्वबलदाता सर्वोत्पादक परमात्मा ! आप हमारी नाभि में इस प्रकार का बल दीजिये जिसके द्वारा समानादि वायु सारे शरीर में यथावत् रसादि को पहुँचा सकें ।

(ओं तपः०) हे तेजस्वरूप ज्ञानप्रकाशक परमात्मन् ! आप हमारे पगों में इसप्रकार शक्ति प्रदान कीजिये जिससे

हम आपकी आज्ञानुकूल पृथिवी पर भ्रमण करने में समर्थ हों और देखभाल कर चलें।

(ओं सत्यंपु०) हे सर्वोपरि सर्वगुणसम्पन्न सत्यस्वरूप! आपसे हमारी वारंवार यही प्रार्थना है कि आप हमारे शिर अर्थात् मस्तक में इस प्रकार की विचारशक्ति दीजिये जिससे हम आपकी रचना को यथावत् जान के उससे सुख प्राप्त करें और सत्यज्ञान से मस्तक परिपूरित करें।

(ओं खं०) हे नाशरहित सर्वव्यापक सृष्टिकर्त्ता परमात्मा! हमारे सारे शरीर के कर्त्ता आपही हैं, इस कारण हम आपकी सायं प्रातः प्रार्थना करते हैं कि हमारे सारे अंग वलयुक्त रोग रहित कीजिये, जिससे हम आपकी आज्ञानुसार अपने नित्यनैमित्तिक कर्मों को सुगमता से करके सुख प्राप्त कर सकें।

प्राणायाम विधिः।

इसके पश्चात् निम्नलिखित मन्त्रों से सायं प्रातः दोनों समय प्राणायाम कम से कम तीन वार करे और प्राणायाम करते समय मन से इसके अर्थ का जिस प्रकार ऊपर लिखा है विचार करे और अपनी आत्मा से अपने अन्तर्गत अन्तर्यामी परमपिता के आनन्द को अनुभव करे। प्राणायाम करने की प्रथम अवस्था यही है। प्रथम भीतर के प्राणों को वल से नासिका द्वारा वाहर फेंक दे, अपने सामर्थ्य भर प्राणवायु को वाहर ही रोक दे और मन से मन्त्र का विचार करता जाय। जब भीतर लेने की इच्छा हो तो धीरे २ प्राणवायु को भीतर लेवे, पुनः भीतर ही प्राण को

अपनी सामर्थ्य भर रोक कर मन्त्र का अर्थ सहित जाप करे। इसी प्रकार दूसरी वार प्राणवायु को निकाल कर ग्रहण करे। प्राणायाम करने की यही रीति सर्वोत्तम है। इस प्रथम अवस्था का उत्तम प्रकार से नियमानुकूल सेवन करने से एक वर्ष पश्चात् प्राणों की दूसरी अवस्था प्राणायाम करनेवाले को स्वयं प्राप्त हो जाती है, जिसको पाकर ध्यान उत्तम प्रकार से कर सकता है और विना श्रम के अभ्यास किये इस अवस्था का प्राप्त करना दुर्लभ है।

प्राणायाममंत्राः।

ओं भूः। ओं भुवः। ओं स्वः। ओं महः ओं जनः। ओं तपः। ओं सत्यम्॥ तैत्ति० आ० प्रा० १ अनु० २॥

इसके पश्चात् अधर्माचरण से वचने के लिये निम्न लिखित मन्त्रों से परमात्मा को सर्वसंसार का कर्त्ता जानता हुआ उसकी न्यायव्यवस्था का नित्य स्मरण करके उसके अनुकूल वर्त्ते।

अथेश्वर जगदुत्पादन द्वारा स्तुतिः।

अघमर्षण मंत्राः।

(अर्थात् पापदूरीकरणार्थाः)

ओं ऋतञ्च सत्यञ्चाभीद्धात्तपसोऽध्य

जायत ततो रात्र्यजायत । ततः समुद्रो अर्णवः ॥ १ ॥ समुद्रादर्णवादधि संवत्सरो अजायत अहो रात्राणि विदधद्विश्वस्य मिषतो वशी ॥ २ ॥ सूर्या चन्द्रमसौ धाता यथापूर्व मकल्पयत् दिवञ्च पृथिवीञ्चान्तरिक्षमथोस्वः

ऋ० । अ० ८ । अ० ८ । व० ४८ । मं० १ । २ । ३ ॥

[अभीद्धात्] ज्ञानमय [तपसः] परमात्मा के अनन्त सामर्थ्य से [ऋतंच] वेद [सत्यं च] सत् रज तम त्रिगुणात्मक और नाश न होने वाला अव्यक्त (प्रकृति) [अध्यजायत] प्रकट हुआ [ततः] उसीके सामर्थ्य से [रात्रि] महारात्रि [अजायत] उत्पन्न हुई [ततः] उसी सामर्थ्य से [अर्णवः] मेघमण्डल [समुद्रः] समुद्र [आकाश] हुआ ॥ १ ॥ [अर्णवात्] मेघमण्डल [समुद्रात्] आकाश से पीछे [संवत्सरः] सन्धिकाल [अधिअजायत] ऊपर बीता तब [विश्वस्य] सब [मिषतः] सब चेतन (जीव) मात्र के [वशी] वश मे करने वाले अधिष्ठाता परमात्मा ने [अहोरात्राणि] दिनरातों को [विदधत्] रचा ॥ २ ॥ क्योंकि [धाता] सब जगत् के धारण करने वाले परमेश्वर ने [सूर्य्याचन्द्रमसौ] सूर्य्य और चन्द्रमा को [यथापूर्वम्] पूर्वकल्प के समान [अकल्पयत] रच लिया था [दिवंच] और प्रकाशमान [स्वः] द्युसदा प्रका-

शित लोकको [पृथिवींच] और पृथिवी को [अथो] और [अन्तरिक्षम्] बीच के अन्तरिक्ष लोक को भी।

अर्थात् हे सर्वव्यापक परमात्मन्! यह चराचर जगत् आपके ही सामर्थ्य से अर्थात् इसको आपने ही रचा है, हम आप को ही सर्वान्तर्यामी जानते हैं, आप अवश्य ही हमारे पापाचरणों को यथावत् देखते हो, हमने जो कुछ पापादि किये हैं वह तो हमको अवश्यही न्यायव्यवस्था से भोगने पड़ेंगे परन्तु हम आगामी पापाचरणों से बचने के लिये आपको सर्वत्र जानते हुये आप के सन्मुख प्रतिज्ञा करते हैं अब हम पापाचरणों से पृथक् रहते हुये आप की आज्ञा का पालन करेंगे। इस के पश्चात् निम्नलिखित मंत्रों से परमात्मा को सर्वत्र सर्व दिशाओं में जानते हुये मन से उसी प्रकार उसका विचार करें और सब के साथ रागद्वेष रहित समयोग से वर्ताव करने का दृढ़ संकल्प करें।

मनसापरिक्रमामंत्रः।

ओं प्राचीदिगग्निरधिपतिरसितोरक्षिता दित्या इषवः। तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्योनमो रक्षितृभ्योनम इषुभ्योनम एभ्यो अस्तु। यो ३ स्मान्द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तंवो जम्भे दध्मः॥१५॥

[प्राचीदिक्] पूर्वदिशा में [अग्निः] प्रकाशस्वरूप

ईश्वर [अधिपतिः] स्वामी [असितः] अन्धकार से [रक्षिता] रक्षा करने वाला है। [आदित्याः] सूर्य की किरणें [इषवः] वाण के समान हैं [तेभ्यः अधिपतिभ्यः नमः] उनके स्वामी के लिये आदर हो [रक्षितृभ्यः नम इषुभ्यःनम] उन वाणों के रक्षक के लिये आदर हो [एभ्यः अस्तु] और इन सब के स्वामी को आदर हो [योऽस्मान्द्वेष्टि] जो हम से द्वेष करता है [यं वयंद्विष्मः] जिस से हम द्वेष करते हैं [तम] उस [द्वेषभाव] को [वः] इन वाणों के [जम्भे] दाढ़ में [दध्मः] हम धरते हैं, जैसे कोई अति प्रेम से कहे कि तुम्हारे पैरों के वरदान से ऐसा हो जावेगा हम आप के पैरों पर शिर धरते हैं वैसाही यहां पर अभिप्राय है कि किरण रूपी वाणों के अनुकूल सेवियों को सुख और प्रतिकूल सेवियों को दुःख की सम्भावना है।

दक्षिणादिगिन्द्रोऽधिपतिस्तिरश्चिराजी रक्षिता पितर इषवः। तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम एभ्यो अस्तु योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तंवो जम्भे दध्मः ॥ १५ ॥

(दक्षिणादिक्) दक्षिण दिशा में (इन्द्रः) परमैश्वर्यवान् ईश्वर (अधिपतिः) स्वामी है (तिरश्चिराजी रक्षिताः) जो कीट पतंग सर्पादि जीव जन्तु हैं उनसे रक्षा करनेवाला है (पितरः) चन्द्रकिरणें (इषवः) वाणों के तुल्य हैं अथवा

(पितर इषवः) सृष्टि में ज्ञानी लोग बाण के समान अज्ञान को नाश करने वाली किरणें हैं। शेष पूर्ववत्।

प्रतीचीदिग्वरुणोऽधिपतिः पृदाकू रक्षिता न्नमिषवः तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम एभ्योऽस्तु योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तंवो जम्भे दध्मः।

(प्रातीचींदिक्) पश्चिम दिशा में (वरुणः) सर्वोत्तम भजनीय ईश्वर। अधिपतिः स्वामी है (पृदाकु रक्षिता) विषैले प्राणियों से रक्षा करने वाला है (अन्नम इषवः) अन्न बाण तुल्य हैं। शेष पूर्ववत्।

उदीचीदिक्सोमोऽधिपतिः स्वजो रक्षिता शनिरिषवः तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम एभ्योऽस्तु योऽस्मान्द्वेष्टि यं वयं द्विष्मतंवोजम्भेदध्मः।

(उदीचीदिक्) उत्तर दिशा में (सोमः-अधिपतिः) शान्ति स्वरूप ईश्वर स्वामी है (स्वजोरक्षितः) स्वयं उत्पन्न होनेवाले है (अशनिः) बिजली (इषवः) बाण तुल्य हैं। शेष पूर्ववत्।

ओं ध्रुव दिग्विष्णुरधिपतिः कल्माषग्रीवो रक्षिता वीरुध इषवः तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम एभ्योऽस्तु योऽस्मान्द्वेष्टियं यं वयं द्विष्मस्तंवो जम्भे दध्मः

(ध्रुवादिक्) नीचे की दिशा में (विष्णुः) व्यापक ईश्वर (अधिपतिः) स्वामी है और (कल्माषग्रीवो रक्षिता) काली ग्रीवा वालों से रक्षा करता है (वीरुधः) वनस्पत्यादि (इषवः) बाण तुल्य हैं। शेष पूर्ववत्।

ओं ऊर्ध्वादिग्बृहस्पतिरधिपतिः श्वित्रो रक्षितावर्षमिषवः तेभ्यो नमोधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम एभ्योऽस्तु योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तंवो जम्भे दध्मः ॥

अथर्व कां० ३। अनु० ६। सू० २७। मं० १, २, ३, ४, ५, ६, ॥

(ऊर्ध्वादिक्) ऊपर की दिशा में (बृहस्पतिः) बड़ोंका बड़ा ईश्वर (अधिपतिः) स्वामी है और (श्वित्रो रक्षिता) श्वेत कुष्टादि रोगों से रक्षा करनेवाला है। (वर्षम् इषवः) वर्षा बाण तुल्य हैं। शेष पूर्ववत्।

उपस्थान मंत्राः ।

ओं उद्वयं तमसस्परि स्वः पश्यन्त उत्तरम्

देवं देवत्रा सूर्यमगन्मज्योतिरुत्तमम् ।

य० अ० ३५ मं० १४ ॥

(सूर्य्य) हे चराचर के आत्मा ! आपको (वयं) हम सब (ज्योतिः) प्रकाशस्वरूप (उत्तम् सर्वोत्तम (तमसस्परि स्वः अन्धकार से पृथक (उत्तरम) नाशरहित सदा वर्त्तमान (देवं देवत्रा) देवों के भी देव अर्थात् प्रकाश करनेवाले के भी प्रकाशक जानकर उद्गमनं) प्राप्त हुए आप हमको भी अपनी शक्ति प्रदान करिये जो हम आपकी आज्ञा को यथावत् पालनकर सुखको प्राप्त हों ।

ओं उदुत्यं जातवेदसं देवं वहंति केतवः

दृशे विश्वाय सूर्यम् ॥ य० अ० ३३ मं० ३१ ॥

(केतवः) हे सर्वाधार दुःखनिवारक परमात्मन् ! आप से ही (जातवेदसं) वेदरूप ज्ञान और यह सकल पदार्थ उत्पन्न हुए हैं अर्थात् इन सबके उत्पादक आप ही हैं इसी कारण आप जातवेद हैं, फिर आप कैसे हैं (देवं) देवों के देव (सूर्य) सबकी आत्मा अर्थात् चराचर के प्रकाशक हो (उ) ऐसा आपको जानकर (त्वं) उक्त विशेषणयुक्त आपके समीप (दृशेविश्वाय) विश्वविद्या की प्राप्ति के लिये हम (उद्वहन्ति) प्राप्त होते हैं अर्थात् हम आप से यह प्रार्थना

करते हैं कि आप हमको ऐसी अधिक शक्ति प्रदान करिये जिससे हम आपकी वेदविद्या को यथावत् जानकर उसके द्वारा सब पदार्थों के गुणादि जानकर उससे सुख प्राप्त करें

ओं चित्रं देवानामुदगादनीकं चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्याग्नेः आप्राद्यावा पृथिवी अन्तरिक्षꣳ सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च स्वाहा ॥

य० अ० ७ मं० ४२ ॥

[सूर्य्य] हे सूर्य्यस्वरूप परमात्मा, आप [जगतः] प्राणी अर्थात् चलने फिरनेवाले चेतन के [च] और [तस्थुषः] स्थावर अर्थात् जड़ के [आत्मा] आत्मा हो अर्थात् आपके सामर्थ्य से ही यह चराचर जगत् प्रकाशित होरहा है और [आप्राद्यावा पृथिवी अन्तरिक्षं] सूर्य्य पृथिव्यादि अन्तरिक्षादि लोकों को आपही रचकर धारण करनेवाले हो [चक्षुः] सर्वप्रकार के प्रकाश [मित्रस्य] रागद्वेष रहित सबके लिये एक समान करनेवाले हो और [वरुणस्य] सब उत्तम कर्मों के धारण करनेवाले को आप ही [अग्निः] प्रकाश करनेवाले हो [चित्रं देवानाम्] चित्र विचित्र रूप जड़ देवों में और अद्भुत स्वरूप विद्वानों के हृदय में आपकी ही यह विचित्रता वर्तमान है इस कारण जो आप [अनीकं] सर्वदुःखनाशक सुखस्वरूप हो तो [उद्गात्] हमारे हृदय में भी वही गुण प्रकाश करिये जिससे हम दुःखों से पृथक् रहें। और [चक्षुर्मित्रस्यवरुणस्याग्ने]

का यह भी अर्थ पं० तुलसीराम स्वामी ने लिखा है कि सूर्य्य चन्द्रमा अग्नि का प्रकाशक है।

ओं तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत पश्येम शरदः शतं जीवेमशरदः शतꣳशृणुयाम शरदः शतं प्रब्रवामशरदः शतमदीनाः स्याम शरदः शतं भूयश्च शरदः शतात् ॥ ४ य० अ० ३६। मं० २४॥

हे परमात्मन् (तच्चक्षुः) आप सर्वदृष्टि (देवहितं) विद्वानों के हितकारक हो और (पुरस्तात्) सृष्टि के पूर्व और पश्चात् (शुक्रमुच्चरत) सत्यस्वरूप से वर्तमान रहे हो।

अर्थात् सब जगत् के कर्त्ता आप ही हो। इस कारण आप के वारंवार गुणानुवाद करते हुए प्रार्थना करते हैं कि हे परमात्मन्, आप हमको ऐसी विशालशक्ति प्रदान करिये जिससे हम (पश्येमशरदःशतम्) सौ वर्ष अथवा जन्मपर्यन्त जहां देखें वहां आपको ही देखें और इस प्रकार की श्रवणशक्ति दीजिये जो (शृणुयाम शरदः शतम्) जन्म पर्यन्त आप के ही गुणानुवादों को सुनें और इस प्रकार की वाक् शक्ति दीजिये जो (प्रब्रवाम शरदः शतम्) जन्म पर्यन्त आपके ही गुणानुवादों को गाते हुए आप की वेदवाणी का अन्यों के लिये भी उपदेश करें और हे परमात्मन्! आप हमारे ऊपर ऐसी कृपा कीजिये जो हम (भूयश्च शरदः शतम्)

आप की ही आज्ञा पालन में सौ वर्ष अथवा जन्म पर्य्यन्त अपने समय को लगावें जिससे आप की न्याय व्यवस्थानुकूल (अदीनास्यामशरदः शतम् सौ वर्ष वा जन्म पर्य्यन्त किसी के आधीन न रहें किन्तु (जीवेम शरदः शतम्। स्वतन्त्रा पूर्वक आप की आज्ञानुकूल कर्म करते हुए सौ वर्ष अथवा जन्म पर्यन्त जीवें। उक्तप्रकार मन्त्रों द्वारा परमात्मा से प्रार्थना करते हुये निम्नलिखित गुरुमन्त्र के द्वारा परमात्मा से सब कार्य्य सिद्ध करनेवाली बुद्धि के लिये प्रार्थना करें और उसकी प्राप्ति के अर्थ तदनुसार कर्म करें।

गुरुमन्त्रः।

ओं भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यम्भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात् ॥ य० अ० ३६–मं० ३ ॥ ऋ० मण्डल ३ सूक्त ६२ मं० १० एवं चतुर्ष वेदेषु समानो मन्त्रः सा० उत्तरा० प्र० ६ अर्द्ध प्र० ३ मं० १० ॥

(ओं भूः) हे प्राणों से प्रिय, सर्वसुखदाता सुखस्वरूप (भुवः) दुःख रहित सर्व दुःखनाशक (स्वः) सर्व व्यापक संसार को नियम में रखने वाले सब सृष्टि के आधार परमात्मन्! आप (सवितुः) सब जगत् के उत्पन्न करने वाले सर्व ऐश्वर्य्यदायक हो और (देवस्य) सर्व प्रकार के प्रकाशादि सुख दायक पदार्थों के दाता (वरेण्यम्) शरण लेने योग्य

अति श्रेष्ठ (भर्गः) शुद्ध स्वरूप पवित्रकर्त्ता हो, इस कारण (तत्) आप को इस प्रकार जानकर (धीमहि) हम अपने हृदय में इस लिये धारण करते हैं कि (यो) आप (नः) हम सब की (धियः) बुद्धियों को (प्रचोदयात्) प्रेरणा करें अर्थात् इस प्रकार ज्ञान प्रदान करें जो बुरे कामों से पृथक् होकर उत्तम कर्मों में ही हमारी बुद्धि प्रवृत्त हो। इस प्रकार सब मन्त्रों के अर्थों सहित परमेश्वर की सम्यक् प्रकार स्तुति, प्रार्थना, उपासना करते हर समय अपने मन में इस प्रकार विचार रखना चाहिए कि हे ईश्वर दयामय आप की कृपा से जो २ उत्तम कार्य्य हम करते हैं वे सब आप को अर्पण हैं, हम आपही की आज्ञा पालन करते हुए, १धर्म, २अर्थ, ३काम, ४मोक्ष चारों पदार्थों की प्राप्ति करें। इस प्रकार निष्कामभाव हर समय मन में रखना चाहिए। इसके पश्चात् निम्न लिखित मन्त्र से परमात्मा को नमस्कार करके संध्या को समाप्त करें।

ओं नमः शम्भवाय च मयोभवाय च नमः शंकराय च मयस्कराय च नमः शिवाय शिवतराय च ॥११॥ य० अ० १६। मं० ४१ ॥

(नमः शम्भवाय च) हे सुख स्वरूप (मयो भवाय च) सर्व प्रकार के सुखों के दाता (नमः शंकराय च) कल्याण

१ धर्म-जो सत्य न्याय का आचरण करना है। २ अर्थ-जो धर्म से पदार्थों की प्राप्ति करनी है। ३ काम-जो धर्म, अर्थ से इच्छित भोगों का सेवन करना है। ४ मोक्ष-जो सब दुखों से छूट कर सदा आनन्द में रहना है

के कर्त्ता मोक्षस्वरूप (मयस्कराय च) भक्तवत्सल अर्थात् भक्तों के सुखदाता (नमः शिवाय च शिवतराय च) मंगल स्वरूप कल्याणकारी आप को हमारा वारंवार नमस्कार है।

❀ दूसरा देवयज्ञ ❀

माताओ! अथर्ववेद का० १६ अनु० ७ सू० ५५ मं० ३ ४ में लिखा है:—

सायं सायं गृहपतिर्नो अग्निः प्रातः प्रातः सौमनस्यं दाता वसोर्वसोर्वसुदान एधि वयन्त्वे-न्धानास्तन्वं पुषेम ॥ प्रातः प्रातर्गृहपतिर्नो अग्निः सायं सायं सौमनस्य दाता वसोर्वसो-र्वसुदान एधीन्धानास्त्वा शतंहिमा ऋधेम ॥

इन दोनों का अर्थ यह है कि प्रतिदिन प्रात और सायं-काल हम भौतिक अग्नि को प्रज्वलित करते हुये शरीर से उसी भांति पुष्ट हों जैसे आप रक्षक और धनदाता को चित्त में धारण कर आप का मान करते हुये पुष्ट होते हैं दूसरे में इतना अधिक है कि हम अग्निहोत्र और ईश्वर की उपासना करते हुये हम लोग (शतहिमाः) सौ हेमन्त ऋतु अर्थात् सौ वर्ष व्यतीत होजाने पर्यन्त धनादि पदार्थों से वृद्धि को प्राप्त हों।

इस प्रकार सहस्रों मंत्रों में देवयज्ञ करने की आज्ञा और करने के लाभ वेदों में पाये जाते हैं, इसलिये "अग्नि-

होत्र फलावेदः" लिखा गया है। वरन् सृष्टि कर्म द्वारा भी प्रत्यक्ष स्वाभाविक हवन होता हुआ दिखाई पड़ता है। सूर्य्यरूपी अग्निकुण्ड सारी वनस्पति आदि से सुगन्धि खींच २ कर वायु में भर रहा है और आपके जीवन की रक्षा और सुख का हेतु बन रहा है और आप को उपदेश कर रहा है कि तुम्हें वायु जल के शुद्ध करने की आवश्यकता न पड़ती यदि आप परमात्मा की बनाई हुई वायु को अपने मलमूत्र थूक खखार से विगाड़ के कारण न बनतीं, जब आप नित्यप्रति उस शुद्ध वायु को अपने तथा पशु आदि के द्वारा दुर्गन्धित करती हो तो उसके प्रति न्यून से न्यून उतनी ही सुगन्धि उत्पन्न करदेने के अर्थ तो होम करना केवल अपने पाप का प्रायश्चित्त करना है, अधिक करके आप पुण्यभागी भलेही बन सकती हो। देखोः—

यत्पुरुषेण हविषा देवा यज्ञमतन्वत व सन्तोऽस्यासीदाज्यं ग्रीष्म इध्मः शरद्धविः।

ऋ० मं० १० । अनु० ७ सूक्त ९० । मं० ६ ।
य० अ० ३१ । मं० १४ ॥

इस में वतलाया है कि स्वाभाविक हवन के अर्थ परमात्मा ने वसन्त ऋतु घी ग्रीष्म अग्नि शर्द ऋतु हवी उत्पन्न की है, माता जी, यह सब से अधिक परोपकारी कर्म था जब तक इसका पूर्णतया प्रचार रहा हमें सम्पूर्ण सुख प्राप्त रहे सारे रोग निर्मूल रहे। आज कोई पुरुष अपने शत्रु को अपनी चलते सुख नहीं पहुँचाता न ऐसा कोई कार्य्य करता

है जिससे उसको लाभ हो परन्तु हवन के करने से शत्रु का शत्रु भी जल वायु औषधि अन्न के शुद्ध होने से लाभ उठाता है। हवन करने से ऊपर की वायु हलकी होकर ऊपर को उठती है उसके स्थान पर इधर उधर से और हवा आजाती है ऐसे ही होने से किये हुये हवन का प्रभाव दूर देश तक पहुंच जाता है और वही धूम आकाश में जाकर मेघमण्डल बनता है और वर्षा होकर बरसता है जिससे, सम्पूर्ण अन्न औषधि गुणकारी और लाभदायक उत्पन्न होता है वरन् जो सैकड़ों मन दुग्ध को पावभर कांजी जमा देती है इसी प्रकार वह हवन किये हुये घृत के परमाणु मेघमण्डल में पहुंच पानी के भाफरूपी समूह को जमा कर बादल मेघाकार बना देते हैं वर्षा की न्यूनता भी हवनादि के न होने काही कारण है, प्लेग जैसे भयानक रोग का प्रभाव उन घरों पर नहीं हुआ जिन घरों में हवन होता रहा, आप पर विदित रहे विष खाये हुये वा सांप के काटे हुये घी इसलिये पिलाते हैं कि विष का प्रभाव दूर होजावे और कपूर के सूंघने वा किसी पशु आदि के कीड़े पड़े हुये घाव के निकट रखने से कीड़े दूर हो जाते हैं तो कैसे सम्भव है कि घृत और कपूर सुगन्धित मिष्टकारक रोगनाशक पुष्टिकारक द्रव्यों से किये हुये हवन से घर में कोई रोग वा ज़हरीला कीड़ा रह सके। हवन में डाला हुआ पदार्थ हज़ारों गुणा होकर अपना प्रभाव करता है, एक पुरुष दश मिर्चा अकेला खा जाता है पर आधो मिर्च के अग्नि में पड़ जाने से सहस्रों बैठे हुये पुरुषों पर प्रभाव पड़ जाता है, इसी प्रकार हवन में डाले हुए पदार्थों का नाश नहीं होजाता वरन् सहस्रों गुणा सूक्ष्म होकर प्रभाव पड़ता है। मूर्ख जन हवन

यज्ञ करने को भी अग्निपूजा कहते, यह उनकी बड़ी भूल है। क्योंकि जैसे हम अग्नि से होम करते हैं वैसे ही वे अग्नि से रोटी पकाते हैं यदि रोटी पकाते हैं यदि रोटी पकाना आतिश परस्ती (अग्निपूजा) नहीं है तो हवन क्रिया किस प्रकार अग्निपूजा हो सकती है मूर्ख जन जो पढ़े लिखे नहीं, वे क्या जानें कि हम हवन द्वारा घी को वो रहे हैं घी के मेघमण्डल में वोने का हवन के अतिरिक्त और कोई अन्य उपाय साधन ही नहीं। आप घी को वर्षों तक धूप में रक्खा रहने दीजिये वह किञ्चित् कम नहीं होता, अग्नि ही है जो उसके परमाणुओं को सूक्ष्म वना आकाश में पहुंचा देती है। आप को ज्ञात है कि घी दूध से निकलता है, वह दूध गाय भैंस पशुओं से प्राप्त होता है उन में घास करवी, भूसा, विनौले आदि से जो वह खाती हैं आता है और यह सब पदार्थ मेघ से वर्षा द्वारा उत्पन्न होते हैं। यदि वर्षा में घृत न हो तो कहां से आ सकता है, क्योंकि "अवस्तुनो वस्तुसिद्धिः" अभाव से भाव नहीं होता। मेघ मण्डल में कुछ तो वह घृत जो लेशमात्र पक्वान्न वनाने में अग्नि-संयोग के कारण विना चाहे पहुंच जाता है और अधिकांश हवन से ही पहुंच जाता है और अधिकांश हवन से ही पहुंच सकता है। आज हमारे देश के पढ़े लिखे बाबू लोगों को हवन से प्यार नहीं रहा, यही कारण है कि उन्हें घी की खान जो गौ हैं उन से भी घृणा हो रही है, उनकी पीठ पर हाथ फेरना रोटी खिलाना उनकी प्रतिष्ठा के विरुद्ध असभ्यता है; परन्तु उनके स्थान पर कुत्ते उन से अधिक दामों को देकर मोल लेना, उनको आपही नहलाना, पास सुलाना, उनका मुंह चूमना—टेपू, टेपू, वुली २ आदि कह

कर पुकारना जण्टिलमैनी और सभ्यता की शान है। माताओ! तुम पढ़कर सदा हवन यज्ञ करती औरों के उपकार में लगी रहना और अपने आचारको पवित्र बनाना और हवन से शिक्षा लेना कि अग्नि सबको भस्म कर देती है, एक दिन हमें शरीर त्यागना और इस शरीर को भस्म होना है, इस लिये इस जीवन के थोड़े काल में जिसका हमें पता भी नहीं है, जो शुभकर्म परमात्मा की आज्ञानुकूल कर सकते हों उनमें विलम्ब कभी न करें। तुम प्रतिदिन दोनों समय अग्निरूपी यमराज को देख अपने पापों को स्मरण कर फिर न करने की प्रतिज्ञा कर उसी हवन में भस्म कर दिया करो। यह भी देखो कि हवन में पड़ी सामग्री लकड़ी स्वयं जलती है अन्यों को प्रकाश और सुगन्धि पहुंचाती है, इससे यह शिक्षा ग्रहण करो विना कष्ट सहे और अपने को अन्यों के उपकार के लिये भस्म किये स्वर्ग और यश प्राप्त नहीं होसकता। यह भी सोचें कि सूर्य्य वा अग्नि अमलीन वस्तुओं को छूकर स्वयं मलीन नहीं होते वरन् सब की मलीनताओं को दूर कर देते हैं वैसेही तुम आर्य्या देवियों सदा अनार्य्या भगिनियों के दोषों के दूर करने की इच्छुक रहो और उनके छूने से घृणा न करो। अपने समान उन्हें विद्या धर्म की भागिनी समझो प्रकाश में ठीक वस्तु दीखती है, प्रकाश सत्य का प्रचारक है, तुम सदा सत्य वादिनी बनने की इससे शिक्षा सीखो। अग्नि निर्भय होकर चीज़ों को जलाती है, तुम भी सत्य की निर्भयता से प्रचार वा प्रकाश करो। अग्नि सतोगुणवाली है, इसकी ज्वाला ऊपर को जाती है चाहे जितने नीचे गड्ढे में क्यों न जलाओ। इस लिए ऊंचा बनने के लिये

सतोगुणी बनने की परमावश्यकता है। अग्नि सब देवताओं को अपना २ भाग सब सामग्री छिन्न भिन्न कर पहुंचा देती है, अग्नि को दूत बतलाया है, वैसे तुम सबको हिस्सा बांट कर भोजन सदा किया करो, नहीं तो इन्द्रियों के युद्ध के समान सबको दुःख होगा एक के स्वार्थी होने से सबको दुःख होगा।

नोट—पति, पत्नी दोनों एक साथ बैठकर तो अवश्यही हवन किया करें और जो घर में माता पितादि और भी सम्बन्धी हों वे भी साथ ही बैठ कर उच्च स्वर से मंत्र बोला करें तो अति उत्तम है।

जो २ हवन करें वे प्रथम हवन की सामग्री जो शुद्ध रीति अनुसार बनाई गई हो एक पात्र में, घृत जो तपाकर छान केसर आदि डालकर शुद्ध कर लिया हो उसे दूसरे शुद्ध पात्र में और समिधा और एक २ जलपात्र और प्रणीता और प्रोक्षणी और स्रुवा और हवनकुण्ड इनको एक शुद्ध स्थानपर एकत्रित करलें फिर जो २ हवन करें सब एक २ मंत्र पढ़कर तीनों निम्नलिखित मंत्रों से आचमन करें।

आचन मन्त्रः।

ओं अमृतोपस्तरणमसि स्वाहा। इससे एक।

ओं अमृतोपिधानमसि स्वाहा। इससे दूसरा।

ओं सत्यं यशः श्रीर्मयि श्रीः श्रयतां स्वाहा।

गोपथ ब्रा० पू० भा०। प्रपा० १। ब्राह्मण ३९॥

इससे तीसरा आचमन करके तत्पश्चात् नीचे लिखे

मंत्रों से बायें हाथ पर जल रखकर सीधे हाथकी अँगुलियाँ से लगाकर नीचे लिखे मंत्रों से इन्द्रियस्पर्श करे।

*ओं वाङ्मऽआस्येऽस्तु। इस से मुख।

ओं नसोर्मे प्राणोऽस्तु। इस मन्त्र से नासिका के दोनों छिद्र।

ओं अक्ष्णोर्मे चक्षुरस्तु। इस मन्त्र से दोनों आंखें।

ओं कर्णयोर्मे श्रोत्रमस्तु। इस मन्त्र से दोनों कान।

ओं बाह्वोर्मे बलमस्तु। इस मन्त्र से दोनों बाहु।

ओं ऊर्वोर्मेऽओजोऽस्तु। इस मन्त्र से दोनों जंघा और

ओं अरिष्टानिमे अंगानि तनूस्तन्वामे सहसन्तु

इससे सम्पूर्ण शरीर पर जल से मार्जन करना।

तत्पश्चात् किसी द्विज के मकान से अग्नि मँगा हवन यज्ञ में कुछ समिधा चुनकर कपूर स्रुवा में रखकर अग्न्याधान अगले मंत्र को पढ़कर वेदी के बीच में धर उस पर छोटे २ काष्ठ और कपूर धर देवे।

ओं भूर्भुवः स्वर्द्यौरिव भूम्ना पृथिवीव वरिम्णा। तस्यास्ते पृथिवि देवयजनि पृष्ठेऽग्नि

*वाङ्म आसन्न सोः प्राणश्चक्षुरक्ष्णोः श्रोत्रं कर्णयोः। अपलिताः केशाः अशोणा दन्ता बहु बाह्वोर्बलम्॥ १॥ ऊर्वोरोजो जंघयो र्जवः पादयोः प्रतिष्ठा अरिष्टानि मे सर्वात्मना निभृष्टः। अथर्व० कां० १९। अनु० ८। सू० ६०। मंत्र १।२॥

मन्नादमन्नाद्यायादधे ॥ य० अ० ३। मं० ५॥

तत्पश्चात् अगला मंत्र पढ़कर व्यजन (पंखे) से प्रदीप्त करे।

ओं उदबुध्यस्वाग्ने प्रतिजागृहित्व मिष्टापूर्ते सᳪसृजेथा मयं च अस्मिन्त्सधस्थेऽअध्युत्तरास्मिन् विश्वेदेवा यज मानश्च सीदत ॥ य० अ० १५ मं० ५४ ॥

जब अग्नि समिधाओं में प्रविष्ट होजावे तब चन्दन अथवा देवदारु की अथवा गूलड़, ढाक, आम, बड़, पीपल काष्ठ जिन लकड़ियों से हवन किया जाता है तीन आठ २ अंगुल की लकड़ी घृत में डुबोकर नीचे लिखे मंत्रों से अग्नि में चढ़ावें, वे मंत्र ये हैं—

ओं अयन्त इध्मऽआत्मा जातवेदस्तेनेध्यस्व वर्धस्व चेद्धवर्धय चास्मान् प्रजया पशुभिर्ब्रह्म वर्चसे नान्नाद्येन समेधय स्वाहा॥ इदमग्नये जातवेदसे इदन्नमम ॥

इस मन्त्र से एक।

ओं समिधाग्निं दुवस्यत घृतैर्बोधयतातिथिम् । आस्मिन् हव्या जुहोतन स्वाहा ॥ इदमग्नये इदन्नमम ॥

इस से और—

सुसमिद्धाय शोचिषे घृतं तीव्रं जुहोतन । अग्नये जातवेदसे स्वाहा ॥ इदमग्नये जातवेदसे इदन्नमम ॥

इस मंत्र से अर्थात् इन दोनों मंत्रों से दूसरा । और ।

तन्त्वा समिद्भिरंगिरो घृतेन वर्द्धयामसि वृहच्छो चा यविष्ठय स्वाहा ॥ इदमग्नयेऽङ्गिरसे इदन्नमम ॥ य० अ० ३ । मं० १ । २ । ३ ॥

इस मंत्र से तीसरा समिधा की आहुति देवे ।

तत्पश्चात् घृत की पांच आहुति [ओम् अयन्त इध्म आत्मा] मंत्र से देवे ।

तत्पश्चात् वेदी के पूर्व दिशा आदि और अञ्जलि में जल लेके चारों ओर छिड़कावे उस के ये मन्त्र हैं—

ओम् अदितेऽनुमन्यस्व । इस मंत्र से पूर्व ।

ओम् अनुमतेऽनुमन्यस्व । इस से पश्चिम ।

ओम् सरस्वत्यनुमन्यस्व । [गोभिल गृ० सू०]

ओं देव सवितः प्रसुव यज्ञं प्रसुव यज्ञपतिं भगाय । दिव्यो गन्धर्वः केतपूः केतं नः पुनातु वाचस्पतिर्वाचं नः स्वदतु ॥ य० । अ० ३० । मं०१ ॥

इस मन्त्र से वेदी के चारों ओर जल छिड़कावे, इसके पश्चात् घृत की यज्ञकुण्ड के उत्तर भाग में एक आहुति और दक्षिण भाग में दूसरी आहुति देनी चाहिये । इस का नाम "आघारावाज्याहुति" है । उस के पश्चात् जो कुण्ड के मध्य में दो आहुतियां दीजाती हैं उन को "आज्यभागाहुति" कहते हैं, सो घृतपात्र में से स्रुवा को भरकर अगूठा मध्यमा अनामिका से स्रुवा को पकड़ के—

ओम् अग्नये स्वाहा इदमग्नये इदन्नमम।

इस मन्त्र से वेदी के उत्तर भाग में अग्नि में।

ओं सोमाय स्वाहा । इदं सोमाय इदन्नमम।

इससे वेदी के दक्षिण भाग में प्रज्वलित समिधा पर।

ओं प्रजापतये स्वाहा इदं प्रजापतये इदन्नमम।

ओम् इन्द्राय स्वाहा इदमिन्द्राय इदन्नमम

(गो० गृ० सू०)

इन दोनों मंत्रों से वेदी के मध्य में दो आहुति देवे तत्पश्चात् नीचे लिखे मन्त्रों से प्रातःकाल अग्निहोत्र करे।

ओं सूर्यो ज्योति ज्योतिः सूर्यः स्वाहा ।

अर्थ जो चराचर का आत्मा प्रकाश स्वरूप और सूर्य्यादि प्रकाशित लोकों का भी प्रकाश करने वाला है उसकी प्रसन्नता के लिये हम लोग होम करते हैं।

ओं सूर्यो वर्चो ज्योतिर्वर्चः स्वाहा।

सूर्य्य जो परमेश्वर है वह हम लोगों को सब विद्याओं का देनेवाला और हम से उनका प्रचार कराने वाला है उसी की अनुग्रह से हम लोग अग्निहोत्र करते हैं।

ओं ज्योतिः सूर्यः सूर्यो ज्योतिः स्वाहा।

जो आप प्रकाशवान और जगत् का प्रकाश करनेवाला सूर्य ईश्वर है उसी की प्रसन्नता के अर्थ हमलोग अग्निहोत्र करते हैं।

ओं सजूर्देवेन सवित्रा सजूरुषसेन्द्रवत्या जुषाणः सूर्यो वेतु स्वाहा। य० अ० ३। मं०९। १०॥

और जो परमेश्वर सूर्यादि लोकों में व्याप्त वायु और दिन के साथ संसार का परम हितकारक है वह हम लोगों को विदित होकर हमारे किये हुए होम को ग्रहण करे।

ओं अग्निर्ज्योति ज्योतिरग्निः स्वाहा

अग्नि जो ज्योति स्वरूप परमेश्वर है उसकी आज्ञा से हमलोग परोपकार के लिये होम करते हैं और वह अपने रचे हुए अग्नि द्वारा वायु जलादि को शुद्ध कर दे जिस से सब को सुख मिले।

ओं अग्निर्वर्चो ज्योतिर्वर्चः स्वाहा ।

अग्नि परमेश्वर वर्च्च अर्थात् सब विद्याओं का देनेवाला और भौतिक अग्नि आरोग्यता और बुद्धि का बढ़ानेवाला है इस लिये हमलोग होम से ईश्वर की प्रार्थना करते हैं ।

ओं अग्निर्ज्योतिर्ज्योतिरग्निः स्वाहाः ।

इस मन्त्र को मन से उच्चारण करके आहुति देवे अर्थात् मौन होके इसका अर्थ ऊपर लिखा है ।

ओं सजूर्देवेन सवित्रा सजूरात्र्येन्द्रवत्या जुषाणो अग्निर्वेतु स्वाहा ॥य० अ० ३ । मं० ९ । १० ॥

अग्नि परमेश्वर सूर्यादि लोकों में व्याप्त वायु और रात्रि के साथ संसार का परम हितकारक है वह हमको परम हितकारक है हमारे किये होम को ग्रहण करे ।

निम्नलिखित मन्त्रों से प्रातः सायं आहुति देना चाहिए

ओं भूरग्नये प्राणाय स्वाहा । इदमग्नये प्राणाय इदन्नमम ।

ओं भुवर्वायवेऽपानाय स्वाहा । इदंवायवे इदन्नमम ।

ओं स्वरादित्याय व्यानाय स्वाहा । इदमादित्याय व्यानाय इदन्नमम ।

ओं भूर्भुवः स्वरग्नि वाय्वादित्येभ्यः प्राणापान व्यानेभ्यः स्वाहा । इदमग्नि वाय्वादित्येभ्यः प्राणापान व्यानेभ्यः इदन्नमम ।

ओं आपो ज्योती रसोऽमृतं ब्रह्मभूर्भुवः स्वरों स्वाहा ।

ओं यां मेधां देवगणाः पितरश्चोपासते— तया मामद्यमेधयाऽग्ने मेधाविनं कुरु स्वाहा ।

य० अ० ३२, मं० १४ ॥

जिस मेधा नामी धारणावती बुद्धि को हमारे पूर्व ऋषि मुनि प्राप्त थे और जिस की प्राप्ति की सदा आप से याचना करते थे उसकी प्राप्ति के अर्थ हम सदा आपसे विनय करते रहें और आप दया करके हमें प्राप्त करायें ।

ओं विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परासुव यद्भद्रंतन्न आसुव स्वाहा य० अ० ३० । मं० ३ ॥

हे (सावतः) सकल जगत् के उत्पत्ति कर्ता समग्र ऐश्वर्य्ययुक्त देवी शुद्ध स्वरूप सब सुखों के दाता परमेश्वर आप कृपा करके (नः) हमारे (विश्वानि) सम्पूर्ण [दुरितानि] दुर्गुण दुर्व्यसन और दुःखों को दूर कीजिये

[यत्] जो [भद्रम्] कल्याणकारक गुण कर्म स्वभाव और पदार्थ हैं वह सब हमको [आसुव] प्राप्त कीजियें।

ओं अग्ने नय सुपथाराये अस्मान्विश्वानि देव वयुनानि विद्वान्। युयोध्यस्मज्जुहुराण मेनो भूयिष्ठान्ते नम उक्तिं विधेम स्वाहा।

य० अ० ४०। मं० १६॥

हे [अग्ने] प्रकाश स्वरूप [देव] अद्भुत शोभा युक्त ईश्वर! आप [विश्वानि] सब [वयुनानि] कर्मों को [विद्वान्] जानते हुये [आस्मान्] हमको [राये] मोक्ष रूप ऐश्वर्य प्राप्त होने के अर्थ [सुपथा] सुन्दर सरल मार्ग से [नय] चलाइये और [जुहुराणम्] कुटिल [एनः] पाप को [अस्मत्] हम से [युयोधि] पृथक् कीजिये इस कारण हम लोग [ते] आपकी (भूयिष्ठाम् बहुत प्रकार की स्तुति रूप [नम उक्तिम्] नमस्कार प्रशंसा [विधेम] विधान करते हैं अर्थात् आप से प्रार्थी हैं कि आप सदा सुमार्ग से चलाइये।

इन आठ मंत्रों से एक २ करके आठ आहुति दे के तत् पश्चात्।

ओं सर्ववै पूर्णं स्वाहा।

इस मन्त्र से तीन पूर्णाहुति अर्थात् एक २ बार पढ़के तीन आहुति देवें।

नोट—अधिक हवन करना हो तो गायत्री आदि और मंत्रों से अन्त में स्वाहा शब्द बढ़ाकर कर लिया करें।

[प्रश्न] स्वाहा शब्द जो अधिक हवन में आता है इसके क्या अर्थ हैं ?

[उत्तर] इसके अर्थ निम्न लिखित हैं।

[सु आहेतिवा] सब मनुष्यों को अच्छा मीठा कल्याण करनेवाला और प्रिय वचन सदैव बोलना चहिये।

[स्वा वागाहेतिवा] मनुष्यों को निश्चय करके जानना चाहिये कि जो बात उसके ज्ञान में हो जिह्वा से भी वैसे ही बोलो।

[स्वं प्राहेतिवा] सब मनुष्य अपने ही पदार्थ को अपना कहें दूसरे के पदार्थ को कभी नहीं।

(स्वाहुतह०) सर्वदिन अच्छे प्रकार सुगंध द्रव्यों का संस्कार करके सब जगत् के उपकार करने वाले हवन को किया करें।

(प्रश्न) हवन करने के साथ मंत्र क्यों पढ़े जाते हैं ?

(उत्तर) हवन करने के साथ वेदमंत्र इस लिये पढ़े जाते हैं कि उन मंत्रों में हवनादि करने का लाभ व रीति का उपदेश है और सृष्टिकर्त्ता परमात्मा के गुणों का वर्णन है। क्योंकि वैदिक सिद्धान्त यही है कि जैसा करे वैसाही वाणी से कहे और जैसा वाणी से कहे वैसी ही क्रिया करे। इसी कारण हम हवन को परमात्मा की आज्ञानुकूल संसार के उपकार के लिये क्रिया द्वारा करते हैं और वाणी द्वारा उसी परमात्मा के गुणगान पूर्वक जिन मंत्रों में हवनादि

का लाभ व रीति का वर्णन है, पढ़ते हैं यदि क्रिया करने के समय मंत्रों को न पढ़ें तो हम उसके लाभ व परमात्मा के गुण, कर्मों को भूल जाँय जैसा वेदमंत्रों में कथन किया है।

२—हवन करने से जीवात्मा अपने समस्त दल-मन और इन्द्रियों के सहित हवन करने के साथ वेदमंत्र उच्चारण करते जाने से परमात्मा की उपासना में लगता है, उस समय कोई इन्द्रिय वेकार नहीं रहती। यह एक बड़ा लाभ है; जीभ पढ़ती, आंख देखती, कान सुनते, नाक सूंघती, त्वचा सुगन्धित परमाणुओं को खींचती, हाथ आदि सब काम करते हैं।

३—हवन में वेदमंत्रों के उच्चारण से मन की मलीनता भी दूर होती है, मंत्रों में स्तुति, प्रार्थना, उपासना भरी हुई है और स्तुत्यादि से मलिनता का दूर होना आप प्रथम जान चुकी हैं उसी प्रकार हवन में मन्त्रोच्चारण से भी जान लीजिये।

४—वेद मंत्रों के शब्दों में सुन्दर क्रम और उत्तमोत्तम भाव भरे हुये हैं जिन के उच्चारण से वेदों और सृष्टिकर्त्ता परमात्मा में प्रेम बढ़ता है।

(प्रश्न) क्या हवन यज्ञ से देवतों को भाग पहुँचता है वह प्रसन्न होते हैं जैसा कि हम सदैव से सुनती आई हैं, वा केवल वायु ही की शुद्धि होती है?

(उत्तर) वास्तव में अग्निर्देवता, वातो देवता, सूर्य्यो देवता, चन्द्रमा देवता आदि सब हवन में डाली हुई सामग्री से अपना २ भाग ग्रहण कर लेते हैं और विद्वानों को भी

देवता कहते हैं उनको तो स्पष्ट लाभ होता है आप देखती ही हैं। जिस से वे प्रसन्न भी होते हैं।

(प्रश्न) हवन में सब सामग्री एक साथ डाली जाती है फिर अपना २ भाग कैसे देवता लेते हैं?

(उत्तर) एक थावले में चार प्रकार के बीज बोते हैं जिस में से एक मीठा, दूसरा खट्टा, तीसरा चरपरा, चौथा कड़वा होता है, मिट्टी में जितना २ मिठास का भाग है वह मीठा बीज खींच लेता है, जितना खट्टे का भाग है वह खट्टा बीज, इसी प्रकार जैसे बीज अपना २ भाग ग्रहण कर लेते हैं उसी प्रकार देवते भी अपना २ भाग ग्रहण कर लेते हैं, इस में कोई सन्देह की बात नहीं।

(प्रश्न) अच्छा यह बता दो कि देवते कै प्रकार के हैं?

(उत्तर) दो प्रकार के जड़ और चेतन।

(प्रश्न) उनकी संख्या कितनी है, और नाम?

(उत्तर) तेंतीस। आठ वसु, जिसमें पृथिवी, जल, तेज, वायु, आकाश, आदित्य, चन्द्र, नक्षत्र हैं क्योंकि इसी में सब वसते हैं।

११ रुद्र हैं जिनको प्राण, अपान, व्यान, उदान, समान नाग कूर्म, कृकल, देवदत्त, धनञ्जय * और ग्यारहवां

* उद्गारे नाग आख्यातः कूर्म उन्मीलनेस्मृताः।
कृकलः क्षुत् कृज्ज्ञेयो देवदत्तो विजृम्भणे।
नजहाति मृतञ्चापि सर्व व्यापी धनञ्जयः॥

ढकार में नाग वायु, नेत्रों के मीचने और खोलने में कूर्मवायु, क्षुधा लगाने वाला कृकलवायु, जम्भाई लेने में देवदत्त वायु, शरीर से जीवात्मा के निकल जाने पर जिस वायु के आश्रित वह होता है उसका नाम धनञ्जय है।

जीवात्मा कहते हैं यह जब शरीर से निकलते हैं तब रुलाते हैं

१२ आदित्य बारह मास हैं।

एक विद्युत् और एक यज्ञ है जिस को प्रजापति भी कहते हैं।

(प्रश्न) चेतन देवता कौन २ कहलाते हैं।

(उत्तर) जो सदाचारी, परोपकारी, ऋषि, मुनि, विद्वान् धर्मात्मा होते हैं वह ही चेतन देवता हैं।

❀ तीसरा पितृयज्ञ ❀

माताओ ! आपने श्रद्धा, भक्ति से जैसी आप में स्वाभाविक विद्यमान है, अपने इस प्रश्न का उत्तर चाहा हो कि पितृयज्ञ के कै भेद हैं और वह मरों के अर्थों का सूचक है वा जीवित का ? तो इसका उत्तर आप को बहुतही कम सन्तोपजनक मिला है, यदि मिला है तो आपने उसे साधारण बात जानकर विचारा नहीं। यह अति आवश्यक विषय है, इसे ध्यान देकर चित्त लगाकर सुनिये और पढ़िए। आज तक जो कुछ आप संस्कार दोप से और अपने बड़ों और तीर पड़ोस की देखा देखी और स्वार्थियों के बहँकाने से करती चली आई हो, थोड़ी देर के लिये पक्षपात से रहित होकर सत्याऽसत्य विचारने वाली बुद्धि से काम लो और यदि समझ में आजावे तो यह समझ कर कि (कहें कबीर युग युग भई, जब चेते तबही से सही) हठ और दुराग्रह को त्याग दो और निश्चयात्मक जान कार्य कर शान्तिप्रदान करो।

पितृयज्ञ के दो भेद हैं-एक श्राद्ध, दूसरा तर्पण। जिस

कर्म से देवता ऋषि, पितरों को सुख प्राप्त हो वह तर्पण कहाता है और जो उन की श्रद्धा पूर्वक सेवा करना है उस को श्राद्ध कहते हैं। यह तर्पण श्राद्ध वर्तमान जीते हुओं के लिये ही घट सकता है, इस लिये कि मरे हुए प्रत्यक्ष नहीं और अप्रत्यक्षों अर्थात् मरे हुओं का श्राद्ध असम्भव है। श्राद्ध तर्पण हो वा अन्य कोई सेवा सम्बन्धी काम हो, यह सेव्य-सेवक दोनों के प्रत्यक्ष होने में ही हो सक्ता है। जो सेवा करने के योग्य हैं उन को देव ऋषि और पितृ कहतेहैं

देव-वह हैं जो विद्वान् सत्याचारी हैं।

ऋषि-वह हैं जो वेदार्थों को जानते और उनका प्रचार करने वाले हैं।

पितृ-माता पिता हैं जिन से पालन पोषण होता है, जो रक्षा करते हैं।

सब से अधिक रक्षा विद्या से होती है, इस लिये देव और ऋषि भी पितृ कहाते हैं।

इसी हेतु से विद्वानों के दो मार्ग हैं, एक देवयान जो विद्या का मार्ग है, दूसरा पितृयान जो कर्म उपासना कहाता है। देखो यजुर्वेद अध्याय २ मंत्र ३१-३२ ३३ में लिखा है कि हम पितरों को नमस्कार करते हैं कि आप से रस अर्थात् ओषधि जल विद्या का ज्ञान हो और अग्नि, वायु की विद्या का जिस से औषधि जल सूख जाते हैं ज्ञान हो।

यजुर्वेद अध्याय १६ मंत्र ५७-५८-५६ में लिखा है कि जब वे पितर आवें तब सन्मान करें कि आप उत्तम आसन पर बैठिये हमारे विद्या सम्बन्धी प्रश्न सुनिये। इन प्रश्नों

का उत्तर दीजिये और मनुष्यों को ज्ञान देकर रक्षा कीजिये। यह सब जीतों पर ही घट सकता है। बहुत दिनों तक स्वार्थियों ने आप को धोखा दिया, मरे हुओं का श्राद्ध बतला कर आनन्द उड़ाया। उन आप के भीतर समाये हुये वर्षों के, नहीं नहीं पीढ़ियों के, संस्कारों को निकालना और आप के विचारों को दूसरी ओर झुकाना सहल नहीं है। न मैं आप को उन्हीं की भांति धोखा देकर निश्चय कराना चाहता हूँ, मैं तो आप को विचारवान् और बुद्धिमान् जान निवेदन करता हूँ कि आप खूब छान बीनकर स्वीकार कीजिये, पर सत्यासत्य का बोध होजाने पर भी अपनी बात का पक्ष किये जाना उचित नहीं होता।

सोचिये तो सही कि आप के पुत्र, पुत्री आपके जीवित रहते हुए भी आप की बात न पूछें, आप स्वयं स्वादिष्ट बढ़िया पदार्थ उड़ायें आप को तरसायें, स्वयं ऊंची कोठियों 'बंगलों' में शयन करें आपकी झोंपड़ी की भी सुधि न लें, आप बढ़िया वस्त्र धारण करें और आप को साधारण भी न दें जब आप मांगें तो यह कह कर टाल दें कि तुम्हारे लिये हमें मरने पर भी तो बहुत कुछ करना है; यदि उस समय न करेंगे तो संसार हँसेगा। सच बतलाइये कि इस उत्तर को सुन आप का आत्मा भीतर से क्या चाहेगा और किस बात से प्रसन्न होगा। यदि आप मरने के पीछे ऐसे पुरुषों का घर भराना चाहती हो जो मद्यपानादि और व्यभिचार में अद्वितीय हैं, तो जैसी आज वर्तमान काल में जीवित माता पिताओं की दुर्दशा देख रही हो इस से अधिक और बढ़ती ही जावेगी और यदि आप निश्चय पूर्वक जान गई हैं कि मरने

पर अपनी ही करनी भरनी पड़ेगी, जीवित पर ही होना ठीक है, तो यही हमारा मन्तव्य है। आज जीवित पितरों की सेवा उठ जाने का कारण यह मरे हुओं का ही तर्पण श्राद्ध है, जो सच्ची सेवा नहीं होने देता। यदि आज जीतों का श्राद्ध प्रचलित होती जो प्रथम अपने माता पिताओं को उनकी प्रसन्नता पूर्वक जिमाकर फिर आप भोजन न करती; पर आज वृद्ध माता, पिता बेचारे पीछे से भोजनों को पड़े रहते हैं; योग्य सन्तान प्रथम आप खाकर मूछों पर ताव देकर सो रहती है। अब तीस वर्ष के अन्दोलन से इस तुम्हारे प्रश्न का उत्तर इस ढंगपर तो आ ही गया है कि जीवित का श्राद्ध अवश्य होना चाहिये, पर मरों का भी मानो। स्वामी की सम्मति तो विरोधियों ने भी स्वीकार करली, जिससे उस के सिद्ध करने की आवश्यकता ही नहीं रही, केवल यही बखेड़ा रह गया है। वह कहते हैं कि मरों का भी होना चाहिये, जिसकी सिद्धि का बोझ प्रतिवादी अर्थात् उन के ही ऊपर है; परन्तु हम उसका भी खण्डन निम्न हेतुओं और प्रमाणों से करते हैं, आप विचार कर न्याय कीजिये।

श्राद्धपद्धति और प्रचलित रीति से बाप, दादा, परदादा के ही श्राद्ध का पता लगता है, जैसा कि—

पितृभ्यस्तृप्यन्ताम्। प्रपितृभ्यस्तृप्यन्ताम् प्रपितामहेभ्यस्तृप्यन्ताम्॥

अब आप पता लगावें कि तीन की गणना क्यों है

और यह कहां से आई है, इस विषय में मनु भगवान् ने एक श्लोक द्वारा बताया है ।

वसून् वदन्ति वै पितॄन् रुद्रांश्चैव पितामहान् ।
प्रपितामहांश्चादित्यान् श्रुतिरेषा सनातनी ॥

मनु० अ० ३। श्लोक २८४ ॥

वसु का नाम पितर और रुद्र का नाम पितामह और आदित्य का नाम प्रपितामह है और यह तीन पितृ वेदों में सनातन से बताये हैं। अब आप भलीभांति जान लीजिये कि वसु रुद्र, आदित्य यह जीवित होते हैं वा मृतक। यदि मरे हुये होते हों तो आप भी मानिये और हम भी। भीष्म पितामह का नाम तो सुनाही होगा सोचो कि यह जीवित का था वा मृतक का और क्यों था? यह भी आप से छिपा नहीं कि उन्हों ने अड़तालीस वर्ष तक अखण्ड ब्रह्मचर्य्य किया था, इस लिये उनका नाम आदित्य ब्रह्मचारी था और कोई सन्तान न होने पर भी उनको पितामह कहते थे। जिस से स्पष्ट प्रकट है कि यह तीन प्रकार की पदवी है। जो २५ वर्ष तक ब्रह्मचारी रहते हैं वह वसु और पितर कहाते हैं, जो ३६ वर्ष तक रहते हैं वह रुद्र और पितामह कहाते हैं. जो ४८ वर्ष तक पढ़ते और ब्रह्मचारी रहते हैं वह प्रपितामह और आदित्य कहाते हैं। यहीं से निकालकर तृप्यन्ताम् की ध्वनि लगाई है। यदि इससे ही पितृयज्ञ किया जावे कि सन्तान पर बाप. दादे परदादे की सेवा करनाही तर्पण श्रद्ध है, तो भी मरे हुओं का इस से पता नहीं लग सकता जब सन्तान सेवा योग्य होगी तो पिता गृहस्थ, दादा वानप्रस्थ परदादा संन्यासाश्रम में होगा. उसको उचित होगा कि

वह यथायोग्य और यथाअवसर आदर सत्कार करता रहे या जो समयानुसार घर पर ही रहें तो उनका पूजन और सेवा आवश्यक समझें। मैं नहीं जानता कि मरे हुए का अर्थ कहां से निकाला गया है, यदि कहो कि अग्निदग्ध और अनग्नि दग्ध पितरों की सेवा करना बताई है, अर्थात् जीतों और मरों की, तो यह भी एक प्रकार का धोखा है। वहां पर प्रयोजन नित्यकर्म हवन करने वालों और न करने वालों से है, गृहस्थ, वानप्रस्थ पितृ हवन करते और संन्यस्त पितृ कर्म-काण्ड छोड़ देते हैं अर्थात् हवन नहीं करते इस लिये जीतों की सेवा ही सम्भव है, मरे हुओं की योनि का कोई पता नहीं लगा सकता। और जैसा उत्पन्न हुए का मरना अभीष्ट है वैसे ही मरे हुए का पैदा होना भी आवश्यक है। वासांसि जीर्णानि०) वाले गीता के श्लोक में बता दिया है कि जैसे जीर्ण कपड़ों को त्याग कर मनुष्य नवीन वस्त्र धारण कर लेता है इसी भांति जीवात्मा एक शरीर को त्यागकर दूसरा धारण कर लेता है।

अब आप कई विशेष बातों पर एकान्त में बैठकर परमात्मा का भय और आत्मा की साक्षी से विचार कीजिये और फिर पता लगाइये कि वास्तविक सत्य क्या है।

१—आप पर विदित होचुका है कि मनुष्य के पंचनित्य-कर्मों में से एक कर्म पितृयज्ञ भी है और उसी से तर्पण श्राद्ध का विधान किया जाता है, जो मनुष्य मात्र का धर्म है। यदि यह कर्म मरेहुए का ही माना जावे तो जिसका बाप दादा जीवित है, वह इस यज्ञ को कर ही नहीं सकता, जिससे न यह कर्म नित्य कर्म में रह सकता है न मनुष्य मात्र कर

सकता है। इस लिये प्रथम इसे नित्य कर्म से निकालये वा जीवित का ही स्वीकार कीजिये।

२—जो कोई कुछ धन सम्पत्ति चाहे वह रोकड़ हो वा नाज वा जगह हो, वह वर्त्तमान और प्राचीन राजनीत्यनुसार जीवित ही को पहुंच सकती और प्राप्त हो सकती है। यदि किसी पिता का एक पुत्र मरजावे और बाप चाहे कि मेरी सम्पत्ति का एक भाग मेरे बेटे को भी मेरे पश्चात् मिल जावें तो क्या सम्भव है कि उसको मिलसके, नहीं। यहां पर आप यही कहेंगी कि नहीं मिल सकता तो पुत्रका किया हुआ मरे बाप को मिलना कैसे सम्भव हो सकता है।

३-संसारी प्रबन्ध ही नष्ट भ्रष्ट होजावे, यदि एक का किया हुआ कर्म दूसरे को मिल जावे तो चेला वध करे और गुरु को फांसी लगे और गुरु के किये यज्ञों का फल चेले को प्राप्त होजावे। वा यूं समझिये कि आपने जो अपनी आयु भर व्रत, दान, यज्ञ, तप किये हैं वह तो मुझे मिलजावें और मेरे किये हुए पाप आपको प्राप्त होजावें। इसे आप भी स्वीकार न करेंगी और यह असम्भव भी है। आप क्या, इसे कोई भी बुद्धिमान् मान नहीं सकता, यही कारण है कि बेटे का किया हुआ बाप को और बाप का किया हुआ बेटे को पहुँच नहीं सकता. वरन् आज मूर्ख माता, पिता इसी विचार से घोर पाप करते हैं कि हमारे पुत्र गया, श्राद्ध करके हमें नरक से स्वर्ग दिला देंगे। कैसे भोले हो जाते हैं, उस समय तुलसीदासादि के वचनों का भी ध्यान नहीं रहता।

कर्म प्रधान विश्व कर राखा। जो जस करे सो तस फल चाखा

स्वयं कर्म करोत्यात्मा स्वयं तत् फलमश्नुते ।
स्वयं भ्रमति संसारे स्वयं तस्माद्विगच्छति ॥

४—एक बाप के पांच पुत्र हैं, आज के रीत्यानुसार पांचो ही कनागत में जब सब जगह जल भरा होता है जलदान देते और श्राद्ध करते हैं, वरन् सब एक ही तिथि और एक समय पर। उन पुत्रों में से जो एक कलकत्ता, दूसरा मदरास, तीसरा मुम्बई, चौथा लाहौर, पांचवां काशी में है एक ही समय पर सब जगह श्राद्ध करते हैं। वेचारा बाप सब जगह कैसे पहुंच सकेगा। कैसी कठिनता पड़ेगी, किसके यहां जावेगा किसके न पहुंचगा। किसका यज्ञ सार्थक होगा किसका यज्ञ निरर्थक, किसका बाप आदर करेगा किसका निरादर! इस लिये कि जीव तो एकदेशी है कुछ सर्वदेशी तो है ही नहीं। आप ही सोचें कि कैसा टट्टी की ओट में शिकार खेला है।

५—एक बड़ा बढ़िया बात है, यदि इसका उत्तर तुम्हारे माननीय पाधे पुरोहित शान्तिदायक संतोषजनक देदें तो तुम उनकी ही बात मान लेना जब तक उत्तर ठीक न देसकें आप स्वप्न में भी मरों का श्राद्ध कर पाप भागी न बनें। स्मरण रहे कि सच्ची बातों के करने से पुण्य और झूठी बातों करने से पाप हुआ करता है। सोचो आपकी वा हमारी वा किसी अन्य की नातेदारी अर्थात् माता पिता ताई चाचा, पति पत्नी, मामू भानजा कैसे जाना जाता है और वास्तविक किसके साथ है, जीव जीव के साथ वा शरीर शरीर के साथ वा जीव और शरीर दोनों के मिले हुये के साथ। यदि जीव २ का नाता माना जावे तो होही नहीं सकता, क्योंकि जीव तो अनादि और अनन्त हैं अर्थात्

उनकी कोई आदि नहीं; और इतने हैं कि परमात्मा के अतिरिक्त कोई जीव उनको गिन भी नहीं सकता वह आवागमन के चक्र से चौरासी लाख योनियों में जन्मते और मरते रहते हैं, उनमें से कभी कोई किसी बाप बनता है वह ही दूसरे जन्म में जाकर बेटा बनता है। इसलिये जीव २ के साथ तो कोई नाता किसी प्रकार का माना ही नहीं जासकता। यदि शरीर २ का कहा जावे तो भी ठीक नहीं, क्योंकि बाप के मरे शरीर को बेटा और बेटे के शरीर को बाप कुछ देर भी घर रखना अच्छा नहीं समझता और दोनों एक दूसरे की छाती पर, मनों लकड़ी रखकर जलाकर राख कर घर को लौट आते हैं।

इससे स्पष्ट प्रकट है कि माता पितादि का सम्बन्ध तभी तक है जब तक जीव और शरीर का संयुक्त सम्बन्ध है, उसके वियोग के पश्चात् भी नाता मानना आप ही विचारें कि कितनी मूर्खता है। मरने पर न हम किसी के पिता रह सकते हैं न कोई हमारा पुत्र, न मेरा बाप मेरी रक्षा कर सकता है न मैं कुछ उन की सेवा। यदि पिता जी कुछ कर सकते तो उनके जीते हुये जो कोई धोका देकर हमें ठगले जाता तो वह बहुत क्रोधित होते, वरन् उस से लड़ने को उद्यत होजाते, तो क्या वह इन धोखा देकर माल उड़ाने वालों की कुछ भी खबर न लेते। यदि किसी के पिता मोक्ष में पहुँचे तो वहां उन्हें खान, पान की आवश्यकता ही नहीं और यदि किसी अन्य योनि में कर्मानुसार गये हैं तो यह मोहनभोग निरर्थक हैं। सब प्रकार से आप का किया हुआ कर्म निष्फल ही है। हमारे धर्मसमाजी भाई ब्राह्मणों को तारबाबू बताकर एक हेतु देते हैं कि तार का वह लेख

जो कागज़ पर लिखा कर तारबाबू को देते हैं वह वहीं रह-जाता है. पर वह सारे शब्द पहुंच जाते हैं. इसी प्रकार भोजन हम खाते हैं पर उस का फल उन्हें पहुँच जाता है। कैसा भोले भाइयों को धोखा दिया गया है. तार के तो जो गट गरगट्टादि शब्द नियत हैं उन के शब्दों को बदल कर आवाज़ पहुचाई जाती है और उस की रसीद भी आती है। पूछो आप की भी रसीद आई, वा पितरों से मंगा सकते हो और हम तो तार नहीं भेजते वरन् पारसल भेजते हैं, पारसल तो यहां हीं नहीं रह जाता है वह तो सीधा वहीं पहुँचता है। रसीद भी आजाती है, आप उन्हें समझा दें कि आपने धोका देकर पाप कमाया, हमें भी पापी बनाया। अब कृपा करो, वेदोक्त मर्यादा का पालन करो करावो, जिस से दोनों का कल्याण हो, देश की उन्नति और अवनति अब आप के हाथ है जहां धर्म है वहीं सुख जहां अधर्म है वहीं दुःख होता है।

❀ चौथा भूतयज्ञ बलिवैश्वदेव।

यह चौथा यज्ञ है इस में यह बताया गया है कि जब भोजन तय्यार होजावे तो उसको आप ही न खा जावे किन्तु प्रथम जो जो घृतमिश्रित भात हो तो उसको और यदि भात न बना हो तो क्षार लवणान्न को छोड़ के जो कुछ पाकशाला में बना हो उसी की दश आहुति निम्न लिखित दश मन्त्रों से देवे, तत्पश्चात् निम्नलिखित सोलह मन्त्रों से एक पत्तल वा थाली में मंत्र पढ़कर भाग धरे जिस में भी लवणान्न न हो, यदि कोई ऐसा अतिथि आजावे

तो उस को दे दे नहीं ता अग्नि में डालदे, उसके पश्चात् घृत सहित लवणान्न लेके—

शुनांच पतितानां च श्वापचां पापरोगिणाम् ।
वायसानां कृमीणां च शनकै निर्वपेद्भुवि ॥

मनु० अ० ३ । श्लोक० ९२ ॥

कुत्ता, पतित, चांडाल, पापरोगी, काक और कृमि इन छः नामों से छः भाग छओं को देना चाहिये ।

जो गृहस्थी विना वलिवैश्व किये हुये भोजनों का भोजन करते हैं वे वास्तव में राक्षसी भोजन करते हैं यह प्रथा बहुत घरों से उठ गई और बहुत से घरों मे देखा है कि पुरुष खाते समय एक रोटी निकाल देते हैं. पर मंत्रादि कुछ स्मरण नहीं कोई जूठा कौरा अन्न का लेकर कुत्ते को डाल देते हैं, कोई तो उस कहावतानुसार कि जूठे हाथ से कुत्ते को भी नहीं मारते कहते हैं आप इस अधम को पुनः जीवित करें ।

प्रथम के दश मंत्र ।

ओं अग्नये स्वाहा । ओं सोमाय स्वाहा । ओं अग्नीषोमाभ्यां स्वाहा । ओं विश्वेभ्यो देवेभ्यः स्वाहा । ओं धन्वन्तरये स्वाहा । ओं कुह्वै स्वाहा । ओं अनुमत्यै स्वाहा । ओं प्रजापतये स्वाहा । ओं सहद्यावा पृथिवीभ्यां स्वाहा । ओं स्विष्टकृते स्वाहा । *

* उक्त मंत्र मनुस्मृति० अ० ३ । श्लोक ८५ से ९१ तक के प्रमाण से लिखे गये हैं जो वेदानुकूल हैं ।

पश्चात् के सोलह मन्त्र ।

ओं सानुगायेन्द्राय नमः ।

ओं सानुगाय यमाय नमः ।

ओं सानुगाय वरुणाय नमः ।

ओं सानुगाय सोमाय नमः ।

ओं मरुद्भ्यो नमः ।

ओं मद्भ्यो नमः ।

ओं बनस्पतिभ्यो नमः ।

ओं श्रियै नमः ।

ओं भद्रकाल्यै नमः ।

ओं ब्रह्मपतये नमः ।

ओं वास्तुपतये नमः ।

ओं विश्वेभ्यो देवेभ्यो नमः ।

ओं दिवाचरेभ्यो भूतेभ्यो नमः ।

ओं नक्तचारिभ्यो भूतेभ्यो नमः ।

ओं सर्वात्यभूतये नमः ।

ओं पितृभ्य स्वधायिभ्यः स्वधा नमः ॥

❋ पांचवां अतिथियज्ञ ❋

यह पांचवा यज्ञ है जो धार्मिक, परोपकारी, सत्योपदेशक पक्षपातरहित, शान्त सर्वहितकारक, विद्वानों की अन्नादि से सेवा, उनसे प्रश्नोत्तर आदि करके विद्या प्राप्त होना अतिथियज्ञ कहाता है, उसको नित्य किया करें।

आज कल इस यज्ञ की पूर्ति अति कठिन हो रही है, क्योंकि आज छली, कपटी, दुराचारी, चर्सी, भंगड़ी साधुओं की इतनी अधिकता है कि जिसके कारण सच्चे अतिथियों पर भी विश्वास नहीं होता। इधर दुष्टों का सत्कार करना पाप में पड़ना है, उधर अतिथि यज्ञ न करना कर्त्तव्य का न पूर्ण करना है, कैसी खींचतान है। प्रथम तीन आश्रम ब्रह्मचारी वानप्रस्थी, संन्यासी, सत्याचारी प्रत्येक गृहस्थी को मिलजाते थे और वह श्रद्धा पूर्वक सत्कार करते थे। सुना है कि राजा अशोक ने एक महासभा की थी उसमें सम्मिलित होने को साधु महात्मा जा रहे थे, उसमें से एक महात्मा ने एक रथकार (बढ़ई) के किये हुये सत्कार का, जो सभा में जाके वर्णन किया है उस को सुनकर उसके धर्मभाव का पता लगता है एक बढ़ई की इच्छा दो वर्ष से खीर खाने की थी, परन्तु इतनी बचत न होती थी कि वह खीर का प्रबन्ध कर सके। कुटुंब इतना बड़ा था कि पालन से कुछ बचता ही न था। दो वर्ष पश्चात् इतनी बचत हुई कि उस दिन खीर का प्रबन्ध हो पाया। सब घर ने अपना २ भाग खालिया, उसका भाग एक प्याले में रख दिया गया। जब अतिथि आगया, उसने प्रसन्तता पूर्वक यह समझ कर खिला दिया कि चाहे

गृहस्थी के भूख से प्राण कंठ में क्यों न पहुंच गये हों परन्तु वह अतिथि को छोड़कर भोजन न करे। जैसा कि:-

मातरं पितरं पुत्रं, दारानतिथिसोदरान्।
हित्वा गृही न भुञ्जीयात्, प्राणैःकठगतैरपि॥१

जब घर में चर्चा हुई जो उस अतिथि को भी ज्ञात हुई, उसने जाकर सभामें उसके धर्मभाव को प्रकट किया, तब राजा ने बुलाकार उस का बड़ा मान किया। आप में इस सत्कार का भाव तो है, परन्तु साधु और दुष्टों की पहिचान विना विद्या के नहीं कर सकती हो। दुष्ट के सत्कार से पाप होता है। आप जानने का यत्न करके यथोचित सत्कार करें।

माता जी! जार और दुष्ट पुरुष के मस्तक पर सींग और श्रेष्ठ और साधु पुरुष के हाथ में पद्म देखकर परीक्षा नहीं की जाती, जिस समय उसके मुख से वचन निकलते हैं उनको सुनकर विद्वान् लोग उसके शुद्ध और अशुद्ध मन वरन् उसके पवित्र और दुष्ट कुल तक का पता लगा लेते हैं। कहा भी है, यथाः—

न जार जातस्य ललाट शृंगं, न साधु जातस्य कराग्रपद्मं। यथा २ मुञ्चतियोहिवाणीं, तथा २ तस्य कुलप्रमाणम्॥

❀ नैमित्तिक कर्म्म ❀

—:❀:—

षोड़श [१६] संस्कार ।

यह शब्द सम् उपसर्ग और कृ धातु से मिलकर बना है, जिसके अर्थ अच्छे प्रकार काम करने व शोधने की क्रिया के हैं। वह निषेक अर्थात् गर्भाधान से लेकर षोड़स कहाते हैं, जिन की गणना संस्कार विधि के अनुसार (१गर्भाधान, २पुंसवन, ३सीमन्तोन्नयन, ४जातकर्म, ५नामकरण, ६निष्क्रमण, ७अन्नप्राशन, ८चूड़ाकर्म, ९कर्णवेध, १०उपनयन ११वेदारम्भ, १२समावर्त्तन, १३विवाह, १४गृहाश्रम, १५वानप्रस्थ, १६संन्यास और १७अन्त्येष्टि) सत्रह होते हैं, पर होना सोलह चाहियें। इस विषय में मतभेद है. कोई तो यह कहते हैं कि अन्त्येष्टि कर्म है, संस्कार नहीं, इस हेतु से कि संस्कार जीव का शरीर के साथ सम्बन्ध तक होसकता है, अन्यथा नहीं। जिस के लिये प्रतिपक्षी यह उत्तर दे सकता है कि जैसे गर्भाधान संस्कार जीव-शरीर के संयोग से पहिले ठीक है, इसी तरह जीव शरीर के वियोग के पश्चात् अन्त्येष्टि ठीक है। गो यह उत्तर सारगर्भित नहीं, क्योंकि गर्भाधान संस्कार से सन्तान पर प्रभाव पड़ता है, अन्त्येष्टि से नहीं।

किन्हीं महाशय का यह कथन है कि कर्णवेध की आवश्यकता नहीं, वह केवल जिस मन्त्र के आश्रय है उस में यह प्रयोजन और अर्थ है कि हम कान से कल्याणकारी बातें सुनें और इस का नाम पूनावाले स्वामी जी के लेक्चर में नहीं है।

तीसरे महाशय यह भी कहते हैं कि गृहाश्रम संस्कार

विवाह के अन्तर्गत है, उसका नाम विवाह में सम्मिलित करने से सब संस्कार ठीक रहते हैं। इसके विषय में मैं अपनी सम्मति आप को केवल इतनी ही दे सकता हूं कि स्वामी जी की ही सम्मति सब से प्रामाणिक है और १६ संस्कार ही संस्कार हैं। ठीक सम्मति प्रतिनिधि वा सार्वभौमिक सभा से विदित होगी। आप को यह नैमित्तिक संस्कार अवश्य करने चाहियें, इनके करने की विधि संस्कार विधि में विस्तार पूर्वक लिखी है, उसी के अनुसार हर्ष पूर्वक बड़ी रुचि से करिए कराइये। उसकी विधि लिखने की यहां विशेष आवश्यकता नहीं, मैं आप को संक्षेप से कुछ संस्कारों के लाभ बताता हूं जिस से आप की संस्कारों में प्रवृत्ति होजावे। अन्त को किसी २ संस्कार की कोई २ वह बातें जिन पर आक्षेप करते हैं वा क्रिया ठीक समझी नहीं हैं लिखूंगा। कृपा करके इन्हें अति आवश्यक समझ कर ध्यान दीजिये और संस्कारों के करने में अधिक रुचि करिए। जिन घरों में जितनी २ संस्कारों की अधिक रुचि हुई है वा उनका प्रचार हुआ है, उतनाही अधिक उस घर के स्त्री पुरुष पवित्र, शुद्धाचारी, वेदों के प्रेमी, यज्ञों के हितकारी बन गये हैं। मेरी वारम्बार यही प्रार्थना है कि इनकी ओर आप सब से अधिक ध्यान दें। बहुत से संस्कार अधिक व्यय के कारण और प्रथम से प्रथा न होने के कारण नहीं कराते, आप थोड़ा व्यय करके आये हुओं का चाहे केवल पानी ही से वा मधुर वचनों से सत्कार, कीजिये, पर इस शुभ कर्म को न टालिये। इससे सन्तान बड़ी ही गुणयुक्त होती जावेगी और आप पर और स्त्री, पुरुषों पर और घरवालों पर वरन् सारे संस्कार में सम्मिलित हुओं पर उत्तम प्रभाव पड़ेगा। आप मेरे थोड़े निवेदन को अधिक

जानिये और मानिये, क्योंकि विना संस्कार के संस्कृत हुए मनुष्य, मनुष्य नहीं कहला सकता। इसी लिये मनु भगवान् ने आज्ञा दी है कि:—

वैदिकैः कर्मभिर्पुण्यैर्निषेकादिर्द्विजन्मनाम्।
कार्यः शरीरसंस्कारः पावनः प्रेत्यचेह च ॥

मनु० अ० २। श्लोक २६ ॥

अर्थात् वेदोक्त शुभ गुण पुण्य युक्त कर्म निषेक (गर्भाधान) से लेकर सब संस्कार द्विजों को अवश्य करना चाहिये। क्योंकि यह संस्कार मनुष्य को इस जन्म में और मरे पश्चात् पवित्र करने वाले हैं। सारे पदार्थ संस्कार से शुद्ध और लाभकारी हो जाते हैं, यहां तक कि जिनका मनुष्य निरादर करते हैं और उनकी आवश्यकता नहीं समझते उनके रचने वाले पर भी आक्षेप करते हैं, वे पदार्थ भी संस्कार द्वारा फिर बड़े आवश्यकीय और लाभ दायक बन जाते हैं। आज संसार में संखिया, पारा जो विष हैं, जिनके सेवन से मनुष्य वरन् सम्पूर्ण पशु, पक्षी प्राण त्याग देते हैं, जिन्हें खाकर सैंकड़ों मूर्ख स्त्रियां अपने प्राण खोती हैं वा सन्तानों से हाथ धो बैठती हैं, जिस के लिये परमात्मा तक पर आक्षेप है कि इसे पैदा ही क्यों किया गया, यदि यह न होता तो क्योंकर खाकर प्राण जाते, प्यारी माताओ! परमात्मा ने कोई वस्तु हानिकारक नहीं बनाई, उसने सब पदार्थों में बड़े २ लाभ दान कर रक्खे हैं, केवल उनका उचित अनुचित सेवक लाभदायक और हानिकारक है। आप गेहूं, घी, मिठाई को तो उत्तम बताती हो, परन्तु भूख से अधिक गेहूं की रोटी भी खाकर बीमार होजाते हैं, वही घी जो बलकारक है

तप की दशा में खा लेने से जीर्णज्वर होजाता है; खासी वाले को मिठाई हानि पहुंचाती है जिससे ज्ञात हुआ कि कोई वस्तु निकृष्ट नहीं। इसी तरह देखिये तो संखिया को मारकर राख करके वैद्य लोग कोढ़ियों को अच्छा करते हैं और पारे को भी खाक करके चन्द्रोदय आदि परम औषधियां बनाते हैं जो मरते समय गले में रुके हुए कफ को हटाकर कई मिनट तक बातें करा देते हैं और नियम से सेवन करने से बड़ा बल बढ़ता है। और देखो कि जिस भूमि से हमारे यहां के खेतिहर (किसान) एक बीघे में बीस रुपये का धन नहीं पैदा कर सकते, फ्रांस वाले उसका संस्कार करके दो दो सौ रुपये एक बीघे से कमाते हैं, जो आलू यहां आधपाव से नहीं बढ़ता वहां, दो दो सेर का पैदा होता है। पेड़ जो वन में टेढ़े बेड़े उगे होते हैं, उनको काट कर जब योग्य मिस्त्री अर्थात् बढ़ई खरादी के हाथ में देने पर वह उसका संस्कार आरम्भ करता है तो फिर वही लकड़ी अमीरों के घरों के कमरों की सजावट का कारण बन जाती है। आप कमरे में बैठी हुई दृष्टि तो डालें कि वहां लकड़ी शहतीर बनी आप के शिर पर स्थित है, वही लकड़ी है जो आप की मेज़ पर शोभा बढ़ा रही है, उसी की खिड़की अलमारी आदि सैकड़ों वस्तुयें आप के घर में विद्यमान हैं, वह जैसे २ योग्य कारीगरों के हाथ में पहुंची है उतनी ही अधिक मूल्य के योग्य बनी है। आपने मिट्टी के खिलौने देखे होंगे, जितना बड़ा एक पैसे में मिलता है, उतनाही बड़ा रुपये में मिलता है, यह उसके बनानेवाले की योग्यता पर निर्भर है। जैसे २ उत्तम संस्कार होते हैं उतना ही अच्छा बनता जाता है। लोहे को देखिये सोने की अपेक्षा कितना सस्ता है, वही लोहा जब तौलने का बांट

बनता है, लाखों रुपये की वस्तुयें उत्पन्न फल, मेवा, माणिक मुक्तादि तोल कर फेंक देता है, वही लोहा जाकर अति कमाकर कृपाण बनता है। तो वह छटांकभर की तलवार सैकड़ों रुपये को मिलती है। वही लोहा जब तंबूरे का तार बनता है तो सौ रुपये तोले तक को बिकता है और सोना वही २५) रु० तोले से अधिक नहीं बढ़ता। जिससे ज्ञात होताहै कि जड़ वस्तुयें संस्कारों से संस्कृत होकर क्या से क्या होजाती हैं और यह तो प्रत्यक्ष है कि सार पार्थिव पदार्थ जैसे मिट्टी, लोहे, तांबे, पीतल, कांसे, सोने, चांदी के पात्र सब अग्नि से शोधे और शुद्ध किये जाते हैं इस शोधने की क्रिया का ही नाम संस्कार है यही नहीं. घोड़े आदि पशु जिनकी चंचलतादि स्वभाव के कारण कोई विनामूल्य भी नहीं लेता, वही घोड़े फेरनेवाले योग्य चाबुकसवार के हाथ पड़कर ऐसे सीधे बन जाते हैं कि उन पर बच्चे चढ़े घूमते हैं और हज़ारों को बिकते हैं। इस प्रकार तो न जाने कितनों की गणना संस्कारों के प्रकरण में कराई जा सकती है; बताई जा सकती हैं। आपने तोते और मैनों को पढ़ाते हुए देखा होगा, वह जिस प्रकार सिखाये पढ़ाये जाते हैं अर्थात् जैसे संस्कार उनमें डाले हैं वैसे ही बोलते हैं। देखो,इसके प्रति एक कहानी भी इस प्रकार प्रसिद्ध है कि एक बार लूट में दो पिंजरे बड़े सुन्दर सुहावने पहाड़ी तोतों के आगये, वह राजा को बहुत प्रिय लगे, आज्ञा दी कि इन्हें हमारे निज निवासस्थान में टांगदो। आज तो यह बात अमीरों के स्वभाव में प्रवेश कर गई है कि तोते, मैंने, लालों, बटेरों, बुलबुल आदि को पिञ्जरों में बन्द किये घरों के सन्मुख लटकाए हुए अपनी और अपने घरों की शोभा जानते हैं, प्रथम कैसा वह विचार उनका कहां है कि—

करना न कभी तूतियो सारिक को क़फ़्स में ।
करना है तो वस कीजियेगा नफ़्स को वस में ॥

यह तो वीच में एक और वात वतादी गई उस राजा ने एक पिञ्जरे के तोते को चुमकारा तो उसने वेदमन्त्र, सूत्र, श्लोक, कवित्त, दोहे आदि सुनाये, जिससे राजा अति प्रसन्न हुआ; जब दूसरे तोते को चुमकारा तो उसने इसे अपशब्द वैठ मर्दक आदि सुनाये, जिसको सुनकर राजा वहुत ही अप्रसन्न हुआ और उसके मारदेने की आज्ञा देदी । तब पहिले तोते ने उत्तर दिया कि हे राजन् इसमें न तो मेरा विशेष गुण है न इसका दोष है, इसलिये कि मैंने मुनियों के वचन सुने हैं वह कहे, इसने दुष्टों के वाक्य सुने हैं, इसलिये इसने वे उच्चारण किये, यह सब संसर्ग अर्थात् डालेहुए संस्कार का प्रभाव है, जैसा किः-

अहं मुनीनां वचनं शृणोमि शृणोत्ययं वै यवनस्य वाक्यम् । नचास्य दोषो नचमे गुणो वा संसर्गतो दोष गुणान् वदन्ति ॥

आप क्यों क्रोधित और अप्रसन्न होते हैं, हम कुछ समझते नहीं [हमारे लिये तो प्रसिद्ध है कि तोते की तरह रटा है] जैसा सुना है वैसा वोलते हैं, जैसी संगत रही वैसा प्रभाव आया । जो कुछ हमारे में न्यूनता है वह हमारी नहीं,

* नोट—(कफ्स) पिंजरा-(नफ्स) इन्द्रिय मन (वस) आधीन को कहते हैं ।

वरन् हमारे रक्षकों की है। प्यारी वहनो माताओ! अब आपको भली भांति प्रकट होगया होगा कि ठीक इसी भांति मनुष्य की दशा है, यह भी जैसे २ संस्कारों से संस्कृत होता है वैसे ही गुण और दोष इसमें आते हैं। आप निश्चय जानिये कि विलायत से आये हुये बड़े २ विद्वान् अंग्रेज़ों को तुम शब्द बोलना नहीं आता वह सदैव 'त' शब्द को 'ट' कहते हैं और 'तुम' के स्थान पर 'टुम' बोलते, उन्हों ने बाल्यावस्था से 'त' का उच्चारण सीखा ही नहीं, इस कारण नहीं बोल सके।

एक बालक जब अपनी माता की गोद में होता है, चाहे वह कुलीन का हो वा अकुलीन का, चाहे वह राजा का हो वा रंक का, प्रत्येक मनुष्य की दया भरी प्रेमयुक्त दृष्टि उस बच्चे पर पड़ती है। वह बालक अपनी माता की गोद में प्रेम की मूर्ति बना हुआ दिखलाई पड़ता है। मनुष्य के ही नहीं वरन् पशुओं के बच्चों को भी देख कर दया आजाती है। सिकन्दर और नादिर भी एक दिन अपनी माता की गोद में प्रेम की मूर्ति बना हुआ था कि किसे ज्ञात था कि वह ही तलवार लेकर दयाहीन बनकर उस भयानक और डरावने रूप को धारण करेगा जिस से संसार कांपेगा। सिकन्दर को एक फ़क़ीर (साधु महात्मा) डाकू बतावेगा और नादिर देहली में क़त्लआम (सर्ववध) करा अपयश का टीका अपने माथे पर लगावेगा। दूसरी ओर एक राज-पुत्र राजसम्बन्धियों को छोड़ एक मृतक शरीर हाड़ पञ्जरों को देख संसार को परिवर्त्तनशील विनाशी समझ कर अपनी विवाहिता स्त्री यशोधरा और सोते हुये लड़के को छोड़ कर एक दृष्टि भी न देखकर वैराग ग्रहण कर करुणा

का रूप धारण कर संसार की ओर आवेगा और अपनी तपस्या के प्रताप से संसार से पाप हटावेगा और सारा संसार उस के साहस और नाम पर सिर झुकायेगा। आज यदि वह राजा होता तो उस जैसे सैंकड़ों राजा मर गये, उस का भी नाम निशान मिट जाता, उसे भी कोई न पूछता। परन्तु गौतम बुद्ध का नाम अमिट हो गया। एक ओर ऐसा दृश्य है; एक ओर राज के लिये बाप को क़ैद और चचा भाइयों को वध किया गया है। एक ओर उस के विपरीत राज मिलते हुये अपने को अनधिकारी बता कर छोड़ देता है। यह प्रश्न हैं, जिन का उत्तम रीति से समाधान करने से जीवन का सुधार हो सकता है और उलटा करने से विगाड़ क्योंकि मनुष्य का जीवन भाव और कामनाओं को लेकर बढ़ता है। आज संस्कारों का प्रभाव हैं कि संसार का कोई पाप ऐसा नहीं जिस को मनुष्य ने अपने स्वार्थ और पेट पालन का साधन न बनाया हो, यह क्यों हुआ? उत्तर स्पष्ट है, 'सज्जन संसर्गः स्वर्गः, दुर्जन संसर्गः नरकः'। यह संस्कार ही हैं जो स्वर्ग और नरक के दर्शन कराते हैं। मैं देख रहा हूँ कि बचपन के पड़े हुये संस्कार भली प्रकार समझने और जानने और उपदेश करने, लीडर बनने पर भी कभी न कभी समय पाकर लौट आने से इतना नीचा दिखाते हैं और ऐसा गिराते हैं कि उस का चकनाचूर हो जाता है।

माता जी, मुझे आर्य्यसमाज की शरण में आये अधिक समय होगया, पर अबतक अपने को आर्य्य बताते हुये लज्जा आती है, क्योंकि आर्य्य शब्द बड़े गम्भीर आशयों

को लिये हुये है, उस के योग्य अपने में योग्यता नहीं। क्योंकि आर्य्य कहते हैं—

ज्ञानीतपस्वीसंतोषी सत्यवादीजितेन्द्रियः।
दातादयालुर्नम्रश्च आर्य्यः स्यादष्टभिर्गुणैः॥

ज्ञानी, तपस्वी, संतोषी, सत्यवादी, जितेन्द्रिय, दाता दयालु, नम्र यह आठ गुण आर्यों में होना चाहियें।

कर्त्तव्यमाचरन्काम मकर्त्तव्यमनाचरन्।
तिष्ठतिप्रकृताचारे स वै आर्य्य इति स्मृतः॥

जो करने के योग्य उत्तम कामों को करे, न करने योग्य बुरे कामों को न करे जिस में यह स्वाभाविक गुण हों, वह आर्य्य है।

नवैरमुद्दीपयति प्रशान्तं न दर्प्पमारोहति नास्तमेति। न दुर्गतोस्मीति करोत्यकार्य्यं तमार्य्यशीलंपरमाहुरार्य्याः॥ न स्वेसुखेवैकुरुते प्रहर्षं नान्यस्यदुःखेभवति प्रहृष्टः। दत्वा न पश्चात्कुरुतेऽनुतापं सकथ्यतेसत्पुरुषार्य्यशीलः॥

महाभारत उद्योगपर्वान्तर्गत प्रजागरपर्व श्लो० १७। १८।

अर्थात् जो मनुष्य शान्त वैर को उभाड़ता नहीं, जो मिथ्याभिमान नहीं करता, जो अस्त (दबाव) का नहीं

प्राप्त होता अर्थात् साम्यावस्था में रहता है, जो दुर्गत हूँ-ऐसा मान के दुष्ट कर्म नहीं करता, आर्य्य लोग उस को आर्य्य स्वभाव वाला कहते हैं ॥ १७ ॥

जो अपने सुख में प्रसन्नता नहीं मानता, पराये को दुःखी देख कर आनन्दित नहीं होता, अर्थात् सुख वा दुःख की साम्यावस्था में रहता है क्योंकि "सुखहेतुमतस्त्वेकः समयोगः सुदुर्लभः" सुख का कारण केवल समयोग साम्यावस्था है। वही दुर्लभ है, जो देने के पश्चात् ताप नहीं करता, वह आर्य्य कहाता है ॥ १८ ॥

जिसमें उक्त गुण स्थित नहीं वह यदि आर्य्य कहते हुये नहीं लजाता है, तो शोक का स्थान है। मैं तो अपनी स्त्री को स्त्री बताता हुआ, पुत्रों को पुत्र कहता हुआ, भी लजाता हूँ, इस लिये कि वह उत्तम गुणों से गुणज्ञ नहीं। यही दशा उपदेशकों की भी देखी जाती है, औरों को उपदेश देते समय मेज़ तोड़ते, गला फाड़ते हुए देख पड़ते हैं, परन्तु मेज छोड़ने के पश्चात् और अकेले में और ही काम करते हैं। औरों को वैरागत्याग का उपदेश देते हैं, आप धन एकत्रित करने में लगे हुये हैं, क्यों जानते हुये नहीं जानते, क्यों देखते हुए नहीं देखते। यह सब संस्कारों का प्रभाव है। औरों को शुभ गुण बतावें और आप को……………हा! पतंग को तो यह ज्ञान नहीं कि मैं जलते हुये दीपक की ओर रूपवश दौड़ा जा रहा हूँ, यह ही प्रकाश मेरी मृत्यु का कारण होगा। मछली विचारी नहीं जानती कि यह ऐसा कीड़ा वा आटा कांटे में लगा हुआ जिसे मैं खाने जाऊंगी यह मुझे खाने के अर्थ डाला गया है, मैं इसी के कारण

खाई जाऊंगी। परन्तु यह बुद्धि का पुतला वेदों तक के ज्ञानका अभिमानी अपने को ज्ञानी बताता हुआ मनुष्य फिर भी उसी विषय जाल में फंसकर नाना प्रकार की बुराइयों का कर्त्ता होता है। यह जानता हुआ कि कर्मों का फल देनेवाला कोई और है, पतंगा और मछली तो जानती ही नहीं। उन पर क्या शोक; पर अधिकशोक तो उन पर और हम पर है जो जानते हुए भी संस्कारों के प्रभाव से गिरजाते हैं, जैसा किः—

अजानन् माहात्म्यं पततु शलभो दीपदहने।
समीनोप्यज्ञानाद्बडिशयुतमश्नातु पिशितम्॥
विजानन्तोऽप्येते वयमिह विपज्जालजटिलान्।
नमुञ्चामः कामानहह गहनो मोहमहिमा॥

भर्तृहरिः वैराग्य शतके॥

यह जानते हैं फिर भी ठोकरें खाकर गिर रहे हैं और इतने भोले हैं कि जान रहे हैं कि हमें कोई नहीं जानता।

कवित्त।

कामही से गजराज बँधे सुन शब्द को मोह मृगा फँस जाहीं।
नैन विषय जर जात पतंगहू भृंग सुगन्धित कुंज की माहीं॥
मान कही अब रामदयाल की मीन मरी जब कीटही खाहीं।
होई मनुष्य की कौन दशा जेहि इन्द्रय पांचौ पांच को चाहीं॥

स्मरण रहे कि ज्ञान और संस्कार में बड़ा झगड़ा रहता है। यदि ज्ञान बलवान् पड़ता है तब तो संस्कारों को दबाकर उनकी ओर झुकने नहीं देता; नहीं तो संस्कार के प्रभा-

वित होने पर सारा ज्ञान मुँह देखता ही रह जाता है और वह अपनी ओर खींच नीचा दिखाता है। यदि मनुय समझ लेने, पढ़ जाने, पास हो जाने, उपदेशक शिक्षक बन जाने पर अपनी माता को बुआ २ कहना नहीं छोड़ता और विद्वान होजाने पूर्णतया समझ जाने पर भूत का भय दूर नहीं होता; संस्कार ही प्रबल है। यदि हिन्दू बन जाने पर भी खुदा २ कहना नहीं छोड़ता तो वर्षों की आदत स्वभाव है। यदि औरों को नित्य शुद्धि का उपदेश करते हुये, वेदों का मनुष्यमात्र को अधिकारी बताते हुए, तर्क इसलाम को औरों को पढ़कर सुनाते हुये शुद्धि के समय यह कहकर कतरा जाते हैं कि "यद्यपि शुद्धं लोक विरुद्धं नाकरणीयं नाकरणीयं" तो उनकी निर्बल आत्मा का बलवान् न होना संस्कार ही पर निर्भर है यदि अफ़लातून तनिक २ सी बात पर बालकों को मलामत करता था, तो वह जानता था कि इनका संस्कार बच्चों में न पड़ जावे, जो मिटाने से भी न मिटे। यदि नौशेरवां ने ज़रा सा लवण दाम देकर मंगाया था तो इसीलिये कि, मेरी देखा देखी और नौकर चाकर प्रजा की वस्तु बे-दामों लेकर कहीं ग्राम न उजाड़ दें और कुसंस्कारों का बीज उग कर फिर बड़ा पेड़ न बनजावे।

बीसियों स्थान पर बात चीत हुई निरुत्तर होकर मान गये, परन्तु मूर्तिपूजा न छोड़ी, न मिट्टी के चबूतरों की ओर से मुँह मोड़ा, न कंकर पूजा छोड़ा। जब उनसे पुनः निवेदन किया गया कि आपतो जानगये और मान गये थे, तो यही उत्तर देते देखे गये कि अरे भाई हमारी तो बहुत बीत गई थोड़ी सी रहगई; जैसे अबतक झकमारते आये झकमारे जानदो। इसी प्रकार लाखों स्त्री पुरुष हैं कि जो

कुसंस्कारों में फँसे हुये अपने जीवन से तंग हैं, परन्तु छोड़ नहीं सकते। माता जी, बिना वर्षों के अभ्यास के न संध्या में जी लगता है, न ध्यान ही जमता है। अकेले में तो नाम मात्र करली जाती है; परन्तु यदि चार पुरुष साथ करने को बैठते हैं, तो आंख खोल कर एक दूसरे को तकते जाते हैं कि अभी उठे वा नहीं! हवन के समय तो डाकगाड़ी से भी अधिक तेज़ी और जल्दी की जाती है, सोलह आहुतियां डालना भार गहना है, यह सब नियम पूर्वक बाल्यावस्था से समय पर न करने का कारण है। इसलिये माताओ! मेरा आप से सविनय निवेदन है कि सब कामों से आवश्यक संस्कारों को समझो, यह सोलह संस्कार ही नहीं वरन् सम्पूर्ण शुभ और पवित्र संस्कार अपने में भरो और पुनः बच्चों में भरने का प्रयत्न करती रहो। मैं यह संस्कार सम्बन्धी लेख औषधालय में बाबू विश्वम्भरनाथ जी असिस्टेंट सरजन के मकानपर फ़तेहगढ़ में लिख रहा था कि मुझे खबर मिली कि एक बारह वर्ष आयुवाली कान्यकुब्ज ब्राह्मण की कन्या को जो फ़रुखाबाद के ईसाई गर्लस्कूल में पढ़ती थी, एक मेम साहिब ने उड़ा दिया है। कई दिन से उस का पता नहीं है, यह भी ज्ञात हुआ*। यहां इतने बड़े शहर में कोई कन्या पाठशाला आर्य्य वा हिन्दुओं की ओर से नहीं है, डेढ़सौ से अधिक हिन्दुओं की कन्यायें उसी पाठशाला मे पढ़ती हैं, जहां उन्हें नित्यप्रति ईसाई मत की शिक्षा दी जाती है और उन को ईसाइयों के भजन गवाये जाते हैं। प्रति सप्ताह मिठाई बँटती है। और उसी समय में एक पांच वर्ष की कन्या जो अपने पिता के रोग के कारण वहां आई हुई थी, उसने यह भजन पढ़ा कि 'ईसा को सच्चा ईश्वर मान' क्या यह संस्कार जो उनकी ओर

से बचपन से डाले जाते हैं, यह समय पाकर नहीं फूलें और फलेंगे। माताओ, यही रोना है कि आपकी सच्ची देवियों की यह दुर्दशा है।

ईसाइयों के हाथ में तुम्हारी देवियां मूर्खता के कारण जारही हैं परन्तु पत्थर की देवियों के लिये दस पांच नये मन्दिर हर साल बन जाते हैं। पड़े पत्थर ऐसी समझ पर, समझी भी तो क्या समझी। अब भी चेत जाओ, तुम्हारी पुत्रियां चाहे नितान्त अनपढ़ रहें परन्तु ईसाई स्कूल की शिक्षा न दिलाओ, वह उन के लिये विष से भी अधिक हानिकारक है यदि वह तुम्हारी बालिकाओं में यह संस्कार जमादेंगी फिर माता को बुआ कहने के समान जीवन भर नहीं निकलेंगे।

एक बच्चे में गाली गलौज की आदत पड़जाती है, दूसरे में उस का अभाव रहता है, यह सब आप के डाले संस्कारों का अन्तर है। आप इस ओर अधिक ध्यान दें।

नोट—सब संस्कारों के जो गूढ़ आशय हैं मेरी योग्यता ऐसी नहीं कि उनके यथोचित उत्तर दे सकूं। इस कारण से किसी को लिखता और किसी को छोड़ता हुआ आप को संस्कार करने की ओर ध्यान दिलाता हूँ। आप इन्हें कीजिये, कोई समय आयेगा जब आप इसे औरों को करावें और बतावेंगी।

---

* नोट–माह मार्च सन् १९०९ की २९ वा ३० की बात है।

❀ गर्भाधान ❀

क्या माता पिताओं के विचारों के अनुकूल ही पवित्र और अपवित्र आत्मायें गर्भ में आती हैं। स्वरूप और कुरूप, अंगहीन होना क्या माता पिता के कर्मों से सम्बन्ध रखता है, यह एक प्रश्न है। मताओ, यदि आप वृक्षों की बनावट की ओर दृष्टि दें तो ज्ञात होगा कि जिस प्रकार पृथिवी के गर्भ में रहते हुये भी बीज बोने वाले की चतुरता और योग्यता पर पेड़ का सुडौल और सीधा और अंगहीन होना निर्भर है, इसी प्रकार माता और पिता की बुद्धि पर बच्चे की सुघरता और उस के अंगों का सुडौल होना निर्भर है; वरन् आत्मा और मन के दोषरहित उत्पन्न होने में भी माता पिता का बड़ा भारी अंश है।

प्राचीन भारतवासी न केवल ऋषि बनाते थे वरन् ऋषि पैदा करने की विधि जानते थे। बृहदारण्यक उपनिषद् का आठवां अध्याय चौथा ब्राह्मण देखिये। वहां इसप्रकार के साधन प्राप्त होंगे। जिस पेड़ के लिये योग्य माली नहीं मिलता, वह बेडौल रहता है; विरुद्ध इस के जब रक्षा करने वाला और छांटने कतरने वाला उस की जड़ों के कीड़े आदि निकालने वाला मिल जाता है, फिर वह बेडौल नहीं रहता।

इसी भांति जो माता पिता योग्य हैं वह स्वयं नियम पूर्वक रहते हैं। ईश्वरीय नियमों को जानते हैं। खान, पान, व्यवहार ठीक रखते हैं, उन के यहां ही पवित्र आत्मायें परमात्मा भेजते हैं।

स्वामी जीने स्पष्ट लिखा है—

"धन्य वह माता है जो गर्भाधान से लेकर जब तक पूरी विद्या नहीं, सुशीलता का उपदेश करे"।

जिस से विदित है कि माता गर्भ में भी उपदेश कर सक्ती है। डाक्टर टिराल साहिब भी लिखते हैं, कि बनावट एक से दूसरे में जासक्ती है।

देखो आयुर्वेद में लिखा हैः—

आहाराचार चेष्टाभिर्यादृशोभिःसमन्वितौ ।
स्त्रीपुंसौ समुपेयातां तयोः पुत्रोपितादृशः ॥

सुश्रुत संहिता।

जिस प्रकार के आहार, आचार, व्यवहार से स्त्री पुरुष दोनों युक्त होते हैं उसी प्रकार का पुत्र उत्पन्न होता है।

जिस से यह भली भांति प्रकट है, कि गर्भ ठहरने के समय माता के स्वाभाव शारीरिक और आत्मिक दोनों ही, उत्पन्न होने वाले प्राणी की कुल आयु पर प्रभाव रखते हैं। और माता पिता की आरोग्य और रोग ग्रसित दशायें और आनन्द दुःखित अवस्थायें, चाल चलन गर्भवती और प्रसूता होने के समय तक लगातार, बच्चे की बनावट पर गुण और दोष का प्रभाव डालते हैं और उस में परिवर्त्तन करते हैं।

वही डाक्टर आगे लिखते हैं, माता के बहुत से रोग और निर्बलता, बरन् कुरूपता और अनोखापन सब गर्भाधान के समय की स्वतन्त्रता और अनियम विषय भोग पर निर्भर है।

इस कारण माता की सर्व शक्ति बच्चे के पालन पोषण अर्थात् उस के सुधार में लगनी चाहिये।

महर्षि स्वामी जी बतलाते हैं-

"माता पिता को अति उचित है कि गर्भाधान के पूर्व और पश्चात् मादक द्रव्य, दुर्गन्ध, रूक्ष और बुद्धिनाशक पदार्थों को छोड़ कर जो शान्ति, आरोग्य, बल, बुद्धि, पराक्रम और सुशीलता से सभ्यता को प्राप्त करें, वैसे घी, दूध, मीठा, नाज आदि श्रेष्ट पदार्थों का सेवन करें कि जिनसे वीर्य सब दोषों से रहित होकर अति उत्तम गुणयुक्त हो"।

वे बच्चे बड़े भाग्यशील हैं जिनकी मातायें नियम विरुद्ध पदार्थों के सेवन से बची रहती हैं।

प्रसिद्ध अमरीकन योगी डेविज़ का कथन स्मरण रखने के योग्य है। वह लिखते हैं कि हम सब ठीक और निरन्तर वही हैं जो कुछ हमारे जन्म देने वालों (माता पिताओं) ने हमें बनाया है।

स्वामी जी ने भी यही लिखा है, ऐसा पदार्थ उस बच्चे की माता या धाई खावे जिस से दूध में भी उत्तम गुण पैदा हों, क्योंकि प्रसूता स्त्री के शरीर से बालक का शरीर होता है और यह भी लिखा है कि इस प्रकार जो स्त्री और पुरुष करेंगे उनकी उत्तम सन्तान, दीर्घायु, बल, पराक्रम की वृद्धि होती रहेगी।

इस से विदित है कि माता पिता को विशेषतया पापों और खोटे कर्मों से बच कर ही "गर्भाधान" करना चाहिये इस लिये कि जिस जीवात्मा को अपनी तहरीक (प्रस्ताव) से मनुष्य शरीर का खोल पहिना कर सूर्य के दर्शन कराना है वे उसको अच्छे बुरे बनने के परिणाम के ज़िम्मेदार हैं। यहां पर इतना ही बतलाना चाहता हूं। क्योंकि इस सम्बन्ध में कुछ प्रथम भाग में भी लिखा जा चुका है और यह भी

बताया जा चुका है कि भीष्म की माता ने इसी वेदोक्त संस्कार को करके इतना धर्मात्मा पुत्र पैदा किया था। यह संस्कार सब संस्कारों की जड़ है, शेष इसके सहायक हैं, जैसा बीज होता है वैसा ही फल आता है।

अब प्रश्नोत्तर के ढंगपर कई बातें लिखी जाती हैं उससे लाभ उठाती हुई इस संस्कार को ठीक कीजिये। जड़ के ठीक रहने से पेड़ फलता और फूलता रहता है। "मूलेनष्टे नैव पत्रम् न पुष्पम्"।

प्रश्न।

क्या रजस्वला होने की दशा में तेल मलना और आंखों में सुर्मा आदि लगाना चाहिये ?

उत्तर।

रजस्वला होने के प्रथम चार दिनों में बड़ी सावधानी से रहना चाहिये क्योंकि इन्हीं चार दिन के पश्चात् बारह दिन हैं, जिन में वर्जित रात्रियों को छोड़कर गर्भ ठहर सकता है। यदि उस समय में काजल लगावेगी तो बच्चा अन्धा होगा। यदि तेल को मलेगी तो कोढ़ी होगा। यदि सोवेगी तो ऊंघने वाला अर्थात् आलसी होगा। दौड़ेगी, तो चंचल। यदि हंसेगी तो काले दान्त वाला। गम्भीर शब्द सुनने से बहिरा। कंघी करने से गञ्जा होगा। उस समय में इन सब बातों को बचाती हुई एकान्त में बैठकरही बिताना चाहिये, और विषय करने से तो अनेक रोग स्त्री पुरुष में होजाने का भय है।

प्रश्न।

गर्भाधान संस्कार में बहुत से पुरुषों को एकत्रित करना

और उसकी सबको सूचना देना, मुझे तो बड़ी असभ्यता प्रतीत होती है। समागम का नाम तो आज, भले आदमियों ने बुरा काम प्रसिद्ध कर रक्खा है। मैं तो बड़ी निर्लज्जता समझती हूं।

उत्तर।

आज कल तो निश्चय करके इस काम का नाम बुरा कामही है, इस लिये कि आज समागम सन्तान उत्पत्ति के लिये नहीं होता। माली के उस काम को, जो उत्तम सुहावनी वाटिका लगाने के अर्थ करता है, कोई बुरा काम कहता है ? तो मनुष्यरूपी वाटिका, लगाने के कर्म को कौन बुद्धिमान् बुरा काम कह सकता है। यदि गर्भाधान संस्कार नियम पूर्वक होता रहता और उसके हानि लाभ समझते और समझाते रहते तो कभी, मनुष्य पशुवत् इस कार्य्य में प्रवृत्त न हो सके। रही, लाज की वात, सो आप अव भी सुहागरात के लिये पण्डितों से सायत पूछती हो। तमाम बिरादरी भाई वन्दों और टोले के स्त्रियों को इकट्ठा करके राग गाती हो और वनवासियों की भांति ढकेलते २ वधू और वर को एक कोठे में बन्द कर देती हो और प्रातः खोल के बिरादरी में मिठाई बांटती हो, फिर क्या इस संस्कार में पुरुषों का बुलाना, वेदमन्त्र पढ़कर यज्ञ करना ही असभ्यता है। खवर तो पुरुषों को भी हो जाती है, काम सब होते हैं, पर बुद्धि का फेर है। कैसा सुन्दर हो कि वेदमन्त्र पढ़कर दिन मे दोनों स्त्री पुरुष औषधि घृतादि खाकर रात्रि में प्रसन्नता पूर्वक केवल सन्तानोत्पत्ति का ध्यान रखकर इस वेदोक्त क्रिया को करें। मूर्ख पण्डित सायत बतलानेवालों को यह भी ज्ञात नहीं है कि कन्या अभी

रजस्वला हुई है वा नहीं, पर सुहागरात की सायत बता देते हैं। उन्हें इससे क्या प्रयोजन कि उनकी सायत ऋतु काल के अन्तर्गत है या नहीं।

प्रश्न।

अच्छा यह तो बताइये, कि गर्भ में पांचवें महीने जान पड़ती है वा चौथे महीने, जिसके पश्चात् स्त्री समागम छोड़ दे।

उत्तर।

न पांचवें, न चौथे, वरन् यदि गर्भ स्थित होता है तो उसी समय गर्भाधान क्रिया के साथ, शरीर के साथ जीव प्रवेश होता है।

शुक्र शोणित जीव संयोगे तु खलु कुक्षिगते गर्भ संज्ञा भवति ॥ च० सं० शा० अ० ४ ॥

वीर्य्य आर्तव और जीव का संयोग होने पर गर्भ नाम होता है।

शुक्रार्तव समाश्लेषो, यदैव खलु जायते।
जीवस्तदैव विशति, युक्त शुक्रार्तवान्तरः ॥१॥

।भावप्रकाशे।

गर्भाधान समय वीर्य और आर्तव का जिस समय मेल होता है "तदा एव जीवः" उसी समय वीर्य और आर्तव के साथ जीवात्मा 'विशति' गर्भ में प्रवेश करता है।

अज, स्तिष्ठन् पदैकेन, यथैवैकेनगच्छति।

यथा तृण जलू कैवं, देही कर्म गतिंगतः ॥

भागवते १० मस्कन्धे श्लो० ४० ॥

आप समझें तो कि जिस पेट के भीतर कठोर से कठोर पदार्थ आमाशय में जाकर भस्म होजाते हैं। वहां पर विना जीव के होते हुए वीर्य क्योंकर स्थित रह सकता है? मैंने तो ऊपर लिखा था कि मनुष्य पशुवत् प्रवृत्त होते हैं, यहां पर तो आपने पशुओं की ओर भी ध्यान न दिया। देखो तो गाय भैंस गर्भ रहने के पश्चात् प्रसूता होने तक फिर भोग नहीं करतीं, तो क्या आप उनसे भी गिर जाओगी? ऐसा प्रश्न अति अनुचित है।

प्रश्न।

तुर्त जीव के स्थित होजाने का कोई प्रमाण है?

उत्तर।

ऋग्वेद के मण्डल ५ सूक्त ७८ मन्त्र ६ में वतलाया है कि गर्भ, गर्भाधान आरम्भ से दश मास तक सजीव होता है और पश्चात् सजीव उत्पन्न होता है। सिवाय इसके धन्वन्तरि की भी ऐसी सम्मति है। और भावप्रकाश के पूर्वखण्ड गर्भप्रकरण में लिखा है कि सब अंगोपांग भी साथ ही साथ होते हैं।

सर्वाण्यगांन्युपंगानि युगपत्सम्भवन्ति हि ।
सूक्ष्मत्वान्नोपलभ्यन्ते मते धन्वन्तरेरिदम ॥

अर्थात् सब अंग उपांग एक काल में ही होजाते हैं परन्तु सूक्ष्म होने के कारण विदित नहीं होते, यह धन्वन्तरि का मत है।

आमूस्यानुफले भवन्ति युगपत् मांसास्थि मज्जादयो। लक्ष्यन्तेन पृथक् २ तनुतया पुष्टास्त एवस्फुटः॥

अर्थात् जैसे आमके फल में एक काल में गूदा और गुठली और तुतली वा विजली सब साथ साथ होते हैं परन्तु सूक्ष्मता के कारण दिखाई नहीं देते, जब फल स्थूल होजाता है तब सब दृष्टि पड़ने लगते हैं।

प्रश्न।

यदि गर्भ स्थिर होजावे, तो फिर स्त्री पुरुषों का मेल कब होना चाहिये?

उत्तर।

यदि स्त्री स्वयं वालक को दूध न पिलावे और स्त्री पुरुष दोनों की इच्छा दूसरी सन्तान के लिये, निकट ही हो तो दश मास वच्चे के पैदा होने और दो मास स्त्री के लिये आराम करने को छोड़कर एक वर्ष पश्चात् और यदि स्त्री ही दूध पिलावे तो दश महीने गर्भ और १८ मास दूध पिलाने और दो मास स्त्री के आराम के लिये छोड़के ढाई वर्ष पश्चात् फिर गर्भाधान करें।

❀ पुंसवन संस्कार ❀

यह गर्भ के ज्ञात होने के दूसरे वा तीसरे महीने, दो प्रयोजन के सिद्धार्थ एक यह कि मेरी धर्म्मपत्नी गर्भवती है, आज से विशेष हम दोनों जिन २ औषधियों के सेवन से

---

१ यहां मांस के अर्थ गूदे के हैं।

मन की प्रसन्नता और कामाग्नि की शान्तता रहेगी, करेंगे। गर्भ स्थिति होजानेसे आजसे हम दोनों व्रतधारी होंगे, अर्थात् समागम से बचेंगे। पुरुष उस समय पर प्रकट करे कि मैंने गर्भिणी गमन नहीं किया है, और आगे को भी नहीं करूंगा

दूसरे गर्भ को पुष्ट करने के लिये जिस से गर्भ की रक्षा हो, और गिरने न पावे। पुंसवन के अर्थ भी वीर्यवान् हैं अर्थात् गर्भिणी गमन न करने वाला अर्थात् पुरुष बचकर वीर्य लाभ कर रहा है। दूसरे अर्थ पुष्टि के हैं अर्थात् गर्भ पुष्ट करने का अभिप्राय है। तात्पर्य यह निकला है कि—

तस्मादापन्नगर्भां स्त्रियमभिसमीक्ष्य प्राग्व्यक्ती भावाद् गर्भस्य पुंसवनमस्यै दद्यात् ॥३०

चरक संहिता, शारीरस्थान अ० ८ में लिखा है कि जब स्त्री के गर्भवती होजाने का ठीक २ निश्चय होजावे तब गर्भ के अंग प्रत्यंग हस्त पाद, अंगुलियें इत्यादि प्रकट होने के प्रथम स्त्री को पुंसवन, वे औषधियां जिन से माता पिता की असावधानी से उनके रज वीर्य के दोष दूर करने को और गर्भ के पुष्टर्थ दी जाती हैं, देवे। क्योंकि बीज और आर्तव में यदि कोई भी दोष रहेगा तो वह दोष भावी सन्तान के शरीर में भी उत्पन्न होने पर प्रकट होगा। चरक और सुश्रुत मत से तीसरे मास में गर्भ के अंग और प्रत्यंगो का सूक्ष्म विभाग होना और चतुर्थ मास में अपने अंग प्रत्यंगो सहित गर्भ का स्थिरत्व पाया जाता है।

पुंसवन का अर्थ दूसरे वा तीसरे मास में गर्भ का (स्पन्दन) कुछ २ फड़कना प्रस्फुरित होना अथवा थोड़ा कम्पन (गतिशील) है गर्भ के प्रकट होने से पूर्व पुंसवन

संस्कार का समय है, 'पुंस' अभिवर्द्धने इस चौरादिक धातु से "पुंस" शब्द सिद्ध होता है। अभिवर्द्धन का अर्थ बढ़ना है अर्थात् गर्भ जिस में वृद्धि को प्राप्त होता है, वह पुंसवन संस्कार कहाता है।

प्रश्न।

गर्भपुष्टि का उस में क्या उपाय किया जाता है?

उत्तर।

पुमान् अर्थात् वीर्यवान् अथवा बलवान् सन्तान पैदा करे उस का नाम पुंसवन है। इस में वटवृक्ष की जटा वा कोंपिल पत्तों को स्त्री की दक्षिण नासिका में सुंघाय, पुनः वटवृक्ष की कोंपिल और गिलोय (गुर्च) को महीन पीसकर छान के गर्भिणी स्त्री के दक्षिण नासिका पुट में सुंघाया जाता है जिससे गर्भ का थाम होजाता है। यह वैद्यक की बात है और इस की पुष्टि सुश्रुत शरीरस्थान अध्याय २ में यूं की है कि जब स्त्री को गर्भ रह जावे, तब इन दिनों में लक्ष्मणा और वट (बरगद) की कोमल पत्ती, सहदेवा, और विश्वेदेवा, इस में से किसी को गाय के दूध में घिस कर सन्तान चाहनेवाली स्त्री के नासिका के दाहिने छिद्र में तीन वा चार बूंद डाले और स्त्री को समझा दे कि इस को थूके नहीं, पश्चात् स्त्री नियम सहित रहकर विशेष कर गिलोय, ब्राह्मी और सुंठी को दूध के साथ थोड़ी २ खाती रहे। खारा, खट्टा, तीखा और रेचक हड़ आदि पदार्थ न खावे।

प्रश्न।

सब संस्कार, एक ही प्रकार के मन्त्रों से क्यों नहीं कर दिये जाते हैं। जैसे साधारण हवन, और उन संस्कारों में पृथक् २ अन्य २ प्रकार के कुछ न कुछ मंत्र क्यों लिखे हैं?

उत्तर।

जो मंत्र सामान्यतया से पढ़े जाते हैं उन में तो केवल हवन के लाभ हैं वा ईश्वर सन्मानादि का वर्णन है। जो विशेष मंत्र संस्कार में पढ़े जाते हैं उन मंत्रों में इस विशेष संस्कार के सम्बन्धी नियमों का वर्णन पाया जाता है।

प्रश्न।

गर्भिणी के हृदय पर हाथ क्यों रक्खा जाता है?

उत्तर।

इस हाथ रखने से पुरुष अपनी बिजुली के प्रभाव को उस के हृदय में पहुंचाता है कि घबड़ाना नहीं, खूब गर्भ की रक्षा किये जाना, क्योंकि इन दो तीन महीनों में स्त्री का जी बहुत गिरा गिरा होता है। मानों पुरुष एक प्रकार का स्त्री से अपील करता है, कि गर्भ को मत गिराना और हृदय पर हाथ रखने से न केवल गर्भिणी के दिल को पुष्ट करने का ध्यान है वरन् गर्भ के अन्तर्गत बालक के हृदय पर प्रभाव पहुंचाने का अभिप्राय है।

प्रश्न।

हृदय पर हाथ रखने से क्या प्रभाव हो सकता है?

उत्तर।

खूब स्पष्ट देखा होगा, कि जब बच्चा किसी कारण से डर जाता है तो उस समय हृदय पर हाथ रक्खा जावे तो हाथ की गर्मी का प्रभाव बालक के हृदय पर अपना प्रभाव कर जाता है। हाथ की उष्णता चुम्बक समान उस बच्चे

पर प्रभावित होकर अपना प्रभाव डालती है। यह प्रसिद्ध है कि बच्चे की पीठ पर साहस बढ़ाने के अर्थ हाथ फेरा जाता है और संध्या में इन्द्रियस्पर्श में हाथ से अंगों को छुआ जाता है।

प्रश्न।

गर्भिणी के गर्भाशय पर हाथ क्यों रक्खा जाता है ?

उत्तर।

मनुष्य के शरीर में पांच प्रकार के वायु काम करते हैं-प्राण, अपान, उदान, समान, व्यान; जब उक्त पांचों वायु शरीर में प्रकृति के अनुकूल रहते हैं, तब शरीर सर्वथा अरोग्य रहता है और जब उक्त वायु प्रकृति के विरुद्ध होते हैं तब शरीर आरोग्य नहीं रहता अर्थात् वायु की शरीर में अनुकूलता रहने पर मनुष्य १०० शत वर्ष पर्य्यन्त निर्विघ्न जीवित रह सकता है। जैसेः—

अव्याहत गतिर्यस्य स्थानस्थः प्रकृतौ स्थितः। वायुः स्यात् सोधिकं जीवेद् वीत रोग समाः शतम् ॥

च० चि० अ० २८। श्लोक २ ॥

"अशांति वात विकाराः" च० स० अ० २० ॥

वातज विकार ८० प्रकार के हैं।

गर्भिणी स्त्री के गर्भ स्थान आदि की वायु अपने २ स्थान में स्थित रहने से गर्भिणी के आरोग्य का कारण होता है,

अन्यथा रोगोत्पत्ति का कारण होता है। स्त्री के शुद्धार्तव और गर्भ स्थापित होने का कारण वायु है। माता के उदर में गर्भ का किंचिच्चलन भी वायु की अनुकूलता से ही होता है। वेद में लिखा है किः--

एजतु दशमास्यो गर्भो जरायुणा सह। यथायं वायुरेजति यथा समुद्र एजति एवायं दशमास्यो अस्रज्जरायुणा सह स्वाहा॥

य० अ० ८ मं० २८॥

गर्भावरण (झिल्ली) के सहित दशमासीन गर्भ कम्पित हो, अर्थात् फड़के, जैसे वायु और समुद्र चलते हैं वैसे गर्भ भी फड़कता हुआ अरोग्य को प्राप्त होवे। गर्भस्थ वायु प्रकृति युक्त है वा विकृत युक्त है, इन दोनों बातों को बुद्धिमान पति कैसे जाने। प्रत्यक्ष में देखा जाता है कि वैद्य वात पित्त, कफ इन तीनो दोषों के सम और विषम भाव को हाथ की नाड़ी द्वारा जान लेता है कि शरीर में कौन दोष इस समय मुख्य होरहा है और कौन नहीं, अर्थात् शरीर सर्दी और गर्मी का साधारण ज्ञान नाड़ी देखने के द्वारा होजाता है। वैसे ही वैद्यक शास्त्र का जाननेवाली, भावी सन्तान का गुरू पति स्त्री के गर्भाशय पर हाथ रखके गर्भ की आरोग्य दशा का अनुभव करे। उसके किञ्चिलन से गर्भ का आरोग्य होना अनुमान करे और भविष्यत् के लिये गर्भ रक्षा पर ध्यान दे, यह बात बिना गर्भाशय पर हाथ धरे नहीं जानी जासकती।

"स्पर्शं प्राणिना प्रकृति विकृति युक्तमिति"

च० अ० ४। विमान० ॥

यहां स्पष्ट ही लिखा है कि (स्पर्श) शरीर की सर्दी गर्मी सहित वायु की परीक्षा हाथ से करे। जब प्रकृति विकृति युक्त स्पर्श की परीक्षा हाथ से करना वैद्यक शास्त्र सम्मत है तो हृदय और गर्भाशय पर भी हाथ धरना स्पर्श परीक्षा द्वारा गर्भ के आरोग्य जानने के अभिप्राय से है।

प्रश्न।

यह कैसे सम्भव है, कि स्त्री के हृदय पर हाथ रखने से बच्चे पर असर होगा ?

उत्तर।

बतलाया है कि गर्भगत बालक के किसी अंग पर तासीर पहुंचाना हो तो गर्भिणी के उसी अंगपर तासीर पहुंचाओ क्योंकि गर्भिणी के जिस २ भाग को पीड़ा पहुंचती है, तो उस गर्भगत बालक के भी उसी अंग को पीड़ा पहुंचती है।

प्रश्न।

बच्चे के शरीर का कौन २ भाग किस किस मास में बनता है ?

उत्तर।

प्रथम मास में तो लुथड़ा सा होता है, दूसरे में पिण्ड हो जाता है, तीसरे में दो हाथ पैर और सर, पांचों की पांच

शाखा सी निकलने लगती हैं और किञ्चित्मात्र हृदय भी, चोथे में सारे अंग प्रत्यंग के विभाग फूटकर प्रकट होने लगते हैं। इस कारण चौथे मास में गर्भस्थ जीव इन्द्रियों के अर्थ में रुचि करने लगता है। पांचवें मास में मानसिक शक्ति छठे में बुद्धि, और उसके पश्चात् सब अंगों की पूर्ण पूर्ति होती है। परन्तु धन्वन्तरि मुनि जी का मत है कि—

सर्वांग निर्वृत्ति युगपदिति धन्वन्तरिः।

च० सं० शा० अ० ६।

गर्भ के सब अंगों की सिद्धि एक साथ होजाती है।

प्रश्न।

स्त्री के प्रसन्न करने की भी कोई बात इस संस्कार में है वा नहीं ?

उत्तर।

है। सामवेद और महावामदेवगान का गान होता है। इसके गाने और सुनने से मन भी प्रसन्न होता है और विशेष प्रभाव। जो स्त्री पुरुष जानते हैं कि मेरा दूसरे वा तीसरे महीने में पुंसवन संस्कार होना है। मेरे वा पति के अमुक सम्बन्धी अमुक स्थान से आयेंगे, मेरे लिये अच्छे वस्त्र बनेंगे, बाजे बजेंगे, वेदगान होगा। सब सम्बन्धियों के सन्मुख, मेरा वीर पति सुन्दर वस्त्र पहिने हुए भरी सभा में मुझ से गर्भरक्षा के लिये कहेगा। गर्भ की महिमा दर्शावेगा। उस दृश्य को देख कर स्त्री, पुरुष के मन में गर्भ की रक्षा गर्भिणीगमन न करने और की हुई प्रतिज्ञा के भंग न करने का अवश्य विचार होता होगा।

❀ सीमन्तोन्नयन ❀

सीमन्त (मस्तक) का ऊंचा करना वा बढ़ाना है उस को सीमन्तोन्नयन संस्कार कहते हैं।

च० सं० शा० अ० ४ में लिखा है कि आठवें मास में गर्भ माता से और गर्भ से माता रस पहुंचाने वाली नाड़ियों से वारम्बार ओज को परस्पर ग्रहण करती है, क्योंकि इस आठवें मास में गर्भ सर्वांग सम्पूर्ण हो जाता है, अतएव इस समय गर्भिणी स्त्री वारम्बार आनन्दित होती और वारम्वार ग्लानि को प्राप्त होती है। इस आठवें मास में गर्भस्राव का विशेष भय रहता है, क्योंकि इस समय गर्भ अवस्थित नहीं रहता। सुश्रुत सूत्रस्थान अ० १५ में 'ओज' का अर्थ इस प्रकार है कि ओज सोम गुण, स्नेह गुणयुक्त, शुक्र के वर्णवाला, शरीर के अवयवों का चिरकाल तक रखनेवाला, सर्वांग में फैलने वाला, श्रेष्ठ गुण युक्त, पिच्छिल और प्राणों का उत्तम स्थान है। वा—

'सीमन्तः केशवेशे, । अन्यत्र सीमान्तः। ६ अष्टा० अ० ६ । १ । ८३

यह सीमन्त शब्द केशों के वेश अर्थात् अलंकार करने अर्थ में होता है। जहां उक्त अर्थ न होगा वहां सीमान्त अर्थात् सीमा (हद) की समाप्ति, यह अर्थ लिया जाता है। ऐसे स्थल में सीमन्त शब्द का प्रयोग व्याकरण के नियम से नहीं होता। इस संस्कार में भी केशों का अलंकार किया जाता है, अतः सीमन्त शब्द का प्रयोग उक्त नियमानुसार

है, और पति ही स्त्री के शिर में तैल लगा केशों को सम्हालता है, यह इस लिये कि—

निषेकादीनी कर्म्माणि यःकरोति यथाविधि ।
सम्भावयति चान्नेन सविप्रो गुरुरूच्यते ॥ मनु०

निषेक (गर्भाधान संस्कार) आदि शब्द से शेष अन्य संस्कारों को यथा विधि करनेवाला विप्र (विद्वान् पति) ही भावी सन्तान का गुरु होता है, सारांश यह है कि पति वास्तव में अन्यों की अपेक्षा अधिकारी है क्योंकि वही भावी सन्तान का गुरु है, अतः पति के अतिरिक्त दूसरे को अधिकार नहीं । अब विचारणीय बात यह रही कि स्त्री के शिरस्थ केशों में तैल क्यों लगाया जाता है। इस का उत्तर वैद्यक शास्त्रानुसार यह है कि

तत्र गर्भस्य केशाजायमानामातुर्विदाहं जनयन्तीति स्त्रियो भाषन्ते तन्नेति भगवानात्रेयः किन्तु गर्भोत्पीड़नात् वात पित्त श्लेष्माण उरः प्राप्य विदहन्ति ततः कण्डूरूप जायते कण्डूमूला च किक्काशा वाप्तिर्भवति ॥

च० सं० शारीरस्थाने, अध्या० ८ ॥

गर्भस्थ बालक के केश उत्पन्न समय माता के शरीर में जलन पैदा करते हैं, ऐसा जो स्त्री लोगों का मत है, वह ठीक नहीं । किन्तु गर्भ के उत्पीड़न से वात, पित्त और कफ हृदय को प्राप्त होके जलन पैदा करते हैं, उस से खजुली

होती और फिर किक्काशा (खांसी) होती है। अतएव वातज रोगों के शान्त्यर्थ और मन की प्रसन्नतार्थ स्त्री के शिर में प्रथम से ही तैल लगानें की आज्ञा दी गई है, तथाच-

न तैल दानात् परमस्ति किञ्चिद् द्रव्यं विशेषेण समीरणार्ते। स्नेहाद्धि रौक्ष्यं लघुतां गुरुत्वा दौष्ण्याच्च शैत्यं पवनस्यहत्वा ॥

विशेष वायुजन्य पीड़ा में तैलदान से श्रेष्ठ द्रव्य अन्य कुछ नहीं, क्योंकि तैल अपने स्नेह गुण से वायु की रूक्षता को, गुरुत्व से लघुता को, उष्ण से वायु की शीतता को नाश कर के-

तैलं दधत्याशुमनः प्रसादं वीर्यं वलं वर्ण मथाग्निपुष्टिम्। मूले निषिक्तेहि यथाद्रुमः स्यान्नीलच्छदः कोमलपल्लवाग्रः ॥२८॥

च० सं० अ० ११। सिद्ध स्थाने ॥

तैल शीघ्र मन की प्रसन्नता तथा वीर्य, वल वर्ण (रंग) का करने वाला और जाठराग्नि का पुष्टिकारक है। जैसे वृक्ष के मूल (जड़) में जल सिञ्चन करने पर वृक्ष अपने कोमल सुन्दर पत्तों से हरा भरा हो जाता है, ऐसे ही स्त्री के शिर में तैल औषधयुक्त सुगन्धित लगाने से स्त्री की आरोग्यता और गर्भ की पुष्टि होती है। शिर में ही तैल लगाने का कारण यह है कि लोकमें शिर को मूड़ कहते हैं। मूड़ शब्द संस्कृत के मूल शब्द का अपभ्रंश है। इस मनुष्य शरीर को

शाखायें, हस्तादि नीचे की ओर है और मूल (शिर) ऊपर है, अतएव मूड़ (मूलभूत शिर) में तैल लगाने से स्त्री का सम्पूर्ण शरीर और उसके साथ गर्भ के मस्तिष्क आदि अस्थिसंघात पुष्ट होते हैं । सुश्रुत वैद्यक शास्त्र में लिखा है कि—

" चतुर्दशैव सीमन्ताः । तेऽस्थि संघाताः "॥

शरीर में १४ सीमन्त है, सीमन्त कहते हैं हड्डियों के जोड़ को । सीमन्तोन्नयन संस्कार द्वारा उक्त १४ शरीरस्थ अस्थिसंघातों को सांगोपांग पूर्ण होने के लिये प्रयत्न किया जाता है । वैद्यक शास्त्र के मत से शरीर में कोमल भाग माता के अंश से और कठिन (हड्डी) आदि पिता के अंश से बनते हैं, ऐसा माना गया है । सो सीमन्त अर्थात् अस्थि संघात को हृष्टपुष्ट करने के लिये बुद्धिमान् चतुर पति तैल लगाने द्वारा अपना कर्त्तव्य पालन करता है; और स्त्री, गर्भ की शुद्ध पृथिवी, शुद्धाग्नि, शुद्ध वायु और शुद्ध जल से रक्षा करती है । क्यों कि शरीर में खाये पिये हुये अहार का परिणाम रस है, रसके पश्चात् रक्त, रक्त के पश्चात् मांस, फिर मेदा (चर्बी) और फिर अस्थि धातु बनता है । पूर्वोक्त रीत्या आचरण करने से हड्डी और हड्डियों के जोड़ की रक्षा से भावी सन्तान का शरीर हृष्टपुष्ट होता है, यही सीमन्त का उन्नयन (ऊंचा करना वा बढ़ाना) है ।

प्रश्न ।

इस संस्कार में पुरुष को स्त्री के शिर में तैल लगाने और

कंघी से बाल सँभालने की सभ्यता के विरुद्ध यह कैसी आज्ञा है?

उत्तर।

इस संस्कार का अभिप्राय बालक के मस्तिष्क की गर्भ में स्थिति कराने का है और छठे मास से बुद्धि बढ़ती है, इसी कारण यह संस्कार करने का उत्तम समय है। बुद्धि का मुख्य स्थान मस्तिष्क है, इसी कारण इस समय में बच्चे के मस्तिस्क पर विशेष प्रभाव पहुंचाना है। वह गर्भिणी के शिर पर पति के तैल लगाने और कंघी करने से से होता है। इन दिनों में स्त्री जिन २ बातों को सोचती रहेगी; उसी तरह की बातों के सोचने की योग्यता रखने वाला बच्चा उत्पन्न होगा। छठे महीने बालक के बाल भी निकलने आरम्भ होते हैं। इस लिये स्त्री के बाल सँभालने से बच्चे के भी बाल सुन्दर पैदा होते हैं। स्त्री को मुख्य ध्यान इस ओर दिलाना है कि इन दिनों में स्त्री शिर और केशों का मुख्यतया ध्यान रक्खे, अर्थात् करे। मस्तिष्क से काम लेती हुई पढ़ने आदि का काम करती रहे।

प्रश्न।

यह संस्कार शुक्लपक्ष में करना क्यों लिखा है, क्या यह पोप लीला नहीं है?

उत्तर।

नहीं, इस लिये कि उस समय बच्चे के मन और बुद्धि पर प्रभाव पहुंचाना है और विशेष कर मन प्रकाश के परमाणुओं से बनता है और शुक्लपक्ष में रात को भी

प्रकाश रहता है। इस से मन की बनावट पर मुख्य प्रभाव पहुंचता है। प्रश्न सूक्त के बारहवें मंत्र से विदित है कि मन के साथ चन्द्र का विशेष सम्बन्ध है।

प्रश्न।

सात मंत्र स्त्री को एकान्त में लेजाकर पुरुष पढ़ता है, स्त्री को सुनाता है इस से क्या अभिप्राय है?

उत्तर।

प्रथम मंत्र में लाभकारी औषधियों के सेवन करने का उपदेश है। दूसरे में बताया है कि मस्तिष्क का प्रकाश से सम्बन्ध है। धनुर्वेद के विद्वान् अग्नि से तांबा, लोहा शुद्ध करते हैं। आज गर्भस्थित बालक का मस्तक बन रहा है, इस समय अग्निमय अर्थात् सात्विक भोजन करने की विशेष आवश्यकता है। तीसरे में बतलाया है कि जिस प्रकार वृक्ष फल लगने पर सुन्दर होता है, उसी प्रकार गर्भिणी उत्तम सन्तान के होने से शोभा पाती है। शेष में सन्तानोत्पत्ति गर्भरक्षादि के विषय हैं।

प्रश्न।

नदी का नाम उच्चारण करने से क्या लाभ है?

उत्तर।

'ओं सोमऽएवनो राजेमा मानुषी प्रजाः'

जो मंत्र लिखा है उस का यह अर्थ है कि शान्तिरूप-नदी तेरे किनारे ठहरी हुई हमारी सन्तान एक दूसरे के

साथ प्रेम करती हुई परमात्मा में प्रकाशयुक्त हो। जिस तरह इस मंत्र के द्वारा स्त्री को शान्त रहने का उपदेश किया है इसी तरह पर नदी के भी नाम लेने को कहा गया है। इस लिये कि जल शान्ति का बोधक है। जल की शान्ति से उपमा दी जाती है। आप जानती हैं कि शरीर के सम्पूर्ण जोड़ों को निर्बल बनानेवाले चिन्ता और अशांति के विचार हैं और मन को प्रसन्नता देनेवाला शान्ति के विचार हैं, इसलिये उसको शान्त करने की आवश्यकता है। इसके अतिरक्त सातवें महीने के लगभग बहुधा गर्भ गिरजाते हैं, इसलिये निर्बलता और अशान्ति को दूर करने की आवश्यकता है, इस लिये गर्भ की भी स्थिति रहे और डरपोक सन्तान भी न हो।

प्रश्न।

घी में अपना प्रतिविम्ब देखने से क्या होता है, और स्त्री से इस बात के पूछने से कि तू किस को देखती है?

उत्तर।

जिस समय स्त्री घी में मुँह देखती है, पुरुष पूछता है कि किसको देखती है? वह उत्तर देती है कि सन्तान को जिस का अभिप्राय यह है कि वह ध्यानपूर्वक अपना प्रतिबिम्ब घी में देखे और मन में इच्छा करे कि मेरी सन्तान मुझ से सुघर हो। स्त्री का मन उस ओर लगाने के लिये यह कहा गया है कि पूरे जी से इस काम को करे। जैसे सिपाही जब क़वायद करने को तैयार हुआ करते हैं, तब अफ़सर उनको 'रेडी' तैयार होने की बोली देता है। गो

वह पहिले से तैयार हुआ करते हैं, परन्तु मुख्य शब्द सुनने से पूर्णतया उस ओर ध्यान आकर्षित करलेते हैं, इसी तरह स्त्री का मन से उस ओर झुक जाना बच्चे पर अति प्रभाव करता है। अपना ही मुंह देखे इस लिये कि स्त्री, पुरुष से सुन्दर होती है, क्योंकि उसकी वेद मन्त्र में पूर्णमासी की रात से उपमा दी गई है और उसकी सुघरता को पुरुष से अच्छा वर्णन किया है।

प्रश्न।

पानी में वा आर्सी में क्यों मुँह न देखा जावे घी में ही क्यों देखे?

उत्तर।

इस लिये कि गर्म घी से जो अदृश्य भाप ऊपर उठती है वह मस्तक को पुष्ट करती और नसवार का काम देती है और घी बच्चे के मस्तक पर, जो बन रहा है, हर्ष पहुंचाने और रूप के सुधारने का कारण होता है। जो जल और आइना से असम्भव है।

प्रश्न।

स्त्री को खिचड़ी खाने से क्या लाभ है?

उत्तर।

जो कि यह खिचड़ी यज्ञशेष है, सुगन्धित औषधियों की भाप भी उस में प्रवेश हुई है, इस लिये वेही चार और बड़ी पुष्ट औषधि के गुणों का काम देंगे और हँसी खुशी के

साथ खाने से हज़म भी होजायँगे और चरक शा० स्था० अ० ८ में लिखा है कि मधुर और वातनाशक आहार का सेवन स्त्री इस समय करे वह भी स्वल्प २ खिचड़ी के तिल एतदर्थ मिश्रित किए जाते हैं।

प्रश्न।

स्त्रियों के आशीर्वाद देने से क्या होता है?

उत्तर।

गर्भिणी के मन का उत्साह बढ़ता है और ध्यान होता है कि मैं प्रयत्न करके अपने लिये इस आशीर्वाद के अनुकूल बनाने का यत्न करूं; नहीं तो मुझे लोग क्या कहेंगे। मुझ से लोग जो एक विशेष प्रकार की आशा रखते हैं वह इसी लिये कि मुझ में उसके पूरा करने की योग्यता है, इस लिये अवश्य उसका कर्त्तव्य होगा कि मैं वीर सन्तान पैदा करके दिखाऊं। यही समय है कि स्त्रियों को मुख्य २ धर्म सम्बन्धी उपदेश सुनाये जावें।

प्रश्न।

क्या गर्भिणी स्त्री की इच्छानुसार उसको खाने की वस्तु देनी चाहिये, यदि न दें तो क्या हानि है?

उत्तर।

अवश्य देनी चाहिये सुश्रुत शारीरस्थान अध्याय ३ व २१, २२, २३ में लिखा है कि दोहदवाली स्त्री को इच्छानुसार वस्तु न मिलने से कुबड़ा, लंगड़ा, पागल, मूर्ख, लघु अन्धा बालक स्त्री के उत्पन्न होता है। और उस वस्तु के

मिल जाने पर पुष्ट, अधिक आयुवाला बालक होता है, जब स्त्री की इच्छानुकूल वस्तु मिल जाती है तो गुणयुक्त सन्तान का जन्म होता है, यदि न मिले तो बालक और गर्भिणी दोनों की हानि का भय है। वरन् यहां तक बताया है कि जिन २ इन्द्रियों के भोग की गर्भिणी को प्राप्ति न हो तो बालक में उन्हीं इन्द्रियों की हानि होती है।

प्रश्न।

यदि स्त्री की इच्छा मांस, मछली खाने और मद्य पीने की हो, तो क्या देना चाहिये?

उत्तर।

जो स्त्री मांस, मद्य नहीं खाती पीती उसका जी उसके खाने पीने को कभी नहीं चल सकता; और जो खाती हो वह भी अपने भावी सन्तान को मनुष्य बनाने की इच्छा से कदापि न खावे। गर्भवती स्त्री के मन में जो २ बुरे २ संकल्प उत्पन्न हों उन को बल पूर्वक रोकने के लिये इस समय दृढ़ अभ्यास करे "नमांसमश्नीयात्" च० सं० शा० अध्याय ४ में गर्भवती को मांस खाने का निषेध है।

प्रश्न।

प्रत्येक अपने पिछले जन्म के लिये हुए कर्म के अनुसार जन्म लेता है। यदि उस के उत्तम संस्कार हैं, तो उत्तम होंगे और बुरे हैं तो बुरे होंगे, फिर संस्कारों से क्या लाभ?

उत्तर ।

प्रारब्ध की सिद्धि के लिये भी पुरुषार्थ की आवश्यकता है । वेद में लिखा है कि सब मनुष्यों को शिक्षा देनी चाहिये और वेद के पढ़ने का सब को अधिकार है । इस लिये हम सब तरह के बच्चों को पाठशाला में प्रवेश कर सकते हैं । जिनको पढ़ाने पर भी विद्या न आवे उनको हम शूद्र कह सकते हैं । हमारे पास और कोई कसौटी ऐसी नहीं है कि जिस से हम बिना पढ़ाये ही यह जान जायँ कि यह विद्या पढ़ने के अयोग्य है । जब सब तरह के लड़के पढ़ाये जाते हैं, सब पर गुरु की शिक्षा का प्रभाव पड़ता है, उस समय पुराने जन्म के खोटे संस्कार रखने वालों पर विद्या का प्रकाश न पड़ता हुआ देखकर हम उसको शूद्र पदके योग्य कहते हैं । ईश्वरीय नियम है कि सूर्य्य सब को प्रकाश पहुंचाता है परन्तु जिनकी देखने की शक्ति में दोष है, वह उस प्रकाश से ठीक लाभ नहीं उठा सकते । इस लिये थोड़े से अन्धों के अर्थ, सूर्य्य सब को प्रकाश देना बन्द नहीं कर सकता । जिससे सिद्ध है कि गर्भ में बच्चों की भलाई के अर्थ माताओं को सदा प्रयत्न करते रहना चाहिये, यदि इस प्रयत्न पर भी बच्चे अयोग्य हों तो उनके कर्मों का फल समझ लेना ।

प्रश्न ।

गर्भिणी के लिये क्या किन्हीं और विशेष बातों के बचाव की आवश्यकता है ?

उत्तर ।

बहुत सी बातें हैं जिनको स्त्रियां आप जानती हैं इनको मौत की खबर नहीं सुनाना चाहिये। न श्मशान में जाने देना, न अकेले छोड़ना, न सांप आदि का चित्र दिखलाना और भयानक परिणामवाले शब्द सुनाने। जैसे घर के जल जाने, किसी प्यारे के परलोक हो जाने की खबर से बचाना चाहिये और सवारी से भी।

❀ जातकर्म ❀

जब प्रसव होने का समय आवे, तो तीन मन्त्रों से जो संस्कार विधि में लिखे हैं, गर्भिणी के शरीर पर जल से मार्जन करे, जब सन्तान का जन्म होवे तब प्रथम स्त्री दायी आदि बालक के शरीर का जरायु पृथक् कर मुख, नासिका, कान, आंख में से मल को शीघ्र दूर कर कोमल वस्त्र से पोंछ शुद्ध कर पिता की गोद में बालक को देव, पिता जहां वायु और शीत का प्रवेश न हो वहां बैठ के एक बालिश्त भर नाड़ी को छोड़ कर ऊपर सूत से बांध कर उस बन्धन के ऊपर से नाड़ी छेदन कर किञ्चित् उष्ण जल से बालक को स्नान करा, शुद्ध वस्त्र से पोंछ नवीन वस्त्र पहिना कर, फिर संस्कार विधि के अनुसार हवनादि क्रिया करे। इस को जातकर्म वा उत्पन्न होने का संस्कार कहते हैं।

प्रश्न ।

इस में घी और शहद बराबर २ न लेकर न्यूनाधिक ले

और एक में मिलाकर सोने की शलाका से तुर्त उत्पन्न हुए बालक की जीभ पर "ओ३म्" लिखने और बच्चे के कान में (वेदोऽसीति) तेरा गुप्त नाम वेद है और पुनः घृत और मधु थोड़ा २ बालक को चटाने से क्या अभिप्राय है? यह सब बातें निरर्थक सी हैं।

उत्तर।

इस का हेतु तो प्रथमभाग में सूक्ष्मता से दिखाया जा चुका है। तथापि प्रकरणानुसार पुनः यहां दिखाया जाता है। मनुष्य जीवन के लिये सब से पुष्टिकारक घृत है और सब से मीठा शहद है और संसारी आवश्यकताओं के लिये सब से आवश्यक सोना है और मनुष्य-जीवन का उद्देश्य ईश्वर तक पहुंचना है, जिस का मुख्य नाम 'ओ३म्' है, जो वेदों को पढ़कर तदनुकूल आचरण करने से प्राप्त हो सकता है। मानों सारे जीवन का कर्त्तव्य बालक को उत्पन्न होने के साथ ही बता दिया जाता है। हम देखते हैं कि हम सब पथिक हैं, नित्य जीवनरूपी पंथ पर चल रहे हैं, परन्तु यदि कोई पूछे कि तुम कहां से आये और कहां जाना है, कितना पथ तै कर चुके हो; तो सब का उत्तर यही होगा कि हम को विदित नहीं है कि हम कहां से आये और कहां जायँगे। यह सत्य है, क्यों कि हम नहीं जानते। देखो पचीस वर्ष तक वह पढ़ा जिस पर पेट का पालन हो, फिर ५५ वर्ष तक यदि पहुंचे तो स्वतन्त्रता खो चाकरी के पश्चात् कुछ दिन पेनशन पाई और मर गये, मरते समय एक बड़ी पापों की गठरी शिरपर धरकर ले गये—

इतना हुआ गुनः से गरांबार आदमी।

एक आदमी को लेके चले चार आदमी ॥

परन्तु हमारे पूर्व पुरुषा पेट के द्वार से निकलते ही बता देते थे कि यदि तुझे बल की आवश्यकता है, तो घी सब से पुष्टिकारक सेवन करना (घी खाये बल होय) पर बलवान् होकर संसारी चीज़ों की प्राप्ति के लिये धन की आवश्यकता है। उस के लिये सोना बढ़िया चीज़ है। जीभ के स्वादु के लिये मधु मीठा है। इनका लाभ करना यह साधारण उपदेश है। इन के भीतर रहस्य यह है कि तू धन पाकर बल प्राप्त करके भी सोने जैसी चमकीली चीजों में न फँस जाना और सब से मधुवत् मीठा ही बोलना और जीभ के स्वाद में न फँसजाना। जो इन्द्रियों के विषयों में फँसजाते हैं वे 'ओ३म्' को प्राप्त नहीं कर सकते; और विना आनन्दमय परमात्मा के सुख स्वप्न में नहीं मिल सकता। द्वितीय मधु (शहद) का गुण सुश्रुत अ० ४५ में लिखा है कि 'मधु' (शहद) शोधन करनेवाला, अर्थात् कफादि को शुद्ध करता और जाठराग्नि को प्रदीप्त करता है, घृत (घी) शरीर के स्रोतों को खोलने वाला और बुद्धि वर्द्धक है।

इतना बतलाना शेष था कि ईश्वर प्राप्ति खेल नहीं है, जिस की प्राप्ति से मोक्ष जैसा सुख जिस की अवधि जो ८ अर्ब ६४ करोड़ को ३६ हज़ार से गुणा करने से प्राप्त हो इतने वर्षों तक होती है, उस की प्राप्ति का उपाय बता दिया। जो अर्थ धन के लोभ और काम में नहीं फँसते वही वेदों को पढ़कर उस की आज्ञा पर चलकर प्राप्त कर सकते हैं। वेद शब्द के अर्थ (विद्-ज्ञाने) (विद्लृ-लाभे) (विद् सत्तायाम्) अर्थात् तेरे में ज्ञान के लाभ करने की शक्ति है, तू सत्य को लाभ कर सकता है सीधी बातें वेदों में बता दी हैं।

प्रथम अवस्था में ब्रह्मचर्य्य धारण कर ऋग्वेद पढ़ ज्ञान प्राप्तकर धर्म को प्राप्त करलो। दूसरी अवस्था में गृहस्थ बन यजुर्वेद को पढ़ कर्मकाण्ड कर अर्थ को और तीसरी अवस्था में वानप्रस्थी बन सामवेद पढ़ उपासना कर कामना को और चौथी अवस्था में संन्यासी बन अथर्ववेद पढ़ विज्ञानी बन मोक्ष को प्राप्त कर सकते हैं। जब गर्भ की दशा में आप प्रभाव पड़ना मानचुकी हैं, तो उत्पन्न होजाने पर प्रभाव पड़ने पर क्यों आक्षेप है। यह तो प्रसिद्ध भी है कि कान में पड़ा प्रभाव अवश्य रखता है।

॥ नामकरण ॥

यह संस्कार जन्म से १० दश दिन छोड़ ग्यारहवें वा १०१ एक सौ एक अथवा दूसरी वर्ष के आरम्भ में जिस दिन जन्म हुआ हो करना चाहिये और बालक का सुन्दर नाम रखना चाहिये *।

---

* साधारण स्थानों में पञ्चांग (पत्रा) न मिलने से नक्षत्र जानने में और व्याकरण न जानने से तिथि, देवता और नक्षत्र और उनके देवता की चतुर्थी विभक्ति बनाने में कठिनाई होती है, इस कारण जहां पर पंचाग न मिले तो:—

मास दमोदर दुग्न कर, तिथि संयुक्त मिलाय।
सत्ताइस से भाग दे, अश्वनि से गिन जाय॥

इस में एक का अन्तर आता है, इस कारण गणित करके एक और जोड़ देते हैं तब ठीक नक्षत्र आजता है। पत्रों में देखो गणित में शून्य होता है पर कुण्डली में उसके स्थान पर एक होता है। दूसरी रीति यह है:—

प्रश्न।

इस संस्कार में तिथि और नक्षत्र और उन के देवतों को क्यों आहुति दी जाती है।

मासभात्तिथि पर्य्यन्तम् यावत्संख्या प्रवर्त्तते।
तावत्संख्याकनक्षत्रं वाचस्पति विचारितम्॥

जिसका दोहा यह है—

गनिये मास नक्षत्र से, वर्त्तमान तिथि यत्र।
जितने पर गनि तिथि मिलै, तितने पर नक्षत्र॥

बहुधा कृष्ण प्रतिपदा से बहुधा शुक्ल प्रपिपदा से हिसाब लगाते हैं, आप चैत्र में चित्रा, वैशाख में विशाखा, ज्येष्ठ में ज्येष्ठा, आषाढ़ में पूर्वाषाढ़, श्रावण में धनिष्ठा, भाद्रपद में उत्तरा भाद्रपद, आश्विन में अश्विनी, कार्त्तिक में कृत्तिका, मार्गशीर्ष में आर्द्रा, पौष में पुष्य, माघ में मघा, फाल्गुण में उत्तरा फाल्गुणी से गणना कीजिये और तिथि व देवता नक्षत्र देवता की चतुर्थ विभक्ति जो नीचे लिखी है उन्हें देखकर आहुति देनी चाहिए।

तिथि।

१ प्रतिपदे, २ द्वितीयायै द्वितीयस्यै, वा तृतीयस्यै ३ तृतीयायै, ४ चतुर्थ्यै, ५ पंचम्यै, ६ षष्ठ्यै, ७ सप्तम्यै, ८ अष्टम्यै, ९ नवम्यै, १० दशम्यै, ११ एकादश्यै, १२ द्वादश्यै, १३ त्रयोदश्यै, १४ चतुर्दश्यै, १५ अमावश्यै,—३० पौर्णमाश्यै।

तिथि देवता।

१ ब्रह्मणे, २ त्वष्ट्रे, ३ विष्णवे, ४ यमाय, ५ सोमाय,

उत्तर ।

सम्भव है कि इस का कोई और गूढ़ आशय हो साधारण तो यह ज्ञात होता है कि संस्कार में सम्मिलित हुये सम्पूर्ण

---

६ कुमाराय, ७ मुनये, ८ वसवे, ९ शिवाय, १० धर्माय, ११ रुद्राय, १२ वायवे, १३ कामाय, १४ अनन्ताय, १५ विश्वेदेवाय, ३० पित्रे ।

नक्षत्र देवता सहित ।

अश्विन्यै+अश्विने, भरण्यै+यमाय, कृत्तिकायै+अग्नये, रोहिण्यै+प्रजापतये, मृगशीर्षायै+सोमाय, आर्द्रायै+रुद्राय, पुनर्वस्वे+अदितये, पुष्याय+बृहस्पतये, आश्लेषायै+सर्पाय, मघायै+पित्रे, पूर्वाफाल्गुण्यै+भगाय, उत्तराफाल्गुण्यै+ अर्यमणे, हस्तायै+सवित्रे, चित्रायै+त्वष्ट्रे, स्वात्यै+वायवे, विशाखायै+इन्द्राग्नै, अनुराधायै+मित्राय, ज्येष्ठायै+इन्द्राय, मूलाय+निर्ऋतये, पूर्वाषाढ़ायै+अपे, उत्तराषाढ़ायै+विश्वेदेवाय, श्रवणाय+विष्णवे, धनिष्ठायै+वसवे, शतभिषजे+वरुणाय, पूर्वाभाद्रपदायै+अजपादाय, उत्तराभाद्रपदाय+अहिर्बुध्न्याय, रेवत्यै+पूष्णे ।

"कृत च नाम कर्मणि कुमारं परीक्षितु मुपक्रामे दायुषः प्रमाण ज्ञान हेतोः" ।

नामकरण करने के पश्चात् बालक की आयु की परीक्षा करे ।

दीर्घज वा कुमार के लक्षण ।

१ बाल बिना उलझे हुये, मृदु, अल्प, स्निग्ध, दृढ़मूल काले
२ त्वचा दृढ़ मोटी ।
३ शिर स्वाभाविक सुडौल, अल्पप्रमाण, गोल ।
४-ललाट बड़ा, दृढ़, एकसा, चिकना, कनपटी की सन्धियाँ

महाशयों को बालक की जन्म तिथि व नक्षत्रादि का ज्ञान हो जावे और प्रत्येक को पूछने और बार २ बताने की आवश्यकता न रहे। अधिक स्पष्ट करने के लिये उन देवतों का भी नाम बता दिया जाता है और नियम होजाने से पूछने वाले जानते ही हैं कि नाम बताया जावेगा सब शान्ति से बैठे रहते हैं और आगे को कोई झगड़ा जन्म सम्बन्धी पड़ने पर वे ही आये हुए साक्षी भी हो जाते हैं।

प्रश्न।

गंगादि नदी नाम पर नाम रखने का क्यों निषेध किया है जब कि भीष्मपितामह की माता का नाम गंगा था?

उत्तर।

इसी लिये कि यह नाम अन्य चीज़ों के भी हैं, इस कारण

से युक्त, चन्द्रमा की आकृति के समान।
५-कर्ण, कानों की पीठ विपुल, और समान नीचे बढ़े हुये, पीछे की ओर झुके, चिकनी लौर के, बड़े छिद्रवाले
६-भौंह कुछ मिली हुई, समान संहत् वृहत्।
७-नेत्र समान, समान दृष्टि से युक्त, व्यक्त, सुविभक्त, बलवान तेजयुक्त।
८-नासिका सीधी, दीर्घस्वास से युक्त, बांसे सहित आगे को कुछ नमी हुई।
९-मुख बड़ा, सीधा, सुनिविष्ट।
१०-जिह्वा लम्बी, चौड़ी, पतली, प्रकृति युक्त।
११-तालु चिकना युक्त, पुष्ट, गरम, रक्तवर्ण। चरक सं० अ० ८ शा० स्था०॥

भ्रम पड़ जाता है, आज सैकड़ों स्त्री पुरुष यही समझे बैठे हैं कि इसी गंगा नदी के पुत्र भीष्म पितामह थे।

प्रश्न।

क्या उत्तम नाम रखने से बालक के जीवन पर कुछ अच्छा प्रभाव पड़ता है?

उत्तर।

बहुत बड़ा प्रभाव पड़ता है, वह अपने जीवन में उस नाम को सार्थक बनने का यत्न करता है, जैसे पुरुष जिस २ महकमें में जिस २ स्थान पर पहुंचता जाता है और डाक मुन्शी, डाक्टर, थानेदार, पेशकार, डिपुटी, मुंसिफ, वकील, वैरिस्टर बनता जाता है, उसी काम के करने की योग्यता अपने में प्राप्त करने का यत्न कर प्राप्त कर लेता है। ऐसे ही नाम को सार्थक करने का यत्न कर "यथानाम तथागुणः" ही हो जाता है। जिन विचारों का नाम ही घसीटा, कढेरा आदि है वे क्या यत्न और पुरुषार्थ कर अपना नाम सार्थक करें*।

❀ निष्क्रमण संस्कार ❀

यह वह संस्कार है जिस को विधिपूर्वक करा के बालक

---

* उत्तम नाम रखने के लिये पुत्र हो तो घोष संज्ञक और अन्तस्थ अर्थात् 'क' से लेकर 'म' पर्यन्त स्पर्श वर्णों के तीसरे चौथे पांचवें वर्ण ग घ ङ-ज झ ञ-ड ढ ण-द ध न-ब भ म और य र ल व अन्तस्थ और ह एक उष्म में से दो अक्षर वा चार अक्षर का नाम रखना चाहिये, कन्या हो तो एक, तीन वा पांच अक्षर का नाम रक्खे, स्पष्ट विधि संस्कार विधि में देखो, पर घसीटा, कढेरा, गैकुआ आदि नाम कभी न रक्खो 'यथा नाम तथा गुणः' नाम का भी बड़ा प्रभाव पड़ता है।

को घर से बाहर जहां वायु स्थान शुद्ध हो वहां भ्रमण कराने के लिये चौथे मास तक अवश्य ही घर से निकालते हैं। इस समय बालक को धमकावे नहीं; अति वायु, अति धूप, बिजली की लड़क-चमक, वृक्ष, लता, शून्यगृह आदि से बालक की रक्षा करे, जिस से बालक का आत्मिक बल और मानसिक बल बलवान् हो। सुश्रुत शा० अ० १० ॥

❀ अन्नप्राशन संस्कार ❀

यह संस्कार तो प्रायः सब के यहां होता है, जो पसनी और मुड़चटना आदि के नामों से प्रचलित है। अन्न रीति तो अवश्य गड़बड़ हो रही है, जब बालक को शक्ति अन्न पचाने योग्य हो जावे तब इस के करने की विधि है, जिसका समय छठे महीने में उत्तम है। सुश्रुत शरीर स्थान अ० १ में लिखा है कि "षण्मासञ्चैवमन्नं प्राशयेे लघुहितं च" अर्थात् इस बालक को छठे मास में अन्न खिलावे जो लघु हलका हो और हितकारी हो "डाक्टरी मत से भी छठे मास में ही अन्न पचाने योग्य लार होती है" पूर्व नहीं।

प्रश्न।

अन्नप्राशन इसका क्यों नाम पड़ा और खीर आदि इस में क्यों खिलाया जाता है?

उत्तर।

इस लिये मनुष्य का स्वाभाविक भोजन (कुदरती गिज़ा) अन्न है और खीर आदि सूक्ष्म और शीघ्र पचने वाले पदार्थ हैं, बच्चे के निगलने में भी सरलता होती है। यह संस्कार

भी अपने नाम से प्रकट हो रहा है, यदि मनुष्य का मांस भोजन होता तो इस संस्कार का नाम मांस प्राशन होता।

❀ चूड़ाकर्म अर्थात् मुण्डन ❀
वा केशछेदन।

यह भी विधि पूर्वक नहीं होता, इस में बड़ा परिवर्त्तन होगया है। यह घर में तो बहुत ही कम होता है। गंगा, यमुना नदियों वा देवी के मन्दिरों वा वसी ताजियों, मीरा मदारों, मिट्टी के चबूतरों पर प्रायः होता हुआ देखने में आता है जो बड़े शोक का स्थान है।

यह एक वर्ष में वा जन्म से तीसरे वर्ष में संस्कार विधि अनुसार करना चाहिये।

प्रश्न।

इस संस्कार का चूड़ाकर्म नाम क्यों रक्खा गया?

उत्तर।

चुड़ संवरणे और चुट् छेदने इन दोनों धातुओं से चूड़ा शब्द सिद्ध होता है संवरण का अर्थ संकुचित अर्थात् स्वल्प है। थोड़े केश रखने के कारण ही इस संस्कार का नाम चूड़ाकर्म संस्कार है।

द्वितीय-चुट् धातु का अर्थ छेदन (काटना) है सो इस संस्कार में केश छेदन किये जाते हैं, इस से भी चूड़ा नाम इस संस्कार का है।

प्रश्न ।

शिखा का अर्थ शिरके सब केश हैं,अतएव शिखा रखनेसे तात्पर्य सब केश रखना है,शिखा और केश शब्द पर्यायवाची हैं अर्थात् शिखा और केशों में कुछ भी भेद नहीं।

उत्तर ।

जहां २ चोटी के अर्थ में शिखा शब्द का प्रयोग है, वहां २ शिखा और केश के अर्थ में भेद है। शिखा से वहां थोड़े ही केश लिये जा सकते हैं अन्यत्र शिखा और केश एकार्थक हैं।

प्रश्न ।

इस में कोई प्रमाण है?

उत्तर ।

हां है, केशान शीर्षन् यशसे श्रियै शिखा सिंहस्य लोमत्विषिरिन्द्रियाणि य० अ० १६। मं० ६२॥

उक्त मन्त्र में वर्णन है कि "केशों के समान शिखा है" यदि केश और शिखा सर्वांग में एक मान लिये जांय तो दोनों में उपमान और उपमेय भाव न घट सके, जो कि मन्त्र के "शीर्षन् केशान शिखा" इन पदों में विद्यमान है। यदि केश और शिखा दोनों एकार्थक ही होते तो वेद मन्त्र में 'केश' और 'शिखा' का अलग २ पाठ और शिखा के लिये 'न' यह उपमानार्थक पद न होता। व्याकरण के आचार्य्य महर्षि पाणिनि जी भी शिखा और केश में भेद मानते हैं यथा 'शेते सौ शिखा' 'शीङो ह्रस्वश्च' शीङ धातु का अर्थ स्वप्न सोना है, उणादि कोषे-पाद ५। सू० २४॥ 'क्लिश्यति येन स केशः'

क्लिश उपतापे धातु है क्लिशे-रन्नलोपश्च उ० पा० ५। सू० २३॥ शिर के केश जब शिरमें बढ़कर पतनदशा को प्राप्त होते हैं तो उन का शिखा नाम होता है अर्थात् शिर पर इतने स्वल्प केश रक्खे जावें जितने से शिर को हानि न पहुँचें और शिर भारी न हो, और जिनके शिर में रखने से क्लेश मिले वे केश कहाते हैं।

प्रश्न।

क्या शिखा वैदिक चिन्ह है, और उस के रखने की आज्ञा भी कहीं वेद में है वा नहीं?

उत्तर।

य० अ० १६। मं० ६२ में लिखा है कि 'यश से श्रियै शिखा' अर्थ यह है कि 'ईश्वर के समीप स्थित होने में जिस के शिखा आदि चिन्ह हैं वह 'यश' और 'श्री' की प्राप्ति के लिये समर्थ होता है'। शिखा ब्रह्मचर्य्य, गृहस्थ, और वानप्रस्थाश्रम का चिन्ह है, संन्यासाश्रम में यज्ञोपवीत के साथ शिखा त्याग की आज्ञा है। य० अ० १६। मं० ५६ में 'विशिखासः' इस पर श्री स्वामीकृत अर्थ यह है कि 'विगतशिखाः संन्यासिनः' अर्थात् शिखारहित संन्यासी लोग। 'वेदः शिखा' तै० प्र० १०। अ० ६४॥ इस पर महर्षिकृत अर्थ यह है कि वेद और उन का शब्दार्थ सम्बन्ध जानकर आचरण करना है, वह संन्यासी की (शिखा) चोटी है; देखो संस्कार विधि संन्यास प्रकरण।

य० अ० १६। मं० १७ में 'व्युप्त केशाय' पद है, जिस की व्युत्पत्ति स्वामी जी कृत यह है कि 'विशेष तयोप्त श्छेदिताः केशा येन तस्मै संन्यासिने' यहां भी शिखा त्याग संन्यासाश्रम में है।

य० अ० १७। मं० ४८॥ में 'कुमारा विशिखा इव' यहां ऋषि ने 'विगत शिखा वा' ऐसा अर्थ किया है अर्थात् चूड़ा न होने तक कुमार (बालक) शिखा रहित है और चूड़ा कर्म किये पश्चात् शिखा वाला हो जाता है। ऐसे ही ऋग्वेद मं० ६ सू० ७५। मं० १७ में (कुमाराः) कृत चूड़ाकर्मणः (विशिखा इव) शिखा रहिता इव शिखारहित के समान अर्थात् जिस का चूड़ाकर्म है, वह जैसे चूड़ाकर्म होजाने से विन्शिखा इव (शिखा रहित इव) शिखा (केश) रहित होजाता है, उसके समान यहां शिखा शब्द को ऋषि ने केशार्थ में लिया है और 'कृतचूड़ा कर्मणः' यह जो मन्त्रोक्त 'कुमाराः' पद का अर्थ किया है उससे चूड़ा (चोटी) रखना सिद्ध है।

प्रश्न।

शिखा शिर के किस भाग में रखनी चाहिये और वह कितनी लम्बी चौड़ी?

उत्तर।

शिर के मध्य (बीच) भाग में। यथा—

शिरो मध्यस्थ केशः। तत्पर्यायः चूड़ा केशपाशी॥

शब्द कल्पद्रुमे।

लम्बाई, चौड़ाई उतनी ही युक्ति युक्त है, जितने से शिर में भार न हो और बुद्धि की हानि न हो। अथवा शिर के किसी ओर रक्खी जाय, यह ऋषि की आज्ञा है। देखो संस्कार विधि चूड़ाकर्म संस्कार।

प्रश्न।

सत्यार्थप्रकाश के दशम समुल्लास में 'केशान्तः षोड़शेवर्षे

इस मनुस्मृति के श्लोक का अर्थ करते हुए इसकी व्याख्या में महर्षि ने लिखा है कि "जो अति उष्ण देश हो तो सब शिखा सहित छेदन करा देना चाहिए, क्योंकि शिर में बाल रहने से उष्णता अधिक होती है और उससे बुद्धि कम होजाती है" इस से महर्षि का अभिप्राय यही ज्ञात होता है कि शिखा रखना अत्यावश्यक (लाज़मी) नहीं किन्तु इच्छानुसार (अख्यारी) है।

उत्तर ।

अत्युष्ण देश में बुद्धि के निर्बल होने की दशा में शिखा का रखना इच्छा पर रक्खा गया है, परन्तु आरोग्य दशा में नहीं; उस समय तो अत्युष्ण देश में भी रखने की आज्ञा है। 'न भारं शिरसा वहेत्' सु० अ० २४। चि० स्था० शिर से बोझा न लेचलें क्योंकि शिर में भार (बोझे) से अधिक गर्मी उत्पन्न होकर वह विचारशक्ति को निर्बल कर देती है। इससे यह पाया जाता है कि जहां भार आदि से शिर को हानि पहुँचती हो तो शिखा सहित केश निकाल देना चाहिए, परन्तु आरोग्य दशा में नहीं। वेद में केशों के रखने और न रखने के विषय में तीन पक्ष पाये जाते हैं, एक विशिखा सः, शिखावर्ज्जं मुण्डित, दूसरा कपर्दी (जटिल) तीसरा व्युप्त केश (संन्यासाश्रम में शिखासहित मुण्डन) उक्त तीनहीं पक्ष स्मृति में भी है।

मुण्डो वा जटिलो वा स्यादथवा स्याच्छिखाजटः

मनु० अ० २। श्लोक २१६॥

मुण्डित, जटिल, अथवा शिखावाला, इन तीन प्रकार में

से ब्रह्मचारी कोई प्रकार रक्खे। मुण्डित पक्ष अत्युष्ण देश में रोगादि की आवश्यकता पर, जटिल पक्ष अति शीत देश के लिए और जहां न केवल अति उष्ण हो और न अति शीत हो वहां के लिये मुण्डित, जटिल, शिखाजट तीनों पक्ष घटित हो सके हैं। प्राचीनकाल में ऐसाही प्रचार भी था। यथाः—

इह मुण्डोभव जटिलोभव शिखीभव यल्लिंगो यत्रोच्यते तल्लिंग स्तत्रोपतिष्ठते ॥ महाभाष्ये॥

महर्षि के लेख की पुष्टि जो कि अत्युष्ण देश में शिखा सहित केश निकालने की है महर्षि मनु के 'केशान्तः' पद से होती है, क्योंकि केशान्त पद का अर्थ यही है कि जिस संस्कार में केशों का अन्त हो अर्थात् सब केश डाढ़ी मूछादि निकाले जायँ। परन्तु मनुजी ने ही 'चूड़ा कार्या द्विजीतीनाम्' और 'अथवा स्याच्छिखा जटः' लिखा है अतः चूड़ा को बचाके शेष केश निकाले जायँ,यह मनुजी का तात्पर्य निकलता है। परन्तु-

वातादयः प्रकुप्यन्ति शिरस्यसृं प्रदुष्यति।
ततः शिरसि ज यन्ते रोगाविविध लक्षणाः॥

च० सं० अ० १२॥

अर्थात् शिर में वात, पित्त और कफ के कुपित होने पर रक्त (खून) बिगड़ जाता है, उसके दूषित होने से शिर में अनेक प्रकार के रोग उत्पन्न होजाते हैं। ऐसी दशा में महर्षि स्वामी जी की आज्ञा है कि शिखा सहित सब केश निकाल देना चाहिये। शिर विचार का केन्द्र स्थान है, इसको सब बाधाओं से बचाना आवश्यक है। परन्तु आरोग्य दशा में पूर्वाश्रमों का चिन्ह रहने से शिखा रखना वैदिक पक्ष है।

प्रश्न ।

जब शिखा वैदिक चिन्ह है तो संन्यास में क्यों त्याग की जाती है ?

उत्तर ।

ब्रह्मचर्य्य, गृहस्थ और वानप्रस्थ इन तीन आश्रमों के धर्म्म पालन करने के लिये यह चिन्ह है । क्योंकि—

यश से श्रियै शिखा" य० अ० १६, मं० ९२ ॥

अर्थात् शिखा यश (कीर्ति) के लिये है, संसार में किर्ति तभी होसकती है कि जब मनुष्य उपकार और प्रत्युपकार करे, वा केवल निष्काम भाव से कर्म करे । ब्रह्मचर्य में मनुष्य दूसरे से विद्या ग्रहण करता है, गृहस्थ में उस का अनुभव करता है, वानप्रस्थ में पुनर्विचार करता है, इन तीन आश्रमों में रहते हुये मनुष्य को संसार के साथ सम्बन्ध रख कर ही यश और श्री (ऐश्वर्य्य) और ईश्वर रचना, का ज्ञान और विज्ञान प्राप्त करना होता है । परन्तु संन्यास में संसार के साथ स्वार्थिक सम्बन्ध नहीं रहता, क्योंकि वह त्याग का आश्रम है । इस चिन्ह को धारण करके जिन कामों के करने की आज्ञा है वह तीन आश्रम में समाप्त होजाते हैं, अतः संन्यास में शिखा की आवश्यकता नहीं रहती*

---

*जिस प्रकार ब्रह्मचर्य्याश्रम में ब्रह्मचारी वेदों को समाप्त कर जब गुरुकुल से गृह को आता है उस समय उस का मौंजी चिन्ह निकलवा दिया जाता है । उद्देश पूर्ण कर लेने से इसी प्रकार तीनों आश्रमों के कर्तव्य समाप्त कर लेने पर शिखा सूत्र का उद्देश पूर्ण होजाता है, फिर आवश्यकता संन्यास में नहीं रहती ।

द्वितीय प्रयोजन शिखा रखने से यह है कि शिर में एक छिद्र है जिस का नाम ब्रह्मरन्ध्र है, वही स्थान इड़ा, पिंगला और सुषुम्णा नाड़ी का है और शिखा का भी है, सन्ध्योपासन में प्राणायाम करते समय मन को रोकने के लिये इड़ा, पिंगला, सुषुम्णा नाड़ीस्थ शिखा साधन है और संसार में आस्तिकपने का बाहरी चिन्ह है कि, यह मनुष्य आस्तिक समाज का है अर्थात् इस का सम्बन्ध आस्तिक समाज से है और यह आश्रमों के धर्म का पालन और परोपकार करने वाला है।

प्रश्न।

जो शिखा रखले और ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ के धर्मों का आचरण न करे तो शिखा सार्थक है वा नहीं?

उत्तर।

कदापि नहीं, क्यों कि 'न लिंगंधर्म कारणम्' मनु० अ० ६ श्लो० ६६। केवल शिखादि चिन्ह धर्म के कारण नहीं होते किन्तु चिन्ह धर्माचरण के लिये रक्खे जाते हैं, परन्तु जो धर्माचरण नहीं करता उस का शिखादि चिन्ह धारण करना निष्फल है। ऐसे को शिखादि वैदिक चिन्ह धारण करने का अधिकार नहीं है, क्योंकि ऐसा मनुष्य संसार को हानि पहुँचावेगा, धोखा देगा।

प्रश्न।

इस संस्कार में चार शरावों में तिल, उर्द, जौ, चांवल भर कर रखने का क्या अभिप्राय है?

उत्तर ।

बालों का चार प्रकार का रंग बदलता है, प्रथम तिल जैसे भूरे होते हैं, फिर उर्द से काले हो जाते हैं, फिर जौ की भांति अन्त में श्वेत होकर फिर चांवल की तरह बिलकुल सफ़ेद हो जाते हैं, जिससे यह प्रयोजन है कि बालक के बाल चांवल जैसी अवस्था को प्राप्त करें ।

प्रश्न ।

मुण्डन समय छुरे की ओर देखकर मन्त्र क्यों पढ़े जाते हैं, इस में यह शंका भी होती है कि जब मूर्तिपूजा का निषेध करते हैं तो स्वयं छुरा से क्यों प्रार्थना करते हैं कि "मा माहिꣳ सीः" अर्थात् बालक की हिंसा न करिये, इसका मुख्य अभिप्राय क्या है ?

उत्तर ।

माताओ ! यह व्यर्थ शंकायें संस्कृत विद्या के न जानने से होती हैं । यदि संस्कृत विद्या को जानती होतीं तो इस प्रकार की शंका न करतीं । देखो संस्कार के समय वेद मन्त्र पढ़ने का मुख्य अभिप्राय यह है कि इन मन्त्रों में संस्कार के गुण वा करने की रीति का वर्णन है, जो उस समय पढ़ने से उसका बोध होता है (मा माहिꣳ सीः) से छुरे की प्रार्थना करना नहीं सिद्ध होता है और न छुरे से कोई प्रार्थना करता है, परन्तु इसका मुख्य अभिप्राय यह है कि बालक का पिता मुण्डन के समय नापित से यह कथन करे कि छुरे को तेज़ कर इस प्रकार केशों का छेदन कर जिससे बालक को पीड़ा न पहुँचे । ऐसा कोई ही मूर्ख होगा जो यह न समझता हो

कि छुरा जड़ होने से बालक की रक्षा नहीं कर सकता, उस समय तो नापित ही उसकी रक्षा का करने वाला है। बालक को बाल बनवाने का अभ्यास नहीं, यदि नापित की किञ्चित् भी असावधानी होजाय तो बालक की हिंसा अर्थात् उसको दुःख प्राप्त हो सकता है। इस कारण उस समय नापित से यह कथन है, छुरा से नहीं।

ॐ कर्णवेध ॐ

इस संस्कार में तो बहुतों को कर्णवेध पर ही आक्षेप है, पर संस्कार विधि में लिखा होने से प्रायः होता है। 'नासिका वेध' भी इस संस्कार के अन्तर्गत संस्कार विधि में लिखा हुआ है जो न जाने कैसे लिखा गया है। यह तो न संस्कार की ऊपर लिखी सूचना से विदित होता है और उस प्रमाण से जो आश्वलायन गृह्यसूत्र की सूचना से लिखा है। मैं अपनी सम्मति इस संस्कार के विषय में कुछ नहीं देसकता, परन्तु एक बार स्वामी नित्यानन्द जी के लेक्चर में स्थान बरेली में मैंने सुना है कि आपने जयपुर का सम्पूर्ण पुस्तकालय देखा, पर नासिकावेध का पता नहीं लगा। इस कारण भी और अपनी बुद्धि अनुसार नासिकावेध का मैं भी नथ पहिनने के कारण सर्वथा विरोधी हूं, इस से शोभा भी घटती है, इस लिये पुरुष और स्त्री किसी को न करना चाहिये *

---

* यदि वैदिक शास्त्रानुसार नाक कान छिदाना ठीक भी हो तो भी उन में नथ बाले आदि पहिनना कदापि ठीक नहीं।

प्रश्न ।

कर्णवेध संस्कार से क्या लाभ है ?

उत्तर ।

'रक्षा भूषण निमित्तौ बालस्य कर्णौ विध्येते'

सुश्रुते सूत्रस्थाने अ० १६ ॥

अर्थ यह है कि रक्षा (शरीर की आरोग्यतार्थ) और आभूषण धारणार्थ बालक के कान छेदे जाते हैं ।

'काले चानवसेचनात्' च० सं० अ० २४ ।

सूत्र स्था० ॥

अर्थ-समय पर फस्त न खुलवाने से रक्त दूषित हो जाता है । कान छेदने में प्रथम तो अतिस्वल्प रक्त आता है, यदि पूर्व सिद्ध छिद्र में वेध हुवा हो । कदाचित् उस स्थान में वेध न हुवा हो किन्तु अन्य स्थान में हुवा हो तो अधिक रक्त निकलता है, ठीक वेध का यही चिन्ह है कि रक्त नहीं निकले, परन्तु यदि ठीक स्थान में छिद्र करने पर भी रक्त निकले तो निकाल देना ही औषध है । रक्त निकले तो आरोग्यता समझनी चाहिये, मिथ्या आहार विहार से शरीर का रक्त बिगड़ जाता है, जिससे कर्णपाली में घोर रोग उत्पन्न हो जाते हैं ।

पाल्यामया ह्यमी घोरा, नरस्याप्रतिकारिणः । मिथ्याहार विहारस्य, पालिंहिंस्युरपेक्षिताः ॥ १ ॥

तस्मादास्वभिषिक्तेषु, स्नेहादि क्रममाचरेत् । तथाभ्यंग परीषेक, प्रदेहाऽसृग्विमोक्षणम् ॥ ३ ॥

सुश्रुते । चिकित्साथाने अ० २५ ॥

यहां कान की गादी की रक्षार्थ कहा गया है कि जब छेदन होजावे तो अभ्यङ्ग, परीषेक, प्रदेह (लेप) और असृग् विमोक्षण अर्थात् रक्त निकाल देना, इन में से कोई औषध करे। इससे से सिद्ध है कि कर्णवेद संस्कार शरीर रक्षार्थ और कान की गादी के खास रोगों की शान्त्यर्थ है। जैसे नेत्रों के ९६ रोग कहे गये हैं वैसे कर्णपाली के उत्पन्न होने वाले रोगों की निवृत्यर्थ यह कर्णवेध है।

प्रश्न।

उक्त संस्कार के करने का समय कौन है?

उत्तर।

"षष्ठे मासि सप्तमे वा शुक्लपक्षे०।

सुश्रुते सूत्रस्था० १६॥

अर्थात् छठे अथवा सातवें मास शुक्ल पक्ष में कर्णवेध करना चाहिये, यह धन्वन्तरि मुनि का मत है और तीसरे वा पांचवें वर्ष में करने के लिये सूत्रकार की आज्ञा है।

प्रश्न।

कर्णवेध बालक और कन्या दोनों का चाहिये वा किसी एक का?

उत्तर।

"भिषग् वाम हस्तेनाऽऽकृष्य कर्णं दैवकृतछिद्रे आदित्य करावभासिते शनैःशनैर्दक्षिण हस्तेन ऋजुविध्येत् प्रतनकं सूच्या वहल मारया पूर्वं दक्षिणं कुमारस्य वामं कन्यायाः स्ततपिचुवर्तिं प्रवेश्य सम्यक् विद्धं माम तैलेन परिषेचयेत् शोणितवहुत्वेन वेदनया चान्यदेशविद्धमिति जानीयान्नि रूपद्रवतया तद्देशमिति ॥

सु० सूत्रस्था० अध्याय० १६ ॥

(अर्थ) वैद्य कान की गादी को बायें हाथ से खींच के (जो कान की गादी का छिद्र सूर्य की किरणों के पास लेजा कर देखने से प्रकाशित होता है जो छेदन से प्रथम ही रहता है) दहिने हांथ से उस में धीरे २ मोटी सुई से वेध करे, वेध में प्रथम बालक का दक्षिण कान और कन्या का वाम (बांया) कान वेध करे जब अच्छे प्रकार वेध होजावे तो रुई की सूक्ष्म वत्ती उन छिद्रों में रक्खे और फिर कच्चे तिल के तैल से छिद्रों को सींचे। यदि रक्त बहुत निकले अथवा कान में पीड़ा हो तो जानना चाहिये कि वेध ठीक नहीं हुवा है और यदि उक्त दोनों दोष वेधने के पीछे न हों तो वेध ठीक हुआ समझना चाहिये।

इस सुश्रुत के उक्त प्रमाण से सिद्ध है कि कन्या और बालक दोनों का कर्णवेध होता है।

प्रश्न।

अच्छा तो नासिका वेध में क्या कोई प्रमाण है?

उत्तर।

"कान और नासिका के अर्श को छेदन करे" ऐसा वाग्भट जो वैद्यक ग्रन्थ है उस के सूत्र स्थान में लिखा है। और—

पाणिभ्यां मथ्यमानेन, घ्राणात्तेन हरेदसृक्।

अष्टांग हृदय, सूत्र स्था० श्लो० २४॥

अर्थात् वैद्य हाथों से मथ्यमान उस खजशस्त्र से नाक से रक्त निकाले।

रक्तमोक्षण के पश्चात् उपचार।

नात्युष्णशीतं लघुदीपनीयं रक्तेपनीते हितमन्न पानम्। तदा शरीरं ह्यनवस्थितासृगऽग्नि र्विशेषेण च रक्षितव्यः॥

च० सं० अ० २४। सूत्र स्था०॥

फस्त खोलने के पीछे न अत्यन्त उष्ण और न अत्यन्त शीतल हल्का अग्नि संदीपन अन्न पान हितकारी होता है। कारण यह है कि रक्त मोक्षण के पीछे शरीर में रक्त चंचल होजाता है। इस समय जाठराग्नि की रक्षा करना आवश्यक है।

व्याकरण के आचार्य महर्षि पाणिनि जी छिद्र शब्द का अर्थ कर्णभेद करते हैं, 'छिद्र' कर्णभेदने, यह धातु चुरा-

दिगण में है, लोक में कर्णवेध को छेदन भी कहते हैं। छिद्र शब्द का कर्णवेद अर्थ होने से यह संस्कार आर्यों के यहां प्राचीन काल से वेदोक्त मर्यादा को पुष्ट करता है।

शुद्ध रक्त के लक्षण।

तपनीयेन्द्र गोपाभं पद्मालक्तक सन्निभम्।
गुञ्जाफल सवर्णञ्च विशुद्धं विद्धिशोणितम्॥

चं० सं० अ० २४। सूत्रस्थाने॥

वर्षारम्भ में जो लाल रंग का छोटा कीट (जिसको लोक में इन्द्र की बुढ़िया कहते हैं) के सदृश वा लाल कमल के समान, वा गुंजा (घुंघचिल) के समान, जिस का रक्त हो वह शुद्ध रक्त होता है।

सुवर्ण के लक्षण।

वचाघृत सुवर्णञ्च विल्वचूर्णमितित्रयम्।
मेध्य मायुष्य मारोग्य पुष्टि सौभाग्य वर्द्धनम्॥

सुश्रुते।

वच, घी, सोना, विल्वचूर्ण तीनों बुद्धि वर्द्धक, आयुवर्द्धक आरोग्य कारक और पुष्टि तथा सौभाग्य के बढ़ाने वाले हैं। कर्ण छिद्रों में सोने की शलाका रक्खी जाती है, इसका कारण यह प्रतीत होता है कि सुवर्ण आयु आदि का बढ़ानेवाला है, अतः धारण किया जाता है।

संयोज्यो नीलिकाव्यंग केश शातन कुट्टनैः ॥
अर्द्धांगुले मुखैर्वृत्ते रष्टाभिः कराटकैः खजः ॥२३

आधा अंगुल प्रमाण मुखवाले और गोल कराटकों करके खज शस्त्र बनता है ॥ २३ ॥

पाणिभ्यां मथ्यमानेन घ्राणात्तेन हरेदसृक् ।
व्यधने कर्णपालीनां यूथिकामुकुलाऽऽनना ॥२४

हाथों से मथ्यमान उस से नासिका से रक्त निकाले और फूलती हुई कली के समान मुखवाला यूथिका शस्त्र बनाना, यह कान की पालियों के वेधने में युक्त किया जाता है ।

कर्ण पालीञ्च बहुलां बहुलायाश्च शस्यते ।
सूची त्रिभाग सुषिरा त्र्यंगुला कर्ण वेधनी ॥

अर्थात् बहुल रूप कर्णपाली को आरा नाम शस्त्र से बींधे अति मांसवाली कर्णपाली को तीसरे भाग में छिद्रवाली और तीन अंगुल की लम्बाई से युक्त कर्णवेधनी सूची (सुई) से बींधे ।

वाग्भटे सूत्रस्थाने श्लो० २३ । २४ । २६ ॥

कर्णवेध का समय वाग्भट मतसे ।

षट् सप्तमाष्ट मासेषु नीरुजस्य शुभे हनि ॥२६

छठे, सातवें वा आठवें मास में आरोग्य शरीर वाले बालक का कर्ण वेध शुभ दिन में करे ॥ २६ ॥

कर्णौहिमागमेविध्येद् धात्र्यंक स्थस्य सान्त्वयन् ।
प्रागद्दक्षिणे कुमारस्य, भिषगवामंतुयोषितः ॥३०

उपमाता के गोद में स्थित बालक को वैद्य शान्त करता हुआ शीतऋतु में कुमार के दक्षिण कान को प्रथम वींधे और कन्या के वायें कान को प्रथम पश्चात् दक्षिण कान को वींधे ॥ ३० ॥

दक्षिणेन दधत् सूचीं पालिमन्येन पाणिना ।
मध्यतः कर्णपाठस्य किञ्चिद् गण्डाश्रयंप्रति ॥३१

वैद्य दहिने हाथ से सूची (सुई) को लेवे और वायें हाथ से कान को गादी को पकड़े, कान के (पीठ) पिछले भाग के वीच में कुछ गण्डाश्रय के प्रति ॥ ३१ ॥

जरायुमात्र प्रच्छन्ने रविरश्म्यवभासिते ।
धृतस्य निश्चलंसम्यगलक्तकर सांकिते ॥ ३२

विध्येद् दैवकृतेछिद्रे, सकृदेवर्जुलाघवात् ।
नोर्ध्वं नपार्श्वतोनाधः, शिरास्तत्राहि संश्रिताः ॥३३

वैद्य दैवकृत (पूर्व से हुए) कान के छेद में एक वार में ही सीधा हलकापन से वेध करे किन्तु ऊपर बाजू और नीचे वेध न करे क्योंकि वहां शिरा (रगें) हैं ॥ ३३ ॥

वेध के पश्चात का काम ।

स्नेहाक्तं सूच्यनुस्यूतं, सूत्रंचानु निधापयेत् ।
आमे तैलेन सिञ्चेच्च बहलां तद्ददारया ॥ ३६

तैल में डुबाया हुआ सुई से युक्त सूत (डोरा) कान के छेदों मे रक्खे और कच्चे तैल से तीन दिन सींचे और धीरे धीरे बढ़ावे ।

विध्येत् पालीहितभुजः संचार्य्याथ स्थवीयसी ।
वर्तिस्त्र्यहात् ततोरूढं वर्द्धयेत्शनैःशनैः ॥ ५

वाग्भटे, उत्तर स्थाने श्लो० ॥ ३७ ॥

वैद्य मोटी आरा नामक सुई से हित भोजन करने वाले की कर्णपाली को बींधे और वेधन के पश्चात् छिद्रों में बत्ती (मोटी कुछ) रक्खे, तीन दिन पश्चात् उन बत्तियों को चलादे और फिर धीरे २ बढ़ाता रहे ॥ ३७ ॥

❀ उपनयन संस्कार ❀

यह संस्कार द्विज होने का चिन्ह है आज तो बहुत से अपने को क्षत्रिय, वैश्य कहते हुये भी यज्ञोपवीत से शून्य हैं, उनके कर्म इतने अधोगति को प्राप्त होगये हैं कि उस के कारण वह समझाने से भी नहीं धारण करते । प्रथम ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य के पुत्रों का यथा संख्या ८—११—१२ वर्ष में होजाता था, यदि किसी कारण न हुआ तो १६, २२, २४ से

तो ऊपर जाही नहीं सक्ता था। इसके पश्चात् यह पतित होकर शूद्रों में सम्मिलित हो जाते थे। जिसको शीघ्र विद्यावल व्यवहार की इच्छा तो ब्राह्मण के लड़के पांचवें वर्ष, क्षत्रिय के बालक का छठवें वर्ष, वैश्य के बालक का आठवें वर्ष में मनुस्मृतिके अनुसार भी हो सकता है। शेषविधि संस्कार विधि में जान लेना। इस संस्कार व आगामी वेदारम्भ का बहुत सा अभिप्राय पत्रव्यवहार सम्बन्धी लेख में भी आगया है।

प्रश्न।

बटुक की दक्षिणहस्ताञ्जुलि शुद्धोदक से भराकर आचार्य्य अपनी भरी हुई अञ्जुलिका जल बालक की अञ्जुलि में छोड़ के फिर नीचे पात्र में क्यों छुड़ाया जाता है?

उत्तर।

जिस प्रकार जल शान्त है और गुरुशिष्य के हाथ का मिलकर एक होजाता है, इसी प्रकार दोनों के मन शान्त और एक होकर रहें और आज जैसे '...... ...अंध बधिर को एकै लेखा-एक न सुने एक ना देखा' न रहें।

प्रश्न।

क्या स्त्रियों का भी यज्ञोपवीत होना चाहिये?

उत्तर।

अवश्य, इसके विषय में युक्ति और प्रमाण प्रथम भाग में लिखे हैं वहीं से देखलेना।

❀ वेदारम्भ संस्कार ❀

वेदारम्भ उस को कहते हैं जो गायत्री से लेकर साङ्गोपाङ्ग चारों वेदों के पढ़ने के नियम के लिये धारण किया जाता है। यह यज्ञोपवीत के दिन वा उस से दूसरे दिन होना चाहिये। यदि कोई विशेष कारण हो तो साल भीतर किसी दिन करें।

❀ समावर्त्तन संस्कार ❀

समावर्त्तन संस्कार उसको कहते हैं जो ब्रह्मचर्य्य व्रत पूर्णकर वेद विद्या उत्तम शिक्षा और पदार्थ विज्ञान को उत्तम रीति से प्राप्तकर विवाह विधानपूर्वक गृहस्थाश्रम को ग्रहण करने के लिये विद्यालय गुरुकुल छोड़कर घर की ओर आना है*।

❀ विवाह संस्कार ❀

विवाह उसको कहते हैं कि जो 'धी' अर्थात् विद्यावल को

---

*ब्रह्मचारी पूर्णतप को करके घर आता है, इस लिये उस के जटा जूट साफ़ कराके कई घड़ों से स्नान कराया और सुगन्धित तैलादि का मर्दन कराया जाता है। वस्त्र, उपवस्त्र, सुगन्धित माला, पगड़ी, टोपी, मुकुट, अञ्जन, दर्पण, छाता जो ब्रह्मचारी को वर्जित थे उन के सेवन की आज्ञा दीजाती है, पश्चात् ब्रह्मचारी घर आता और माता, पिता बड़े आदर सत्कार से गृहपर लाते हैं और साथ आये हुए गुरु का बड़ा सत्कार कर यथाशक्ति दान देकर विदा करते हैं।

प्राप्तकर 'श्री' अर्थात् धनादि रक्षा का यथोचित प्रबन्ध कर सब प्रकार से शुभ गुण, कर्म, स्वभावों में तुल्य स्त्री पुरुषों का परस्पर प्रतिज्ञायें करके उत्तम कर्म करने के लिये सम्बन्ध होता है ।*।

प्रश्न ।

विवाह में जो तैल लगाने की रीति है, वह कैसी है और उसमें क्या कर्त्तव्य है ?

उत्तर ।

ब्रह्मचर्य्य की समाप्ति पर विवाह होता है, ब्रह्मचर्य्यावस्था में तैल उवटन लगाने का निषेध रहता है, अब गृहस्थाश्रम में प्रवेश होने के लिये शरीर को स्वरूपवान् और शरीर के अंगों को कोमल और पुष्ट बनाने के अर्थ तैल के मलने और उवटन लगाने की आवश्यकता है। इस लिये विवाह से प्रथम पूर्वजों को तैल लगाते हुए देखकर इन्हों ने एक रीति समझली और वह दस पांच दिन पहिले से लगाए जाने पर भी अपना टका सीधा करने को स्वयं भी उसमें सम्मिलित हो पूजा कराने लगे। आप इसको जारी रक्खें और कम से कम विवाह से प्रथम एक मास तक दोनों वर कन्या के नित्यप्रति तैल उवटन

*बहुत सी विवाह सम्बन्धी बातें पत्रों में आगई हैं वहां से देख लेना, अब दो तीन मुख्य प्रश्नों का उत्तर दिया जावेगा आगे के संस्कारों का केवल लक्षण मात्र ही लिखा जावेगा, इस लिये कि वानप्रस्थादि संस्कारों को अभी आप बहुत काल तक नहीं कर सकेंगी और अभी आप उस ओर ध्यान भी अधिक न दें।

लगाकर स्नान करावें। यदि एक दिन ही इस कार्य्य के अर्थ नियत होने की आवश्यकता समझो तो वह दिन विवाह से प्रथम एक मास अथवा पन्द्रह दिन प्रथम नियत कराकर, हवनादि वेदगान कर आनन्द मनाइये।

प्रश्न।

मण्डप की रीति क्या है और वर के यहां छोटा सा क्यों होता है? कहीं कहीं तो एक बांस ही गाड़कर मण्डप बना दिया जाता है, कन्या के यहां बड़ा बनाकर छाया जाता है, इसका क्या कारण है और यह होना चाहिये वा नहीं?

उत्तर।

अवश्य होना चाहिये, मण्डप; धूप, पानी, ओस से बचाव के लिये बनाया जाता है। कन्या के यहां बराती उसके सम्बन्धी अधिक एकत्रित होते हैं, इस लिये बड़ा बनाया जाता है। वर के यहां थोड़े से उसके नातेदार ही आते हैं, वह भी वरयात्रा में चले जाते हैं, इस लिये यह थोड़े समय के लिये छोटा बना लिया जाता है। जो बांस ऊंचा सा गाड़ा जाता है; वह एक (निशान) चिन्हार्थ व सूचनार्थ भी होता है कि अमुक के यहां विवाह है। मण्डप वास्तव में एक थोड़े समय के लिये (गृह) बना लिया जाता है। वर की अपेक्षा कन्या के यहां इस कारण भी बड़ा बनाया जाता है कि विवाह के समय यज्ञादि भी वहीं होता है और अधिक जनउपस्थिति विवाह के देखने के लिये होती है। आज इन साधारण बातों में भी पुरोहित जी महाराज अपना टका सीधा करते हैं। हम हर काम में आपको ईश्वरस्तुति, प्रार्थना और हवनादि करने और वेदमंत्र सभ्य भजन गाने की सम्मति देते हैं।

❀ वानप्रस्थ संस्कार ❀

वानप्रस्थ उसको कहते हैं जो विवाह से सन्तानोत्पन्न करके पूर्ण ब्रह्मचर्य्य से पुत्र भी विवाह करे और पुत्र के भी एक सन्तान हो जाय अर्थात् जब पुत्र का भी पुत्र हो जावे तब पुरुष वानप्रस्थाश्रम अर्थात् वन में जाकर उपासना करे। कहा भी है—

गृहस्थस्तु यथापश्येद् वलीपालितमात्मनः।
अपत्यस्यैव चापत्यं तदारण्यं समाश्रयेत्॥

मनु० अ० ६। श्लो० २॥

गृहस्थ लोग जब अपने शरीर की त्वचा को ढीला और श्वेत केश होते हुये देखें और पुत्र का भी पुत्र होजाय तब वन का आश्रम लेवें।

❀ संन्यास संस्कार ❀

संन्यास संस्कार उसको कहते हैं कि जो मोहादि आवरण पक्षपात छोड़के विरक्त होकर सब पृथिवी में परोपकारार्थविचरे।

इस आश्रम में शिखा के बाल और यज्ञोपवीत को जल में प्रवेशकर और अग्निहोत्र कर्म को छोड़ आत्मामें आहवनीयादि अग्नियों को आरोपण करना होताहै।

संन्यास लेने का क्रम तो यही है कि ब्रह्मचर्य्य से गृहस्थ, गृहस्थ से वनस्थ और वनस्थ से संन्सासी होवे, परन्तु शतपथ में लिखाहै कि—

यदहरेव विरजेत् तदहरेव प्रव्रजेद्द नाद्वा गृहाद्वा।

जिस दिन दृढ़ वैराग्य होजावे, उसी दिन चाहे वानप्रस्थ का समय पूरा भी न हुआ हो अथवा वानप्रस्थ का अनुष्ठान भी न किया हो, गृहस्थाश्रम से ही सन्यासाश्रम ग्रहण करे। क्योंकि संन्यास से दृढ़ वैराग्य और यथार्थ ज्ञान का होनाही मुख्य कारण है। जैसा कि—

आगारादभि निष्क्रान्तः पवित्रोपचितो मुनिः
समुपोढेषु कामेषु निरपेक्षः परिव्रजेत् ॥

मनु० अ० ६। श्लो० ४१

जब सम्पूर्ण कामों को जीत लेवे और उनकी अपेक्षा न रहे और पवित्रात्मा तथा शुद्ध अन्तःकरण मननशील होजावे, तभी गृहाश्रम से निकल कर अथवा ब्रह्मचर्य्य से ही सन्यास का ग्रहण करे।

माताजी! जो सन्यासी होकर भी कर्म-फल-भोगकी तृष्णा को नहीं त्यागता और निष्काम कर्त्तव्य कर्म नहीं करता, केवल वस्त्र रंग लियेहैं और कहता फिरताहै कि हमतो कर्मकांडत्याग निरग्नि बन गये हैं, वह वास्तव में संन्यासी नहीं है। जैसाकि-

अनाश्रितः कर्मफलं कार्यं कर्म करोति यः।
स संन्यासी च योगी च न निरग्निर्नचाक्रियः ॥

गी० अ० ६ श्लो० १॥

कर्मफल भोग की तृष्णा को छोड़ के जो मनुष्य कर्त्तव्य

कर्म करताहै वह ही संन्यासी और योगीहै; निरग्नि और अक्रिय संन्यासी और योगी नहीं हो सकता* ।

❀ अन्त्येष्टि ❀

संस्कार विधि की भूमिका के पृष्ठ २में लिखा है कि गर्भाधानादि अन्त्येष्टि पर्यन्त सोलह संस्कार क्रमशः लिखेहैं जिससे यह सोलहवां संस्कार सिद्ध होताहै । परन्तु जैसी और संस्कारों की सूचना (सुर्खी) में है जैसे वानप्रस्थादि संस्कार शब्द लिखे हैं, ऐसा इस संस्कार के साथ अर्थात् अन्त्येष्टि संस्कार नहीं लिखा है,वरन् अन्त्येष्टि कर्म लिखा है, जिस के नीचे निम्न लेखहै, अन्त्येष्टि कर्म उसको कहतेहैं कि जो शरीर के अन्त का संस्कार है, जिस के आगे उस शरीर के लिये कोई भी अन्य संस्कार नहीं है, इसी को नरमेध, पुरुषमेध, नरयज्ञ, पुरुषयज्ञ भी कहतेहैं, । इस लेखमें भी अन्त का संस्कार ऐसा शब्द आया हुआ है,आगे इस से मिला हुआ लेख है कि इस शरीर का संस्कार भस्मा तम् अर्थात् भस्म करने पर्यन्त को, इस विचारसे यह मृतककर्म सोलहवां संस्कार ही सिद्ध होता है । यदि कोई और अच्छी सम्मति आप भ वा अन्य किन्हीं योग्य महाशयोंसे इस विषय में प्राप्त होगी तो आगामी छपने में ठीक करदी जावेगी, कृपया मुझे सूचना दें ।

ओ३म् शान्ति ३॥

---

* गृहस्थीमें जो वस्तु आदि लाता था वह अपने ही बाल बच्चों को देता था वानप्रस्थी और संन्यासी का सारा संसार कुटुम्ब होजाताहै और जो धनादि लाताहै वह गुरुकुल आदि में सब के हितार्थ लगाताहै ।

* ओ३म् *

द्वितीय अध्याय ।

इसमें नित्य नैमित्तिक कर्मों के पालन करनेवाले धर्मात्माओं का वर्णन है और इसके दो खण्ड हैं।

* प्रथम खण्ड *

जिसमें संक्षेप से जीवनचरित्रों का वर्णन है*।

१-सीता जी ।

इस धर्म की सदेह मूर्ति के नाम से मुझे जितनी प्रीति है वह आप को प्रथम भाग में कई स्थानों पर वर्णन आने से विदित होगई होगी। हा! आज दुष्टा स्त्रियां साधारण तनिक से लोभ में फँस वा भय से वा किञ्चित् कष्ट पड़ने पर धर्म जैसी प्यारी वस्तु को छोड़ बैठती हैं। हा! क्षणभर के झूठे स्वादु के अर्थ प्रतिष्ठा खोकर जन्मभर के लिये अपना मुँह काला कर लोक परलोक बिगाड़ लेती हैं और लोक-लाज उचित अनुचित का कुछ विचार नहीं रखतीं। पर आपही हैं

*धर्मात्मा, विदुषी, वीर स्त्रियों के जीवन चरित्र आप की सेवा में प्रथम भाग में निवेदन किए जाचुके हैं तथापि जो उनमें न्यूनता रह गई है उस को पूरा करने और कुछ अन्य के सूक्ष्म वृत्तान्त नवीन लिख के आप की भेंट हैं। आप पढ़कर इससे अपने जीवन का सुधार कीजिये और सन्तानों को सुयोग्य बनाइये।

जो घर में नहीं, टोले वस्ती में नहीं, अपने देश में नहीं किन्तु समुद्र पार विदेश में बैठी हुई जहां अपना हितैषी एक भी नहीं, रावण जैसा दुष्ट राक्षस आकर एक श्लोक के तीन पद पढ़ता है, क्या उस को सुनकर सीता डरकर चुप रहजाती है, उत्तर नहीं देती ? नहीं २ किन्तु लेशमात्र भी भय न करके ऐसा युक्तियुक्त उत्तर देती है कि उसके तीनों पदों के अर्थों को ही (अपने चौथे पद में यह बतलाकर कि छठा अक्षर निकालकर फिर पढ़ जाइये) लौट देती है। एक श्लोक में तीन पद रावण के कहे हुए और चौथा सीता का कहा हुआ है। रावण कहता है कि तेरे त्रिदश वदन जो देवता हैं उनके मुँह की ग्लानि होगी और लक्ष्मण का सखा जो रामचन्द्र है वह युद्ध में नहीं ठहरेगा और वानरों की सेना अधोगति को प्राप्त होगी। वह वीरता से रावण को लघिष्ठ कहती हुई कि हे लघिष्ठ रावण ! तू अपने तीनों पदों के छठवें अक्षर का लोप करके फिर से तो पढ़जा, जब वह पढ़ताहै तो अर्थ ही लोठा जाताहै अर्थात् यह अर्थहो जाताहै कि दश वदन रावणके मुहँ की ग्लानि होगी और लक्ष्मण का सखा युद्ध में ठहरेगा और वानरों का समूह यश पद को प्राप्त होगा। प्रथम पद से त्र, द्वितीय से न, तृतीय से वि, निकाल कर अर्थ ही पलट दिया जैसा कि:—

भवित्रीरम्भोरु त्रिदशवदन ग्लानि रचिरात ।
सतेस्थाता रामो न युधिपुरतो लक्ष्मणसखः ॥
इयंयास्यत्युच्चैर्विपदमधुना वानरचमू ।
लघिष्ठेदं षष्ठाक्षर विलोपात्पठ पुनः ॥

हनुमन्नाटक ।

यही नहीं लंका में कई बार रावण ने आकर कई श्लोकों द्वारा सीता की विनय की, कि किसी प्रकार सीता की रुचि को अपनी ओर आकर्षित कर सके पर उसकी मनोकामना की सफलता तो क्या होती, उसे सदैव के लिये लज्जित होना और नीचा देखना पड़ा। रावण के कहे श्लोकों में से ही निम्नलिखित हैं –

मुग्धे मैथिलीचन्द्र सुन्दरमुखे प्राणप्रयाणौषधे। प्राणान्रक्ष मृगाक्षि मनमथसखे प्राणेश्वरी त्राहिमाम्॥ रामश्चुम्बतितेमुखंच सुमुखेनैकेन चाहं पुनः। चुम्बिष्यामि तवाननं बहुविधे मुञ्चाग्रहं मानिनि॥

जिस का आशय यह है कि हे भोलीभाली सीता, तू मुझे प्राणों से भी प्रिय है तू मेरे प्राणों की औषधि है। अब तू अपना दुराग्रह अर्थात् (हठ) छोड़कर मेरे प्राणों की रक्षा में तत्पर होजा, मैं तेरा राम से अधिक प्यार करूंगा। तब सीता हँसी और कौआ हँस आदि का राम, रावण में अन्तर बताकर उसके कथन से सहमत नहीं होती, तब तो रावण सीता को चमकता हुई कृपाण दिखलाकर बड़े भयानक रूप को धारण कर कहता है कि बस अब शिर से पाव तक विनती हो चुकी, मुझे भली भांति ज्ञात हो गया कि.........देवी बातों से नहीं मानती, कहीं बिन भय प्रीति हुई है, यदि अब भी स्वीकार नहीं करोगी तो तेरा शिर काट के अभी पलपात्र में फेंक दूंगा। मैं जैसा बात का धनी हूँ वह तुम पर और सब पर विदित ही

है। क्या वह चमचमाती हुई शिरपर आई हुई तलवार से घबड़ाकर पातिव्रतधर्म त्यागती है ! कदापि नहीं, किन्तु जैसे लेखनी के शिरपर छुरी के आने से लेखनी और तेज़ चलने लगती है इसी प्रकार सीता मरण को उत्तम जान कर वीर रूप होकर बलपूर्वक उत्तर देती है, कि:—

विरम २ रक्षः किंवृथा जल्पितेन ।
स्पृशति नहि मदीयं कण्ठसीमानमन्यः
रघुपतिभुजदण्डा दुत्पलश्याम कान्ते ।
दशमुख भवदीयो निष्कृपो वा कृपाणः ॥

हे दुष्ट रावण ? ठहर २, क्यों वृथा वकवाद करता है। मेरी कण्ठ सीमा कोई अन्य पुरुष छू नहीं सकता, यदि छू सकता है तो केवल मेरे प्राण प्यारे श्रीरामचन्द्र का हाथ छू सकता है दूसरा कोई नहीं छू सकता, या निर्दयी रावण ? तेरी तलवार छू सकती है, सो शिर उपस्थित है चाहे अभी अलग करदे, पर जीतेजी यह तेरी आशा कदापि पूर्ण नहीं हो सकती। स्मरण रहे कि:—

सर्पस्यरत्ने कृपणस्यवित्ते, सत्याः कुचेकेसरि-
णश्चकेशे । मानोन्नतानां शरणागते च,
मृतौ भवेदन्यकरप्रचारः ॥

अर्थ-सांप के मणि पर और कृपण के धन पर, पतिव्रता स्त्री के कुचों पर और सिंह के केशों पर और जो मान से उन्नत अर्थात् ऊंचे हैं उनकी शरणागत पर उनके मरने पर

ही दूसरों के हाथों का फिरना होता है, जीते जी पर नहीं। और भी कहा है—

पतिव्रतायाः कुचकुम्भ युग्म मत्युग्रशार्दूल नखावलिश्च। वीरस्यशस्त्रं कृपणस्य वित्तम् लभ्यानिचत्वारितदन्तकाले॥

पतिव्रता स्त्री के कुच और बहुत ऊंचे व्याघ्र के नाखून और वीर का शस्त्र और कृपण (कंजूस) का धन उसके मरने परही मिल सकता है।

केहरि केश भुजंग-मणि, पतिव्रतन के गात।
शूरशस्त्र और कृपणधन, मरे लगें हैं हाथ॥

वतलाती है कि जैसे व्याघ्रादि के वालनखादि को विना मारे हुए कोई प्राप्त नहीं कर सकता, इसी भांति पतिव्रता स्त्री के शरीर को कोई दुष्ट विना मारे हुए छू नहीं सकता। धन्य सीता! तूने ही धर्म की महिमा को समझा था, तू ही समुद्र की चट्टान की भांति कठिन से कठिन विपत्तियों की लहरों और झरनों के टकराने पर स्थिर रही थी, प्यारे पाठकों को विदित रहे कि कहीं एक किनारे की नदी होती है, क्यों सीता जी को रामचन्द्रजी को सोते जागते, बैठते, उठते ध्यान रहता था, क्यों प्राणों की भी रक्षा का ध्यान न था, इसका कारण यही था कि एक तो उसका स्वयंवर विवाह हुआ था जिसमें वर-परीक्षा साधारण रीतिसे नहीं वरन् एक बड़े उत्तम प्रकार से होकर जैमाल डाली गई थी। जब सीताजी ने धनुष सरका दिया था तो पिता जनक पर यह प्रतिज्ञा करनी अभिष्ट

हो गई थी कि कन्या उसी के साथ वरी जा सकती है जो कन्या से अधिक वलवान् हो और धनुष उठा वा चढ़ा सके। पर स्वयम्वर में सम्मिलित हुए सम्पूर्ण राजा और योद्धाओं ने पृथक् २ फिर मिल कर वल किया, पर वह सरका तक नहीं सके। अन्त को जनक के निराशा के भरे वाक्य थे, कि:—

अव जन कोऊ भाषै भटमानी।
वीर विहीन मही मैं जानी॥

कि अव कोई अपने को भट न वतावे आज मुझे निश्चय हो गया कि पृथिवी वीर योधाओं से शून्य हो गई। आगे यह भी कहा है कि आप सवने पधार कर निरर्थक कष्ट सहा, सीता चाहे जन्म भर क्वारी रहे, पर विना धनुष चढ़ाये वह वरी नहीं जा सकती। वहां पर राजा जनक के निराशावाद वचन सुनकर योधा लक्ष्मण ने श्रीराम से कहा है कि—

कही जनक जस अनुचितवाणी।
विद्यमान रघुकुलमणि जानी॥
काचे घट सम डारों फोड़ी।
सकूं मेरु मूलक इव तोड़ी॥

दोहा।

तोरौ छत्रकदण्ड जिमि, तव प्रताप वलनाथ।
जो न करौं प्रभुपद शपथ, पुनि न धरौं धनु हाथ॥

अर्थात् राजा जनक ने रघुवंशी वीर क्षत्रि
बैठे हुये क्यों ऐसे अनुचित वचन कहे। आ
तो मैं अभी आप के चरणों के प्रताप से इस
प्रकार तोड़ डालूं जैसे कोई कमल के नाल क
यदि न तोड़ सकूं तो मैं शपथ
धनुष हाथ में ही न लूं। अन्त
राज तोड़ने को उठे, जिन्हें दे
कन्या के योग्य जान अपने नि
कि कोई जाकर राजा को समझा
को छोड़ दें और इन्हीं के साथ वि
होती ही रही। इधर रघुकुल भूषण
में धनुष तोड़कर फेंक दिया।

लेत चढ़ावत खैंचत गाढ़े।
काहु न लखा दीख सब ठाढ़े॥
त्यहि क्षणमध्य राम धनु तोरा।
भरेउ भवन धुनिघोर कठोरा॥

कहने का अभिप्राय यह है कि दोनों ने एक दूसरे को देख भाल परीक्षा कर वरा था, फिर क्यों न पूर्ण प्रीति होती दूसरे सीताने वनवास की दशा में अपनी ओर राम-चन्द्र के स्थिर प्रेम का दृश्य शूर्पणखा के आने पर देखा था कि महाराज ने उसकी सुन्दरता पर और उसकी इच्छानु-सार उसकी लोलुपता पर और उसके निवेदन आदि पर कुछ भी ध्यान न दिया, किन्तु समझाया कि वेदों में एक पुरुष के लिये एक ही स्त्री का विधान है, दूसरी स्त्री करके

ं हो सकता। यदि हम चारों भाई एक ही
होते तो हमारे पिता को पुत्रशोक में प्राण क्यों
ऐसे पवित्र उपदेश को सुनकर और तदनुकूल
र सीता क्यों न इतनी धर्मात्मा होती।
कर स्त्रियों को पतिव्रता बनाना
व है। जहां सीता का वह
सीता से कदापि न्यून न था।
थे जानते हैं कि सुग्रीव को जो
र कि वालि बड़ा बली है जो
दाचार को कितना पवित्र और
जैसा कि-

चेत् कुशिकनन्दन पादयोर्मे।
यद्यस्म्यहं द्विज तिरस्कृत रोषहीनः॥
नान्याङ्गना शुचमनः शरसप्ततालान्।
भित्वा तदा प्रविश भूतलमप्यगाधम्।

अर्थात् यदि मेरा ध्यान कुशकनन्दन विश्वामित्र के चरण कमल में लगा रहा है, यदि मैंने ऐसा काम नहीं किया है जिस से द्विज कुल को दोष लगे, यदि मैंने पराई स्त्री का स्वप्न में भी विचार नहीं किया है तो मेरा एकही बाण रसातल में पहुंच जावे। जब रामचन्द्र स्वप्न में भी अन्य स्त्री की ओर ध्यान न करनेवाले थे तो सीता अन्य की ओर कैसे दृष्टि करसक्ती। इसी लिये, हे माताओ! राम रट लगाने वालियो और हे राम को मर्यादा पुरुषोत्तम समझनेवाले पुरुषो ? तुम्हें,हमें किन्तु सब को उचित है। कि

राम सीता के पग पर पग रखकर चलें; केवल माला फेरने और राम राम की रट लगाने और जय बोलने से कुछ नहीं होगा। उनके पवित्राचरणों द्वारा उनकी जय होगई और संसार भर जान गया, अब अपनी जय करो। रामचन्द्र सरीखे स्त्रीव्रत और सीता जैसी पतिव्रता बनो और बनाओ तभी जय होगी। हां हां आज हमारी आपकी बुद्धि को क्या होगया, यदि मूर्त्ति से काम चल जाता तो एक गाँव के पटवारी के मरजाने पर उसका फोटू उतरवा कर वा उसकी मूर्त्ति बनवाकर रखली जाती और उसके सामने खड़े होकर कहा जाता कि पटवारी जी, अमुक खेत नाप दीजिये, नकशा खसरा बना दीजिये, वह नाप और बना देता। क्यों नवीन पटवारी उसके स्थान पर नियत किया जाता है आप कहें कि ऐसा कैसे होसकता है फोटू से काम नहीं चल सकता, यही तो हमारा प्रयोजन है कि फिर आप क्यों मूर्त्ति के ही आश्रित हुई? कार्य्य और पुरुषार्थ नहीं करतीं, उधर इतनी चतुर और इधर इतनी मूर्ख कि बिना किये ही हाथ पैर हिलाए ऐसी प्रार्थना करती हो कि वह ही आप की सम्पूर्ण आशायें पूर्ण करदे। आप नित्य सुनती और जानतीं भी हैं। कि:—

माला तेरी काठ की, और धागे दई पिरोय।
मनमें घुण्डी पापकी, तो राम भजे क्या होय॥
माला फेरत जन्म गया, और गया न मनका फेर।
करका मनका छोड़ के, तु मनका मनका फेर॥

तात्पर्य्य इसका यह है कि यदि हाथ माला फेरने और

जीभ राम राम कहने में लगरही है पर भीतर से मन मैला, पापी है, तो कुछ लाभ नहीं। आओ, सच्ची प्रतिज्ञा करके आज से हम और आप सीता और राम का अनुकरण करें उनके अनुगामी बनें, जिस से कल्याण हो।

२ दमयन्ती।

इनकी पतिव्रता स्त्रियों में गणना है, इन्हों ने बड़ी बुद्धिमत्ता से राजा नल को खोजा था, इनका यश बहुधा स्थानों पर गान किया गया है। परन्तु यह बात अभी तक मेरी समझ में नहीं आई कि इनका दूसरा स्वयंवर वेदोक्त आज्ञा के विरुद्ध क्यों रचाया गया था। यह तो कहा जा सकता है कि स्वयंर से केवल नल के ढूँढनेका ही प्रयोजन था, जिस में किञ्चित् भी सन्देह नहीं, पर आक्षेप इसमें यह उठाया जाताहै कि यदि प्राचीन समय में ऐसी रीति न होती तो दूसरे स्वयम्वर का रचाया जाना कैसे सम्भव हो सकता। जैसा कुछ हो, हमें केवल यही दिखलानाहै कि दमयन्ती के कथन से स्पष्ट प्रकट है कि वह नल के अतिरिक्त अन्य किसी को नहीं चाहती थी,केवल उसे नल की खोज थी,देखो वह कह रही है:—

चेतो न लंकामयते मदीयम्।
चेतो नलं कामयते मदीयम्।
चेतोऽनलं कामयते मदीयम्।
चेतोऽनलंकामयते मदीयम्॥

जिसके चार पदों का चार तरह पर समास है।

मदीयंचेतः लंका न अयते ।
मदीयंचेतः नलं कामयते ॥
मदीयंचेतोऽनलंकामयते ।
मदीयं चेतः न अलं कामयते ॥

अर्थात् मेरा चित्त लंकापति रावण नहीं चाहता, मेरा चित्त नल को चाहता है । यदि नल न मिले तो मेरा चित्त अग्नि में प्रवेश होने को चाहता है, मेरा मन और कुछ नहीं चाहता । इससे आप सदैव यही विचार रक्खें कि वेदोक्त आज्ञा का पालन करती हुई पति सेवा और पतिव्रता धर्म से एक पग भी बाहिर न हटने पावे, जिससे आप की जीवन यात्रा सफल हो ।

३-गोविन्दसिंह और उनकी स्त्री का डाला हुआ बच्चों में धार्मिक भाव ।

इनका हाल तो प्रथम भाग में आपने पढ़ा होगा, माता का बच्चों के दीवार में चुने जाने के पश्चात् मिठाई बांटने और पिता के नक्कारे बजवाने का हाल भी पढ़ चुकी होगी । माता पिता ने बच्चों को धार्मिक शिक्षा दी थी, ऐसी आशा माता पिता को भी न थी यदि वह किसी धन विशेष वा देश के लोभ में मरते वा किसी अन्य अपवित्र स्वभाव में फँस प्राण त्यागते तो उन्हें आज कौन पूछता और कौन नाम लेता । वरन्—

शर्म होती जो किसी पाप के बदले मरते।
धर्म के वास्ते जां देने में कुछ बात नहीं॥

उन बेचारे निरपराधियों दस बारह वर्षकी आयु रखने वाले न्यूनावस्था वालों का मौत जैसी डरवानी भयानक रूप वाली के सदेह सन्मुख उपस्थित होने पर धर्मसे च्युत होजाना कोई आश्चर्य्यजनक बात न थी। पर कोटिशः धन्यवाद उन्हें है जो उन्हों ने समयानुकूल करके दिखाया। जब उन्हें एक ओर बड़ी २ सुन्दर स्त्रियों बेगमों के मिलने और बड़े २ उत्तम पदों के देने का लोभ दिखाया जा रहा है, जब वह स्वीकार नहीं करते तब दूसरी ओर भय दिखलाया जाताहै और साधारण भय नहीं जीते जी दीवारों में चुना दिये जानेकी आज्ञा सुनाई जाती है जिसे वह स्वीकृत करते हैं और तीन बार कमर छाती गर्दन तक चुना कर अपने हठ छोड़ देने और मुसलमान हो जाने को कहा जाता है परन्तु वह प्रथम से दूसरा और दूसरे से तीसरा कठोर उत्तर देते हैं और मरने से ज़रा नहीं घबड़ाते। धन्य जीते जी दीवारों में चुन गये और नेकन म छोड़ गये। क्या वह बड़ी आयु वाले थे वा बड़े विद्वान् विचारवान् थे? नहीं, केवल उन्हों ने धर्म त्याग ने से मर जाना अच्छा समझा और मर कर दिखा गये। जिस समय उन्होंने अपना बलिदान किया था सैकड़ों उन बच्चों को मूर्ख और बुरा कहते थे, कौन कह सक्ता था कि एक दिन आवेगा कि उनके नाम इस प्रतिष्ठा के साथ इतिहासों और समाचार पत्रों में लिखे जावेंगे वा सभाओं में गाये जायेंगे। उन बच्चों के तीनों उत्तरों को किन्हीं महाशय ने पदों में लिखाहै उसे वैसा ही नीचे लिखा जाता है जो संकट पड़ने पर भी धर्म स्थित रहने का उत्साह बँधाता है—

बालकों का प्रथम बार का उत्तर।

क्यों मुझको डराता है नहीं मौतका कुछ डर।
बेधर्मी को हम मौत से भी समझे हैं बदतर ॥ १ ॥
गर जी में यही है तो हमें क़त्ल अभी कर।
चलने के नहीं धर्म की हम राह से मुड़कर ॥ २ ॥
हम जानते हैं खूब यह आफ़त की घड़ी है।
तू कहता है क्या देखते हैं मौत खड़ी है ॥ ३ ॥
मासूम हैं बेगुनाः हैं बेजुर्मो खता हैं।
वारिस कोई सर पर नहीं पाबन्द बला हैं ॥ ४ ॥
लड़के हैं सितमकश हैं ग़रीबुलगुर्बा हैं।
पर भूल न जा दुनिया में मंजूर खुदा हैं ॥ ५ ॥
जीते हुए हम जां गुज़र जावेंगे दोनों।
बेधर्म नहीं होवेंगे मरजावेंगे दोनों ॥ ६ ॥
हमको नहीं जां प्यारी मगर धर्म है प्यारा।
परवा नहीं गर ज़ख़्मों से तन चूर हो सारा ॥ ७ ॥
क्या मौत से नुक़सान भला होगा हमारा।
मारा भी अगर तूने तो किस चीज़ को मारा ॥ ८ ॥
हम जीवित जावेद हैं लाफ़ानिवो दायम।
जीव अपना नहीं मरता सदा रहता है क़ायम ॥ ९ ॥

दूसरा उत्तर दुबारा समझाने पर

वाह गुरू हम कहते हैं और वाह गुरू पर होंगे फ़िदा।
वाह गुरू का तन मन है और वाह गुरू पर हैं शैदा ॥
नहीं मरनेका कुछ खौफ़ हमें नहीं जिस्मकी रखते हैं परवा।
दुनियां यह जाय क़ायम नहीं क्यों सरमेंहै दुनियांका सौदा ॥
दुनियां यह अगमापाईहै जो आजहै कल नहीं उसका पता।

इक दिन हम सबसे बिछुड़ेंगे इक दिन हम सबसे होंगे जुदा ॥
क्यों नाहक़ हमको डराता है नहीं मौतका हमको डर असला।
हम वाह गुरू के प्यारे हैं और वाह गुरू पर होंगे फ़िदा ॥
तसलीम में सर ख़म है अपना राज़ी हैं जो हो मर्ज़ी मौला।
तू देर न कर तैयार हैं हम हो वाह गुरू की हम पै दया ॥

तीसरा उत्तर दो प्रथमों से कड़ा है जो छाती से ऊपर चुनाकर पूछा गया था मरता क्या न कहता फिर भी उत्तर साधारण है।

कर बन्द ज़ुबां अपनी तू अय ज़ालिमे सफ़्फ़ाक।
जलजाय ज़ुबां तेरी तेरे सर पै पड़े ख़ाक ॥
क्या कहता है हरबार यह शब्द हैं नापाक।
हमको नहीं कुछ मौत का है ख़ौफ़ न है [1]बाक ॥
जां देना ज़माने में है प्रसिद्ध हमारा।
सर देना इबादत में है दस्तूर हमारा ॥

४-राजा दाहर के पुत्र और अन्य छोटे २ बालकों के लिये माताओं का उपदेश और उनकी प्रतिज्ञा और समर भूमि में शत्रुओं को उत्तर।

इनका भी वर्णन प्रथम भाग में आचुका है कि जब माताओं ने बालकों को पाठशालाओं से बुलाकर अपने

[1] भय।

साथ जलने वा भागकर प्राण बचाने पर बल दिया कि प्रिय-पुत्रो इस आपत्ति के समय तुम्हारा हमारे संग जलकर प्राण त्याग देना ही अच्छा है, उन सब की अपेक्षा कि धर्म से भ्रष्ट किये जाओ, परन्तु बच्चों ने स्वयं जलजाना पाप बताकर अस्वीकार किया, वरन् अपने निज धर्म पर स्थिर रहने का माताओं को पूर्ण विश्वास दिलाया, फिर माताओं ने दूसरीबार परीक्षार्थ समझाया कि अभी तुम बालक हो तुमने समरभूमि कभी नहीं देखी, सम्भव है कि तुम तलवारों की चमक और तोपों के गम्भीर नाद को सुन घबड़ा कर लौट पड़ो जिससे कुल कलंकित होजावे और माताओं के दूध और पिताओं के नाम को बट्टा लगे, बच्चे जिन शब्दों से निश्चय कराते हैं वह प्रथम भाग में आपने पढ़ा होगा। तब बहिनें, भाइयों को कपड़े पहिनातीं और सब हथियार लगाती हैं और कहती जाती हैं कि वीर आज तुम्हारी वीरता दिखलाने का दिन है जो पग पड़े आगे पड़े-मातायें बच्चों को गोद में उठाकर चुमकारती हैं कि बेटा अब हम और तुम स्वर्ग में मिलेंगे देखो पैर पीछे हटने से बाप के नाम पर और मेरी कोख पर दोष न लगने देना, मनुष्य के लिये धर्म से गिर जाना ही नरक है, माता के उपदेश को किसी ने पदों में लिखा है जो धर्म परायण रहने का साहस दिलाता है--

मेंह तीरों का बरसे तो कभी मुँह को न मोड़ो।
जीता पिता मज़लूम के शत्रू को न छोड़ो॥
तलवारों से सौ टुकड़े अगर हो के गिरो तुम।
मैदां से फिरे हैं न कभी अब न फिरो तुम॥
तलवार नहीं पास तो हाथों से लड़ो तुम।

हर तरह से लड़कर उसी मैदां में गिरो तुम ॥
कुछ ढाल की हाजत नहीं मुश्ताक़ अजल को ।
दांतों से चवा जाइयो तलवारों के फल को ॥

यह माताओं का उपदेश सुन वच्चे लड़ाई में जाते हैं उन से वे ही शब्द कहें जाते हैं कि तुम बालक हो हमें तुम पर दया आती है यातो भाग कर अपने प्राण वचा जाओ नहीं तो ईमं न लाकर मुसलमान हो जाओ। चमचमाते हुये नेज़े और लपकती हुई तलवारें दिखाई जाती हैं जिन वेचारों ने कभी संग्राम भूमि नहीं देखी थी वे किञ्चित् भय न कर के उत्तर देते हैं--

पद्य ।

अब आके डट गये नहीं हटने के यां से हम ।
राही करेंगे अवता उदूको सुये अदम ॥
शत्रू वहुत हैं लेक दिल अपना नहीं है कम ।
रजपूत आगे धर के हटाते नहीं क़दम ॥
हम और खौफ़ जान से लड़ाई को छोड़ दें ।

अन्त को वहुतों को मारकर आप भी मरज़ाते हैं पर वेधर्म नहीं होते; धर्म का परिचय देकर औरों को उदाहरण छोड़ जाते हैं ।

५-मोहना राजा अजमेर की कन्या ।

जब प्रथम बार अजमेर पर महमूद ग़ज़नवी ने अपने सब से वड़े वीर और सेनापति मंसूर के साथ पच्चीस सहस्र सेना को लेकर आक्रमण किया उस समय मोहना ने अपने पिता से जो उस समय राजा था कहा कि प्रथम मैं लड़ूंगी

राजाने समझाया कि हमारे क्षत्रियों के नियम और हैं पर यह लोग धर्म और नियम का कुछ विचार नहीं करते, इसलिये तुम इनके सन्मुख न जाओ, भाई को वा किसी अन्य को जानेदो पर इस ने हठ किया और कहा कि यह नहीं हो सकता मैंने फिर किस कारण युद्ध विद्या को सीखा है, विना खेत गये किसनई नहीं जान पड़ती, आप निश्चिन्त होकर आज्ञा प्रदान कीजिये. पिताने आज्ञा दी पर यह भली भांति समझा दिया कि तुम अपने धर्मका कदापि त्याग न करना, बन्दियों की रक्षा और उनको हर प्रकार सुख पहुंचाने में तत्पर रहना, भागे का पीछा न करना बन्दी का वध न करना आदि २ अनेक शिक्षायें कीं जिसको मोहना स्वयं जानती थी पर पिताकी आज्ञा को शिरधार और यह कह कि विपक्षी चाहे जैसा वर्ताव करें मैं अपनी नीतिसे विरुद्ध न चलूंगी। इसके साथ वीस सहस्त्र सेना थी इससे और मंसूर से घोर संग्राम हुआ सहस्त्रों मारे गये, अन्तको मंसूर अपने अधिक सिपाहियों के साथ क़ैद हो गया। मोहना ने भी अपने बड़े उत्तम हाथ दिखलाये अन्तको विजय पाई। यह स्वयं दोनों समय वन्दियों को देखने को जाती, घायल और बीमारों की मरहम पट्टी और चिकित्सा कराती, स्वयं उनसे पूछती कि आप में से किसी को किसी प्रकार का कष्ट तो नहींहै किसी आवश्यक वस्तुकी प्राप्ति की इच्छा तो नहींहै। जब महमूद को मंसूर की पराजय की सूचना पहुंची तब अपनी सम्पूर्ण सेना सवा डेढ़लाख से धावा कर दिया। उस समय भी मोहना ने बड़ी वीरता दिखलाई महमूद ने इस की वीरता को देखकर दांतों अंगुली दबाई और अपने बड़े २ शूरवीरों से लड़वाया अकेले ही इस ने पचासों को समर भूमि में

नचा दिखा दिया मारा और घायल किया अन्त को थकित हो गई और पकड़ी गई । महमूद ने इसकी वीरता की बड़ी बड़ाई की है कि जैसा बेलाग हाथ इस मोहना का पड़ता है ऐसा मैंने बहुत ही कम देखा है । मैंने ऐसा हाथ पड़ते मंसूर का ही देखा था मोहना का । जब और क़ैदी और मंसूर छूटकर वहां पहुंचे तब बादशाह से कहा कि मोहना बड़ी शरीफ़ज़ादी है यह दोनों समय बन्दियों को स्वयं देखने को आती थी, हमारी मरहम पट्टी कराती थी, किसी प्रकार हमें कष्ट नहीं होने दिया । इस पर बादशाहने मोहनाको विजयसिंह आदि बहुत क़ैदियों को बड़ी (इज़्ज़त) मान प्रतिष्ठा के साथ अजमेर पहुंचा दिया । हमारे लिखने का यह अभिप्राय है कि मातायें कितनी वीर इसी भूमि में हो गई हैं । एक आज का दिन है कि रात्रि में अकेले कोठे में जाते डरती हैं । कहां समर भूमि में लड़कर शत्रुओं को परास्त करती थीं आज इन कपट छल रूपी मूर्तियों के सरपर भूत चुड़ैल चढ़ा भोली स्त्रियोंको डरारहीं हैं कितना परिवर्तनहै ।

६-राजपूताने की एक वीर स्त्री ।

राजपूताने की एक वीर स्त्री यह अपने पति और पुत्र के मारे जाने पर समर-भूमि में लड़ते पकड़ी गई । जब स्त्रियां लड़ाइयों में लड़ती थीं तो आज जैसा घेरदार लहिंगा नहीं पहिनती थीं, वरन् जांगिया आदि पहिनतीं और उसमें समय पड़ने पर अपनी रक्षा कर सकने के अर्थ शस्त्रादि भी लगाये रखती थीं । कोई कोई गुप्ति शस्त्र रखती थीं जो अन्यों को प्रकट नहीं हो पाते थे और कठिन समय पर उनके धर्म को बचाते थे । जब तक यह बन्दीगृह में रही जो कुछ क्षुधानिवा-

खार्थ इस मिलता प्रसन्न होकर खालेती और परमात्मा का धन्यवाद देती रहती कि मेरा मन मलीन नहीं क्योंकि मैं किसी पाप के बदले क़ैद नहीं हुई हूं। परन्तु जब इसे क़ैद से निकाल कर उसका धर्म भ्रष्ट करना चाहा और बादशाह ही उस पर मोहित हो गया, तब इसने प्रथम निवेदन किया कि राजनीत्य-नुसार राजा को क़ैदियों से मां, बेटी की भांति वर्ताव करना चाहिये। मेरा पति मारा गया मुझे किञ्चित् शोक नहीं, अपने धर्म का पालन करता हुआ मुझ से पृथक होगया, मेरा भाई मारा गया उसकी भी कुछ चिन्ता नहीं, मैं क़ैद हो आई कुछ शोक नहीं, जो कुछ खाने को मिल जाताहै उसे भोग समझ कर बड़े हर्ष से पालेती हूं क्योंकि मैं कर्म करने में स्वतन्त्र हूं और फल भोगने में परतन्त्र! मैं यह भी जानती हूं कि जो मेरा है वह दूसरे का हो ही नहीं सकता। जैसाकि—

प्राप्तव्यमर्थं लभते मनुष्यो देवोपितंलंघ-यितुं नशक्यः। तस्मान्नशोचामि न विस्मयो मे यदस्मदीयं नहि तत्परेषाम् ॥

आप अन्य क़ैदियों की भांति समान भावसे वा यथा योग्य नियम का पालन मेरे साथ भी कीजिये। आप अपने धर्म और मेरे धर्म की रक्षा कीजिये। जिस धर्म के आप मानने वाले हैं उसके विरुद्ध पायकर वहां क्या मुँह दिखाओगे और तुम जिसकी उम्मतिमें हो वह स्वयं उपदेश करतेहैं कि अय फ़ातमा, क़यामत के दिन यह नहीं पूछा जावेगा कि तू किस घराने में उत्पन्न हुई है तेरा नसब (ददसार) क्या है, वरन् वहां यही पूछा जावेगा कि तेरा (कसब) अर्थात् किया हुआ कर्म क्या है। वहां अपना पाप पुण्य भुगतना पड़ेगा। इस लिये ऐसे तू

महान् पाप का विचार न कर, परन्तु आप जानती हैं कि (कामातुराणां न भयं न लज्जा) वा (कामान्धो नैवपश्यति) उसने इतना सुनकर भी कुछ विचार न किया और फिर भी उसकी और हाथ बढ़ाया। तब उसने हँसकर कहा कि अच्छा ठहर अब मुझे भलीभांति ज्ञात हो गया कि तू कुत्ताहै, उसने कहा कैसे जाना, क्षत्रानी बतलातीहै कि कुत्ता दूसरोंकी जूठन खाताहै जिसको मेरे पतिने भोगाहै उसकी जूठन को तू भोगना चाहता है। इस लिये तनिक ठहर इस आशा और निराशा भरेहुए शब्द को सुनकर वह दूसरी ओर द्विचित्ता हुआ। इसने झट जांगिया से गुप्त कटार निकाल कर एक ही हाथ में दुष्ट का काम तम म कर दिया और ऊपर का हाथ फैलाकर स्वर्गवासी पति की ओर ध्यान करके कहा हे प्राणनाथ? आप का बदला ले लिया और अपना धर्म बचा लिया। आप दोनों हाथ फैलाकर मुझे गोदलें, मैं आती हूं और दूसरा कटार अपने मारकर हँसती हुई स्वर्गको सिधार गई। आज नारियां तनिक से झूठे स्वाद के अर्थ धर्म जैसा अपूर्व वस्तु को त्याग भ्रष्टहो जाती हैं। माताओं? यदि इसको पढ़कर भी आपने स्वप्न में भी किसी अन्य पुरुष की ओर ध्यान दिया तो स्मरण रखना कि तुम्हारा सर्वनाश हो जावेगा।

७-वेदवती।

इस तपस्विनी ब्रह्मनिष्टा ब्रह्मचारिणी ने संसारी भोग भोगेही न थे, इसने संगत और संस्कारों के प्रभाव से जाना था कि ब्रह्मानन्दही एक आनन्द है उस आनन्द की तुलना और कोई आनन्द नहीं करसकता—

भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः ।
क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन्दृष्टेपरावरे ॥

मुण्डकोपनि० खं० २ मं० ८ ॥

जब जीवात्मा को परमात्मा का दर्शन होता है तव उसके मनकी गांठ खुल जाती है और संशय कट जाते, उसके कर्म नाश हो जाते हैं।

यद्धि चेतयते विश्वं विश्वं चेतयते नयम् ।
यो जागर्ति शयानेस्मिन् नायंतं वेदवेदसः ॥

जिसको विश्व चैतन्य नहीं कर सकता, जो विश्व को चैतन्य करता है जो विश्व के सोजाने पर भी जागताही रहता है और सबको जानता है पर जीव उसको ज्ञान नहीं पाता जिसके लिये बतलाया है कि—

त्रैलोक्याधिपतित्वमेव विरसं यस्मिन्महाशासने । तल्लब्ध्वासनवस्त्रमानघटने भोगे-रतिमाकृथाः ॥ भोगः कोपि सएक एव परमो नित्योदिते जृम्भते । यत्स्वादाद्विरसा भवन्ति विषयास्त्रैलोक्यराज्यादयः ॥

वैराग्य शत श्लो० १०८ ॥

अर्थात् जिस महावाक्य अर्थात् ब्रह्मज्ञानके आगे त्रैलोक्य का राज फीका होजाता है, उसे प्राप्त होकर भोजन वस्त्र

और मान के रुचि वाले भोग में प्रीति मत करो, वही एक भोग सबसे श्रेष्ठ और नित्य उदित और प्रकाशित है जिसके स्वादु के सन्मुख त्रैलोक्य राज्यादि सब ऐश्वर्य्य नीरस होजाते हैं।

यह समझ कर उसने यह प्रण कर लिया कि मैं एकान्त, निर्जन वन में कुटी बना कर योगाभ्यास, सन्ध्या, हवनादि कर परमेश्वर के ध्यान और कर्म कांड में लग अपने जन्म को सुधारूंगी। यह मानुष शरीर दुर्लभ है, इसलिये मैं अपने इस जन्मपर्यन्त त्यागियों और ऋषियों की भांति एकान्त सेवन करूंगी और जो कुछ कन्द मूल फल प्राप्त होसकेगा उसी से निर्वाह करूंगी। इसने अपने जीवनोद्देश को समझ कर एक जंगल में जा आसन जमाया था और ईश्वर प्रेम में मग्न हो निरन्तर उसी के चिन्तन और उसकी प्राप्ति का यत्न करती रहती थी। न उसे किसी से अति प्रेम था न किसी से द्वेष था वह नहीं जानती थी कि दुष्ट निष्प्रयोजन भी पीड़ा देने को तत्पर रहते हैं, उसे यह कहां विचार था कि मुझ जैसी सर्वस्व छोड़े हुए, सांसारिक सुखों पर लात मारे हुए को भी कोई असुर, राक्षस आकर सतावेगा, पर सदा से ऐसा होता आया है कि धर्मात्मा पुरुषो को दुष्ट कष्ट देते रहे हैं, देवासुर सग्राम होता चला आया है, आज उन्हीं के नाम गाये जाते हैं जिन्हों ने कष्टों को सहा, पर धर्म से नहीं गिरे। विपत्तियों के पहाड़ शिरपर गिरे चकनाचूर होगये पर सचाई से नहीं हटे, वे ही अजर अमर हुये, उनका नाम निशान मिट गया जो धर्म से भ्रष्ट होगये, जिन्हों ने यह समझा कि "धर्म उन्नती की ध्वनि में होजाय अपना आखिर होगा नसीबा ऐसा मित्रों! कहां हमारा" वे ही जीवित रहे

इस वेदवती का निर्विघ्न काम चल रहा था, अचानक एक दिन लंका के स्वामी रावण का उस ओर आगमन होगया उसने उस देवी को देखा जिसका मुखड़ा युवती होने और ब्रह्मचर्य के प्रताप से चमचमा रहा था, उस विशाल दिव्य मूर्त्ति को देखकर रावण कामातुर हो अचेत होगया। रावण ने वेदवती से उसके जीवन का वृत्तान्त और अनागत जीवन का संकल्प पूछा उसने अपनी प्रतिज्ञा का सच्चा २ हाल कह सुनाया। रावण उसे अपने ऐसे उचित प्रण के तोड़ने का प्रथम सरलता से उपदेश करता और अपनी प्रीति की ओर उसका मन आकर्षित करता रहा, जब वह किसी प्रकार अपनी प्रतिज्ञा से न डिगी तब प्राणों का भय दिखलाया, उसे सुनकर भी वह यह बताकर कि जीवन की किसे ख़बर है काल आज ही आजावे या कल, धर्म छोड़ क्या सदैव जीवित रहूंगी। अन्त को रावण ने उसकी चोटी पकड़ कर बलपूर्वक खींचना चाहा, तब वह साक्षात् लक्ष्मी अपने समीपवर्ती प्रज्वलित अग्निकुण्ड में प्रवेशकर वेदमन्त्र जपते २ सम्पूर्ण शरीर भस्म कर पलभर में राख का ढेर बनगई। मरते समय लिखा है कि वह रावण से यह कह गई कि मेरी मृत्यु का तू कारण हुआ है, तेरी मृत्यु का कारण भी कोई स्त्री ही होगी॥

मृत्युकारण हुआ तु मेरा। स्त्री कारण वध होय तेरा॥

यही समय था कि रावण ने यह प्रतिज्ञा करली थी कि अब आज से बिना स्त्री की प्रसन्नता के कभी अन्य स्त्री से चाहे कुछ ही क्यों न हो हठ से भोग न करूंगा न करने का इस प्रकार यत्न करूंगा। धन्य वेदवती, तू ने अपनी प्रतिज्ञा को पूर्ण कर यश और कीर्त्ति का लाभ उठाया और रावण के शिरपर गठरियों धूल पड़गई और सदैव ही पड़ती रहेगी।

८—पार्वती ।

इनका जीवन प्रसिद्ध है, इनका विवाहकीर्त्तन गा २ कर प्रत्येक नगर और स्थानों में सुनाया जाता है। आप ने भी डौरू बजा गाते अवश्य सुना होगा। तथापि एक बात इनके विवाह के विषय में निवेदन की जाती है जो आवागमन के गूढ़ रहस्य को लिये हुए है। हमारे यहां जीवन सुधार के लिये और पवित्र बनने के अर्थ आवागमन भी बड़ा सहायक है. आप को अपने पूर्व जन्म की उसी भांति सुध थी जैसी श्रीकृष्ण जी को थी, गीता में श्रीमहाराज अर्जुन को बताते हैं कि—

बहूनि मे व्यतीतानि जन्मानि तव चार्जुन ।
तान्यहं वेद सर्वाणि नत्वं वेत्थ परन्तप ॥

गी०.अ० ४ श्लो० ५ ॥

मेरे और तुम्हारे बहुत से जन्म हुये हैं, मैं योगी होने के कारण उन को जानता हूं पर तू नहीं जानता। इन श्रीपार्वती जी का जन्म एक पहाड़ी राजा हिमाचल के यहां हुआ था, कोई कोई मूर्ख तो इन्हें पहाड़ की कन्या बताते हैं। जब यह स्यानी हुईं और वर के खोजने को योग्य विद्वान् जहां तहां भेजे गये, जो वर बड़े परिश्रम से ढूँढे जाते पार्वती उन्हें अयोग्य बताकर मना कर देतीं किसी को स्वीकार न करतीं, अन्त को स्वयं ही कैलाश निवासी शिवजी का पता बताया और उनके साथ अपना विवाह रचाया। शिव जी एक बड़े महात्मा योगीराज, तपस्वी, प्रतापी थे जब पार्वती ने उन्हें स्वीकार किया, तब किसी किसी ने कहा कि कैसे भूपों के

साथ सम्बन्ध नियत हुआ है पर एक को भी स्वीकार न किया एक बन वासी को क्यों स्वीकार करती है, तब उसने पिछले सम्बन्ध को जानते हुये उत्तर दिया है कि—

कोटि जन्म लग रगड़ हमारी।
वरौं शम्भु नहिं रहौं कुँवारी॥

जो धर्म के मर्म को नहीं जानतीं वेही पतियों से लड़तीं और अनुचित कथन करतीं और अपने कठोर हृदय विदीर्ण करने वाले शब्दों का परिहार करती हैं, परन्तु पार्वती जी कोटिजन्मों लग शिव जी को ही अपना वर वनाना चाहती हैं, कितना धर्म भाव इससे छलकता है कि वह इसी जन्म में नहीं किन्तु जन्म जन्मान्तरों में अपने शरीर को अन्य जीव को छुआना स्वीकार नहीं करतीं। धन्य हैं वे स्त्री और पुरुष जो एक ही के होकर रहते हैं और शिव और पार्वती जी का अनुकरण करते हैं। इन के विवाह के विषय में अनेकों का यह कथन है कि गौरी के विवाह में पहाड़, समुद्र, वन और नदी, नद को बुलावा दिया गया था और सब सम्मिलित भी हुए थे। इस पर बहुधा जन यह शंका करते हैं कि यह बात नितान्त असत्य है, यदि पहाड़ और समुद्र चलकर आते तो देश के देश नाश हो जाते और वे कहां ठहरते जो व्यवहार और बोल चाल से जानकर न होने का कारण है। रेल और गाड़ी पर चढ़कर मेरठ पहुंचते हैं कहतेहैं कि मेरठ आगया, वास्तव में मेरठ नहीं आया, किन्तु हम मेरठ में आगये, पर बोल चाल में ऐसा ही प्रचलित है और उस से ऐसा ही अभिप्राय समझ लिया जाता है। आज भी विवाहोंमें एटा इटावा आदि को अर्थात् एटा इटावा निवासियों को

बुलावा भेजा जाता है लोग कहते हैं कि एटा आगया पर इटावा नहीं आया, जिससे यही प्रयोजन है कि एटा निवासी आगये इटावा निवासी अभी नहीं आये। इसी प्रकार पहाड़ और जंगल और टापू निवासियों को निमन्त्रण भेजे गये होंगे और वे सम्मिलित भी हुये होंगे, आज बुद्धि से न विचारने से भ्रम में पड़े हैं, आप सृष्टि नियम के प्रतिकूल किसी बात को न मानना और तर्क से सत्य बातका पता लगाती रहना। जब तक समझ में न आवे स्पष्ट कह देना कि मेरी समझ में अभी नहीं आया है, यदि अवसर हो और आप बात को लौटना उचित न समझें तो वहां हां ना कुछ न कहे पर उस बात को मन में रक्खें वा नोट बुक में लिखलें और उसको विद्वानों बुद्धिमानों की सभा में पूछने से तत्त्व बातका पता लगजावेगा।

९-एक कामिनी और वीर अर्जुन।

एक बार अर्द्धरात्रि को एक ऐसा सुन्दर रूपवाली नवयौवना स्त्री जिस को देखकर संतोष भी असंतोषी हो जावे और रूप भी लज्जित हो जावे अर्जुन के पास आई वहां पर अर्जुन ने देखकर एक श्लोक पढ़ा—

कात्वं शुभे कस्य परिग्रहो वा किंवा मद्भ्यागम कारणं ते। आचक्ष्वमे सुन्दरि पाण्डवानां नान्यस्त्रिकामा भवति प्रवृत्तिः॥

अर्थात् तुम कौन हो? किसकी स्त्री हो? क्यों इस समय आई हो! हम कुरुवंशी हैं और कुरुवंशियों में यह रीतिहै कि वे सदा पर स्त्रियों से विमुख रहतेहैं, कभी अन्य स्त्री में प्रवृत्त नहीं होते।

मातात्रों ! तुम सदैव अपने धर्म की रक्षा करना, यदि किसी दुष्ट मनुष्य से आपका पाला पड़ जावे तो उसे ऐसे २ श्लोक सुना सुनाकर उस के चित्तको उस ओरसे हटा सकती हो। तुरुषो ! तुम भी इसे भले प्रकार स्मरण कर लेना इस से अपना जीवन सुधारने में बड़ी सहायता प्राप्त होगी और जब कभी ऐसे एकान्त स्थान में फँसजावोगे तो इसका स्मरण आप का अवश्य रक्षक होगा और परमात्मा का भय दिलाकर आप को बचावेगा।

१० एक स्त्री का विपत्ति में पतिका सहायक होना और दुख बटाना।

एक साहूकार का एक पुरुष पर ऋण चाहिये था, वह बहुत काल पर्य्यन्त चुका न पाया। कई बार साहूकारने अपना ऋण चुकाने को कहा पर वह चुका न सका, अन्त को एक दिन साहूकार ने आकर अति क्रोधित हो कर ऋणी से कहा कि तुम निपट निर्लज्ज हो घर बैठ रहते हो कोई व्योपार उद्यम नहीं करते फिर किस प्रकार ऋण चुके। आज से तुम्हें शपथ है जब तक मेरा ऋण न चुकालो तब तक स्त्री से बहिन का वर्ताव करो। तब उस की स्त्री ने समझाया कि ऋण मरकर भी भरना पड़ता है, इसलिये यह अति उत्तमहै कि महान् कष्ट सहकर भी इसका ऋण जैसे बने चुकादें इसलिये जब तक न चुका पावें आज से हम और आप तब तक बहिन भाई ही सही*

* पहले समय में जिसका ऋण जिस पर चाहिए होता था वह उसके द्वार पर जाकर धरना देकर बैठ जाता था इस लिये उसके कारण घर भर भूखा रहताथा बिना उसके खिलाये और राजी किये कोई बच्चा तक नहीं खा सकताथा आजरजिष्ट्री होती है और इन्कार करदी जाती हैं। शोक का स्थान है।

मैं भी गृह में बैठी न रहूंगी किन्तु आप के साथ चल कर पुरुष के वेष में कहीं दूर देश में नौकरी करूंगी, जिससे शीघ्र ऋण चुक जावेगा साहूकार के शब्द बिलकुल उचित हैं बिना आय के कुआंभरी माया चुक जाती है। अन्त को दोनों ने यही विचार कर पुरुष के वेष में घर से पयान किया और दूर देश में जाकर दोनों ने राजमहिल के द्वार पर पहरा देने की चाकरी की और अपना २ काम करने लगे और सर्वत्र आधेमें निर्वाह करते और आधा साहूकार को भेजते जाते। दो वर्ष बीत गये पर पूरा ऋण न चुका पाये अर्थात् ऋण के भार से पूर्ण उऋण न होने पाये, एक दिन सावन का महिना था, वर्षा हो रही थी, अर्द्धरात्रि का समय था, स्त्री के मन पर कुछ प्रभाव पड़ा होगा उसके मुँह से राग की ध्वनि में यह वचन निकल गया कि -

सावन बूंद समीप हैं, पिया वीरन के भेष।
वीरन से कब पी बनैं, जो चलैं आपने देश॥

यह शब्द रानी के कान में पड़े, उसने कुछ शब्दों से कुछ बोली (आवाज़) से कुछ कथन के ढंग से कुछ उसके मन के प्रभाव से जीमें विचार किया कि यह पुरुष की बोली नहीं, यह किसी विशेषता के साथ किसी दुःखित हृदयवाली नारी के वचन हैं, इन वचनों में हो न हो कोई मुख्य भेद है। ड्योढ़ी पर जहां पहरुआ पहरा दे रहा है वहीं से यह आवाज़ उठी है, प्रातः इस का पता लगाना चाहिये, इस विचार में रात्रि ज्यों त्यों कटी, प्रातः उठ कर ड्योढ़ीवान को बुलाकर पूछा कि अर्द्धरात्रि में तुमने कुछ गाया था, वह डरी तब रानी ने कहा घबराओ नहीं कुछ डरकी बात नहीं है मुझे ठीक २

बातों और सच्चा २ हाल बता दो और यदि कोई गुप्त भेद हो तो उसे छिपाओ नहीं। अन्त को उस ने डरते २ राग और अपना आदि से अन्त तक हाल कह सुनाया जिसे सुन कर उस का शेष ऋण अपने पास से चुका दिया और उन की प्रतिज्ञा पर धन्यवाद दिया और उस रोज़ से उन के बहिन, भाई के नाते को तुड़ाकर पति, पत्नी का पुनः स्थित कर दिया। माताओ, जैसा उस स्त्री ने विपत्ति पड़ने पर धैर्य्य को धारण किया उसी भांति तुम भी कदापि गवड़ाकर हक्का बक्का न बन जाना, जैसा परमात्मा ने उन के कष्ट को निवारण किया उसी भांति वह परमदयालु आपके भी दुःखों को अवश्य दूर करेंगे और आप यशभागी बनेंगी।

११-रोमशा।

इस महा विदुषी देवी ने ऋग्वेद प्रथम मण्डल १८ अनुवाक १२६ सूक्त ७ ऋचा की टीका की है इन को धन्य है।

१२-लोपामुद्रा।

आपने भी ऋग्वेद प्रथम मण्डल १८ अनुवाक १७८ सूक्त १ और २ मंत्र की व्याख्या की है।

१३-अपला।

आपने ऋग्वेद मण्डल ८ अनुवाक ८१ सूक्त की व्याख्या की है।

१४-देवहूति।

यह सांख्यशास्त्र के रचयिता कपिल मुनि की माता थीं जो एक बड़ी योग्य पंडिता थीं।

१५--लक्ष्मीदेवी ।

इन्हों ने मिताक्षरा स्मृति की टीका की जो वल्लभमठ के नाम से प्रसिद्ध है ।

नोट—आपको दो एक वीरांगनाओं के जीवनचरित्र आगे भी सुनाये जावेंगे, पर आपके मनमें यह प्रश्न अवश्य उठता होगा कि यह पूर्वजों की गाथा है जो सम्भव है कि समयानुकूल साक्षात् देवियां हुई हों, पर वर्त्तमान समय में उनका अनुकरण, उनका अनुगामी होना अति दुस्तर है । माताजी ! उनके पास भी वे ही साधन परमात्मा ने दिये थे जो अब आपको दिये हैं, उन्होंने उनसे काम लिया था पर आपने काम लेना छोड़ दिया । यदि आप भी फिर काम लेना आरम्भ करदें तो शनैः २ आप नहीं तो आपकी सन्तान वा सन्तान की सन्तान अवश्य उनका अनुकरण करके दिखला सकेंगी। वर्त्तमान में भी किन्ही २ ने करके दिखाया भी है ।

भरतवर्ष के अतिरिक्त अन्य देशों में स्त्रियां बड़ी योग्य और पूर्ण विदुषी हैं जापान में ६० प्रति सैकड़ा ग्रेजुएट उच्च शिक्षा प्राप्त किये हैं, इंगलैएड में स्त्रियों के शिक्षार्थ इतने कालिज आदि हैं कि उनको केवल देखने से ही भारतवर्ष की स्त्रियां, स्त्रियों के लिये अच्छे २ विद्यालय चलाने के लिये प्रवन्धादि के विषय में बहुत कुछ सीख सकती हैं । जो शिक्षा भारतवर्ष में अभीतक नहीं मिल सकती. अन्य देशोंकी योग्यता और पुरुषार्थ से पाठ ले सकती हैं पर उन देशों में पूर्ण धार्मिकशिक्षा न होने से योग्य होती हुई भी अभी हमारी पूर्व माताओं से बहुत परे हैं । यदि आप उनका अनुकरण करें तो केवल इतना कि विद्या के सीखने पढ़ने में परिश्रम करें,

पर धार्मिक शिक्षा जिसमें परमात्मा के अस्तित्व का और उसकी आज्ञापालन से ही सुख प्राप्ति का ज्ञान प्राप्त होसके कदापि त्याग न करना। सुनिये आपके देश में भी स्त्रियों के लिये कलकत्ता और मैसूरवालों ने कुछ करके दिखलाया है, वहां उच्च शिक्षाका अब सब स्थानों में कुछ न कुछ विचार और प्रबन्ध हो रहा है। देखिये,

बंगालमें स्त्रियोंका विश्वविद्यालय की परीक्षाका उत्तीर्ण करना।

यदि पुरुषों की भाँति स्त्रियों को अपनी योग्यता प्रकाशित करने का अवसर दिया जावे तो कौनसा ऐसा काम विद्या और परिश्रम सम्बन्धी है जो स्त्रियां नहीं कर सकतीं। राजकीय विश्वविद्यालय की परीक्षा सन् १६०८ ई० में जो कितनी कठिन है, जिसका वर्ष के अन्त पर फल प्रकाशित होने पर पुरुष भी सदा चिल्लाते हैं, परन्तु बंगाल प्रान्त के ब्राह्म और ईसाई घरानों की कितनी ही कन्यायें इस समय बी० ए० और एम० ए० हैं, इस वर्ष में भी ५ ब्राह्म कन्यायें बी० ए० परीक्षा में उत्तीर्ण हुई हैं और कितनी ही एफ० ए० इंट्रेंस में उत्तीर्ण हुई हैं।

दिल्ली में मुसलमान स्त्रियों की एक सभा (अंजुमन) बनी है, जिसके अनेक अवसरों पर अधिवेशन होते हैं। उसमें दिल्ली की लिखी पढ़ी मुसलमान स्त्रियां एकत्रित होती हैं और विविध विषयों पर व्याख्यान आदि देती हैं। दिल्ली के एक मासिकपत्र के मुसलमान सम्पादक की धर्मपत्नी इस काम की चलानेवाली हैं। लाहौर से एक तहज़ीबनिसवां

(स्त्रियों की सभ्यता) नामक एक मासिकपत्र निकलता है जिसकी सम्पादिका विदुषी मुसलमान स्त्री है और इस पत्र में विशेषतः मुसलमान स्त्रियों के लिये उपयोगी सर्व प्रकार की बातें होती हैं, भाषा बड़ी ललित होती है। कभी २ नीति के उपदेश छोटी कथाओं के द्वारा दिये जाते हैं। अलीगढ़ के एक मुसलमान वकील खातून (स्त्री) नामक एक पत्र निकालते हैं इन्होंने अलीगढ़ में मुसलमान कन्याओं के लिये एक बड़ी अच्छी पाठशाला चलाई है, एक और परदानशीन नामक मासिकपत्र भी स्त्रियों के लिये उर्दू में निकलता है; इनके अतिरिक्त अभी सन् १६०८ ई० से पातिव्रतधर्म नामक पत्र दिल्ली से नया ही प्रकाशित होना आरम्भ हुआ है इसके सम्पादक और सम्पादिका एक मुसलमान विद्वान् और उनकी धर्मपत्नी हैं। योग्यता, विद्वता और उपयोगी विषयों से पूरित होनेके कारण किसी भी मासिकपत्र से न्यून प्रशंसा योग्य नहीं है और आशा है कि थोड़े ही दिनों में इस मासिकपत्र का भी अच्छा प्रचार हो जावेगा।

सिक्खों में स्त्रियों की शिक्षा का प्रचार

इन में भी गुरुमुखी द्वारा स्त्री-शिक्षा का अच्छा प्रचार हो रहा है। कोई भी नगर ऐसा नहीं है जहां सिक्ख कन्याओं के शिक्षार्थ गुरुमुखी की पाठशालायें न हों, और कहीं २ सिंह सभाओं ने भी अपनी पाठशालायें खोल रक्खी हैं। फ़ीरोज़पुर में एक बड़ा भारी खालसा कन्या महाविद्यालय खोल रक्खा है, जिसके सम्बन्ध में एक आश्रम भी है, जिस में कोई लगभग दोसौ कन्यायें निवास करती हैं। गुरुमुखी जानने वाली स्त्रियों में स्त्री जाति की उन्नति के लिये समाचारपत्रादि भी

प्रकाशित होते हैं, जिस के सम्पादक भाई तख्तसिंह हैं। अमृतसर से एक मासिक पत्र निर्गुणयारा प्रकाशित होता है, इस में अधिकतर कथाओं द्वारा उपदेश होता है। कोयटा से एक हाप्ताहिक पत्र स्त्री समाचार नामक प्रकाशित होना आरम्भ हुआ है, इसकी सम्पादिका एक स्त्री हैं।

इस प्रकार स्त्री जाति की उन्नति के लिये वर्तमान में भी सब जगह सब ओर कुछ न कुछ होरहा है। प्रत्येक शहर क़स्बे ग्राम में भी स्त्री-शिक्षार्थ सरकार की ओर से और नगर निवासियों की तरफ़ से यत्न होरहा है।

१६--श्रीमती हरदेवी।

यह तो इंगलिश (अंग्रेज़ी) अच्छी जानती हैं विलायत हो आई हैं, श्रीमान् बा० रोशनलाल जी बी० ए० बैरिस्टर पेटला को ब्याही हैं, आप की योग्यता से बहुधा स्त्रियां जानकार हैं, इनकी भारत-भगिनी नाम्नी समाचार पत्रिका लाहौर से निकती है।

१७--भगवती देवी।

यह सचैंडी ज़िला कानपुर की रहने वाली हैं, यह वनिता-सम्पादिका कानपुर की सम्पादिका हैं।

१८--चन्द्रकलाबाई।

आप ने कवियोंके संग समस्यापूर्ति करके कई बेर पारितोषिक पाया है, इनका रचा हुआ करुणाष्टक भी है।

१९-हेमन्तकुमारी।

यह प्रसिद्ध व्याख्याता पण्डित नवीनचन्द्रराय की दुहिता हैं और बड़ी योग्य सम्पादिका हैं।

२०-प्रेमदेवी।

यह पञ्जाब देश की निवासिनी हैं, आप ने १८८८ ई० में डाक्टरी पास किया था।

२१-श्रीमती जगन्नाथन।

आप विज़ीगापट्टन की रहने वाली हैं, आप की योग्यता का वर्णन नहीं हो सकता है। आप ने सन् १८९० ई० में एल० और सी० पी० ई० की उपाधि प्राप्त की थी।

२२ कुमारीविधुमुखी बोस।

यह डाक्टरीमें एल० एम० एस० परीक्षा देकर उत्तीर्ण हुई हैं।

२३ कुमारी सौराबजी।

यह बी० ए० पास हैं इन्होंने विलायत जाकर लण्डन में व्याख्यान भी दिया था, आप पूना की रहने वाली बड़ी योग्य और प्रसिद्ध हैं।

२४ एमेरिका की स्त्रियां।

नौ हज़ार डाक्टरी पास किये हुये, डाक्टरका काम करती हैं और सहस्रों की गणना में छापेखानों में पुरुषों की भांति वरन् उन से भी अच्छा छपाई का काम करती हैं और पुरुषों की बराबर वेतन पाती हैं।

२५ लंडनकी स्त्रियां।

कल की बातहै कि महारानी मलिकाविक्टोरिया इस देश में राज करती थीं, ६० वर्ष से अधिक राज किया, कई भाषायें जानती थीं, इनके अधिक चरित्रों के लिखने की इस कारण आवश्यकता नहीं कि सब इनकी योग्यता से परिचित हैं।

लण्डन में अठारह सहस्र स्त्रियां तो संवादपत्रों में काम करतीहैं; सम्पूर्ण इंगलैण्डमें १६६ स्त्रियां बड़े २ व्यापार करती हैं, सहूकारी की कोठी चलाती हैं, ७६५ दलाली और आढ़त करती हैं, १६ हुन्डी की दुकान करती हैं, ६८५ माल मोल ले कर वेचतीहैं, १६७ व्यापारी वन कर देश विदेश भ्रमण करती हैं, १७८५५ लेखक का दफ़तरों में काम करती हैं, ६६० संवाद-पत्रों में सम्पादिका हैं, १२६ संवाददाता हैं, ३६७० नाटक पात्री हैं।

२६ श्यामदेश।

४०० स्त्रियां सिपाही का काम करती हैं।

जापान की स्त्रियां।

फ़ी सैकड़ा ६८ पढ़ी लिखी हैं, केवल २ प्रति सैकड़ा मूर्खा हैं, उनमें ६० से अधिक ग्रेजुएट हैं, इन्हीं का प्रताप है कि यहां ऐसी उन्नति हो रही है।

भारतवर्ष की स्त्रियां।

आप सबको विदित है कि इस देश में तीस पैंतिस वर्ष पहिले अंग्रेज़ी शिक्षा के प्रभाव से बंगदेश की कुछ स्त्रियों के अतिरिक्त सब निपट मूर्खा थी, सैकड़े पीछे एक भी पढ़ी हुई न थी। आज ऋषि के सत्योपदेश के प्रताप और अंग्रेज़ी राज के प्रभाव से दिनों दिन इस देश में इस ओर ध्यान हो रहा है, जो बड़े हर्ष की बात है। वैदिक धर्मावलम्बियों की कन्याओं के लिये जो शिक्षा मिशनरियों द्वारा प्राप्त हो रही है वह बड़ी हानिकारक है। धर्मसम्बन्धी शिक्षा अपने हाथ में होना ही उत्तम है, इस थोड़े से काल में ही जितनी हानि पहुँच चुकी है वह आप सब पर विदित होचुकी है। यदि इस ओर ध्यान नहीं दिया तो एक दिन अति शोक के आंसू बहाना होंगे। कन्याओं को ऐसी शिक्षा दिलाना उचित है कि वे अपने साथ जाने वाले धर्म को निम्नलिखित दो भारतभूषण वीर स्त्रियों की भांति कदापि न त्यागें, सचाई और नेकी की मूर्ति बनकर सदा उसी का प्रचार करें।

वीरमती।

धारानगर के राजा उदयादित्य की दो रानियां थीं, बड़ी सुंकनी छोटी वघेलिनी। संसार में एक भी उदाहरण ऐसा नहीं जो इस बात को सिद्ध करे कि एक से अधिक स्त्रियांकर के उसे अपनी आत्मा के विरुद्ध कार्य्य न करना पड़ा हो वा वह सब को समदृष्टि से देख सका हो, उसी नियम के अनुसार यह भी छोटीसे अधिक प्रेम रखता था,इन दोनोंके एक २ पुत्र था, बड़ी रानी का बड़ा पुत्र और छोटी का छोटा था, धर्म और नियमके अनुसार बड़ा बेटा राज अधिकारी था एक दिन राजा ने बड़े पुत्र जगदेव को जो बड़ा होनहार, साहसी, पराक्रमी था, जो टोंकटोड़ा की राजकन्या वीरमती से विवाहा था नीचे लिखे हुए वृत्तान्त से यथा नाम तथागुणः वीरमती के चरित्र से आप लाभ उठावें। एक दिन राजा उदयादित्य राजकुमार जगदेव से अत्यन्त प्रसन्न हुए और उसको घोड़ा, जोड़ा, ढाल, तलवार हीरे के दस्ते की कटार पारितोषिक (इनाम) में दी, जिससे धारानिवासियों और जगदेव को अति हर्ष हुआ। मनुष्य लाखों रुपया पैदा करता है, पर इतना हर्ष उसे कभी नहीं होता जितना कि पुरस्कार (इनाम) में साधारण वस्तु के मिलने पर होता है। इससे जगदेव को न्याय होने और अपना हक़ मिलने का विश्वास हो गया, परन्तु त्रियाहठ तो प्रसिद्ध ही है और यह भी प्रसिद्ध है कि [सौत बुरी है चून की, और साझे का काम] वा [नारी नदी अथाह जल, डूब मुआ संसार] कब सम्भव था कि छोटी रानी जिसे राजा अधिक प्यार करते थे, सौत के सब तरह से योग्य पुत्र की इस प्रतिष्ठा को देख सकती, राजा से आकर

कहा कि आप इस को लौटा लीजियें, और मेरे पुत्र रणधृलि को दिलवाइये. यदि ऐसा न किया तो प्रजा अभी से जगदेव की हितैषी बन जावेगी। सच है, संसार में बन्धन बहुत हैं, पर मोह का बन्धन अति कठिन है। भौंरा जो लकड़ी और बांस को काट डालता है, पर कमल की पत्ती को प्रेमरज्जु में फंसा हुआ नहीं काट सकता। वह राजा बहुत घबराया, एक दो बार रानी को समझाया कि लौटाने में मेरा बड़ा अपयश होगा और सदा के लिये कलंक का टीका मेरे माथे पर लगेगा, मुझपर फिर कौन विश्वास करेगा। पर रानी ने एक न मानी, और ऐसा कपट जाल फैलाया कि राजा को उसकी बात माननी पड़ी, उसने बड़े बेटे को बुला भेजा और कहने लगा कि यदि तू मेरा जीवन चाहता है तो जो वस्तुयें मैंने तुझे दी हैं लौटा दे, तू क्षत्रिय पुत्र है, हट करना ठीक नहीं। उस समय वह १६ वर्ष का ही था तिस पर भी वह लौटाने के कारण को समझ गया. सब का सब लौटादिया और निवेदन किया कि मैं आप के कष्ट का कारण नहीं बनना चाहता, न झगड़े को अच्छा समझता हूं, प्रणाम करके चला आया। परन्तु आखिर मनुष्य था, सोचने लगा कि पिता की आज्ञापालन के विचार से पारितोषिक का लौटा देना तो उचित था, परन्तु अपमान के साथ जीवन बिताना क्षत्री धर्म्म के बिलकुल विरुद्ध है, उस जीवन पर धिक्कार है जिसका हर समय अपमान होता है. परमेश्वर ने हाथ पैर दिये हैं, दूर देश में जाकर कमाकर निर्वाह करलूंगा (किंदूरं व्यवसायिनाम्) उद्योगी पुरुष को क्या कठिन है। मुझे संस्कार तो माता पितासे मीरास में मिलही चुके हैं, हाथ पैर मार चल फिर कर रोज़ी पैदा ही करलूंगा, पर अपमानके साथ

अब १ घण्टे भी रहना भारी गहनहै। यह सोचकर प्रसन्नचित्त मुसकुराता हुआ अपनी माता के निकट गया, माता हँसता हुआ देख कली की भांति खिलगई, समझी कि यह उसी इनाम के मिलनेसे प्रसन्न है, परन्तु जब उसने सम्पूर्ण वृत्तान्त और अपना संकल्प सुनाया कि माता जी, मान भंग से पुरुष की मोती कैसी आब उतर जाती है, वह कौड़ी काम का नहीं रहता, पेड़ यदि अपने स्थान से चल फिर सक्ता तो क्यों आरे से चीरा जाता। माणिक, मोती अपनी खान से निकल कर ही प्रतिष्ठा पाते हैं, तलवार मियान से निकल करके ही सुर्खरू होती है, सच है-"घर में कबहूं ना मिले, नाम मान नवनिद्ध। जब ही जाये विदेश नर लहे मान और ऋद्ध"। मैं विदेश जाता हूं मैं आप जैसी सिंहनी का पुत्र हूं। ऐसे अपमान को कब सहन कर सक्ता हूं। माता को अपने पाससे पुत्र को जाने की आज्ञा देना सहज नहीं था, उसने परमात्मा सर्व रक्षकको सौंप कर और यह कहकर कि मैं तेरे उत्साहको नष्ट और तेरे जीवनको भ्रष्ट करना नहीं चाहती, जाने की आज्ञा दे दी। माता की आज्ञा लेकर हाथियार लगाकर मुहरों का तोड़ा साथ लेकर माता के पग छूकर ईश्वर के भरोसे पर घोड़े पर सवार हो पूर्व की ओर चल दिया। वह टोकटोड़ा की ओर जा रहा था, जब उस राज्य में पहुंचा तो अपनी ऐसी दशासे किसी को परिचित करना उचित न समझा, नगर से बाहर रम्य वाटिका थी उसमें चला गया और एक पेड़ के तले ज़ीन सिरहाने रख बिस्तर बिछा बैठ गया और आलस्य आजाने से लेट गया। लेटना था कि बिलकुल बेसुध सो गया। दैवयोग से और उसके भाग्य से वीरमती उसकी धर्मपत्नी सहेलियों के साथ वायु सेवन को आई थी, उसके विवाह को चार वर्ष

होगये थे पर दोनों के दर्शन स्पर्शन का समय नहीं आया था। वह लड़की तो वाटिका में घूम रही थी, सहेलियां वर्षा ऋतु के गीत गान कर रही थीं, इतने में एक सहेली इस ओर आई जिधर राजकुमार जगदेव गाढ़निद्रा में सो रहा था, अन्य पुरुष का राजा के उद्यान में चला आना बड़ा आश्चर्य्यजनक था, देरतक घोड़े को और उसके मुख को देख कर पहिचान गई और दौड़कर वीरमती को विश्वास दिला कर कहा कि तेरे प्राणनाथ आज पधारे हैं, चलकर देखलें। उसने जो पेड़ की ओटसे देखा तब तक वह जागकर बैठ गये थे, एक सखी ने जाकर उन से हाल पूंछा, दूसरी सखी दौड़ी गई और वीरमती के लघु भ्राता वीरसिंहको सूचना दी, इधर वीरसिंह महिमानदारी के सारे पदार्थ साथ ला उपस्थित होगया, उधर वह घोड़ा कसकर जाने की तैयारी कर रहा था, वीरसिंह ने पैर छूकर निवेदन किया कि पिताजी ने आपको देखने के लिये मुझे बुलाने को भेजा है, आप चलिये, अधिक कहा सुनी से पांच दिन तक ठहरने को तत्पर हो गये, बहुप्रकार से सुश्रूषा की गई, सायं समय जा सास ससुर के दर्शन किये, पूछने पर सारा वृत्तान्त कह सुनाया। राजा ने उससे कहा कि यह भी तुम्हारा ही घर है, तुम आनन्द पूर्वक रह सकते हो। किन्तु उसने कई कारणों से वहां रहना स्वीकार न किया। रात्रि को वीरमती उनसे मिली और कहने लगी कि आप विदेश जारहे हैं, मैं भी आपके साथ चलूंगी और आपकी सेवा कर अपने धर्म की रक्षा करूंगी। जगदेव ने समझाया कि मैं इस समय अकेला हूं, कोई दूसरा सहायक नहीं, आपको दुःख होगा। वीरमती ने कहा कि मैं इसीलिये आपके साथ चलती हूं कि आप को कष्ट न हो। जगदेव ने कहा कि अभी तुम्हारी चौदह

पन्द्रह वर्ष की अवस्था है, दुनियां के नीच ऊंच दांव पेच नहीं जानतीं, परदेश में न जाने क्या २ संकट उठाने पड़ें, इस लिये आप इस समय ऐसा संकल्प न कीजिये। वीरमती ने उत्तर दिया कि जो अपनी पत्नी को साथ रखना नहीं चाहता वह विवाह का अधिकारी नहीं. मुझे इतनी बुद्धि है, मैं आपके सुख दुःख को समझती हूं, मैं भी आखिर क्षत्राणी हूं. अब मैं कभी भी आपका संग न छोड़ूंगी. चाहे कुछ क्यों न हो, दुःख सुख दोनों में साथ रहूंगी। अन्त को उसको साथ चलने की आज्ञा देना पड़ी। छठवें दिन पाटन देश का रास्ता पूंछकर जो अभय मार्ग था उसको त्याग कर और जिधर होकर एक दो बटोही भी नहीं जाता था, जगदेव जाने को तत्पर हुआ। वीरसिंह तीन सौ सवार पहुंचानेको भेजता था, वीरमती भी समझाती थी कि विकट रास्ते को त्याग सीधे पर चलना चाहिये, परन्तु उसने न माना, जिससे वीरमती का चित्त बड़ा प्रसन्न हुआ कि मेरा पति दिलचला वीर है और कहा कि धन्य तेरी माता है कि जिसके उदर से तू उत्पन्न हुआ। अच्छा चलो मैं भी सिंहनी से नहीं डरती, परन्तु आप अपने दाहिने हाथ की घास फूंस झाड़ियों को देख रहिये, मैं बांयें हाथ की ओर देखे रहूंगी। इसी प्रकार दोनों भयानक राह से चले, रात्रि के समय लकड़ी इकट्ठी कर अग्नि प्रज्वलित कर लेते थे। एक दिन रास्ते में एक सिंह दृष्टि पड़ा, जगदेव ने ललकारा, सिंह छलांग मारता हुआ ऊपर आया, पर जगदेव का एक तीर संसनाता हुआ ऐसा छूटा कि उससे उसकी एक आंख फूट गई, दूसरे से उसका परलोकगमन हो गया। निकट ही बैठी हुई सिंहनी ने अपने सिंह की दशा देख तड़पकर वीरमती पर आक्रमण किया, इसने भी एकही तीर से उसका काम तमाम

किया, जिससे दोनों बड़े प्रसन्न हुये। वीरमती ने हँसकर कहा प्राणनाथ! ऐसा आखेट से कैसा चित्त प्रसन्न होता है। सिंहों को मारकर आगे बढ़े जहां एक रमणीक सरोवर देख घोड़ोंको पेड़ों में बांध आराम करने लगे। यह दोनों बैठेही थे कि इतने में पिता की आज्ञा से वीरसिंह घोड़ों की टापों से पता लगाता तीन सौ सवारों के साथ इनकी रक्षा के लिये रास्ते में एक ओर सिंह एक ओर सिंहनी मरी पड़ी देखता हुआ आ पहुँचा वे दोनों उठे और प्रेम से उससे गले मिले। वीरसिंह ने कहा कि आप वास्तविक क्षत्री हैं, इन दुष्टोंने सैकड़ों का वध किया था, कोई भी इनको न मारसका था। तब जगदेव ने मुसुकुरा कर कहा कि इन सिंहों को मारने वाली वह क्षत्रानी है, यदि वह साथ न होती तो मुझे तो दीख भी न पड़ते और सिंह से सिंहनी अधिक भयानक होती है, जिसे वीरमती ने मारा है। वीरसिंह ने अपनी बहिन की ओर आश्चर्य और हर्षकी दृष्टिसे देखा और लौट गया। यह पाटन नगरके निकट पहुँच जगदेव एक वृक्ष से घोड़ा बांधकर और वीरमती को समझाकर नगर में रहने के लिये मकान के प्रबन्ध को गया। जिस स्थान पर घोड़े बंधे थे उसके निकट एक सरोवर सुरलिंग नामी था, जगदेव नगर में है वीरमती उसके आने का पैंड़ा हेर रही है कि इतने में एक जामवती नामी राजवेश्या की दासी उधर आ निकली, उसने उसे अति सुन्दरी देख घोड़ों के सवार और नाम स्थानादि का पता पूछा। वीरमती ने साधुता से यथार्थ बता दिया, दासी एक भला भोलाभाला शिकार जान झट वेश्या के पास जा वृत्तान्त सुनाया, वह वेश्या अपनी बीस पचीस छोकरियों को बढ़िया वस्त्र आभूषण पहिनाकर आप भी अच्छे वस्त्र धारण कर रथ में सवार हो वहीं आ उपस्थित

हुई और जामवती वीरमती के पास पहुँच कहने लगी कि वह उठो मैं यहां की रानी हूं और जगदेव की बुआ और तुम्हारी फुफुआ सास हूं, उठ तुझसे गले मिलूँ, मैंने तुम्हारे आने का हाल अभी सुना, इससे रथ लेकर तुम्हें लेने को आई हूं। मैं उस समय गई थी जब जगदेव का विवाह टोंकटोड़ा में हुआ था, मैं केवल रणधूलि से मिल सकी थी, जगदेव मेरा भतीजा कहां है ? तुम एक बड़े उच्च कुल की कन्या हो, तुम मेरे साथ महल में चलो, मैं तुम्हें देख बड़ी प्रसन्न हुई हूं। वीरमती जानती थी कि सिद्धराज को जगदेव की बुआ विवाही थी, बड़ी प्रसन्न होकर कहने लगी कि तुम्हारा भतीजा आता होगा, मुझे न पाकर बड़े दुःख में पड़ जावेगा। उसने कहाकि घबड़ाने की कोई बात नहीं, मेरे आदमी यहां रहेंगे, वह उस को संग ले आवेंगे। यह समझा कर वह अपने एक बड़े सजे हुए घर में जो महल के तुल्य था ले आई और आदरपूर्वक बिठाया। वीरमती को उसके शृंगार की वस्तुओं को देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ। जामवती ने इस भांति प्रथम से ही प्रबन्ध कर रक्खा था, जिसमें कि वीरमती को कुछ संशय न हो। सायंकाल के समय पर इसके सामने भोजन लाया गया, इसने मना किया कि श्रेष्ठ स्त्रियां पति के भोजन किये बिना भोजन नहीं करतीं। तब जामवती के इशारे के अनुकूल उस की बांदियां इन उत गईं और कह दिया कि जगदेव को राह में राजा मिल गया, वह वहीं राजा के पास बैठा हुआ भोजन कर रहा है और राजा ने कहा है कि वहां वीरमती को किसी प्रकार का कष्ट न होने पावे। उन लौंडियों ने वह बातें ऐसे ढंग से कहीं थीं, जिससे इसे कुछ भी सन्देह उत्पन्न न हुआ और कुछ भोजन भी कर लिया। फिर दिल बहलाने की बातें

होने लगी, जब रात के ६-१० बज गये जगदेव न आया तो यह घबराई। जामवती बड़ी चालाक थी, उसने तसल्ली देकर कहा बेटी, तू किसी पराये घर नहीं है, मेरा भतीजा आता होगा, यदि तुझे नींद लगी हो तो जा ऊपरके कमरे में सोरह। ऊपर सोनेके लिये बड़ी सुन्दर मसेहरी नाना प्रकारकी वस्तुएं थीं, वीरमती जाकर चारपाई पर लेट रही। जामवती का नगर के कोतवाल के लड़के से प्यार था, दस बजे वह आया. जामवती ने वीरमती का सारा हाल उसे कह सुनाया और ऊपर जाने को कहा, जिसका नाम लालकुँवर था, वह शराब के नशे में बिलकुल बेहोश था। लौंडियों ने जाकर किवाड़ खटखटाया कि वहू दरवाज़ा खोलदे राजकुमार आता है कि-वाड़ खुलते ही तुर्त लालकुँवर कमरे में प्रविष्ट होगया, फिर लौंड़ियों ने पट बन्द कर दिये। जब वीरमती ने लालकुँवर को देखा, वह धकसी रह गई. सोची कि धोखा दिया गया। लाल कुँवर ने हाथ वढ़ाया, उसने उसे हाथ से धक्का दे दिया, वह वेहोश था ही नीचे एक ओर गिर पड़ा, तब इसने सिंहिनी की भांति तड़पकर उसकी कमर से कृपाण निकाल उसका शिर धड़ से अलग कर दिया। और भीतरसे किवाड़ बन्द कर लिये। यह भयभीत बहुत थी परन्तु प्रसन्न भी बहुत थी कि ईश्वर की दया से मेरे धर्म को कोई हानि न पहुँची। वह सोचती हुई मृतक शरीर के पास बैठी रही। इतने में आधी रात होगई, चौकीदार बोलने लगे, उसने सोचा कि इस दुष्टा ने बड़ा छल किया; मुझे घबड़ाना धैर्य्य छोड़ देना नहीं चाहिये. इसने आधीरात के समय चौकीदारों की आवाज़ सुनकर मृतक लाश को उठा कर बाहर सड़क पर फेंक दिया, जिस के गिरने की आवाज़ को सुनकर चौकीदार चारों ओरसे दौड़

पड़े। कोई चोरके पैर फिसल जाने को, कोई कुछ मनमें विचार करके उस लाश को कोतवाली में ले गये। जिस समय कोतवाली पहुँची तमाम मनुष्य जुड़ गये, उसके साथी संगियों ने कपड़े और अन्दाज़ से अनुभव किया कि यह तो लालकुँवर सा है, परन्तु कोई कहे नहीं, एक ने कहा कि देखो तो लालकुँवर कहां है ? एक ने बताया कि जामवती के यहां गया था, जब वहां पहुँचे, तब उसने बता दिया कि एक स्त्री के पास छत पर सोता है, तब आदमियों ने जा खटखटाया, पर कुछ उत्तर नहीं आया, तब जामवती ने स्वयं आकर कहा कि दरवाज़ा खोलदो, तब वीरमती ने वीररूप धारण कर उत्तर दिया कि अरी दुष्टा निर्लज्ज ! दो २ रुपयों के लालच से अन्य पुरुषोंके सामने नंगी हो जाने वाली ! तूने क्या जान कर एक पतिव्रता क्षत्री कन्या को धोखा दिया ? तूने छल से मेरा सत्य, व्रत नष्ट करना चाहा तू नहीं जानती थी कि मैं वीरमती हूं, तुम जैसी सहस्रों पैरसे रौंदने योग्य के सारे कुटुम्ब का नाश कर दूंगी और तुझ को भी वहीं भेज दूंगी जहां यह तेरा निर्लज्ज छोकरा गयाहै। जिसे सुन जामवती का हृदय कम्पायमान हो गया, समझ गई कि कोतवाल का लड़का मारा गया और सभी जान गये कि इस दुष्टाने आज धोखा दे किसी ठकुरानी को फांसा है, जिसका यह परिणाम हुआ। इतनी बात चीत में सवेरा हो गया, परन्तु वीरमती ने दरवाज़ा न खोला। अन्त को एक खिड़की जो ज़रा टूटी थी उसके रास्ते से एक पुरुष ने जाने का साहस किया पर वीरमती की तलवार ने बिजुली की भांति चमक कर उसके शिर को तन से अलग कर दिया इसी प्रकार पांच आदमी एक दूसरे के पीछे मारे गये, फिर किसी को साहस न हुआ कि भीतर घुसे, सब के वीरमती ने

हाथ पांव फुला दिये। जब इसकी खबर सिद्धराज को पहुँची. उसने कहला भेजा कि जिस समय तक मैं न आऊं तब तक कुछ कार्यवाही न करना। सब उसके आने की बाट देखने लगे। अब उधर जगदेव का हाल सुनिये, जगदेव एक गृह किराये पर ठहरा कर जब लौटा तो यहां न घोड़े पाये न वीरमती को, बड़ा दुःखित हुआ। इधर उसी दिन राजस्तबल के दारोग़ा ने उसे नौकर रख लिया। रात्रि को भोजन भिजवाया, इस से कुछ न खाया गया, प्रातः राजा के लिये सवारी के घोड़े लगवाने यह गया और राजा से भेट होगई और एक घोड़े पर सवार यह भी राजाके साथ जामवती के स्थान पर आया। सिद्धराज ने जान लिया कि घर भीतर कोई राजपूतनी है, दरवाज़े के पास आकर कहने लगा कि बेटी, बता तो सही कि तू कौन है, किसकी स्त्री है। तेरे सास, सुसर कहां रहते हैं। डर मत, मैं यहां का राजा हूं। वीरमती ने भीतर से पिता कह कर उत्तर दिया महाराज, मैं वीरमती हूं, टौंकटोड़ा के राजा की पुत्री धारानगर के राजपुत्र की बहू और वीरसिंह की बहिन हूं। राजा ने पूंछा तूने हमारे आदमियों को क्यों मारा, वह बोली इस दुष्टा ने अपने को रानी बताया था, यह मेरी फुफुआ सास बनी थी, यह धोखा देकर यहां लाई थी। मेरे पतिव्रत धर्म को इसने, जो मरने के पश्चात् भी मेरा साथी होगा, नष्ट करना चाहा था, मरता क्या न करता मैंने किसी को नहीं मारा, केवल अपने धर्म की रक्षा की। यदि मैं न मारती तो मेरा धर्म कैसे बचता। मेरा पति घर के खोज में आप के नगर को गया था, इतने में यह ले आई। आप उसे बुलादीजिये मैं अभी खोले देती हूं। यह सुनते ही जगदेव आगे बढ़ा और कहा प्रिया, मैं आगया। हा! तुझ को बड़ा

कष्ट मिला। अभी यह शब्द मुख से निकलने भी न पाये थे कि दरवाज़ा खुलगया और वह राजपूतनी जो अभी तक सिंह की भांति कठोर हृदय बनी थी, रोती बाहिर निकली, जगदेव के शरीर से चिमिट गई कि हे प्राणनाथ! सचमुच यह समय बड़े कष्ट का था, इनका प्रेम देखकर सिद्धराज का हृदय मोमवत् पिघल गया और कहा कि आज से तू मेरी धर्म्म की बेटी है और चल आज से तू सच्चे राज मन्दिर में रह। फिर वे दोनों बड़े आनन्द से वहां रहने लगे। हा! माताओ, यह एक नारि थी कि जिस से देश की, जाति की, कुल की शोभा थी, क्या तुम इस के जीवन से शिक्षा ग्रहण न करोगी। यद्यपि तुम अपने कर्म धर्म को बिलकुल छोड़ चुकी हो, तथापि आप से आशा है कि रहा सहा तो बचा लोगी और धर्म की रक्षा के लिये प्राणों की भी परवाह न करोगी।

किरणमयी।

यह साक्षात् देवी राजा पृथ्वीराज की स्त्री महाराणा प्रतापसिंह की भतीजी और राना शक्तिसिंह सीसोदियाकुल की बेटी थी। प्रतापसिंह का नाम जगत् विख्यात है। वह देवी एक बार महा संकट में फँस गई, परन्तु यही थी जिस ने अपना धर्म बचाया। जिस की विपत्ति को सुनकर रोंगटे खड़े होते हैं। वह यों है—

आगरे में अकबर बादशाह ने नौरोज़ का मेला स्थापित किया था, जिस में अन्तिम दिवस केवल स्त्रियां ही जाती थीं, जो सुन्दर वस्त्र आभूषण धारण किये होतीं थीं, इसलिये

उसको सुन्दरी मेला भी कहते थे। उस में समस्त शाहज़ादियां अमीर उमराओं की स्त्रियां बेगमात बेगमज़ादियां आती थीं जिनके रूप स्वरूप का वर्णन करना ऐसी किताब में अनुचित है। जिस स्थान पर मेला लगता था उस के चारों ओर एक घेरा था, यह मैदान लम्बा चौड़ा था, ऊंची चांदनी तनी होती थी, ग़लीचा क़ालीन मख़मली बिछौने बिछे दुकानों के आगे हरे हरे पौदे बेलें आदि शोभायमान थीं, हर दुकान पर साफ़ मुंह देखने को आईने लगे थे, नाना प्रकार के खाने पीने के सामान उपस्थित थे, सुन्दरियां ही सुनने वाली सुन्दरियां ही गानेवाली सुन्दरियां ही बजाने वाली थीं। परन्तु इस सुन्दरी स्थान पर एक सुन्दर पुरुष भेष बदले हुये छिपे २ सुन्दरियों को देखता फिरता था, जो धुरन्धर राजपुञ्ज मुग़लसम्राट अकबर था। यह यहां अपनी प्रजा के हार्दिकभाव जानने को नहीं आता था; वरन् उसका कोई और ही भाव था। वहां सुन्दरी ही विक्रेता और सुन्दरी ही क्रेता थीं। उन सुन्दरियों के बीच में मुग़लकुल तिलक अकबर सुन्दरियों में सुन्दरी बनकर वाणिज्य व्योपार की दशा देखने आते थे। मेले में सब स्त्रियां हिन्दू मुसलमान प्रायः सभी सुन्दरी गण बड़ा आनन्द मनाती फिरती थीं। उन में केवल किरणमयी एक स्त्री कुछ उदास और गम्भीर भाव से चुपचाप एक स्थानपर बैठी हुई थी, तो भी वह सब से अधिक सुन्दरी लगती थी, उसके पास और कोई स्त्री नहीं थी। इसपर भी वह राजराजेश्वरी की नाईं अकेली बैठी भी अपने ही ध्यान में मग्न थी। वह किसी से मिलती जुलती नहीं थी तौभी मेले का समस्त आनन्द उस के मन को अपनी ओर खींचने का प्रयत्न कर रहा था। उस सुन्दरीमय सुन्दर मेले में मानो वह माथे पर

हाथ रक्खे हुये अपनी स्वतन्त्रता की रक्षा कर रही थी, भारतवर्ष की चुनी २ सुन्दरियों में यह सुन्दरी एक रत्न थी। इतने में एक शाहज़ादी जाकर उसके निकट गद्दी पर उस से लगकर बैठगई और उससे बोली कि आज ऐसे हँसी खुशी के दिन भी आप मन मैला किये क्यों बैठी हो। यह सुनते ही वह बोला कि नहीं मैं यहां बैठे २ ही मेले का सब आनन्द देख रही हूं। फिर शहज़ादी बोली बिलकुल झूठ, मैं बराबर देख रही हूं कि अकेली आप यहां मन मैला किये बैठी हैं, आखिर इस मन मैला किये बैठे रहने का कारण क्या है ? तब उसने कहा कि आप ने मेरा हाल पूंछ कर बड़ी कृपा की, मैं उसका आपको धन्यवाद देती हूं, परन्तु मैं तो बहुतही प्रफुल्लित हूं, फिर शहज़ादी न कहा कि आपने साफ़ तो बताया ही नहीं कि आपके दिल में दर्द क्या है ? तब भी सुन्दरी ने हँसकर कहा दर्द कैसा, फिर शाहज़ादी ने कहा कि हिन्दू मुसलमानों की सब स्त्रीयां मिलजुल कर आनन्द उड़ारही हैं क्या यही आपको पसन्द नहीं है ? तब किरणमयी ने फिर हँसकर कहा कि नहीं २, राजपूतों की स्त्रियां तो आपकी सखी सहेली घरबार बरन् नाते रिश्ते कुन्बे की ही हैं। तब उसने कहा कि आप के मन में तो यह है नहीं ज़ुबान से चाहे कुछ कहो, आखिर मैं भी बादशाहज़ादी होकर इतना भी न ताड़ सकी तो शहज़ादी काहे की। सुन्दरी अबकी बार कुछ न बोली और ठंडी सांस भरने लगी। तब बादशाहज़ादी बोली आप पृथीराज की औरत हैं, आपका तमाम औरतों की बनिसबत मिज़ाज चढ़ा चढ़ा हुआ है, रानी होने की वजह से आपका मिज़ाज अर्श पर हो तो आश्चर्य (ताज्जुब) ही क्या है। राजपूतों की औरतें जो हमसे बग़लगीर हो रही हैं क्या यही दर्द है, आप

की यही सर्द आहें हैं जो ज़ाहिर कररही हैं कि यही सबब आपकी नाराज़गी और उदासी का है। परन्तु यह आपके हक़ में अच्छा नहीं, आपको अपनी हालत की भी खबर है ? तब इसने जवाब दिया कि हालत की खबर कैसी है बादशाहज़ादी ने कहा कि आपके राजा साहिब मेरे वालिद के ज़ेर हुकूमत हैं. जिससे उसे बहुत ही दुःख हुआ। इस बात चीत के समय एक पुरुष ने उसकी ओर झांका जिसको उस रानी ने भी देख लिया, उस अधर्मी की मूर्ति को देखकर उसका हृदय कांप उठा, सुन्दरी ने कुछ ठहर कर धीर गम्भीरभाव से उत्तर दिया बादशाहज़ादी, किसी की सर्वदा हालत एकसी नहीं रहती है, आज जो राजा है कल वही घर घरका भिकारी होसकता है संसार की गति चलती फिरती छाया है, कभी उत्तम कभी नीच, यही जगत् की रीति है, किसी को उसकी हालत की खबर देकर दुःखी करना किसी बादशाहज़ादी का तो काम नहीं है। आज जो रानी है कल न जाने कौन हो तब शाहज़ादी बोली—वाहरी नाज़नीन, मैं तुझे और तेरे ग़मज़ों को खूब जानती हूं, एक ज़ेर हुकूमत काफ़िर की औरत को एक बादशाहज़ादी को नेक बद की शिक्षा देना ज़ेबा नहीं। भाई साहेब बड़े रहमदिल हैं जो उन्हों ने रहम फ़रमाकर तेरे बेईमान वालिद की जान बख्शी थी, नहा तो देखती। इस प्रकार निष्प्रयोजन उस आर्य्यरमणी का हृदय दुःखित करके वह गर्विता सौभाग्यपद उन्मत्ता बादशाहज़ादी टरटर करती हुई वहां से चलदी। क्या किरणमयी जानबूझकर उस पापी मेल में सम्मिलित हुई थी ? नहीं. जानबूझकर वा राजपूत रमाणियों का भ्रष्टाचरण देखने के लिये ही वह वहां नहीं आई थी, किन्तु शत्रु की राजधानी में रह शत्रु के आधीन निवास कर यदि वह

वहां न जाती तो पीछे से स्वामी को जवाबदेही करनी पड़ती इसी विचार से विना इच्छा के भी उसे उस पापी मेले में जाना पड़ा था। इस लिये ही उसने न तो किसी प्रकार शृंगार ही किया था और न मेले के आनन्द में सम्मिलित हुई थी। पृथ्वीराज अनेक प्रकार का आगा पीछा सोचकर स्त्री को वहां भेजने के लिये मजबूर हुये थे। अब तक जो कुछ अपमान हुआ था जो कुछ कठिन वाक्य परिहार सुनने पड़े उसके सोचने से तो कुछ ऐसी बड़ी कड़ी चोट हृदय पर नहीं लगती है, परन्तु अब आगे जो कुछ हुआ उसके तो स्मरणमात्र से ही हृदय फटता है। किरणमयी की जो बांदी पालकी लेने को मेले से बाहर गई थी उसको गये हुये एक घण्टा बीता, दो बीते, तीन बीते, देखते २ पूरा पहर बीत गया लेकिन वह लौटकर नहीं आई। इधर दो पहर दिन ढल गया, धीरे २ तीसरा पहर भी बीत चुका, बड़े २ घरों की मुसलमान और राजपूत स्त्रियां एक एक करके अपनी २ पालकी में बैठ करके चलती हुईं। धीरे २ साधारण घरवालियां भी जाने लगीं। बाहर वाले सौदागरों की स्त्रियां भी अब अपना माल टाल समेटकर घर की राह नापने लगीं। सन्ध्या होते देखकर किरणमयी को बड़ी उत्कण्ठा हुई, उसके मन में कुछ खटका पैदा हुआ, नाना प्रकार की अमंगल आशंकाओं ने उसके हृदय को घेर लिया। अपमान, क्रोध, दुःख, दुश्चिन्ता इन सब के कारण उसके नेत्रों में जल भर आया। पृथ्वीराज की याद करके वह मन ही मन में कहने लगी—स्वामी, नहीं मालूम कि आज मेरा मन क्यों रोये देता है, मैंने कौन अपराध किया है, मुझे तो कुछ याद नहीं पड़ता। नाथ, तुम्हीं इस दासी के जीवन के आधार हो, जब कभी कोई संकट पड़ा तब तुम्हारे ही चरणों का स्मरण

करके उससे छुटकारा पाया। चांदी अब तक लौटकर क्यों नहीं आई, मेरी पालकी भी नहीं मालूम कहां है, हे ईश्वर! पृथ्वीनाथ आपही हैं, आज इस दासी की इज़्ज़त रखना। इतने में पास होकर एक हथियार बेचनेवाली निकली, वह कह उठी कि सब तो चली गईं सरकार यहां क्यों बैठी हैं। किरण बोली अभी पालकी नहीं आई है तुम्हारे हाथ में यह क्या है? उसने कहा-सरकार, यह दुधारे छुरे हैं, मैं तो जानती थी कि मेले में राजपूतों की बहू बेटियां बहुत आवेंगी, मेरे पास जो यह दस पांच छुरे हैं सब बिक जावेंगे, सुनती थी कि जितनी ठकुरानी हैं सब अपने पास हथियार रखती हैं, लेकिन नहीं मालूम क्या बात है कि किसी ने मेरा एक भी छुरा मोल न लिया। अब वे दिन कहां हैं, सरकार पुराने दिन चले गये। सरकार आप का रूप तो देवी का सा है। तब किरणमयी ने कहा अच्छा, अब छांट करके एक मुझे अच्छा छुरा निकाल दो। उसने कहा सरकार सब अच्छे ही हैं, इनकी ऐसी धार है कि यदि बेटी इसका हाथ भरपूर बैठ जावै तो आदमी कभी बचने का नहीं। उसने एक मुहर बुढ़िया को देदी और वह बुढ़िया अन्नपूर्णा कहती हुई दुआ देती हुई परमेश्वर से किरणमयी की भलाई की प्रार्थना करती हुई चलती हुई। दूर से एक पालकी आती हुई देखकर लौट आई कि सरकार आप की पालकी आगई, उसने पालकी को देखकर कहा कि पालकी तो आगई पर बांदी लौटकर नहीं आई, यह क्या बात है। आख़िर आकाश पाताल की सोच-कर किरणमयी पालकी में बैठ गई और उसका दरवाज़ा बन्द कर लिया। आप समझ गई होंगी कि यह चतुराई किस ने की है, यह खेल किसने खेला है, उसके उठते ही किरणमयी

की चादर को किसी ने झटक दिया। किरणमयी ने झांप की ओर से झांककर देखा तो ज्ञात हुआ कि उस की चादर का कोना किसी ने कील से अटका दिया था और उसी को झटका देकर वह वहां से चलता हुआ जिससे उसका हृदय धड़कने लगा, पर हृदय में पति का ध्यान कर ईश्वर का नाम ले फिर सँभल कर बैठ गई कि जब ईश्वर ने ऐसी अपार दया करके छुरा मेरे पास भेज दिया तब अब डर किस का है, हथियार पास रहते क्या ठकुरानी किसी से डरती है, परमात्मा रक्षक साथ है। कहार पालकी लेकर किसी संकेत के अनुसार सीधी सड़क न जाकर सीढ़ियों से होकर ढालपर चलने लगे। इसने कुछ किवाड़ हटाकर देखा, सोचा कि रोने पीटने से कुछ न होगा, यह सम्भव है कि प्राण गँवादूँ, पर इससे पति को धोका देना है, आत्महत्या सब के लिये मना है, खूब कसकर छुरे को कमर से बांध लिया कि मरना तो भला ही है, पर देखूं तो इसका परिणाम क्या होता है। फिर सोची कि बादशाहज़ादी ने मुझे अधिक अपमानित करने को यह चाल तो नहीं चली है कि कहीं ज़बरदस्ती अपना झूठा भोजन तो नहीं खिलावेगी, क्या बात है। सोचते २ सिर घूमने लगा। फिर सोचती है कि जो कुछ हो, पर पापकी बात तो मुँह से निकालने में भी तो पाप होता है, यदि वह भी हुआ तो भी डरने की बात क्या है। पहुंचों में यदि बल है, कमर में दुधारा छुरा है, तब क्या अपने सतीत्वधर्म की रक्षा नहीं कर सकती। कहार उस ढाल को पार करके एक कोठी के सामने पहुंचे और पालकी उतार कर रखदी। उस कोठी के चारों ओर एक ऊंचा परकोटा खिचा हुआ था, उसमें किसी ओर से आने की कोई राह नहीं थी, कोई आदमी का

पुतला तक नहीं था, चारों ओर सुनसान सन्नाटा छाया हुआ था। तब तो किरणमयी ने कहारों से डपटकर कहा मुझे यहां कहां लाये हो, जल्दी मुझे घर पहुंचाओ। कहारों ने वहाना किया। निरुपाय किरणमयी साहस बांधकर कोठी में घुसी। भीतर पैर रखते ही दरवाज़ा तड़ाक बाहिर से बन्द होगया। कोई कुञ्जी लगाकर बाहिर से चलता हुआ। किरणमयी समझ गई कि उसे कालकोठरी में लाने के लिये ही इतनी भूलभुलैयां दीगई। कोठी के उसने किवाड़ खोलने वा तोड़ने का उपाय किया, जिस द्वार से होकर कोठी में पैठी थी, परन्तु उपाय निष्फल हुआ। अन्त को उसने बड़ा साहस बांध जगत्‌जननी परमात्मा का ध्यान किया कि आपकी इच्छा पूरी हो। इतने में एक आवाज़ सुनाई दी कि नाज़नीन क्या इच्छा पूरी हो, गो लड़खड़ाती जुबान से वह निकली थी तौ भी कोठी गुंजारने लगी जिसको सुनकर किरणमयी की देह के सारे रोंगटे खड़े होगये. परन्तु वह डरी नहीं वरन् दुगने साहस से उसने प्रत्युत्तर दिया कि जो कोई दुष्ट बुद्धि किसी बुरे अभिप्राय से इस कोठी के भीतर घुसा हो उसके शिरपर वज्र गिरे। आंख फाड़ २ कर सती देखने लगी, अब की वही आवाज़ फिर निकट जान पड़ी, भरे गले से फिर किसी ने कहा क्या खूब, यह क्या गुलअफ़शानी है जो शिर कि तुम पर क़ुर्बान होने को हो और जिसके तसव्वुर में तुम्हारे नाज़ुक पहिलू का तकिया जिन्नत की पेश के बराबर है, उस पर बिजुली गिराती हो। शीरीं लबों को यह तलख़ीना ज़ेबा है। जिसको सुनकर किरणमयी ने और भी साहस बांध कर दृढ़तापूर्वक उत्तर दिया कि पतिव्रता का शाप कभी निष्फल नहीं होता। फिर उसने कहा कि तुम तो मेरी जान हो, तब

किरणमयी ने उत्तर दिया कि मैं तुम्हारी जान नहीं वरन् संहारनेवाली हूं ऐसी ही बहुत वार्त्ता हुई, जिसको मैं असभ्यता के कारण दर्ज नहीं कर सकता। अन्त को वह दुष्ट बातें करते २ उसके निकट पहुंच गया और आलिंगन करना चाहा, तब उसने शेर की तरह गरज कर कहा कि यदि एक पग भी आगे धरा तो याद रख तेरे प्राण जाते रहेंगे। तब अकबर ने जवाब दिया कि चाहे जो कुछ करो मगर आखिरकार बादशाह देहली की इच्छा पूर्ण करनी होगी, बिना इसके तुम्हारा छुटकारा नहीं, जब इसने फिर आलिंगन करना चाहा तो अबकी बार इसने आंखें तरेर और दांत पीसकर बोली। तब अकबर ने विचार कर कि आजिज़ीकी कोई हद् भी है अब इसको बादशाह की सितवत* दिखानी चाहिये, किरणमयी से कहा कि अल्लाह क्या तू मुझे डराती है, जानती नहीं कि मैं कौन हूं तू किसके सामने है और किस तरह पेश आरही है? उसने उत्तर दिया कि हां जानती हूं एक कपटी, अधर्मी, कामकुक्कुर बादशाह दिल्ली के साथ उनके ही योग्य वर्त्ताव कर रही हूं। तब बादशाह ने कहा मान जाओ नहीं तो तलवार और तुम्हारा शिर होगा। तब इसने उत्तर दिया कि अरे मूर्ख, क्या कहा तू ही चतुर और राजनीतिज्ञ है, शोक तेरी बुद्धिपर जो ठकुरानी को तू कृपाण का भय दिखाता है। फिर उसने कहा कि तुम बच नहीं सकतीं और कामोन्मत्त अकबर फिर सती के ऊपर आक्रमण करने को उद्यत हुआ और उसका सतीत्व नाश करना चाहा। तब उसने ईश्वर की ओर ध्यान करके नैनों की अश्रुधारा से वक्षस्थल तक शरीर को भिगोकर पृथिवी पर टप २ आंसू

*दबदबा-शान

गिराकर प्रार्थना की कि आज दासी के ऊपर कृपा करो आपने बड़े २ स्थानों पर दासों की विपत्ति को निवारण किया है।

परन्तु फिर भी बादशाह तीखी चितवन लगाए उसकी ओर निहार रहा था, इतने में दैवयोग से कोठी का प्रकाश झिलमिला उठा, उसने अपनी लम्बी २ बिखरी लटों की जोड़ा और मावाड़ी लहिंगा गातीरूप में बांध लिया, दुपट्टा छाती के चारों ओर जकड़ लिया और कटि से निकालकर दुधारा सीधे हाथ में चमचमाने लगी, साक्षात् दुर्गाका रूप बन गई। जिसको देखकर अकबर के होश के तोते उड़गये, देवगण पयान करगये,सारी कामलालसा अन्तर्ध्यान होगई। किरणमयी सिंहनीवत् डपट कर बोली दुष्ट दोनों हाथ जोड़ आकाश की ओर देखकर शपथ कर कि अब कभी किसी पराई स्त्री की ओर पापदृष्टि से नहीं देखूंगा। आज से प्रतिज्ञाकर कि छल, बल, लोभ अथवा और किसी प्रकार से किसी कुलकामिनी का सतीत्व कभी नष्ट नहीं करूंगा, तबतो आज तेरा अपराध क्षमा करती हूं; नहीं तो इसी दुधारे छुरेसे अभी तेरा हृदय चीरकर रक्त पीती हूं। सच है धर्म के प्रबल प्रातप के आगे अधर्म सर्वदाही डरता और कांपता रहता है, इसी के प्रभाव से महा प्रतापी सम्राट को भी एक अबला रमणी के आगे सर झुकाना पड़ा। संसार का रहस्य यही है, कोई जाने वा न जाने, परन्तु पुण्य और पवित्रता के आगे अधर्म और पाप परिणाम में इसी भांति नीचा देखते हैं। इसने कहा कि मुझे अपने प्राण खोदेने में तानक भी क्लेश न होगा, पर मेरे जीते-जी कोई मेरा धर्म नष्ट न कर पावेगा। अकबर आंखों में पानी भरकर लटपटाकर मां मां कहते हुए सती के चरणों पर गिरपड़ा, धर्म की जय हुई, सती इस भीषण अग्निपरीक्षा में

उत्तीर्ण हुई। अकबर का उद्देश्य पूरा न हुआ, वरन् धर्म के चपेट में आकर किरणमयी सती को मां कहना पड़ा। ऐसी शिक्षा उसको जीवनभर में यही एक मिली। धर्म ऐसी प्यारी वस्तु है, मनुष्य को जीवनजाने पर भी नहीं त्यागना चाहिये

माताओ ! इस महा महिमामय राजराजेश्वरी आर्य्यकुल-लक्ष्मी किरणमयी को देवी मानकर उसका यश सर्वदा वर्णन करती रहिये। आपभी उस के ही पगपर पग धरना, धर्म की रक्षा के लिये कभी भी अपने प्राणों का ध्यान न करना, जो करचुकी हो वह करचुकी किया हुआ पाप भरना पड़ेगा परन्तु अब इस देवी का वृत्तान्त पढ़कर भी यदि सतीत्व की रक्षा न की तो तुम्हारा नाश हो जावेगा। मेरी आशा है कि आप पतिव्रत धर्म की मूर्त्ति बन जावेंगी और मेरे परिश्रम को सुफल करेंगी।

आर्य्य स्त्री पुरुषों का कष्ट संकट में धार्मिक प्रेम आर्य्य प्रभा-११ कार्तिक सं० ६६ लाहौर पृष्ठ ८ में धार्मिक प्रेम शीर्षक में लिखा है-पटियाले के आर्यों का इस सङ्कट में जो धर्म से प्रेम देखा जाता है प्रशंसनीय है और वह यह कि जब यह पकड़े गये तब इन्होंने अपनी स्त्रियों को कहला भेजा कि स्त्रीसमाज बन्द न हो और उनकी स्त्रियों ने भी समाज नियम पूर्वक लगाया। धन्य है देवियों का उत्साह वा साहस सच है विपत्तिकाल में ही धैर्य्य, धर्म, मित्र और नारी की परीक्षा होती है, मैं भी उन महात्माओं और देवियों को धन्यवाद देता हूं।

दत्तात्रेयी ।

माताजी, प्रथम भाग में बतादिया गया है कि तुम्हारा गुरु पतिही है अथवा आपकी पढ़ानेवाली मातायें हैं जिन्होंने तुम्हें धार्मिक शिक्षा दी है, आज मैं आपको यह बताना चाहता हूं कि आपके कानों तक यह शब्द अवश्य पहुंचे होंगे कि दत्तात्रेयी जीने चौबीस गुरु किये थे, आप यह सुनकर जब मैं यह बतलाऊंगा कि उन्होंने चौबीस महात्मा विद्वानों को गुरु नहीं बनाया था, पृथ्वी, जल, तेज, वायु, चील, कबूतर भँवर, पतङ्ग आदिको किया था अचंभित होंगी. आप ध्यान देकर और चित्त लगाकर इस लेख को पढ़ें। महात्मा दत्तात्रेयी अत्रि ऋषि के पुत्र थे, प्रथम अवस्था से ही इन्हें ब्रह्मविद्या प्राप्त होगई थी, इन्होंने जगत् के जड़ और चेतन पदार्थों को देख देखकर उनके आचरणों और धर्मों से शिक्षा प्राप्त की, आप परमात्मा में ऐसे लवलीन हो जाया करते थे कि कई २ दिन तक शरीर से बेसुधि उत्तमरूप से जागते हुये पृथ्वी पर पड़े रहा करते थे, जिस समय समाधि लगाते थे तो जिज्ञासुओं को ऐसा उपदेश किया करते थे कि उनके एक ही उपदेश से वह कृतार्थ हो जाया करते थे। एकबार दत्तात्रेयी जी ब्रह्मानन्द में निमग्न हुए गंगातट पर फिर रहे थे कि एक राजा वहां पहुंच गया, आप से पूछा कि आपको यह बुद्धि कहां से प्राप्त हुई जिसको पाकर तू विद्वान् होकर भी बालक की तरह विचरता है, क्योंकि इस संसार में सब लोग धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की इच्छा से अनेक प्रकार के कामकाज में प्रवृत्त हैं और तू विद्वान् चतुर है, तेरे वचन अमृत के सदृश हैं, फिर भी जड़ों की भांति रहता है । यह सुन कर

इस महात्मा ने उत्तर दिया कि हे राजन् ! मैंने बहुत से गुरुओं की संगत की है, उनसे बुद्धि लेकर जीवनमुक्त हो इस संसार में विचरता हूं, पृथ्वी, वायु, आकाश, जल, अग्नि, चन्द्रमा, सूर्य, कबूतर, अजगर, समुद्र, पतंग, भवर, हाथी, मधवा, हरिण, मछली, गणिका, चील, बालक, कुमारी, इषुकार, सर्प, मकड़ी, भृंगी यह चौबीस मेरे गुरु हैं. इन के आचरणों से मैंने शिक्षा पाई है। जिससे जो २ विधि सीखी है वह सुन। राजा बड़े ध्यान से सुनता और महात्मा सुनाता है । एक २ बात अति उत्तम है, आप भी भले प्रकार इन्हें विचारिये।

(१) पृथ्वी-विद्वान् को चाहिये कि जैसे पृथ्वी दुष्टव्रती पापी जनों से दबाई जाती है, पर वह क्षमा नहीं त्यागती। अर्थात् अधम से अधम की लातें खाकर भी रत्न निकाल निकालकर दे रही है, मैंने भी यह तितिक्षा और क्षमा पृथ्वी से सीखी।

(२) वायु-जिसमें से एक प्राण है, जो परिश्रम करता है, परन्तु किसी भोग की इच्छा नहीं रखता, इससे मैंने सन्तोष सीखा है; दूसरी आकाश वायु जो सुगन्धि और दुर्गन्ध स्थानों में फँसी हुई अपना स्वभाव नहीं बदलती, अर्थात् गन्ध गुणवाली नहीं बन जाती, किन्तु इधर से उधर निष्प्रयोजन निःस्वार्थतः के साथ पहुंचा देती है, इससे योगी को चाहिये कि अपनी इन्द्रियां और मनको भले और बुरे व्यवहारों को देखते हुये भी अपने वश में रक्खे और संसार के भोगों में न फँसने दे।

(३) आकाश-जिस प्रकार आकाश सब जगह व्याप्त है परन्तु न किसी के साथ संयुक्त हैं न किसी से पृथक, इसी प्रकार साधु न तो अपने लिये संसार से अलग समझे और

न उसमें फसें, और जैसे सहस्त्रों वर्षतक वर्षा होते रहने से आकाश गीला नहीं होता न सूर्य्य के तपने से गर्म होता है, ऐसे ही शरीर के सुख दुःखों का आत्मा को स्पर्श नहीं होता

(४) जल स्वभाव से शीतल कोमल होता है इसके छूने और देखने में ठण्डक और आनन्द होता है, इसी प्रकार साधु को अपना आत्मा शुद्ध, निर्मल और कोमल प्रीति से युक्त रखना चाहिये, जैसे पानी शुद्ध करता है वैसे ही अपने उपदेशों से औरों को पवित्र करें, और उनके पाप मैलको छुड़ादें।

(५) अग्नि-जिस तपस्वी का पेट ही पात्र है वह तपस्वी चाण्डालादि का भी अन्न खाने से अपवित्र नहीं होता, यह विद्या अग्नि से सीखी है। क्यों कि मैली चीज़ों के भक्षण करने से अग्नि मैली नहीं होती वरन् अग्नि में ज्यों ज्यों समिधादि पड़ती जाती हैं त्यों २ प्रज्वलित होती जाती है

(६) चन्द्रमा-चांद एक तिमिरमय पुञ्ज है, जब चांद और सूरज दोनों एक नक्षत्र पर आजाते हैं तो चांद दिखाई नहीं देता, क्योंकि सूर्य्यमण्डल के आड़ में आजाने से वह दृष्टिगोचर नहीं होता तब कृष्णपक्ष की पन्द्रहवीं तिथि अमा-वस्या होती है, चन्द्र साठ घड़ी में एक नक्षत्र से दूसरे नक्षत्र में जाता है सूर्य तेरह रात दिन में एक नक्षत्र से दूसरे नक्षत्र में पहुंचता है, पड़वा से लेकर पन्द्रह दिन तक सूर्यमण्डल का पन्द्रहवां भाग चन्द्रमां पर प्रतिबिम्ब डालता है इसी को कला कहते हैं। इसी प्रकार पन्द्रवें दिन सत्ताईस नक्षत्रों में भ्रमण करके सूर्य और चन्द्र दोनों आमने सामने आजाते हैं तब पूरा प्रतिबिम्ब पड़ता है, उसी को पूर्णमासी कहते हैं।

मनुष्य यह समझते हैं कि चन्द्रमा पन्द्रह दिन तक घटता बढ़ता रहता है, यह बात ठीक नहीं है। चन्द्रमा ज्यों का त्यों रहता केवल सूर्य के न्यूनाधिक प्रतिविम्ब पड़ने से घटता बढ़ना प्रतीत होता है। इसी प्रकार जन्म हानि, लाभ, दुःख, सुख, बचपन, युवा, बुढ़ापा आदि का विकार जन्म से लेकर मरण पर्य्यन्त आत्मा में प्रतीत होते हैं, परं आत्मा के नहीं हैं। यह सब अवस्थायें केवल शरीर से सम्बन्ध रखती हैं, आत्मा से नहीं, इस लिये साधु को चाहिये कि सुख-दुःख में एक सा रहे, यह विद्या चन्द्रमा से सीखी।

(७) सूर्य-जिस प्रकार सूर्य अपनी किरणों से पानी को खींचता है और फिर बर्सात में बादलों द्वारा बरसा देता है और उसके पकड़ने और छोड़ने का अभिमान नहीं करता, इसी प्रकार योगी को चाहिये कि जो विद्या और हुनर सीखे उसे दूसरों को सिखादे कृपणादि न करे और अन्यों को ज्ञान देने का अभिमान न करे और भी पुरुषों के दिये हुए भोगों को उपदेश देने के लिये इन्द्रियों से ग्रहण करे।

(८) कबूतर-महात्मा को चाहिये वह किसी के साथ स्नेह न करे अर्थात् दुनिया और कुटुम्ब के मोह में न फँसे, यह शिक्षा मैंने कबूतर से ली है। कहते हैं किसी बन में एक वृक्ष के ऊपर कबूतरों का जोड़ा रहता था, उन दोनों पक्षियों का परस्पर बड़ा स्नेह था, जिस २ वस्तु को कबूतरी चाहा करती थी कष्ट से भी लाकर कबूतर उस को दिया करता था जब उन के बच्चे हो गये तो उनके परों को स्पर्शकर और मधुर शब्दों को सुनसुन बड़ी प्रसन्न होती थी। समय बड़े सुख से व्यतीत हो रहा था, एक दिन बच्चों के चुगा लेने के लिये बन में फिर रहे थे, पीछे से शिकारी ने जाल लगाकर

उन बच्चों को पकड़ लिया, जब दोनों चूगा लेकर घोंसले की ओर आये तब कबूतरी चिल्लाती हुई बच्चों की ओर भागी और आप भी फँस गई। स्त्री और पुत्रों को जाल में फँसे देखकर कबूतर रोने लगा कि मैं भोगों से तृप्त नहीं हुआ, मेरा घर नष्ट हो गया, मेरी स्त्री बड़ी भाग्यवाली है जो पुत्रों के साथ स्वर्ग को जाती है, मैं अकेला घर में रह गया हूँ, मेरा जीवन दुःख रूप है, मृत्यु के विना मुझे सुख दुर्लभ है, जाल में जा पड़ा। शिकारी उन को लेके प्रसन्न हो घर को चला गया। इसी प्रकार कुटुम्बवाले कुटुम्ब के मोह में फँसकर कबूतर के नाईं दुःखी होते हैं और आत्महत्या जैसे महा पाप को करते हैं।

(९) अजगर-इन्द्रियों को सुख स्वर्ग और नरक में बराबर है, जैसे पुरुष को दुःख विना इच्छा के प्राप्त होता है, इस लिये विद्वान इच्छा न करे, यह दो बातें मैं ने अजगर से सीखीं, क्योंकि वह भोजन की इच्छा नहीं रखता जो कुछ मुंह में आपड़े वह खालेता है, जिसका प्रतिफल यह है कि अधर्म से धन प्राप्ति की इच्छा में फँसकर जीवन नष्ट न करे।

(१०) समुद्र-जैसे समुद्र बरसात में बरसा होने और अनगिन्त नदियों के गिरने से अपनी सीमा से नहीं निकलता और न अति गरमी में शुष्क हो जाता है न कभी वैसे ही भक्त भोगों के मिलने से न तो प्रसन्न होते हैं और न मिलने से दुःखी।

(११) पतंग (परवाना)—रूप के लोभ से अग्नि में गिर कर मरते हुये पतंगे से यह शिक्षा मिली कि स्त्री और स्वर्णादि चमकीली वस्तुओं को देख कर लोभ न करना चाहिये इन का लोभ करने वाला पतंग की भांति नष्ट हो जाता है।

(१२) भंवर (षट्पद) भौंरा सब फूलों का रस शनैः २ निकाल लेता है और उन को बिगाड़ता नहीं, परन्तु शाम को कमल के मोह में फंसकर वन्द होकर रह जाता है, इस लिये साधु को चाहिये कि एक घर की भिक्षा न करे वरन् बहुत से घरों से थोड़ा थोड़ा मांगकर निर्वाह करे, किसी एक जगह अपना मन न फँसावे और सब शास्त्रों में सार जो ब्रह्मविद्या है उस को ग्रहण करे।

(१३) हाथी—के पकड़ने वाले वन में गढ़ा खोदकर उस के ऊपर तिनकों की छत डाल कागज़ की बनावटी हथनी बनाकर खड़ी कर देते हैं, वनका हाथी भोग की लालसा से जाता है और गढ़े में गिर फिर निकल नहीं पाता, इससे मैंने यह विद्या सीखी कि संन्यासी स्त्री की प्रतिमा का भी स्पर्श न करे; नकि स्त्रियों से पैर छुआता हुआ फिरे और इतना भी न समझे कि स्त्री के हाथ पैर में लगने से जो विजुली पैदा होगी वह उसकी कामाग्नि को प्रचण्ड कर देगी।

(१४) मधवा—शहद निकालने वाला, मधु की मक्खी अपने खाने से बचाकर शरदी में खाने के लिये रस इकट्ठा करती रहती है, शहद के निकलने वाले मक्खियों को उड़ा कर या मार कर छत्ते में से शहद निकाल लेते हैं। इससे मैंने यह विद्या सीखी कि संन्यासी रात वा कल के लिये भी भोजन जमा न करे, जो द्रव्य मिले उत्तम कामों में व्यय करता रहे। नहीं तो कंजूस का धन अन्य पुरुष ही खाते हैं जैसा कि संसार में गम्भीर दृष्टि से देखने से प्रकट है।

(१५) हरिण—गीत से मोहित होकर मारा जाता है, हरिण से यह विद्या सीखी कि संन्यासी और सदाचारी राग

रंग, नाचकूद में पड़कर ज्ञानमार्ग से पतित न हों क्योंकि नाच ही बिगाड़ने में विद्यारम्भ के समान है।

(१६) मछली-खाने के लोभ से अर्थात् जीभ के स्वाद से कांटे में फँसकर जान दे देती है, इस लिये साधुको चाहिये कि रस का मोह न करके यथा प्राप्त से उदरपूर्त्ति करे।

(१७) गणिका विदेह नगर में एक पिंगला नाम वेश्या थी. वह व्यभिचारिणी एक रात को शृंगार कर के पर पुरुषों के आने के पैंड़े में बार २ घरसे बाहिर आती और फिर भीतर चली जाती थी. धन के लोभ से व्याकुल हो रही थी। जब आधी रात होगई और कोई पुरुष न आया तब उसको बड़ी निराशा हुई, जिससे वह जाकर सो रही और सुखी होगई। जो गाढ़ निद्रा में सोते समय थककर इन्द्रियां बाह्य विषय के सम्बन्ध से पृथक होजाती हैं, उस समय जीवात्मा का केवल परमात्मा से सम्बन्ध होता है और आनन्दमय से आनन्द प्राप्त होता है। इसलिये उसने आनन्द पाकर यह वचन कहे हा, मेरी जैसी मूर्खा कौन होगी जो मैं हृदय में स्थित सर्व भोगों के देनेवाले अविनाशी जार को छोड़के दुःख भयशोक के देनेवाले मृत्यु के ग्रसे हुए जारों को चाहती हूं। नाड़ियों से हड्डियों को जोड़कर चमड़े से मढ़ा हुआ विष्टा-मूत्र से भरा हुआ यह देह है, नव द्वारों से मल बहरहा है. मैं उसको आत्मा समझती हूं। विदेह नगरी में एक मैं ही मूर्खा हूं जो परमात्मा को भूलकर अपवित्र देहों से प्रेम करती हूं। विषयरूपी चोरों ने जीवों के ज्ञानरूपी नेत्रों को फोड़कर संसाररूपी गढ़े में फेंक दिया है, वहां पर भी काल-रूपी सांप ने ग्रसा हुआ है। ऐसे समय पर परमात्मा के बिना और कोई भी रक्षक नहीं है। जब उस पुरुष को सब

ओर से वैराग हो तो आत्मा ही से आत्मा की रक्षा कर लेता है। पुरुष को सावधान होकर देखना चाहिये कि ये सारा जगत् कालरूपी सांप से ग्रसा हुआ है, इस प्रकार निश्चय करके जार की आशा त्याग शान्त होकर बिस्तरपर सोगई। इस से मैंने यह शिक्षा पाई कि—

निराशा सुखी पिंगलावत्।

सांख्यदर्शन अध्या० ४। सू० ११॥

अर्थात् आशा परमदुःख, निराशा परमसुख है।

आशया ये कृताः दासा ते दासा सर्वदेहिनाम्।
आशादासीकृता येन तस्य दासायते जगत्॥

अर्थात् जो आशा का दास हुआ वह सारे जगत् का दास बना और जिसने आशा को दास बनाया उसका सारा जगत् दास हुआ।

(१८) चील जो वस्तुयें जीवों को प्यारी हों उनका अपने पास सञ्चय करना दुःखदायक होता है, जो संन्यासी अपने पास कोई वस्तु नहीं रखता वह अनन्त सुख पाता है, यह विद्या मैंने चील से सीखी। कोई चील मुख में मांस लिये आकाश में उड़ी जाती थी इस को और जन्तु दिक़ करते थे, जब उसने मांस फैंक दिया उसी समय सबने उसका पीछा छोड़ दिया (श्येनवत् दुःखीत्यागवियोगाभ्याम्) यह सब विषय स्वयं छूटने वाले हैं, यदि पुरुष आप छोड़ देता है तो उस को दुःख नहीं होता नहीं तो जब जिस समय छुड़ाये जाते हैं तब उस समय अधिक कष्ट होता है।

(१६) बालक-किसी के भले बुरे से प्रयोजन नहीं रखते, धर्म्मात्माओं को बालकों की भांति शुद्ध मन और पापरहित रहना चाहिये।

(२०) कुमारी-एक क्वारी लड़की घर में अकेली थी, माता पिता कहीं गये हुये थे, इस के विवाह के लिये विचार करने के वास्ते कुछ सम्बन्धी घर में आये, उनके भोजन के वास्ते एकान्त में धान छर रही थी, उस के हाथ की चूड़ियां छनक रही थीं, इस ने यह समझ कर कि हमारी निधनता प्रकट होगी, सब तोड़ दीं, केवल दो दो रहने दीं। इन से भी थोड़ा शब्द होता था, फिर उसने एक एक और तोड़ दी। तब शब्द बन्द होगया। मैंने उस से यह उपदेश लिया कि जगत् के उपदेश के वास्ते संन्यासी अकेला विचरे, क्योंकि बहुत जनों के साथ रहने से लड़ाई झगड़े होते हैं, दो में भी बातें होती रहती हैं।

(२१) इषुकार—कोई पुरुष किसी स्थान में बैठा हुआ तीर गढ़ रहा था, अपने काम में उस का ऐसा ध्यान लगा हुआ था कि पास से सेना सहित राजा चला गया, उसने नहीं देखा। मैंने उस से यह उपदेश लिया कि पुरुष वैराग्य और अभ्यास के बल से इन्द्रियों और प्राणों को जीत कर मन को एक ओर लगा देवे, जब मन एक विषय में स्थित होने लग जाता है तो शनैः २ कर्म वासना नष्ट होती रहती हैं, सतोगुण बढ़ता रहता है रजोगुण और तमोगुण दबजाते हैं, तब तो मन शान्त हो जाता है और परमात्मा में स्थिति पालेता है, उस समय भीतर और बाहिर परमात्मा के अतिरिक्त और कोई दृष्टि नहीं आता, जैसे तीर बनाने वाले को चित्त के लगने से सेना दिखाई नहीं पड़ी।

(२२, सांप-दूसरे के बनाये हुये बिल में घुस जाता है आप बिल नहीं बनाता, इसी प्रकार संन्यासी एक जगह घर न बनावे भ्रमण करता रहे, क्योंकि घर के बनाने से बहुत कष्ट होते हैं, जब कि घर त्यागी को मरना अवश्य है तो पुनः घर बनाना व्यर्थ है।

(२३) मकड़ी—जिस प्रकार मकड़ी अपने शरीर से जाला बनाती है और फिर उस को निगल जाती है, इसी तरह साधु को निश्चय रखना चाहिये कि जगत् परमात्मा ने अपने प्रकृतिरूप कोष से कार्यरूप बनाया है, और फिर प्रलय में उस को कारणरूप कर देता है, मकड़ी का जीव निमित्त कारण और उस का शरीर उपादान कारण है। इसलिये पूज्यदेव एक परमात्मा ही है।

(२४) भृंगी (अञ्जनहारी) जिस कीड़े को अपने घर में ले जाती है वह उसी के रूप का बन जाता है, इसी प्रकार जो मनुष्य परमात्मा का प्रेम से ध्यान करेगा वह अवश्य परमात्मा के गुणों को ग्रहण करेगा।

इस प्रकार इन गुरुओं से शिक्षा पाई है, हे राजन्! इनके अतिरिक्त अपनी देह से जो मैंने सीखा है इसको भी सुन लीजिये मुझे वैराग्य और विवेक का देने वाला बड़ा भारी गुरु मेरा देह है जो प्रति दिन उत्पत्ति और नाश को प्राप्त होता रहता है। जब मैं इसके तत्व को विचारता हूँ तो प्रतीत होता है कि यह अपना नहीं है पराया है, यह जानकर मैं अशंक होकर विचरता हूं जिस देह के प्रेम से स्त्री, पुत्र, धन, पशु सेवक को कष्ट से पालना करता है, अन्त में उन सबों को त्यागकर वृक्ष की भांति अन्य देह का बीज उत्पन्न करके नष्ट होजाता है, इस लिये न मुझे मान है न अपमान, न घर

पुत्र आदि की चिन्ता है। बालक की भांति अपनी आत्मा ही से आत्मा में प्रसन्न रहता हूँ। मैं इस शरीर को अनित्य समझता हूँ, परन्तु यह ही मुक्ति का देने वाला है जो बहुत जन्मों के पश्चात् मिला है, इस को पाकर मृत्यु से पहिले २ मुक्ति के लिये पुरुष यत्न करले; विषय भोग तो सब देहों में है। इस प्रकार ज्ञान वैराग को पाकर अभ्यास कर देह से अभिमान अहंकार प्रभृति पद्वियों का संग त्यागकर इस पृथ्वी पर विचरता हूँ। माताओ! यह उपदेश करते २ दत्तात्रेयी जी चले गये राजा भी चले गये, हम और आप भी चले जायंगे, धर्म कर्म रूपी गठरी जितनी बांध सको बांधलो।

यदि कोई मेरे लेख में कटु और असभ्य शब्द का प्रयोग होगया हो तो अपना बालक जान क्षमाकर शिक्षार्थ मुझे सूचना अवश्य दीजिये।

* ओ३म् *

द्वितीय अध्याय का

दूसरा खंड

जिसमें पत्र व्यवहारादि का वर्णन है।

—*:०:*—

अब हम आप की सेवा में कई पत्र इस हेतु से लिख कर भेंट करते हैं कि आपको विदित हो जावे कि परस्पर पत्र व्यवहार किस प्रकार करना चाहिये और हमारे पूर्वज किस प्रकार करते थे और उनमें जीवन सुधार और बुद्धि विस्तार के लिये कैसे २ गूढ़ मर्म लिखे जाते थे। इन पत्रों में छोटे बड़े सब के लिये नमस्ते का शब्द लिखा गया है, वह परमात्मा की आज्ञापालनार्थ है, जैसा कि यजुर्वेद अ० १६ मंत्र ३२ में लिखा है कि—

नमो ज्येष्ठाय कनिष्ठाय च नमः पूर्वजाय च परजाय च नमो मध्यमाय च प्रगल्भाय च नमो जघन्याय च बुध्न्याय च ॥

नमः के अर्थ नमना, झुकना, मान करना, प्रतिष्ठा करना, अन्न देना आदि के हैं, इसके अतिरिक्त संसार में वेही प्रतिष्ठा पाते हैं, जो अभिमान अहंकार रहित होकर लचकर चलते हैं, इसलिये नमस्ते के उत्तर में नमस्ते ही उच्चारण करना सभ्य.

ता है, जैसा कि छोटे बड़े ऊंच नीच के वास्ते वेदों में नमः शब्द आया है, आप भी आपस में इसी प्रकार का पत्र व्यवहार रखिये जिससे लोक परलोक दोनों का सुधार हो।

सत्यंमाता पिताज्ञानं धर्मोभ्राता दयासखा।
शान्तिर्पत्नी क्षमापुत्रः पडेते मम बांधवः॥
चाणक्यनीति दर्पण अ० १२। श्लो० ११॥

कई पत्रों में इसके अर्थों को समझाया है।

१ पत्र पुत्री का माता को।

मेरी पालिका वा रक्षिका माता जी! नमस्ते। माता जी, आप के उन क्लेशों को जो आपने मेरे पालन पोषण और शिक्षा में उठाये हैं बालकपन में तो मेरे ध्यान ही में न आये, वरन् जब आप खेलनेसे हटाकर कार्य्यमें लगाती थीं तो मुझे बड़ा बुरा लगता था। अपने हित की बात भी उस समय भली नहीं लगती थी, जब शिक्षित होकर कुछ ज्ञान हुआ सोचा विचारा देखा भाला कि-

यंमाता पितरौ क्लेशं सहेते संभवे नृणाम्।
नतस्यनिष्कृतिःशक्या कर्तुं वर्षैः शतैरपि॥
मनु० अ० २। श्लो २२७॥

जितना माता, पिता बालकों के पालने में दुःख सहते हैं उसका प्रत्युपकार सन्तान सैकड़ों वर्षोंमें भी नहीं कर सकती। जब आपकी सेवा से पृथक होकर मुझे एक नया देश देखना पड़ा। जहां पर प्रत्येक की रुचि अनुकूल बड़े विचार से कार्य

करना पड़ा। आज तक जहां तक होसका मैंने किसीको अप्रसन्न नहीं होने दिया, सब से यथा योग्य वर्त्ताव किया, जो काम कर मिला वह किया परन्तु कभी किसी से क्लेशित और क्रोधित होकर कठोर वचन नहीं कहा, सत्य कहा और प्यारा कहा, जैसा मैंने पढ़ा था कि—

सत्यं ब्रूयात् प्रियं ब्रूयात् नब्रूयात् सत्यमप्रियम्।
प्रियं च नानृतं ब्रूयादेष धर्मः सनातनः॥
मनु० अ० ४। श्लो० १३८॥

तुलसी मीठे वचन से, सुख उपजे चहुँओर।
वशीकरण यह मन्त्र है, तजदो वचन कठोर॥

उसी पर आचरण किया, जिसका प्रतिफल आज यह है कि आपकी दया से सब घर वाले मुझ से प्रसन्न हैं, परन्तु मुझे शोक है तो यह है कि माता जी मैंने आप की कुछ भी सेवा वा आप का कुछ भी प्रति उपकार न कर पाया, आपके ऋण का बोझ मेरे शिरपर ज्यों का त्यों ही धरा रहा, मुझे आपका वियोग बड़ा भारी गहन है, आप के प्रेम और प्यार का स्मरण मुझे बेचैन कर देता है। माताजी, यहां मुझे सब प्रकार के सुख प्राप्त होते हुए भी जब कभी आपका स्मरण आ जाता है उस समय यही मन चाहता है कि यदि परमात्मा मुझे उड़ने की शक्ति प्रदान करते तो अभी उड़ कर आप के दर्शन कर आती और कुछ तो सेवा कर अपने ऊपर का बोझ हलका कर लेती और अपना जन्म सुधार लेती। एक

बात जो मुझे इस समय स्मरण हो आई है वह आपको लिखती हूं जिसको पढ़कर आप हँस पड़ेगी और बड़े २ घरानों में भी घुसी हुई अविद्या का आपको पता लगेगा। मेरा विवाह तो आप और पिताजी के घोर परिश्रम से कुछ न कुछ वैदिकरीति से हुआ, परंतु पूर्णरीति से नहीं, पर यहां मेरे आने के थोड़े ही दिन पश्चात् मुहल्ले की बहुत सी स्त्रियों ने इकट्ठा होकर सासु जी से आकर कहा कि बहू को आये हुये इतने दिन होगये, आपने अभीतक माता के दर्शन नहीं कराये, कल को भली बुरी होगई तो सब धरी रहेगी। सासु जी ने मुझ से कहा चलो बहुजी तुम को माता के दर्शन करालावें, आज सुसरजी घर नहीं हैं (न जाने टोले की स्त्रियां सुसर जीके जाने का पैंड़ा ही हेर रहीं थीं) मैंने वहां पर उत्तर दिया कि मुझे तो मेरी माता ने चलते समय यह बतला दिया था कि बेटी तू मेरे वियोग का अधिक शोक न कर, तू एक माता को छोड़ जाती है, वहां पर मेरी भांति प्यार करनेवाली दुःखादि में सहाय करने वाली दूसरी माता मिल जावगी, वह तेरा मेरे समान प्यार करेगी, तू भी उनको मातावत् ही जानना, क्या कोई तीसरी माता आपकी तरह और भी हैं जिनके दर्शन मुझे कराने को ले चलना कहती हो। मुझ आप की आज्ञापालन करने और चलने में क्या बहाना हो सकता है। उत्तर दिया कि हां एक मुझसे भी बड़ी माता हैं जो तुमको दूध पूत सब कुछ देंगी। उनका यहां बड़ा मान है, वेही सकल मनोरथ सिद्ध करती हैं। मैं कुछ मन में तो समझ गई, परन्तु उस समय कुछ अधिक कहना उचित नहीं समझी; यही कहदिया कि अच्छा ले चलिये और दर्शन कराइये। अन्त को वह मुझे लेकर बहुत

सी स्त्रियों के साथ बस्ती से बाहर एक उद्यान में पहुंची। वहां पर एक ऊंचा मन्दिर दिखाई दिया। जब उसके निकट पहुंची, तब वहांपर प्रथम पत्थर के दो कुत्ते बड़े भयानक रूप के बने हुए मानो काटने को दौड़ते हैं दिखाई दिये। मैं उनको देख कर ज़रा झिझकी। तब सासुजी ने मुझे सचेत किया कि अरी बहू! तू क्यों डरती है, यह तो झूठ मूंठ के कुत्ते पत्थर के बने हुये हैं, बोल वा काट नहीं सकते इन्हें मनुष्यों ने बनाया है यह अपने स्थान से हिलजुल नहीं सके। आगे बढ़ी तो महाडरावनी भयानक रूप धारण किये दो व्याघ्रणी दिखाई पड़ीं। मैं वहां और भी अधिक झिझकी तब फिर मुझे उसी तरह समझाया गया कि अरी यह तो अपने ही स्थान पर स्थिर रहती हैं तू क्यों डरती है। फिर उस मन्दिर में प्रवेश होते समय मेरे जूते बाहर उतरवा दिये, मैंने सभ्यता और स्थानिक नियम के पालनार्थ उतार दिये। जब भीतर जाकर देखा तो एक अति सुन्दर संगमरमर की बनी हुई मूर्ति जो किसी बड़ेयोग्य शिलपकार की बनाई थी दिखाई पड़ी। सासुजी हाथ जोड़कर उसके सामने खड़ी हुईं और जो कुछ मिष्टान्नादि लेगई थीं चढ़ाया, उसके मुंह में लगाकर पानी का छींटा दिया, फिर मुझसे कहा कि बहूजी तुमभी इनके पैर छुओ और यहलो चढ़ावा, चढ़ाकर और हाथ जोड़ कर सर नवाकर मन लगाकर जो मनोकामना हों मांगलो। यह तुम्हें धनादि दूध पूत देंगी। यह बड़ी दयावान् हैं। तब मैंने सासु जी से कहा कि यदि अपराध क्षमा हो तो मैं कुछ प्रथम आपसे निवेदन करलूं, पश्चात् जो आप मुझे उचित आज्ञा देंगी वह करूंगी। इसपर मुझे कहने की आज्ञा दी गई, मैंने निवेदन किया कि यह माताजी

किस चीज़ की बनी हैं और यह मनुष्यकृत हैं वा ईश्वरकृत इन्हें किसने बनाया है। बतलाया कि यह पत्थर की हैं इन्हें जैपुरआदि नगरों के योग्य शिल्पकारों ने गढ़ कर बनाया है यहां पर अमुक बड़े सेठ धनी पुरुष ने मंगाकर बड़ा धन लगाकर स्थापना कराई है। मैंने कहा कि अभी कुछ काल नहीं बीता आपने मुझे बतलाया था कि यह कुतियां और शेरनी पत्थर की हैं और मनुष्यकृत हैं न काट सकती हैं न फाड़ सकती हैं, तुम मत डरो। फिर मेरी समझ में नहीं आता कि यह भी उसी पत्थर की बनी हुई मनुष्यों की बनाई हुई चैतन्यता से रहित मेरी मनोकामना कैसे सुफल कर सकती हैं। यह तो वास्तव में न सुनती हैं न बोलती हैं इन की प्रसन्नता और अप्रसन्ता का भी पता नहीं लग सकता, आप जैसी साक्षात् चैतन्यदेवी परमेश्वरकृत जिनके प्रसन्न अप्रसन्न होने का तुर्त ज्ञान होजाता है, सो आपको छोड़कर मैं तो इनको नहीं पूज सकती। यदि मैंने इनकी पूजाकी तो आप निश्चय जानिये कि आपकी पूजा में जिससे मुझे पूर्ण सुख की आशा है न्यूनता आजावेगी और मेरा प्रण भी टूटजावेगा। मैंने प्रण किया हुआ है कि जो कुछ मुझे काम काज से समय बचेगा उस में कुछ भाग नित्यप्रति आपकी सेवा और पूजा में भी लगाऊंगी। यह मैं खुशामद से नहीं कहती, वरन् मैं निश्चयपूर्वक जानती हूं कि जो मैं करूंगी वहही कल को मेरे आगे आवेगा। इस हाथ दे उस हाथले का सौदा है, इसके अतिरिक्त संगति का प्रभाव पड़े बिना रह ही नहीं सकता।

संगतही गुण ऊपजे संगतही गुण जाय।
बांस फांस और मीश्री एकै भाव बिकाय॥

इन माता की संगत से जड़ता और आपकी संगत से चैतन्यता प्राप्त होने की पूर्णतया संभावना है। आप विचारलें कि फिर भविष्य में यदि कोई अनुचित व्यवहार मुझसे हो तो अभी बतला दीजिये कि मुझसे आप अप्रसन्न तो नहीं होंगी। इसलिये मुझे आप क्षमा कीजिये, मैं ऐसी मूर्खा क्यों कहलाऊं कि (घर आये नाग न पूजतीं, बांबी पूजें जाय) आप ध्यान तो दें कि यह मीठा जो आपने इनके मुख में लगाया है वह अबतक ज्यों का त्यों लगा है। चींटे मुँहपर चढ़े अवश्य लिये जारहे हैं, क्या आपको भी मैं भोजन परसकर मुंह में लगाकर भुटका दूं, आप प्रसन्न होंगी। क्या आप के मुंह में मीठा दे दूं और चींटा आजावे आप उसको नहीं हटावेंगी। यह तो चींटे को भी हटा नहीं सकतीं, इनसे तो घरकी निस्तूपा (चक्की) ही अच्छी है कि जिसके पिसे हुये आटे से क्षुधा-निवृत्ति होती है। आप जैसी अन्नपूर्णा महामाया महालक्ष्मी परमेश्वरकृत विशाल मूर्ति को छोड़कर मैं इनको क्यों पूजने लगी। आपने देखा होगा कि मैं जब से आई हूं नित्यप्रति प्रातः सायं अपने अन्तःकरण के बाह्याभ्यन्तर का ध्यान करती हूं सन्ध्या हवन कदापि नहीं छोड़ती, सर्वज्ञ को एकस्थानी जानना उसकी बड़ी निन्दा करनी है। मेरा एक यह भी विचार है कि जो एक की ही हो रहती है वह ही प्रतिष्ठा पाती है, इस लिये जगत्जननी परमेश्वर और पति माता आपको छोड़कर किस अचेतन को सिर नवाती फिरूं। परमात्मा ने वेदों में स्पष्ट बताया है कि जो कारणरूप प्रकृति की उपासना करता है वह अंधकार की ओर, जो कार्य्यरूप प्रकृति को पूजते हैं वह महा अंधकार को प्राप्त होते हैं। इसका सायणाचार्य ने भी ऐसाही अर्थ किया है, जैसा कि:—

अन्धन्तमः प्रविशन्ति येऽसम्भूतिमुपासते ।
ततो भूय इवते तमो य असम्भूत्या ँ रताः ॥
य० अ० ४० । मं० ९ ॥

माताजी, निखफील्ड थर्ड रीडर पार्ट थर्ड में मिडिल और उससे नीचे विद्यार्थियों को पढ़ाया जाता है कि (दी हाउस होल्ड डाग इज़ बेटर दैन दि हाउस होल्ड गाडेस) The household dog is better than the household Goddess. अर्थात् घरका कुत्ता अच्छा है इन घरेलू पत्थर की देवियों से । सच भी है वह चोर आदि से घर की रक्षा करता है, पर इन्हें चोर लेजावे तो भी टस से मस नहीं करती इस पर विचार कीजिये माताजी, सारी पूजा पगधारी संध्या हवनादि का यही फल है कि मनुष्य पाप से बचे, तो बिना परमेश्वर के सर्वत्र जाने हुए पाप से आज तक न कोई बचा है न बच सकेगा । आज मानने को सब मानते हैं पर वास्तविक मानना और ही होता है, जब आज देखा जाता है कि बाह्य दशा में सरकारी तीन चार रुपया मासिक पानेवाले चौकीदार के सामने उसके भय से जुआ नहीं खेलते, चोरी जारी नहीं करते, तो परमप्रभु राजाओं के राजा महाराजाधिराज के भय से जो मन और आत्मा के भीतर भी व्यापक हैं उस के सम्पूर्ण संकल्प विकल्पों को जान रहा है और जो न्याय पूर्वक दंड देता है उसे जानकर कौन अनुचित व्यवहार कर सकता है । शोक तो यह है कि मानकर भी आज मनुष्यों की भांति उस ज्ञानमय को यह अज्ञानी पुरुष धोखा दे रहे हैं । कहने को मानते हैं, पर करते समय भूल जाते हैं । इन

से वे जन अच्छे हैं जो परमेश्वर को नहीं मानते, पर पाप नहीं करते। परमेश्वर का डर न रहा तब ही तो सबला से हम आप सब अबला बन गईं, जैसा कि डा० गिरवरसिंह जी सावितगढ़ ने कहा है—

कवित्त।

पतिव्रत गयो जबसे इनको और नीति की बात न नेक सुहाति हैं। तज धर्म पती की न सेवा करें यह सास सुसर से सदा दुखियाति हैं॥ हो वेद् विहीन अनारी भई प्रभु छोड़, पथरियन को पुजियाति हैं। और बालविवाह ने छीन करीं याते सबला अबला कही जाति हैं॥

इस मेरे छल-कपट रहित कथन ने जो मेरे सरल हृदय से निकले थे और परमात्मा से दोनों हाथ जोड़ कर प्रार्थना की थी कि—

कवित्त।

विन विद्या भई मतहीन सबै अब कैसे मेरो धर्म बचै।
बल बुद्धि बढ़ावन को हमरी जगमांहि न कोई यत्न करै॥
निशि वासर यातना भोगती हैं पति सासु न बात पै ध्यान धरै।
अब आरत होके पुकारति हूं भगवान् बिना दुःख कौन हरै॥

मेरी सासु जी पै मेरा कथन जो अति साहस बांधकर कहा था चुम्बक का काम कर गया, फिर उन्हों ने कुछ हठ नहीं किया, किन्तु मुझको धन्यवाद दिया और कहा कि बहू जी सच कहती हो कि तुम्हारे ससुरजी के वर्षों के समझाने ने जो मेरे पर प्रभाव न किया, वह तुम्हारे थोड़े समय की बातों ने किया। आज से मैं भी आप के ससुरजी

की आज्ञा सदैव पालन करूंगी। हा! मैं मूर्खा तो आज तक नाई, धीमर, मूर्खों की बात मानती और अपना जन्म बिगाड़ती रही, जिस का मैंने उन्हें और परमात्मा को बड़ा धन्यवाद दिया। इस पर भी दो एक साथ वाली स्त्रियां बोलीं कि यह आज एक अनोखी बहू आई हैं, आज तक सब पूजती ही आईं मैंने उनसे नम्रता से विना किसी प्रकार का मुंह बिगाड़े निवेदन कर दिया कि आपने मेरे कथन पर पूर्णतया अभी विचार नहीं किया, जो मेरी ही भाग्यहीनता का कारण है। यदि आप विचारतीं तो कोई उस पर आक्षेप करतीं ऐसा उत्तर न देतीं। मैंने सासजी से निवेदन किया था उन्होंने चित्त देकर सुना और मान गईं आप वा आपकी सन्तानें जब विद्या पढ़ेंगी तब स्वयं जान जावेंगी। अभी बुरा न मानिये आप के ज्ञानचक्षु खुले नहीं वा आपने अपनी बुद्धि से विचारा नहीं वा किन्हीं बहिकाने वालों की बातों में फँसी हुई हो, चाहे वे बिलकुल झूंठ ही क्यों न हों। अन्त को सब लौट आईं, जब से मैं बराबर उनकी सेवा और घर के कामों और प्रबन्धों में लगी रहती हूं। बात २ पर मेरी सम्मति लीजाती है, मेरे निर्धारित किये हुए समय-विभाग से सब काम समय पर होजाते हैं।

आजतक कभी संध्या, हवन नहीं छूटा, परमात्मा का कोटिशः धन्यवाद है कि उस की कृपा और आपके चरणों के पुण्य प्रताप से मैं निर्विघ्न शान्ति को प्राप्त होगई और सफलता पागई, और एक बड़ी गहरी खाई में गिरने से बच गई। एक मास पश्चात् ससुर जी को न जाने किस भांति सारा वृत्तान्त ज्ञात होगया तो उन्होंने अति प्रसन्न होकर मुझे पारतोषिक में एक सोने का मेडिल (स्वर्णपदक)

दिया जिस के मिलने पर उस महान् प्रभु को अति धन्यवाद दिया कि कहां तो मुझे अपने धर्म बचाने के लाले पड़े थे, कहां आज तूने उस से विरुद्ध मेरी यह प्रतिष्ठा बढ़ाई कि और घर वाले भी प्रसन्न रहे और धर्म भी बचा। मेरे मन में उस समय बड़े संकल्प विकल्प उठ रहे थे कि अधर्म में प्रवृत्ति कराने वाले बड़ों की भी बात न मानना चाहिये। उनकी ऐसी आज्ञा उल्लंघन करने में पाप नहीं होता। कभी यज्ञोपवीत के समय का उपदेश स्मरण आता था कि गुरु और बड़ों के अन्याय अधर्माचरण रहित न्यायधर्माचरण सहित जो कर्म हैं उन्हीं का सेवन किया करना। इनके विरुद्ध अधर्माचरण का कभी न करना (यान्यनवद्यानिकर्माणि तानित्वया सेवितव्यानि नोइतराणि) कभी प्रहलाद, पूर्णभक्त और भरतजी जरत्कारु आदि को नाम याद हो रहा था कि मनुष्य को सहसा तो क्या महान् विपत्तियों में भी धर्म न छोड़ना चाहिये, परन्तु मेरी परीक्षा का समय आने ही न पाया न जाने क्या होता। परीक्षा बड़ी कठिन होती है, और विपत्ति सहज में ही टलगई। हाहा माताजी! कैसा भयानक समय है, आज चेतन मूर्त्ति दो दो दानों को मारी मारी फिरती हैं, काल से पीड़ित हुई पाव पाव भर अन्न में ईसाइयों के हाथ बिकती हैं, कुछ जन दोचार वैदिकधर्म से पतितों की शुद्धि करके हर्षित होरहे हैं, पर इनके सहस्रों अनाथ बालक इन्हीं के मतरूपी वृक्ष के लिये कुल्हाड़ा बनने के लिये ईसाई अनाथालयों में पाल और शिक्षित बनाये जारहे हैं। धनाढ्य साहूकार ऐसे अनाथों की बात तक नहीं पूछते उनके देखने से भी घृणा करते हैं परन्तु नित नये जड़ पाषाणादि मूर्त्तियों के लिये लाखों रुपया लगा कर मन्दिर बनाये

जाते और नानाप्रकार के भोग तैय्यार करा रहे हैं। कैसा अच्छा होता जो यह सम्पूर्ण धन अनाथालयों और गुरुकुलों में ही लगता। अन्य देशवाले अपना धन नई २ कलाकौशल और व्यापारादि देशोन्नति में लगाते हैं पर यहां वाले स्वांग तमाशों में व्यर्थ धन लुटाते हैं। इन्हीं उल्टे कामों का फल है कि देश व्याकुल होकर हाहाकार मचा रहा है। परमात्मा हमारे देशवासियों की बुद्धि पवित्र करें। अधिक अन्य अवसर पर फिर लिखूंगी। मैं कुशल से हूँ, आप सब की कुशल की प्रार्थना है। आप सदैव मेरे करने योग्य उत्तम २ शिक्षायें लिखती रहें। और मुझे शीघ्र दर्शन कराइये और पिता जी व भ्राता जी से मेरा यथायोग्य नमस्ते कहिये।

२ उत्तर माता का पुत्री को।

धर्मप्रिया आनन्दवर्द्धका बेटीजी! नमस्ते।

प्रसन्न रहो, मुझे सदैव आप के शुभसमाचार सुनने और पढ़ने में आते रहें। परमात्मा आप को शुद्धाचारिणी बनावें। आप के पत्र से मुझे अति आनन्द हुआ, माता पिता के मन में यही लालसा लगी रहती है कि मेरी प्रियसन्तान सर्व प्रकार सुयोग्य और गुणयुक्त बने। माता पिता को इतना दुःख कभी नहीं होता जितना कि सन्तान के अयोग्य और अनुचित व्यवहार को देख कर व सुनकर होता है मेरे हर्ष की क्या सीमा होसकती है कि जिसको ऐसे समाचार प्राप्त हुए हों कि उसकी बेटी ने अपना धर्म बचाया, वरन् अपने प्रभाव से अपने सासु को भी प्रभावित किया। बेटी, तुम यह सब परमात्मा की ही दया समझो, जब परमात्मा उसके भावों को जान जाते हैं तब वह अपनी सहायता का

हाथ अवश्य बढ़ाते हैं। बेटी, जितनी तुम धर्मपरायण बनकर दूसरों को प्रसन्न रक्खोगी उतनाही तुम प्रसन्न और सुखी रहोगी, प्रतिदिन सुख बढ़ता रहेगा और स्वर्ग में निवास रहेगा। क्यों कि स्वर्ग किसी और जगह नहीं है, गृहस्थी का वह घर जिस में कलह नहीं जहां, धर्मविरुद्ध कार्य्य नहीं होता, जहां कोई कुकर्मी, अधर्मी दुष्ट नहीं, जहां स्त्रियों का अनादर नहीं, जहां स्त्री पुरुषों में झगड़ा नहीं, वही घर स्वर्ग है। ऐसे ही गृहस्थी सुखपूर्वक जीवन बिताकर मोक्ष के भागी बनते हैं। मनुष्य को परमात्मा ने बुद्धि भी क्या ही विलक्षण अपनी अपार दया से दान की है, यदि इससे विचारकर कार्य्य करता रहे तो सब अपनी मनोकामनायें प्राप्त कर सकता है। बेटी, मैं एकबात तुम्हें इसलिये लिखती हूं कि तुम्हें मेरी पृथकता से अति व्याकुलता है, सुनिये मैं एक तुम्हारी जननी माता हूं जो आपसे इस समय अलग पड़ी हूं केवल तुम्हारे लिये आशिर्वाद देरही हूं कि तुम सदा प्रसन्न रहो। एक दिन तुम से बिछुड़ जाऊंगी फिर यह माता पुत्री का किञ्चितमात्र नाता नहीं रहेगा और न जाने नाना योनियों में कै बार मैं आपकी और आप मेरी माता बनी होंगी। एक दूसरी माता तुम्हारी सासु है जो आजकल मेरी भांति आप के लाड़ प्यार में लग रही है. समय के परिवर्त्तन से कुछ दिनों पश्चात् वह भी तुम से अलग होजावेगी। हां तीसरी माता जगत्जननी जिसकी ओर आपने संकेत किया है वह सदैव तुम्हारे साथ रहेगी। उसका अवश्य ही अँधेरे उजाले, अकेले दुकेले, हर्ष शोक में ध्यान रखना कभी कोई अनुचित व्यवहार न करना, कभी सुख भोग में पड़कर उसे न भूल जाना। एक चौथी माता भी और शास्त्रों में बताई

गई है वह भी तुम्हारा प्रतिस्थान में साथ देगी, जहांपर हम दोनों माताओं में से कोई न भी होंगी वहां हम दोनों से अधिक आपका पालन पोषण करेगी और करती रहेगी। वह ऐसी बढ़िया माता है कि जो कोई भी उस माता से सच्चा नाता जोड़ लेता है। और वह उस से प्रसन्न हो जाती है, तो उस की वाणी फलवती हो जाती है। उसकी बात टलती ही नहीं, जो कहती है वही हो जाती है। जब तक उस माता के दर्शन नहीं होते तब तक वास्तविक माता जगदम्बा के दर्शन दुर्लभ ही नहीं वरन् असम्भव हैं। बिना इस के न मन शुद्ध होता है न आत्मा में बल बढ़ता है। इस का संग हो जाना पापों के नाश का कारण ही होजाता है। महापापी भी इस की छांह पड़ने से पापों से छूटने लगता है। ज्यों २ जितना २ वह उस के सम्मुख आता जाता है उतना २ शुद्ध और पवित्र और प्रकाशित होता जाता है। उस का नाम सत्य है, इस को सत्य माता बताया है, योग में [सत्यं प्रतिष्ठायां क्रिया फला श्रेयत्वम्] मनु में [मनः सत्येन शुद्धयति] यही परमधर्म बताया है [नासत्यात् परमधर्मम्] सत्य की सदा जय होती है [सत्यमेव जयति नानृतम्] इसी से परमात्मा से ये याचना की गई है [असतो मासद् गमय] इस की महिमा अपार है, इस के पालन करने से जो सुख आनन्द प्राप्त होता है उस का वर्णन कथन से नहीं हो सकता। संसार का और कोई आनन्द उसकी बराबरी नहीं कर सकता, इस लिये प्रियपुत्री ! यदि तुमने इस एक सत्यव्रत को धारण कर लिया, उस माता से प्रेम बढ़ा लिया तो जान लो कि तुमने अपनी आयु में सब सुखों को प्राप्त कर लिया। संसार में बहुत सी बातें ऐसी होती हैं

कि जिन को तुम सच जानती हो परन्तु वे झूंठी होती हैं। उस के लिये मैं आप को नहीं कहती। जैसा विना पक्ष जानती हो वैसा कहो परन्तु तुम अपनी नियत से जान बूझ कर किसी लाभ हानि के कारण से चपलता और छल से किसी की देखा देखी किसी के हित से झूंठ न बोलना। हां जो बातें बताने की नहीं हैं उन्हें न बताना इस पर ध्यान रखने से सदैव आप का कल्याण होगा। बेटी, तुम्हारा प्रति उपकार यही है कि तुम अपनी सन्तानोंका पालन पोषण प्रेम उत्साह से क्रोध रहित होकर करना अपने चित्त को उनकी विपत्ति रोगादि में दुःखित कभी न करना और कभी अन्यों की झाड़ को बच्चों पर न उतारना। ओ३म् शम्।

३ पत्र पुत्री की ओर से पिता को।

सच्चेरक्षक धर्मशिक्षक पिताजी ! नमस्ते।

आपके उपकारों से ग्रस्त प्रति उपकार न करनेवाली पुत्री आपको प्रणाम करती है। यह कृतघ्नता का भार अपने ऊपर धारण किये हुये आप से पृथक हुई एक दूर देश में निवास करती हुई आपके गुणानुवाद का कीर्तन कर आपको धन्यवाद और अपने को धिक्कार देरही है। पिता जी, मैंने जब से माता की गोद से अलग होकर अपने पैरों पर खड़ा होना और मुंह से बोलना आरम्भ किया, आपने मेरे बैठते, उठते, चलते, फिरते, बात करते, पढ़ते, लिखते हरसमय मुझे टोका समझाया, शिक्षा से ताड़ना से प्यार से जैसा उचित था आपने मेरे पवित्र बनाने में किसी प्रकार की कोई बात उठा नहीं रक्खी। जिस समय आप खेलने से रोक कर पढ़ने वा काम करने में लगाते थे उस समय चाहे कभी मुझे

बुरा भी जान पड़ा हो, परन्तु आज मैं जानगई कि जो माता, पिता बालकों का अधिक लाड़ करते हैं और उनको बात २ पर शिक्षा नहीं करते वे उन को विष पिलाते; और जो उचित ताड़ना करते रहते हैं वे उन्हें दोनों हाथों से अमृत पिलाते हैं। मैं आप का शुद्ध अन्तःकरण से धन्यवाद देती हूं, परमात्मा करे आप जैसे सब के पिता हों। आपने निश्चय किया था कि अभ्यास का बड़ा प्रभाव होता है, आदत बड़ी ज़ालिम होती है, आत्मा पर संस्कार पड़ते २ जब उस का पूर्ण प्रभाव पड़जाता है तो वह स्वभाव में ऐसी मिल जाती है कि स्वयं स्वभाव बन जाती है और उस की एक प्रकार की भागसी बनजाती है, जो फिर निकाले से नहीं निकलती। यदि वह मेरा अमूल्य समय खेलने में व्यतीत होजाता तो आज तक जो कुछ मैंने पढ़ और सीख लिया वह न सीख पाती; और इस समय जब गृहस्थी जैसा भारी बोझ शिर पर पड़ता तो करती जाती और बकती और रोती जाती, जैसा कि मैं तीर पड़ोस की स्त्रियों को देखती हूं कि कहीं बच्चों को गालियां देती हैं, कहीं पति को कोसती हैं, नाना ढोंग रच बकती चिल्लाती और रौल मचाती रहती हैं, वैसी ही मेरी भी दशा होती। परन्तु आप की कृपा और मेरे शुभ अभ्यास ने मुझे सुकुमार नहीं बनाया, इसलिये मुझे कोई काम हो उसका करना भारा गहन नहीं होता। पुरुषार्थ से मेरा शरीर भी निरोग रहता है और समय भी नष्ट नहीं होता। सच है पुरुषार्थ ही संसार में सब कामना पूरी करता है, मन चाहा सुख उसने पाया जो आलसी बन के पड़ा न रहा। अब आपके याद कराये निम्न श्लोकों का तात्पर्य्य समझी और उन पर पूर्ण विश्वास होगया।

उद्यमं साहसं धैर्य्यं बलंबुद्धिः पराक्रमः।
षडेते यस्य विद्यन्ते तस्माद्दैवोऽपि शङ्कते॥

अर्थात् उद्यम साहस धैर्य्य बल बुद्धि पराक्रम यह जिस में रहते हैं उस से दैव भी डरता रहता है। मैं कहती थी कि दैव क्यों डरने लगा परन्तु अब पता लगा कि परमात्मा में क्रिया (हरकत) स्वाभाविक हैं, वे स्वयं बड़े पुरुषार्थी हैं, जैसे पुरुषार्थी पिता आलसी पुत्र से प्रसन्न नहीं रहता, इसी भांति पुरुषार्थी मनुष्य की भी परमपुरुषार्थी परमात्मा मनोकाममायें अवश्य पूर्ण करते हैं और वर प्रदान करते हैं। पिताजी आप घरपर नित्य ही कुछ न कुछ शिक्षा मेरे कल्याणार्थ प्रदान करते रहते थे इसलिये जब तक आप से न मिलसकूं तब तक आप मुझे कोई न कोई मेरे हित की बात लिखते ही रहिये जिससे ज्ञान प्राप्त हो मेरा कल्याण होता रहे और मेरी रुचि भले कामों की ओर अधिक झुकती रहे।

४ उत्तर पिता का पुत्री को।

प्रिय पुत्री, मैं तुझे नेत्रों का तारा अथवा हृदय का टुकड़ा लिखूं सब सत्य है। बेटी, उस परमशक्ति ने पुत्र, पुत्री के साथ माता पिता का एक ऐसा गाढ़ा प्रेम उत्पन्न कर दिया है जिस के कारण वह सन्तान के लिये सदैव भलाई का यत्न करना अपना कर्त्तव्य कर्म समझता रहता है। सन्तान माता पिताके अङ्ग से उत्पन्न हुई है माता पिता सन्तानों के बिगड़ने सुधरने अच्छे, बुरे बनने के भागी होते हैं। सन्तानों पर माता पिता के खानपान चाल चलन आनन्द दुःखित अवस्थाओं उन के

सम्पूर्ण कर्मों और संकेतों और बातों का प्रभाव पड़ता है। मुझे जितना काल आप के योग्य बनाने में लगाना चाहिये था नहीं लगा सका, आज साधनों की अप्राप्ति से सारे काम अधूरे पड़े हुये हैं। मन में यह अभिलाषा थी कि आप सर्वगुण सम्पन्न, सर्वविद्यानिधान बनतीं, परन्तु अपने में इतनी योग्यता नहीं थी। द्वितीय गृहस्थी के नाना कार्यों के झगड़ों बखेड़ों से अवकाश भी न मिल पाया, पिता अपने से अधिक अपनी सन्तान को गुणवान् धनवान् बलवान् बनाना चाहता है जो माता पिता, पुत्र-पुत्री में अन्तर अर्थात् न्यूनाधिक जानते और वर्त्तते हैं वे पापी हैं। मैंने आप को कभी पुत्र से न्यून नहीं जाना न कभी भोजन वस्त्रादि में किसी प्रकार का अन्तर किया। हां शिक्षा के साधन वर्त्तमान काल के कारण लड़के को कुछ अधिक प्राप्त थे, मैं उस में परतन्त्र था क्या करता, आज तो कुछ उस का धन्यवाद है नहीं तो स्त्रीशिक्षा का तो अभाव ही हो चुका था। संसार में सब से अमूल्य वस्तु समय ही है, यदि आप समय से कार्य्य लेती हैं तो आप सराहनीय हैं सारे पदार्थ फिर भी मिल जाते हैं यदि नहीं मिलता तो यह गया हुआ समय ही नहीं मिलता। आज इसी के गुण को न जानते हुये मनुष्य दुःख सागर में डूब रहे हैं। हा! आज मूर्खता के कारण हम कोयलों पर मुहर लगाकर लोहे के सन्दूकों में बड़े २ ताले लगाकर रखते हैं, परन्तु बहुमूल्य माणिक मुक्ताओं को अज्ञानवश लुटाते और फेंकते फिरते हैं। कारण यह है कि जब तक कोई किसी वस्तु के गुण नहीं जानता, उस की प्रतिष्ठा नहीं कर सकता। जंगल की भीलनी सफ़ेद और उज्वल बहुमूल्य गजमुक्ताओं को छोड़कर काली पीली, लाल घुंघचियों का हार प्रसन्न होकर पहिनती हैं।

सच है, पोत के बेचने वाले माणिक के मूल्य को क्या जानें। कोई पारखी भीलनी की भांति कदापि कर ही नहीं सकता। प्रायः आज हम सबकी यही दशा है समझा ही नहीं विचार ही नहीं किया कि संसार में एक मिनट भी बहुमूल्य है। 'राजसे' यदि रूम और शाह फिरांस भी मरते समय अपना सारा राज भी दो चार मिनट के बदले देवें तो नहीं मिल सकते। इस से स्पष्ट ज्ञात है कि दो चार मिनट बहुमूल्य है सम्पूर्ण राज से, जिसके बदले जो वस्तु मिलजाती है वह उस के मूल्य के तुल्य होती है, यह स्पष्ट ही है। जीवन का अमूल्य समय निरर्थक और निर्मूल बातों में व्यतीत होरहा है हा! उनका सारा समय सोने में, लड़ाई झगड़ों में खेलने में ही व्यर्थ कट जाता है, यदि उनसे कोई पूछे कि क्यों खेलते हो तो बेधड़क उत्तर दे देते हैं कि क्या करें समय ही नहीं कटता। आप सोचें तो सही कि जिनको समय भी काटने की वस्तु होरही हो, उन से क्या आशा होसकती है। तुम सदैव समय का ध्यान रखना जो समय घरके कामों और आराम से शेष बचे उसे ईश्वर आज्ञा पालन में लगाती रहना। दिन में कभी न सोना, परोपकार का ध्यान रखना, शनैः २ सञ्चय होते होते समय पाकर मनुष्य बड़ा योग्य और प्रतिष्ठित बन जाता है। दूसरी बात यह है कि मैं आपका एक व्यावहारिक पिता हूं, यदि ज्ञानदृष्टि से देखो तो सम्भव है कि कभी तुम मेरी पिता बनी हो। सच्चा पिता, माता तो तुम्हारा और हमारा परमात्मा ही है, जो कभी तुमसे अलग नहीं होगा, उसका ध्यान चाहे जितना सुख प्राप्त हो कभी न भूलना। भलाई करना बुराई से बचना, इसका बढ़िया यह नियम है कि तुम जिसके साथ भलाई करो उसे भूलजाना कभी येहसान

(उपकार) न जताना और जो तुम्हारे साथ भलाई करे उसे स्मरण रखना और उसका उपकार मानना। समय पड़ने पर प्रत्युपकार करना जो कोई तुम्हारे साथ बुराई करे उसको भूल जाना, इनके अनुकूल जीवन बनाने से अपूर्व सुख लाभ होते रहेंगे। शास्त्र में एक और पिता बताया है, जिसका नाम ज्ञान है 'सत्यं मातापिता ज्ञानं" वह तुम्हारा सदैव हितैषी रह सकता है, यदि उसे पिता समझ कर उसकी आज्ञा मानने तदनुसार कार्य्य करने लगोगी तो सर्वसुखों से भरपूर हो जावोगी, बिना उसकी सहायता के सच्ची शिक्षा भी प्राप्त नहीं हो सकती। ज्ञान ही तुम्हें बता देगा कि तुम्हारे जीवन के दो भाग हैं-एक का नाम जन्म दूसरे का नाम मरण है। अर्थात् एक का नाम प्रवृत्ति मार्ग और दूसरे का निवृत्ति मार्ग है। जैसे नदी के दो किनारे होते हैं इसी भांति इस जीवन के भी दो किनारे हैं। बेटी, तुम उस समय तक जब तक तुम्हारा शरीर स्वाभाविक नियमानुकूल भोजनादि को पचाकर बलिष्ट और पुष्ट बनाता रहे-अर्थात् जब तक वृद्धि का समय रहे तब तक संसारी सामानों के बढ़ाने और उनमें प्रीति रखने और भी अन्य संसारी कामों में प्रवृत्ति बढ़ाती रखना और जबसे तुम्हारे शरीर के परमाणु घटने लगें और किञ्चित् परिहाणयवस्था आरम्भ होजावे तबसे उनकी ओर से मन धीरे २ हटाती और शनैः २ छोड़ती और परमेश्वर की ओर अधिक मन लगाती रहना। ऐसा करने से तुम्हें मौत का भयानक दृश्य दृष्टि नहीं आवेगा। आज जो लोग मौत से डरते हैं कि यदि कोई उनसे कहदे कि तुम मरजाओ तो लड़ने को और गाली देने को तत्पर हो जाते हैं कि तू मरजावे, तेरा पिता मरजावे, पर जैसी मृत्यु को भयानक

और डरावनी समझे हुए हैं वास्तव में ऐसी डरावनी वस्तु नहीं है। परन्तु जैसे चोर डाकू आदि पापियों को पुलिस राज के दूत भयानक दिखाई देते हैं, ठीक उसी तरह पापी जनों को मौत डराती है, नहीं तो धर्मात्मा सज्जन जन तो राज दूतों को रक्षक समझते हैं और हाथ मिलाते हैं, उन्हें राजदूतों से किञ्चित् भय नहीं होता, इसी प्रकार ज्ञानी को मौत का। बेटी, हम तुम सब पथिक हैं, किसी नियत स्थान तक पहुंचना चाहते हैं, मान लीजिये रेल पर चढ़कर हमें शाहजहांपुर से कलकत्ते को जाना है कलकत्ता हमारा पड़ाव (मञ्ज़िल) है वहीं का टिकट लेकर हम सवार हुये हैं, लखनऊ प्रयाग बीच में हैं, नियत स्थान पर पहुंचे विना जो कोई हमें बीच में उतारता है, हम नहीं उतरते, हम लड़ते हैं, टिकट दिखाते हैं, गार्ड से कहते हैं, हाहाकार मचाते हैं; पर कलकत्ते पहुँच कर अपने आप ही अपना सामान लेकर उतरने की जलदी मचाते हैं। थोड़े समय गाड़ी में बैठते घबराते हैं पुकारते हैं कि गाड़ी खोलो कोई कोई तो चाबी तक पास रखते हैं झट खोल कर उतर जाते हैं। इस से पता लगा कि स्थान पर पहुँच कर उतरना बुरा नहीं लगता। जिन्हों ने संसार में ऐसे अच्छे काम कर लिये हैं वह समझते हैं कि हमारी मंज़िल पूरी हो गई, उन्हें शरीर-रूपी गाड़ी को छोड़ते कुछ भी भय नहीं लगता। वह मरना इस लिये अच्छा समझते हैं कि हम मरकर इस से अधिक आनन्द को प्राप्त होंगे, मोक्ष सुख को भोगेंगे, परमात्मा को प्राप्त होंगे अथवा किसी को लखनऊ आदि में पता लगजावे कि इस गाड़ी से उतरते ही ऐसी दूसरी गाड़ी मिल जावेगी और वह हमारे आदर्श तक पहुँचा देगी तो भी उसे उतना

दुःख नहीं होता। सारे पथिकों की इच्छा तो यही होता है कि हमें कोई बीच में गाड़ी बदलनी ही न पड़े, परन्तु गाड़ी न मिलने वा पड़े रहने की अपेक्षा उतर कर दूसरी में बैठ जाना भी अच्छा जानते हैं। इस का यही अभिप्राय है कि जिन को अपने कर्म्मों पर इतना तक निश्चय है कि हम को मनुष्ययोनि तो अवश्य मिल जावेगी उन को भी उतरते अर्थात् प्राणत्यागते कुछ कष्ट नहीं होता। परन्तु मौत तो भयानक रूप धारण किये हुये उन के सामने खड़ी होती है, जिन्हों ने घोर पाप किये हैं, उन के तो प्राणों का वियोग बड़ी कठिनाई से होता है, वरन् मरते समय घरें लगते हैं। बेटी, यह सच्ची बातें ज्ञान से ही प्राप्त होंगी, सब से प्रथम साधन ज्ञान अर्थात् (१) अधीत है वैदिक शिक्षा और सब शास्त्रों से धर्म के लक्षण और स्वरूप को जानना, उस के पश्चात् (२) बोध है अर्थात् जैसा उन ग्रन्थों का आशय है वैसा ही समझ लेना, फिर आचरण जैसा अधीत और बोध से ज्ञान हुआ है वैसा ही आचरण करना, तत्पश्चात् प्रचार है अर्थात् शुद्धाचार और पवित्र वचनों के द्वारा संसारी जनों को उपदेश करना। इस लिये आप विचार करती हुई न तो अधिक संसारी सुखों में फँसजाना, न गृहस्थ होती हुई इतनी विरक्त हो जाना कि गृहस्थी में दुःख भोगने लगो। सब काम यथायोग्य और यथोचित करने अच्छे होते हैं। इस लिये मैंने संकेतमात्र आप को लिख दिया है, परमात्मा से प्रार्थना है कि वह आप को सत्यज्ञान प्रदान करे। यदि कुछ काल भी मन लगाती रहोगी तो बहुत कुछ आनन्द मिलता रहेगा और नित्य-प्रति बढ़ता रहेगा। दुःख के दूर होने के लिये बाधक होना आवश्यक है सो केवल

आनन्दस्वरूप ही बाधक है, सुख की इच्छा हो तो उस का निरन्तर ध्यान रखना। अधिक नमस्ते

९-पत्र भगिनी का भ्राता को।

बाहुबलवर्द्धक मनरंजक भ्राताजी! नमस्ते।

क्यों भाई जी मैं और तुम दोनों माता जी के पास सोते थे, माता जी मुझे और तुम दोनों पर समान प्यार रखती थी, जैसा अन्य भाई बहिनों में विवाद रहता है वैसा मुझे स्मरण है कि मुझ में आप में कभी नहीं हुआ। इसका कारण यह था कि माता जी ने मेरे और आप के बीच में परम प्रीति का भाव उत्पन्न कर दिया था, जिस से दोनों एक दूसरे पर प्राण वारते थे। जैसा सामान्यतया भाईका बहिन की अपेक्षा अधिक लाड़ चाव किया जाता है और अधिक भाग भाई को दिलाया जाता है वा बहिन से छिपाकर अथवा सो जाने पर भाई को मीठा आदि खिला दिया जाता है, माताने अपने घर में इस रीति का मलियामेट कर दिया था। माताने सामनात्मा का विचार कर के खिलाने, पिलाने, पहिनाने, पढ़ाने, लिखाने में एकसा ही वर्त्ताव रक्खा था, इस लिये कोई वस्तु मैं बिना आप के दिये और आप बिना मेरे दिलाये ग्रहण नहीं करते थे। माताजी, पुत्र-पुत्री में भेद जानना पाप समझती थीं, वे उन घरों की दशा पर आंसू बहाती थीं जहां पुत्रों का मान और सत्कार पुत्रियों से अधिक किया जाता था। यह उनका विचार वर्त्तमान समय में तो मेरे ऊपर एक प्रकार का उपकार था, मैं तो जब कुछ समझने और तीर पड़ोस की दशा देख कर कुछ जानने पहिचानने लगी तो लज्जित हो जाती थी और कह भी देती थी कि अमुक वस्तु भ्राता ही को दे दो, तो माता

जी कहती थी कि माता की यही तो योग्यता है कि न्यून से न्यून वस्तु के भी समभाग करके सब को पहुँचा देंवे। माता जी ने अपने पवित्राचरण और धर्म और शिक्षा से हम और आप में ऐसा भाव उत्पन्न कर दिया था कि जब मैं कहती कि आप ही इसे बर्तें तो झट कह देते कि तुम ही इसका सेवन करो। यह तो सामान्य और साधारण बातें हैं, बड़ा हर्ष तो मुझे इस बात का है कि आपने अड़ोस पड़ोसके भाई, बहिनों के नित नये झगड़े देखकर भी मुझे अपने प्राणों की तरह प्रिय समझा। मैं भी सदैव आप को प्राणों से प्यारा समझती रही। यदि कभी किञ्चित् भी आप का मन मलीन पाया मैंने रातें जागकर बितादीं, जब तक आप नीरोगन न हो गये तब तक अपना आराम भूल गई। यही हाल आप का रहा, पर आप आप हीं थे मैं, मैं ही। यह सब आपके प्रियाचरण का ही फल था, आज समय है जैसा मैं आपसे अलग पड़ी हुई आप के प्रेम का चिन्तन कर रहा हूं, सम्भव नहीं कि आपको मेरा स्मरण न होता हो। मैं जब से यहां आई आप से अलग हुई, गृह के बोझ से मेरी पढ़ाई न होने के तुल्य हो रही है, आगामी उच्च शिक्षा तो रुक ही गई परन्तु आप बराबर शिक्षा पारहे हैं, परमेश्वर आप की सहायता करें। आप कुछ प्रथम से ही आगे थे मुझे बड़ा हर्ष उस समय प्राप्त होगा जब सुनूंगा कि आप ने सच्ची वाचस्पति आदि की उपाधियां प्राप्त कीं और बड़ी २ पदवियां पाईं। आप जैसी २ उन्नति करते जावेंगे उतनी ही सुनकर मुझे प्रसन्नता प्राप्त होगी। मैं आपसे विनय पूर्वक प्रार्थना करती हूं और आशा रखती हूं कि आप मेरे हित की बातें अवश्य लिखते रहिये और चितावनी के ढंगपर चिताते रहियें जिस

से मैं उद्योगी पुरुषार्थी बनी रहूं। एक बात आप को यह लिखती हूं कि माता, पिता ने आप के अर्थ धन अधिक छोड़ा है, आप अपने पुरुषार्थ का धन न समझ कर आलस्य में पड़कर उसकी उन्नति का ध्यान न छोड़ बैठिये, मेरे पिता बड़े पुरुषार्थी थे वह कहा करते थे कि-

उद्योगेनहि सिद्ध्यन्ति कार्य्याणि च मनोरथाः।
नहि सुप्तस्य सिंहस्य प्रविशन्ति मुखे मृगाः॥

उद्योग से सब मनोरथ सिद्ध होजाते हैं बिना उद्योग किये सोते हुये सिंह के मुंह में मृग आप से आप नहीं प्रवेश कर जाता। अधिक धन ऐश्वर्य्य मनुष्य को पुरुषार्थ हीन बना देता है। यह बात आप को लिखना छोटे मुँह बड़ी बात है, परन्तु मेरी अच्छी बात आप ने और आप की अच्छी बात मैं ने सदैव मानी है। यह बात सहज स्वभाव से मैंने बिना आवश्यकता सूचनार्थ लिखदी है कि जिस वाटिका में पानी लगना बन्द होजाता है वह मुर्झाने लगती है अथवा जो पुरुष अपने शरीर के रक्त की चाल को भली भांति जारी नहीं रखता वह भी प्रसन्न चित्त नहीं रहता। आप रक्त के प्रवाह का सदैव यत्न करते रहना। व्यायाम ही इसका साधन है, उसका त्याग कभी न करना, इस से चित्त भी प्रसन्न रहेगा और बल का भी लाभ होगा। मैंने देखा है कि रेलगाड़ी पर बलवान् को देखकर झट दर्जा खोल देते हैं और निर्बल को धक्का देकर परे हटा देते हैं, चढ़ने ही नहीं देते। वह बेचारा मारा २ दांत घिघयाता फिरता है, उस पर कोई दया ही नहीं करता। चाहे उस के दर्जे में दो ही पुरुष क्यों न हों, पर यह कह कर कि हमारे में आजाओ कोई नहीं

बुलाता। दीनों पर दया का अभाव होगया है। तुम आज कल के धनवानों की भांति न बन जाना कि (धोती भी तभी पहिनें जो कोइ अन्य पहिनावे। उमरा को हाथ पांव हिलाना नहीं अच्छा) न कभी तोते, मैने, बुलबुल आदि को पिञ्जरों में बन्द करके प्रसन्न होना। यदि होसके तो अपने मन, इन्द्रिय को वशमें करना, अपने काम अपने भरोसे पर अपने बाहुबलपर करना, दूसरों के बल और आश्रय पर नहीं। पर हथ बनिज सँदेशे खेती, नहीं होती, तुम उस पिता के पुत्र हो जिसने ज्येष्ठ, वैशाख की धूपमें, कभी छत्री नहीं लगाई, आपको भी स्मरण होगा कि आधी रात को मूसलाधार पानी बरसते हुए में भी यदि कोई कोठा टपका तो उन्होंने कभी किसी सेवक को उठाना उचित न समझा, आप ही चढ़कर भीग कर तुर्त बन्द किया। उन्हें मरते दम तक कभी चूर्णगोली की आवश्यकता न पड़ी। वे कभी भोजन न पचने के कारण पेट पकड़े न फिरे। वे वर्त्तमान नवयुवकों पर हँसा करते थे कि देखो शिर के बालों में तैल डाले चिकनपट किये चिकनिया बने डोलते हैं, जब मुंह पिचका है शरीर के भीतर तेल पैदा ही नहीं किया तो इस ऊपरी तेल से क्या हो सकता है। वे कैसे अपने नियम और बात और ध्वनि के पक्के थे, मरते मर गये, पर कभी व्यायाम का परित्याग नहीं किया। सदैव मोटा लठ हाथ में रखते थे, अपने हथियार आप ही उठाते थे, नौकरों से नहीं उठवाते थे। एक दो बार उन्हें टोका भी कि यह इतने नौकर किस लिये हैं जब आप स्वयं हथियार उठाते और अपने आप ही सब काम करते हैं, तो उत्तर दिया कि यह बतलाओ कि फिर यह मेरे हाथ पैर किस लिये हैं। यह भी काम

करने के लिये हैं और इनसे काम लेने को ही मिले हैं, यदि यह काम न करें तो निकम्मे होजाते हैं। शस्त्र मनुष्य का समय पर रक्षक होता है। पूर्व पुरुषा इसे, पुरुष का भूषण बताते थे, नौकर ही यदि हमारे हथियार उठावें और हम उनके पहिरे में चलें तो हम ह्वालाती हुये, हम उनपर क्या हुकूमत कर सकते हैं। देखो, आज हमारे वीर अंग्रेज़ अपने हथियार नौकरों से नहीं उठवाते, कैसा पुरुषार्थ करते हैं। भ्राताजी, आप नौकरों और मनुष्यों पर हाकिम बनने के स्थान पर इन्द्रियों को जीत शूरवीर बनो [इन्द्रियायाम जै शूरः] तो अति उत्तम हो। मेरी बात मन में धर आप मेरे हितकी बात भी लिखिये, यदि कोई कठोर या अनुचित बात जान पड़े तो क्षमा कीजिये। ओ३म् शम् ॥

६–उत्तर भाई का बहिन को।

प्यारी योग्य बुद्धिमती भगिनीजी! नमस्ते।

पत्र आपका प्राप्त हुआ, उसने हर्ष बढ़ाया, शोक निवारण किया। भला उससे बुरा संसार में और कौन होगा जो अपने हित की बात को बुरा जाने। इसमें संदेह नहीं कि हितकी बात कड़वी लगती है। परन्तु वही कड़वी औषधि की नाईं आरोग्यता प्रदान करती है आप जानती हैं कि यदि मुझ में और आप में गुण ग्रहण करने का स्वभाव न होता तो कभी न कभी कुछ न कुछ झगड़ा अवश्य होजाता। मैं केवल ढाई वर्ष आप से बड़ा हूं, यह बड़ाई कुछ ऐसी नहीं है कि जो बड़ा अन्तर डाल सके, और प्रायः कन्यायें लड़कों की अपेक्षा न्यूनावस्था में वार्तालाप करने और समझने लगजाती हैं, जो स्वाभाविक बात है। इस लिये मैं अपने

को आप से बड़ा नहीं समझता, और आयु में बड़ा होने से कोई बड़ा भी नहीं होता, बड़ा वह ही है जो बुद्धि में बड़ा हो तुम सदैव बिना किसी विचार के निशंक होकर मेरे हितकी बात लिखती रहना। आप तो मेरी बहिन हैं, मैं तो अपने शत्रुओं का भी यदि वह कृपा करके मेरे दोषों से किसी नियत से मुझे सूचित करते हैं तो उनका उपकार मानता और धन्यवाद देता हूं। उनकी ही कृपा से मुझे अपनी निर्बलताओं का बोध होजाता है, मेरा अपना विचार है कि जब मुझे प्रथम बोध होजावेगा तो उसका ध्यान होने से एक दिन ऐसाभी आजावेगा जब वह छूट भी जावेगा। ज्ञान की प्रथम आवश्यकता है, इसी लिये वेदों में प्रथम ज्ञान कांड है। आप निश्चय रखिये कि मैं पिता के धनको कदापि अनुचित व्यवहारों में व्यय न करूंगा, हां मेरा विचार यह तो अवश्य है कि रखने के लिये रुपया पत्थर दोनों बराबर हैं। आपको मेरे अधिक व्यय करने का पता लगा होगा, मैं धन का फल यही समझता हूँ कि वह धन भले धार्मिक कामों में सबका सब व्यय होजावे तो बुरा नहीं पर अनुचित दुष्ट कार्यों में कौड़ी भी व्यय होजाना पाप समझता हूं। आप यह लिखिये कि अमुक काम बुरा है जिसमें तू व्यय कर रहा है, मैं आपका बड़ा कृतज्ञ हूंगा। यदि लखपती पुरष एक पैसा भी अनुचित व्यवहार में व्यय करता है तो उसका वह व्यय अनुचित व्यय है, पर १०) मासिक का आयवाला सबका सब भले काम में लगा देता है, तो वह अनुचित व्यय नहीं कहला सकता। दान और दया बुरीनहीं

जलकी शोभा कमल है, रनकी शोभा पति।
धनकी शोभा दान है, कुल की शोभा शील॥

आप का यह विचार कि धन को बढ़ाते रहना, उससे क्या लाभ हो सकता है. जब तक धन रक्षित रक्खा रहताहै तब तक तो उससे कोई काम ही नहीं निकलता। यह तो जब पास से अलग होता है तब ही काम चलता है। रखनेके लिये ईंट पत्थर और रुपया बराबर है। मैं तो यह समझता हूं कि [देह धरे का फल यही देह देह कुछ देह, ना जाने फिर जगत में आवन होय न होय]

उसी की राह में देना है घर में भरलेना।
इधर दिया और उधर दाख़िले ख़ज़ाना हुआ॥

क्या आप उचित समझती हैं कि लूले, अपाहिज, अनाथ, विधवा भूखों मरजावें और मैं धन घर में गाड़ कोप का सर्प बना बैठा रहूँ। हा एक मनुष्य तो सात बातों अर्थात् मान, महातम, लाज, पत, गुण, गरुआतम, नेह को खोकर मुझ से याचना करे, जैसा कि दोहा—

मान महातम लाज पत गुण गरुआतम नेह।
तुलसी सातों गये हैं जभी कहा कछु देओ॥

और मैं समझता हुआ भी कि—

तुलसी वे नर गये हैं जो परघर मांगें जाय।
उन से ज़ियादा वे गये जो होतेहीकरदें नाहिं॥

टकासा साफ उत्तर देदूं कि चलो आगे बढ़ो वा फिर मांगो, मैं क्या और मेरी हस्ती ही क्या जो देशहितैषियों वा दानियों की गणना में आ सकूं न मेरी ऐसी इच्छा है। हां

परमात्मा सहायता दे तो मेरी रुचि ऐसे कामों में सहायता देने की अवश्य है, वह भी अंधाधुंध नहीं मैं देते समय देश काल पात्र का भी ध्यान करलेता हूँ, रही बलबृद्धि, सो आप को ज्ञात है कि मैं बाल्यावस्था से ही शारीरिक दशा सुधार के अर्थ व्यायाम दण्ड, मुगदर, लेज़म पट्टा, फरी, गदका, डिम्बिल, जमनास्टिक, फुटबालादि का अभ्यासी हूँ, कभी छोड़ा ही नहीं, आरोग्यता का मुझे आप ही ध्यान है, मैं जिस प्रकार जीवन के लिये भोजन की आवश्यकता समझता हूं वैसी ही आरोग्यता की जिस की ओर आपने संकेत किया है। आख़िर उसी पिता का मैं भी पुत्र हूँ पिता का धन पाकर मैं प्रमादी वा आलसी पुरुषार्थ हीन नहीं होगया पुरुषार्थ से धन भी पैदा करता हूँ और व्यय भी करता हूं। मैं यह नहीं जानता कि विना आय कुआ भरी माया भी ख़ाली हो जाती है, मेरे इस तुछ धन की क्या हस्ती है। क्या आपने मुझे भोला सनातनी जान लिया, जिन के भाई नित ईसाई यवन हो रहे हैं। एक दिन आवेगा जब चुटिया जनेऊ का नाम मिट जावेगा, पर शोक वह उनके लौटाने का नाम लेते ही कानो पर हाथ धरने लगते हैं और रामराम कहकर अलग होजाते हैं। मैं सोच रहा हूं कि आपके हित की क्या बात लिखूं आप स्वयं ही योग्य चतुर और सुबोध हैं, जागते को क्या जगाया जावे।

और फिर सोता हुआ जागते के जगाने की चेष्टा करे तो कितनी मूर्खता है। प्रिय भगिनी! शास्त्र मे (धर्मो भ्राता) भाई को धर्म के नाम से बताया है, इस लिये धर्म के सम्बन्ध मे एक बात लिखता हूं। धर्म शब्द बड़े गूढ़ अर्थों को लिये हुए है। इसके अन्तर्गत सम्पूर्ण अच्छी बातें जो करने और

धारण करने योग्य हैं, आजाती हैं। जिस के लक्षणों और उपलक्षणों की व्याख्या बहुधा आपने सुनी होगी और मनु के बताये हुए दश धर्म के लक्षणों धृति क्षमादि और वेद, स्मृति सदाचार स्वप्रियात्मनः लक्षणों का भी ध्यान होगा। इन का अधिक विस्तार सहित वर्णन कर पिष्टपोषण की भांति व्यर्थ समय खोना है। इन सब का तात्पर्य्य चौदह लक्षणों का निचोड़ यह है कि संसार में वह बर्ताव तुम औरों से करो जो अपने साथ तुम औरों से कराना चाहते हो। जिस के करने और कराने में मन को उत्साह उत्पन्न हो और किञ्चित् मात्र भी भय, लज्जा, शंका, ग्लानि से मन और अन्तःकरण क्लेशित न हो। और यह बात विशेष ध्यान के योग्य है कि धर्म के इन लक्षणों में से दशों का पालन करना अति आवश्यक है, यह इन में बड़ी गहिरी और विचार की बात है। क्योंकि एक के न पालन करने से फिर एक का भी पालन नहीं हो सकता और सबके सब अधूरे रह जाते हैं। जब तक मान प्रतिष्ठा के विचार का परित्याग नहीं कर देता, जब तक धर्म की ओर उसका पग नहीं बढ़ता; तब तक काम के करने में बड़ी रुकावटें पड़ती हैं। यदि वह उन रुकावटों के दूर करने अर्थात् मार्ग के कांटे कुबड़ों के साफ़ करने में लगजाता है वा घबरा जाता है तो अपने लक्ष्य तक नहीं पहुंच सकता। यदि लक्ष्य और आदर्श तक पहुंचना है तो उन विपत्तियों से न घबरा कर धैर्य्य पूर्वक कार्य्य किये जाना ही उसका मनोरथ पूर्ण कर देता है और उस की यात्रा सुफल होजाती है। इस लिये धैर्य्य बिना प्रथम पग भी नहीं उठा सकता यही कारण इस के सब से प्रथम होने का है, पर धैर्य्य के साथ कार्य कर ही नहीं सकता, जब तक उस में क्षमा अर्थात्

निन्दास्तुति मानापमान हानिलाभादि में सहनशील और दूसरों के माफ़ कर देने का ध्यान न हो। जो पुरुष ज़रा २ सी बात में बदला लेने के विचार में फंस जाते हैं वे अपने उद्देश्य से परे हट जाते हैं, इस कारण क्षमा का होना आवश्यक है। पर क्षमा का पवित्र विचार मन के पवित्र होने पर निर्भर है, जिसका मन पवित्र नहीं, डांवाडोल रहता है, बुरे विचारों का घर बना हुआ है, ऐसे मलीन मन के होने पर क्षमा का अंकुर जम नहीं सकता, और मन का शुद्ध होना अस्तेय के बिना दुस्तर है, जब तक मनुष्य दूसरों के पदार्थों के ग्रहण करने की अकांक्षा करता रहता है; अन्यों की वस्तु पर लोभायमान रहता है तब तक उसका मन बराबर भटकता रहता है, इस लिये मन को पवित्र बनाने के अर्थ स्तेय का होना ज़रूरी है। और दूसरों के माल मारने का ध्यान तब ही दूर हो सकता है जब उस की चित्त-वृत्ति और अन्तःकरण शुद्ध हो, उसे बाह्य और अभ्यन्तर दोनों प्रकार की शुद्धि का ध्यान हो। पर जो मनुष्य इन्द्रियों के विषयों में फंसा है, जिस ने इन्द्रियों को अपने आधीन नहीं बनाया है (भार्या लुब्धे कुतः शुचिः) वह कभी शुद्ध हो नहीं सकता। और इन्द्रियों को वह ही वश में कर सकता है जो बुद्धिमान् हो, जिसकी मेधावी धारणावती बुद्धि हो, जो अपने हानि लाभ को, झूठ और सच्चे स्वादु को जानता और उसके अनुकूल कार्य्य करता हो। और बुद्धि का शुद्ध होना विद्या पर निर्भर है, जैसे बड़ी आंख वाला भी बिना सूर्य्य अथवा उसके आये हुये प्रकाश दीपकादि के अँधेरे में देख नहीं सकता, ऐसे ही चाहे जैसा बुद्धिमान् क्यों न हो बिना विद्या के उस की बुद्धि ठीक काम नहीं कर सकती, पर विद्या से बुद्धि उन्नति

करेगी वह भलाई बुराई दोनों ओर झुक सकती है। विद्या से बुद्धि धोखा देकर काम निकाल लेनेवाली अपस्वार्थी असत्य विचार वाली बन सकती है, इसलिये ठीक २ विद्या तब ही प्राप्त होगी जब सच्चे गुरु मिल जावेंगे और वह बिना छल कपट के सत्य २ बता देंगे। और सत्यगुरु वे ही बन सकते हैं जो क्रोध को दूध की नाईं पीगये हों, जिन्हों ने क्रोधाग्नि में जलने से अपने को बचाया हो, जो क्रोध आनेपर भी झूठ न बोलें वे ही सच्चेगुरु कहाते हैं, अर्थात् जो अक्रोधी है वही सत्यगुरु हो सकता है, और सत्य गुरु के उपदेश और बताये और सिखाये बिना सत्य विद्या नहीं प्राप्त हो सकती। और विद्या के बिना बुद्धि नहीं बढ़ सकती। और बुद्धिमान् के बिना कोई इन्द्रियों को जीत नहीं सकता बिना इन्द्रियों के जीते और वश में किये कोई शौच के नियम का पालन नहीं कर सकता। बिना अन्तः करण की पवित्रता के दूसरों के माल मारने का विचार जा नहीं सकता। जब तक ऐसा विचार बना रहता है, मन तब तक शान्त हो ही नहीं सकता। और बिना शुद्ध मन के दूसरों पर क्षमा का ध्यान कैसे आसकता है। और जब तक क्षमा का स्वभाव न हो जावे, धैर्य्य के साथ जिस काम को करना आरम्भ किया है कैसे कर सकता है। इस कारण, धर्म के दशों लक्षणों का परस्पर समवाय सम्बन्ध है और सबके पालन करने से धर्मात्मा बन सकता, अन्यथा कदापि नहीं। इस-लिये आप इनके मर्म को खूब समझ कर धर्मपूर्वक सब के साथ यथार्थ बर्ताव रखना। जो प्रथम सेवक बन योग्यता प्राप्त करते हैं, वेही पुनः सेव्य बन अपनी सेवा कराते हैं। आज तुम्हें साधु आदि की यथायोग्य सेवा करनी पड़ती

होगी, कभी तुमने कराई थी और आगामी आयु में भी तुम्हारी बहुएं तुम्हारी सेवा करेंगी। जैसा बर्ताव कोई करता है वैसा उसके आगे आता है, जो देता है वह ही पाता है, जो बोता है वह ही काटता है।

जो तोको काटे बवै ताहि बवै तू फूल।
तोको फूल के फल हैं वाको हैं तिरशूल॥

दूर न जाइये, आपने पत्र में मुझ से क्षमा मांगी। मैं आप से मांगता हूं कि मेरे लेख में यदि कहीं अनुचित हो क्षमा प्रदान कीजिये और यह भी न समझना कि आप अपना कर्त्तव्य पूर्ण नहीं करतीं या कमी करती हैं. जिस प्रेम से मेरी भलाई के लिये आपने लिखा उसी विचार से मैंने आपको लिखा। सच है-"यह मन्दिर की सदा जैसी कहे वैसी सुने।" मैं आपका धन्यवाद देता हूं और आपका मुख्य भ्राता धर्म को बताता हुआ समाप्त करता हूं। यह धर्म मनुष्य का परम मित्र है जो जीवन में सुख और मरने पर आनन्द प्राप्त कराता है परदेश में विद्या, घर में पुरुष के लिये स्त्री, स्त्री के लिये पुरुष, रोग में औषधि सहायता देती है, पर मरने पर धर्म सहायक होता है, और जिससे तीनों लोकों में प्रकाश हो जाता है वह धर्म ही है। सारी चीज़ें चलायमान और नाशवान् हैं, पर एक धर्म अचल और अविनाशी है, हम और आप सभी को इसका जितना होसके ग्रहण करना आवश्यक है। परमात्मा हमारी और आपकी वरन् सब की सहायता करें. धर्मात्मा बनावें, तभी सुख होगा। ओ३म् शम्॥

७-पत्र सखी के लिये।

प्यारी सखीजी ! साथ खेलने वाली, दुःख सुख में सम्मिलित रहनेवाली, नमस्ते। उसका अनेकान् धन्यवाद है कि मैं बहुत प्रसन्न और आनन्दित हूं, आपकी कुशल परमात्मा से भली चाहती हूं और आशा करती हूं कि आप प्रसन्न होंगी। मैं और आप बहुत दिन साथ रहीं, पढ़ी और खेली, लोक में यह कहावत प्रसिद्ध है कि जहां चार बरतन होते हैं वहां खटक ही जाते हैं, परन्तु मुझ में और आप में झगड़ा तो अलग रहा कभी कठोर वचन का भी व्यवहार नहीं हुआ। जैसी मेरी और आप की धर्मपूर्वक निभी, परमात्मा सबकी निभाये हम आप सदैव परस्पर एक दूसरे के हर्षशोक में सहायक रहीं। आपको स्मरण होगा कि आपने मुझसे और मैंने आप से जो बहुत ही न्यूनावस्था में यह प्रतिज्ञा की थी कि कभी असत्य न बोलेंगे, जब बोलें वा अभ्यास के कारण मुँह से निकल जावे तो कुछ दण्ड (जुरमाना) दें। इस प्रकार जो धन प्राप्त हो, वह दीन दुखियों और बालविधवाओं की सहायता में व्यय किया जावे कुछ काल तो दण्ड देना पड़ा, अन्त को सच बोलना हमारी और आपकी प्रकृति में दाखिल होगया और जो सुख कि उससे प्राप्त हुआ और होरहा है वह मन ही अनुभव कर सकता है। आप के उस समय के उपकार के कारण मुझे मैके, सुसरे वाले सत्यवादिनी के नाम से पुकारते हैं और बड़ी प्रतिष्टा करते हैं। बच्चे आपस में खेलते २ जब कभी लड़ते हैं और मैं वहां उनको देखती वा उनकी बातें सुनती होती हूं, तो उनके अभियोग के निर्णय के लिये केवल

मेरी साक्षी पूरी समझी जाती है। सब मेरी बात पत्थर की लकीर समझते हैं, ऐसी बात जिसमें अपने आप सराहना पाया जावे अपने मुँह से कहना वा लिखना अनुचित है, पर मैं तो उस विद्यार्थी की भांति हूं जिसने अपने पाठ को भुलाया न हो और अध्यापक को सुनाये कि मुझे स्मरण है। कोई दोष न जान लिखती हूं, क्योंकि मैं आप को अध्यापिका और शिक्षिका भी जानती हूं और जब सत्य का अभ्यास किया है और सत्य ही का वर्णन है तो फिर सत्य २ क्यों न लिखूं, चाहे उस लेख में स्वयं मियांमिट्ठू बनने की झलक क्यों न आती हो। जैसा मैंने योगशास्त्र में पढ़ा था कि सत्यवादी की वाणी फलवती होजाती है, सो कुछ मुझे वैसाही अनुभव होरहा है। इसमें कोई बड़ी सिद्धि की बात नहीं, जब निरन्तर सत्य बोलता है और वह मिथ्या भाषण से विषवत् डरता रहता है, कभी असंभव सृष्टि क्रम के प्रतिकूल बात नहीं करता तो फिर वैसाही होजाता है। मैं बहुत विचार कर बोलती हूं और सोचकर कहती हूं, जो कहती हूं उसमें कुछ अन्तर नहीं पड़ता। और वह जुर्माने का धन जो दीनों की सहायता में व्यय हुआ, उसने मेरे मन को बड़ा नम्र बनादिया। मन पर सब से अधिक प्रभाव तो खान पान का ही पड़ता है, सो वह भी आप पर विदित है कि मैं अभक्ष्य पदार्थों का सेवन नहीं करती। एक बात इस विषय में इस समय स्मरण हो आई कि खान पान का कितना प्रभाव पड़ता है। देखिये एक कठा आम का पपीहा बोया जाता है उस में क़लमी आम की क़लम बांध दी जाती है उस का प्रतिफल यह होता है कि फिर वह पेड़ क़लमी पेड़ों की भांति फैलता, फूलता फलता है। यह भी आप पर विदित है कि मन अन्न से बनता है, जैसा—

अन्नमशितं त्रेधा विधीयते तस्ययःस्थविष्ठो धातुस्तत्पुरीषं भवति योमध्यमस्तन्मांसं योऽणिष्ठःतन्मनः ।

छान्दोग्य ।

अन्न जो खाया जाता है उस के तीन भाग बनजाते हैं, सब से मोटा भाग पुरीष (मैला) बन जाता है, उस से जो सूक्ष्म होता है उस का मांस बन जाता है, जो सब से सूक्ष्म होता है उस का मन बनता है, इस लिये जो पुरुष मनरूपी सात्विकी कठा पेड़ पर पशुमांसादि रूपी राक्षसी क़लमी पेड़ की क़लम लगाते हैं उन का मन अन्त को पशुवत् ही बन- जाता है और सदैव बुरी वासनाओं में फंसा रहता है ।

मैंने मद्य, मांस, मछली, लहसन, प्याज़, शलगम, गाजर, तमाकू आदि नशों के सेवन से आप को बचाया है, जिस के लिये मैं अपने माता पिता का धन्यवाद देती हूँ। यह एक बीच में बात आगई थी, जिस का मन की शुद्धि से सम्बन्ध था और "मनः सत्येन शुद्धयति" अर्थात् जब मन सत्य से शुद्ध होता है तब वाणी का फलवती होजाना कोई आश्चर्य्य नहीं रहता और दया के प्रभाव में दयावान् बनजाना भी संभव है । 'मांसाहारिणां कुतो दया' मांस न खानेवालों को स्वाभाविक दया रहती ही है, उन संस्कारों का सामान्य और उस बाल्यावस्था से दुःखियों की सहायता में उस धन का जो माता पिता निजव्यय अर्थात् आवश्यक कार्यों और सलोना मिष्ठान्नादि खाने को देते थे और मैं उस में व्यय करती थी उस के प्रभाव से विशेष कोमल

हो गया है, जो किसी प्रकार के दुःखी के दुःख को देखकर पिघिल जाता है। बहुधा अश्रुपात होने लगते हैं। जब मैं उस के दुःख दूर करने में असमर्थ होती हूँ तो और भी अधिक क्लेश होता है, उस समय परमात्मा के धन्यवाद के शब्द मेरे मुख से इस लिये निकल जाते हैं कि आप का कोटिशः धन्यवाद है जो आपने मुझे ऐसे दुःख से बचाया, यदि यही दुःख आज मुझे प्राप्त होते तो मैं क्या कर सकती आपने बचाकर ऐसे दुखियों पर दया करने की आज्ञा दी है, जहां तक हो सकता है स्वयं करना और अन्यों से उन की सहायता कराना परम धर्म समझती हूँ। जिन के हृदय में दया नहीं वे मनुष्यता से शून्य हैं। जब तक दया नहीं होती कोई अहिंसक नहीं हो सकता।

कर्मणा मनसा वाचा सर्वभूतेषु सर्वदा।
अक्लेश जननं प्रोक्तात्वहिंसा परमर्षिभिः॥

मन, वच, कर्म से सर्व भूतों के सर्वदा हित में लगा रहे, किसी को क्लेश न पहुँचावे, ऐसे अक्लेशजन अहिंसा परम ऋषियों से कही गई है, जो अहिंसक हैं वे ही दयालु हैं, परन्तु मैं बहुधा कार्य्यों में अपनी अयोग्यता के कारण विवशहूं जो कुछ उन की सहायता होनी चाहिये उसका दशांश शतांश भी नहीं कर सकती। प्यारी जी! मैंने बहुत समय अष्टाध्यायी के घोटने और न्याय वैशेषिक के सूक्ष्म विचारों के गूढ़ अर्थों में लगाया, गो वैद्यक पढ़लेती हूं पर मैंने नियमानुसार समझकर औषधियों की परीक्षा करके पढ़ी नहीं, इस कारण चिकित्सा नहीं करसकती और बिना पढ़े चिकित्सा करना पाप जानती हूँ। पर आपने अपना बहुत काल योग्य वैद्यों

से वैद्यक पढ़ने प्रत्येक रोगों की परीक्षा में लगाया और उस में आपने महान् पद भी प्राप्त किया, आप का चित्त उस में अधिक लगता था, परन्तु यह परमेश्वर की बड़ी कृपा है कि मुझे वा मेरे बच्चों को अब तक कोई शारीरिक रोग नहीं, जो मेरे माता पिता के धार्मिक विचारों का फल है उन्होंने मेरा १८ वर्ष की आयु में पूर्ण ब्रह्मचर्य्य धारण करा-कर विवाह किया था और आप तो जहां चिकित्सा में मुझे से भाग्यशालिनी हैं वहां इस में भी कि आपने तो २२ वर्ष की आयु में अपना आपही स्वयंवरा किया था। पर मेरे पड़ोस में एक बड़े साहूकार रहते हैं जो सर्वांश बुद्धिहीन सन्तान के परम शत्रु हैं, उनके बच्चे का विवाह बहुत न्यूनावस्था में होगया था, अब उनकी बहू की आयु १३ वर्ष और पुत्र की सोलह वर्ष की है, उसके इतनी न्यूनावस्था में एक चूहे के सदृश बच्चा उत्पन्न हुआ है वह अति निर्बल है, उसके पास दूध बहुत ही कम, न होने के समान है और ऐसा होना ही चाहिये था, क्योंकि जो बालक उत्पन्न हुआ है वह न माता का लड़का है न पिता का वरन् वह छोकरे, छोकरी का बच्चा है। क्यों कि पच्चीस वर्ष से कम आयु तक ब्रह्मचर्य्य न रखने वाला पिता हो ही नहीं सकता, न सोलह वर्ष से कम आयु वाली माता हो सकती है। उस बालक को दूध का क्लेश है, धाई रखना तो मूर्खता से इनके घर खोटा है, बकरी का दुग्ध शर्दी बढ़ा देता है, माता के पास है नहीं, वह बच्चा दुःखी है, मुझे उसके पितामहा और पितामही की बुद्धि पर तो क्रोध आता है पर उस मूर्खा बहूपर जिसे अविद्या के कारण भले बुरे का ज्ञान नहीं और उस नन्हें से दूध पीते बच्चे पर दया आती है, न जाने

भारत वर्ष से ऐसे महान् पाप कब दूर होंगे और सब को सुख शान्ति प्राप्त होगी। आज वायसी हंस के साथ बकरी ऊंट के साथ वरी जाती है। समय, अवस्था, योग्यता का कुछ विचार नहीं किया जाता है, जो शोक की बात है। यदि बच्चाही जी जावे तो अच्छा है, इस लिये मुझे उस अनपढ़ बहू और बच्चे पर दया आती है और ध्यान होता है कि यदि दुग्ध बढ़ जावे और बच्चे को माता का दूध पेटभर मिलने लगे तो सम्भव है कि कुछ काल बच्चे का जीवन होजावे। बेचारी अबला कन्याओं की लाज और उनका धर्म आज इतना बढ़ा हुआ है कि वह बेजुबान गौ की भांति, बिना सर हिलाये हुये माता, पिता के कहने से जिसके साथ जिस अवस्था में जोड़दी जाती हैं चल देती हैं, सर नहीं हिलातीं, इस लिये आप भी यह समझ कर कि—

दया धर्म का मूल है पापमूल अभिमान।
तुलसी दया न छोड़िये जबलग घट में प्राण॥

दया करके अनुभव किया हुआ, नुसखा दूध के साफ़ होने और बढ़ने का लिख भेजिये, उसका सेवन कराके लाभ प्राप्त करके आप का धन्यवाद दूं, और यदि सम्भव हो और अधिक कष्ट न हो तो मेरी झुपड़िया को आपने चरणों से पवित्र करना और मेरी प्रतिष्ठा बढ़ाना अर्थात् एक दिनको पधार कर उसको देख भी जाना। उसकी माता को निर्बलता के अतिरिक्त और कोई ज्वरादि विशेष रोग नहीं है। अधिक नमस्ते। बच्चों को मेरी ओर से प्यार करना॥ ओ३म् शम्॥

८–उत्तर सखी का सखी को।

जीवन से प्यारी और प्राणों से दुलारी सखी जी, नमस्ते। मैं अति प्रसन्न हूं, परमात्मा आप की प्रसन्नता दिनों दिन बढ़ाते रहें। आप का प्यारा पत्र प्राप्त हुआ मैंने उसे पढ़कर शिर और आंखों से लगाया। जो प्रसन्नता परीक्षा में उत्तीर्ण होने से हुई उससे अधिक आप जैसी प्यारी के पत्र से प्राप्त हुई। मेरे कहां ऐसे भाग्य थे जो मुझे इस योग्यता पर पहुं-चाते यह सब आप जैसी सहेलियों के संग का प्रभाव जिसने मेरा समय नष्ट न होने दिया। सच है—

सात स्वर्ग अपवर्गहू, धरिये तुला इकअंग।
तुले न ताहि सकल मिले, जो सुख लावे सतसंग॥

नहीं तो कुसंग के प्रभाव से तो राजकन्या कैकेयी ने अपना सुहाग तक नष्ट कर लिया और अपयश के साथ उसका नाम कलंकित हो प्रसिद्ध हुआ जिसके लिये एक कवि बतलाते हैं—

अतः संगः परित्याज्यो दुष्टानां सर्वदैव हि।
दुःसंगाच्च्यवते स्वार्थाद् यथेयं राजकन्यका॥

अर्थात् दुष्टों का संग तुर्त ही छोड़ देना चाहिये। दुष्ट संग से मनुष्य अपने स्वार्थ से गिर जाता है जैसे राजकन्या कैकेयी का हाल हुआ। मैं अपने जन्म सुधार का कारण आपको मानती हुई आप को और साथ ही परमात्मा जिसकी दया से आप का सत्संग प्राप्त हुआ धन्यवाद देता हूं। मेरे

अहोभाग्य है जो मुझ से आप के सेवकों तक की सेवा बन पड़े, चिकित्सा के सम्बन्ध में परमात्मा न करें जो आप को या आप के बच्चों की आवश्यकता पड़े। आपने ब्रह्मचर्य्य रूपी कुल्हाड़े से रोगरूपी पेड़ की मूल को जड़ से उखाड़कर फेंक दिया, यही परम औषधि थी जिसको आपने पान कर लिया, अब आप केवल "युक्ताहार विहारस्य" का ध्यान रक्खें और रखती भी होगी जिससे सदैव परम सुख भोगती रहोगी। इस समय जो आप ने अति साधारण सेवा मुझे सौंपी, मुझे आपकी आज्ञा पालन और अपनी उपस्थिति में कुछ भी ढील न होती। मैं आपके दर्शनों को अहोभाग्य समझती हूं, सरके वल उपस्थित होती, यदि मैं आनेके योग्य होती। मेरी दशा आज कल ऐसी नहीं है कि वहां तक पहुँच सकूं, इस कारण उपस्थिति के लिये क्षमा मांगती हूं। हां औषधि लिखे भेजती हूं, आप इसका सेवन कराइये, परमात्मा ने दया की तो अवश्य लाभ होगा। औषधि एक कारण हो जाती है जब कि परमात्मा की दया होती है, पर करना अवश्य चाहिये। यजुर्वेद में औषधि कराने का विस्तार पूर्वक आज्ञा है। बहिन, मैं अपना इतने दिनों का अनुभव स्त्रियों की भयानक दशा का जब आप से कभी मिलूंगी तब वर्णन करूंगी। वर्त्तमान दशा ऐसी बुरी हो रही है, जिसका वर्णन नहीं हो सकता, हा! वे ऐसी लज्जित और निन्दित रोगों में ग्रसित हुई २ हाहाकार मचा रही हैं कि परमेश्वर बचाये। जिन २ उठलगनी और भयानक रोगों में स्त्री पुरुष ग्रस्त हैं यदि इस प्रकार के रोग पशुओं और पक्षियों में होते तो डाक्टर और राज कर्मचारी उनको निर्मूल ही तो करा देते और सम्पूर्ण ऐसे जीवों को गोलीसे मरवा देते वा उन्हें आगमें जला दिया

जाता। इस लिये कि अन्य नीरोग रहें, उनकी खालें तक न बिकने पातीं। परन्तु इस मनुष्य समूह को कैसी अज्ञानता और ददंशा है, यह सर्वोत्तमता का दुमछल्ला लगाता हुआ भी पशुओं से अधिक गिर रहा है। हा, इस मनुष्य जातिकी प्रतिदिन पीढ़ी दरपीढ़ी छूने छुवाने खनपान रहने सहने के सम्बन्ध से नसलें की नसलें बिगड़ रही हैं और रोगियों की संख्या बढ़ रही है, पर उन्हें कोई नहीं पूछता। हा शोक! ऐसे मनुष्य बिना किसी दण्ड के देश और जाति का नाश कर रहे हैं।"

पर किसी के कान पर जूं तक नहीं रेंगती अच्छा हो कि सभ्य गवर्नमेण्ट ही इस ओर ध्यान देकर मनुष्य जाति की रक्षक बने? यह सारे फल बचपन के विवाह, कुसंग और बालकपन से बुरे गीत गाने बजाने के हैं। राज्य की ओर से तो १२ वर्ष की आयु से प्रथम (जो हमारे धर्मशास्त्र से ४ साल कम है) करने का निषेध है, उसके प्रतिकूल करने में कालेपानी और चौदह वर्ष के कारागार का दण्ड है, पर शोक कि उससे भी थोड़ी अवस्था में भाग्यहीन समागम कर बैठते हैं। सरकार को विवाह ही जाने के कारण और वैसे भी पता ही नहीं लग पाता और लग भी कैसे. पापों की प्रेरणा भीतर से होता है उसकी रोक भी भीतर से ही होनी चाहिये। जीवात्मा अपने अन्तर उपस्थित परमात्मा के भय से ही पापों से बच सकता है, नहीं तो बाहिर से चाहे जितनी रोक हो, रोकने वाले का दवाव, करने वाली शक्ति पर न होने से और अधिक पाप वृद्धि होती जाती है। अशान्ति बढ़ने का यही कारण है कि परमेश्वर का भय तो उठगया, जितने

कंकर उतने ही इनके शंकर बन गये। जीवित छोकर मरों को पूजने लग पड़ीं . घोर पाप किये, जिसका यह फल है कि सैकड़े पीछे ९८ अट्ठानवें स्त्रियां प्रदर जैसे भयानक रोग ग्रसित हैं; और उनमें से बहुधा अभागिन झूठी लाज में फँसी हुई अपने रोग को पुरुषों पर विदित होने ही नहीं देती। पुरुष भी जितनी अपनी चिकित्सा का ध्यान रखते हैं स्त्रियों की और चौथाई भी नहीं रखते, जो शोक की बात है। सांचा बिगड़ने पर सुष्ट और पुष्ट ईंट रूपी बालक कैसे बन सकेंगे, हा अभागिन और अभागे ईश्वरीय नियम की भी परवाह नहीं करते। दश बारह वर्ष आयुवाली कन्या को पुरुष के वस्त्र पहिनाने से लड़का और लड़के को कन्या के वस्त्र पहिनाने से कन्या जान पड़ती है, परन्तु जब परमात्मा उनमें स्त्रीत्व और पुरुषत्व का भेद डालते हैं फिर वस्त्र छिपा नहीं सकते। पुरुष के मूछें निकल आना और स्त्री का सीना उभर आना उन में भेद हो जाने के चिन्ह हैं। पूर्ण युवा हो जाने के प्रथम स्त्री पुरुष की संज्ञा देना नियम विरुद्ध है। जिसके घर में खाने को नहीं है और पाहुने को न्यूकर बुलाता है, सोचिये उसे कितनी निन्दा सहनी पड़ेगी। इसी प्रकार सीना उभरने अर्थात् दुग्ध उत्पन्न होने के प्रथम बालकरूपी पाहुने को उत्पन्न करके बुला लेना हास्य और दुःख का कारण क्यों नहीं होगा। औषधि से पूर्ण लाभ तब ही होता जब युवावस्था पर बालक का जन्म होता; परन्तु कुछ न कुछ लाभ हो ही जावेगा। यदि भोजन पच जाता हो तो माश की दाल का अदरक और घृत डालकर अधिक सेवन कराना और प्रातःसायं काढ़ा बनाकर निम्न लिखित रीत्यनुसार पिलाती रहना। कम से कम सात दिन सेवन कराइये फिर हाल लिखिये परमात्मा रक्षा करेंगे।

गोपीवृकीदारुकिरातमूर्वा तिक्तामृता-
विश्व घनैन्द्र यवानां । क्वाथैःप्रयुक्तो मृगलो-
चनानां दुष्टस्य दुग्धस्य विशोधनाय ॥

अर्थात् गोपी (सारिवा) वृकी (पाठा) दारहल्दी किरात (चिरायता) मूर्वा तिक्ता (कटु रोहिणी) अमृता (गिलोय) विश्व (सोंठ) घन (नागरमोथा) इन्द्रजौ यह सब तोला २ भर लकर कूटकर सात सात पुड़ियां बनालें और डेढ़पाव पानी में चढ़ाकर जब छठांक भर रह जावे प्रातः बिना मले और शाम को मलकर छानकर अच्छा मधु वा मिश्री देशी शकर को डालकर पिला दें। औषधि से जब परमात्मा की कृपा होती है तो कुछ न कुछ थाम अवश्य हो जाती है और रोग के निदान और औषधि को ऋषियों ने अपने योग और तपोबल से परमार्थ के लिये लिखाहै, पर और सबसे मुख्य बात तो और ही है, यदि हो सके तो उन दोनों बालकों के ध्यान की वास्तविक रोक की ओर, जिससे औषधि की अ-पेक्षा उन दोनों की आगामी आयुका अधिक सुधार संभवहै, आकर्षित कीजिये; नहीं तो कुछ लाभ न हो सकेगा, वरन् अधिक हानि पहुँच जाने का भय है। आप योगीराज कृष्ण की, जिन पर उन्हें अधिक विश्वास है, गीता दिखा कर समझाओ कि —

न जातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति।
हविषाकृष्णवर्त्मेव भूयच्वाभिवर्द्धते ॥गीता॥

भोगों की लालसा भोगों के भोगने से नहीं जाता, यह तो

ज्यों २ भोगे जाते हैं त्यों २ और बढ़ता जाता है, जैसे हवन करते समय जितना ईंधन और घी डालते जाओ उतनी ही लपटें बढ़ती जाती हैं, इस लिये अलग कमरों में अलग चारपाइयों पर सोने का उपदेश करके मेरी ओर से भी समझादो कि श्रीकृष्ण भगवान ने बताया है कि आंख कानादि इन्द्रियों का जब तक उन के विषय रूप शब्दादि से सम्बन्ध नहीं होता, तब ही तक शान्ति है। सम्बन्ध हो जाने पर फिर मन शान्त नहीं रह सकता *। यदि मान जावेंगे तो उनके लिये अच्छा होगा, नहीं तो अपने किये की आप ही फल भुगतेंगे। परमात्मा करें कि आप की दया की और दृष्टि बढ़ती जावे, मैं दया की विरोधी नहीं पर मेरी और आप की दया में कुछ अन्तर है मैं तो फोड़े को चीर कर मवाद निकाल कर साफ़ कर देने की दया जानती हूँ, पर आप फोड़े को सहलाने और उसके दुःख में स्वयं दुखित होकर दुःख प्रकट करने को दया जानती हैं। इतनी आयु में आपने तनिक से काम को लिखा। मैं उपस्थित होने में आप के दर्शनों का बड़ा लाभ जानती, पर लाचारी के कारण न आसकी। आप निम्नलेख से कहीं साधारण बात जान टाल जाना न समझिये, थोड़े दिन पश्चात् आप को स्वयं पता लग जावेगा। मैंने औषधि और उसके सेवन की रीति लिख भेजी, पर जिस बच्चे का माता के लिये आपने औषधि मँगाई है, उस बच्चे को आप ही छोकरा छोकरी का बच्चा बताती हैं, वह यदि जी भी गया तो आयु भर वैद्यों, डाक्करों के द्वार की धूल छानता रहेगा, कोई उत्तम काम तो उससे बन ही नहीं सकता। उसके अधिक से अ-

---

* विषयैरिन्द्रियैश्चैव, मामे भूयात्समागमा।
विषयैरिन्द्रियैश्चैव, मनः क्षुभ्यति नान्यथा॥

धिक लोकिया (लांबे कद्दू) जैसे पैर, चचड़े जैसे हाथ, खरबूजे की तरह सर हो पायेगा। किसी दूसरे को तो लाभ कदापि न पहुंचा पायेगा, वरन् वह भी बालविवाह कर आगामी नसलों को विगाड़ेगा।

परमात्मा का अटल नियम है, जो जैसा करेगा वैसा भरेगा। हमारे आप के तोड़ने का नहीं है। सुना है कि स्पार्टा देश वाले बच्चे को पैदा होते ही दिन भर के लिये पहाड़ पर शीतोष्ण की सहन शक्ति अनुभव करने के लिये रख आते थे, यदि वह आठ पहर पश्चात् जीवित मिलता था तब उस का पालन पोषण करते थे। इस प्रकार बालक की निर्बलता का पता लगाते थे, वह निर्बल बच्चे का मर जाना अच्छा जानते थे। उनका विचार था कि निर्बल होकर शिर पकड़े और पेट थामे हुए रोगी होकर जीकर क्या करेगा, न अपना ही भला करेगा न किसी और का। क्या प्राचीन काल में इतनी न्यूनावस्था में कोई विवाह वा समागम करके सन्तान उत्पन्न करलेता और दण्ड का भागी न होता। आज नियम तोड़ा जा रहा है, इस कारण ऐसे बच्चों को भी परमात्मा की रक्षा में छोड़ा जाना ही अभीष्ट है। हां 'जब तक सांस, तब तक आस' की कहावत पर यत्न करते ही रहना चाहिये मैं तो वैद्या हूं, मरते दम तक औषधि करती ही रहती हूं, आप की दया का मुंह दूसरी ओर फेरने के अपराध को क्षमा कीजिये, यदि आप का यत्न सफल हो तो अधिक हर्ष और निष्फल हो तो शोक न करना। जब आप के पड़ोसी इतने मूर्ख और लकीर के फ़कीर हैं कि धाई का रखना कोई विपद् आजाना जानते हैं तो फिर ईश्वर ही बेली है। प्यारी जी, बुरा न मानिये आज़ अनुचित दया

करके ही चौथाई भारत वर्ष को भिखारी बना दिया है, जो निठल्ले बैठे मज़े से हलुआ, पूड़ी उड़ाते और घोर पाप करते हैं। अधिक नमस्ते।

९–पत्र पत्नी का पति को।

प्राणप्रिय पतिजी ! नमस्ते।

हर्ष पूर्वक हर्ष समाचार आप को लिखती हूं कि ज्येष्ठ पुत्र समावर्त्तन संस्कार कराकर निज गृह पर गुरुकुल से आगया है वह प्रसन्नचित्त और सब प्रकार कुशली है। नियमानुसार नित्य-कर्मों को करता हुआ अपने समय को नष्ट नहीं होने देता। बड़ों की मर्यादा का यथायोग्य ध्यान रखता है, किसी प्रकार का उसे अभिमान, अहंकार प्रतीत नहीं होता। उसके विवाह कई स्थानों से आरहे हैं, परन्तु वह अब भी विवाह के लिये मना करता है। कहता है कि अभी मैं विवाह का अधिकारी नहीं अभीतक मैंने केवल विद्या पढ़ी और ब्रह्मचर्य रक्खा है, अब विवाह करने के प्रथम श्री अर्थात् धन उपार्जन करूंगा। क्योंकि विवाह के पश्चात् जो गृहस्थाश्रम सब आश्रमों की जड़ है, जिसके लिये धनादि की बड़ी आवश्यकता है, जिसके बिना अपने घर आये हुए पाहुन का यथावत् आदर सत्कार गृहस्थ धर्म के अनुकूल होना असम्भव सा है, इस कारण मैं अभी श्री का उपार्जन करूंगा। उसका इस प्रकार का उत्तर सुनकर मैं उससे कहती हूं कि बेटा, तुझ को धन का क्या करना है, परमात्मा का दिया हुआ तेरे पिता का कमाया हुआ बहुतेरा धन घर पर है। पर वह उत्तर देता है कि क्या आप मुझ को आलसी, निकम्मा, मिट्टी का लोंदा बनाना चाहती हो ? मैं भी कुछ करूंगा वा नहीं ?

यही पिता जी भी सोच लेते कि हम धन उपार्जन करके क्या करेंगे तो आप कैसे कह सकती थीं कि तुम्हारे पिता का कमाया हुआ सब कुछ है, क्या आप ने नहीं सुना कि (मांगना भला न बाप से जो प्रभु राखे टेक) मनुष्य को अपने ही बाहुबल का भरोसा रखना चाहिये। कुछ काल पहिले पिता की दशा को देख कर विवाह होजाते थे और अब भी मूर्खों में हो . होंगे, पर विवाह तो पिता के साथ नहीं, जो उनकी साहूकारी देखी जावे। मेरे में अभी योग्यता नहीं इस लिये आप शीघ्रता न कीजिये, मैं अपना विवाह आप ही करलूंगा। आप अपने कर्त्तव्य से उऋण होगईं जो मुझे पढ़ा दिया, अब जब मेरे गुण कर्मों के सदृश कोई कन्या मिल जावेगी, विवाह कर लूंगा। विवाह में बहुत धन व्यय करने की आवश्यकता नहीं, न कोई नाच रंग होगा, न फुलझड़ी और फुलवाड़ी होगी, न सेना के तुल्य बरात जावेगी, गिनती के सभ्य पुरुष जाकर यज्ञ होकर विवाह हो आवेगा। मेरे मैके की खाल मेरे कुटुम्ब की एक कन्या बड़ी ही सुन्दर और सब गृहस्थी के कामों में चतुर और कुछ पढ़ी भी है, वह, इतना दान दहेज देंगे कि घर भर जावेगा। कन्या मेरी रात दिन की देखी हुई है, पर वह जो उत्तर देता है कि मुझे फांसीपर लटक जाना स्वीकार है, परन्तु शास्त्र विरुद्ध कुछ लेकर लोभवश ठहराकर करना स्वीकार नहीं है। माता की छः पीढ़ी और पिता के गोत्र में विवाह का निषेध है, माता के कुटुम्ब में कदापि नहीं होकसता। क्रियाहीन, उत्तम और विद्वान् रहित, बड़े २ लोमवालों, बवासीर, छई, अग्नि- मन्दता, मृगी, श्वेत, गलित कुष्ट वाले कुलों में भी विवाह करने का निषेध बताता है, इसको खोजकर और पता लगा

कर ही बड़े विचार से करना पड़ेगा। जीवन पर्यन्त जिस सम्बन्ध के कारण दुःख वा सुख भोगना है, उसमें शीघ्रता उचित नहीं। एक किनारे की नदी नहीं होती, सात बातों को देखकर कन्या का विवाह करना चाहिये, इस में से जब तक कोई भी न्यूनता मुझमें विद्यामान रहेगी, तब तक मैं विवाह का अधिकारी नहीं।

कुलञ्च शीलञ्च समर्थता च विद्या च वित्तञ्च वपुर्वयश्च। एतान् गुणान् सप्तविचित्य देया कन्याबुधैः शेषमचिन्तनीयाः॥

हितोपदेश। श्लोक ४६॥

घराना, शील, समर्थ, विद्या, धन, आरोग्यता, आयु-सात बातें विवाह करते समय देख लेना चाहिये। सो मेरे में सब से बड़ी धन की कमी है, मुझे जिस के साथ गृहस्थाश्रम वा वानप्रस्थ तक रहना है और धर्म की वृद्धि के लिये एक को जती दूसरे को सती होकर रहना है वह देर से ही ठीक होगा।

समगुण दोष मिलाय के वर खोजो यह रीति।
विवाह वायसी हंससंग क्यों कर हुयहै प्रीति॥

'वह जाने पहिचाने हुए सम्बन्धियों और निकटस्थ नगर में इस सम्बन्ध को वर्जित बताता है, वह दूरदेश के विवाह में लाभ समझता है, परोक्ष में जितनी प्रीति होती है, प्रत्यक्ष में नहीं। "परोक्षे प्रियाहि देवाः प्रत्यक्ष द्विषः" और दूर सम्बन्ध में परस्पर प्रीति, ऐश्वर्य्य व्यवहारादि नित्य बढ़ता

जाता है। उसकी यह बातें मुझे भी प्रिय जान पड़ती हैं। आज जो स्त्री पुरुष की सम्मति नहीं मिलती, घरघर अशान्ति फैल रही है, पुरुष आम बताता है तो नारी इमली, ऐसे व्यवहार से इन झगड़ों के मिटजाने की सम्भावना है।

प्रचलित विधि और प्राचीन में बड़ा अन्तर है। मैं समझती हूं कि यदि उसकी सम्मत्यनुसार विवाह हुआ तो बड़ा आनन्द रहेगा और वह प्रचलित विधि के अनुकूल भी विवाह करना नहीं चाहता। हा! आज "पुरुष तो पूजे देहड़ा भूत पूजनी जोय। एकै घर में दो मता कुशल कहां से होय" वास्तव में कुशल होजावे यदि सब के गुण, कर्म, स्वभाव यथार्थ मिलाकर ही विवाह हों। पुत्र ने आते ही पुस्तकों का अनुवाद करना आरंभ कर दिया है, एक समाचार पत्र को अपनी सम्पादकी में निकालना चाहता हैं; और भी ऐसे व्यापार सम्बन्धी कार्य्य सोच रहा है और उपाय कर रहा है, जिस से देश और देशनिवासियों को यदि लाभ न हो तो किसी प्रकार की हानि तो न पहुंचे। जो उस से वार्तालाप करते हैं उन्हें सन्तोषजनक उत्तर देकर शान्त कर देता है। मैंने आपकी सेवा में सूचनार्थ संक्षेप से निवेदन कर दिया है, आप अपनी सम्मति भी लिखिये, क्या आप को प्राचीन का ज्ञान है और क्या आप शीघ्र विवाह करने पर उसे उद्यत कर सकते हैं। आपने अधिक समय से दर्शन नहीं दिये, अवकाश हो तो दर्शन देकर भी कृतार्थ कीजिये। एक बात यह भी लिखने योग्य है कि ब्रह्मचारी से जब विवाह की बात चीत होती है तो वह कहता है कि मेरा विवाह करना एक प्रकार के उत्तम उद्यान लगाने के अभिप्राय से है, वह भी

"वाग लगे लगने नहीं पावे" इसका तात्पर्य्य यदि आप समझे हों तो कृपया लिखिये।

दूसरी वात यह है कि आप परापरीत मिलाने को वेद विरुद्ध वताते थे, पर वह नाड़ी आदि आठों वातों के मिलने को परम आवश्यक वताता है, जिसकी आप निन्दा किया करते थे। इस में क्या भेद है, इस के उत्तर से और जो कोई मेरे हित और शिक्षा की वात आप उचित समझें उस से भी सूचित कीजिये, वड़ी कृपा होगी।

आपकी दर्शनाभिलाषिणी-देवी।

नोट-कभी कभी अधिक लेख लम्वा चौड़ा हो जाने से एक वार के पत्र के कई उत्तर शेषफिर लिख कर दे देते हैं, यह अनुचित नहीं, इस लिये पति की ओर से दो वार में उत्तर लिखते हैं।

१०-उत्तर पति का पत्नी को।

आदरणीय गृहिणी जी, नमस्ते। पत्र पुत्र के घर आजाने और उस के विवाह के समाचारों से पूरित प्राप्त हुआ, हाल ज्ञात हुआ। जो विचार पुत्र के अपने सम्वन्ध में हैं वह धन्य-वाद के योग्य हैं। आप के आक्षेपरहित लेख से भी समझता हूँ कि वह सव आपको प्रिय और पसन्द हैं, परमात्मा दया करें कि उस की योग्यता और स्वाभावानुसार उसको वधू प्राप्त होजावे। आप के लेख से एक प्रकार का आश्चर्य्य सा पाया जाता है, सो आप क्या जाने आपने कोई विवाह वैसा देखा ही नहीं, मेरा आप का तो वास्तव में विवाह ही नहीं हुआ था, हम और आप में अति वाल्यावस्था के कारण

प्रतिज्ञाओं के समझने की बुद्धि ही न थी। सच पूछो तो दोनों ओर के पण्डितों का परस्पर विवाह हुआ था। हम और आप तो एक भी प्रतिज्ञा न समझे कि किस का क्या अभिप्राय है। मुझे तो एक भी स्मरण नहीं, यही मेरा आपके विषय में विचार है कि एक भी स्मरण न होगी। जो पुरोहित पण्डित जी महाराज कहते जाते थे, वह करते जाते थे; न किसी का प्रयोजन समझाया था न समझाने की योग्यता ही थी। हां थोड़ा काल बीता है कि मैंने एक विवाह देखा जिसे देखकर चित्त में जो प्रसन्नता हुई, उसे वर्णनन नहीं कर सकता न उस का पूर्ण वृत्तान्त लिख सकता हूँ। वर और वधू दोनों पूर्णावस्था वाले दोनों दिव्य और विशाल मूर्त्ति जिन के मुखड़े तपाये हुए सोने की भांति चमचमाते थे। दोनों पूर्ण विद्वान् अपने २ हाथों में विवाह पद्धति संस्काराविधि लिये हुए सारी कार्य्यवाही आप ही कराते थे, जिस वाणी से स्वर सहित मन्त्र उच्चारण करते थे उस आनन्द का अनुभव करनेवाला मन ही है, वाणी कहने में असमर्थ हैं। ऋषियों देवतों की भांति बड़ा ही विलक्षण उच्चारण था। किसी अन्य विचौलिया का लेशमात्र भी बीच में लगाव न था। उस के देखने से पता लगा कि वास्तविक विवाह इसका नाम है और विवाह से क्या अभिप्राय था और आपने और मैंने कहांतक उन का पालन किया और कितना उल्लंघन किया और जो जो प्रतिज्ञायें जिस मन्तव्य की पूर्त्ति के अर्थ समझाई गईं, मेरे स्वप्न में भी कभी विचार ही में नहीं आईं, तो कर ही कैसे सकता था। युवावस्था से प्रथम नाबालिग की प्रतिज्ञा ही निर्थक बताई गई है। सच भी है कि जिस की समझ अभी पूर्ण

नहीं हुई वह यदि विक्रयपत्र (वैनामा) किसी को लिख दे तो वह मानने योग्य नहीं होता और सरकार दरबार में किसी जगह स्वीकार नहीं किया जाता। वालिग़ भी यदि कोई गृह आदि वेच दे और १२ वर्षतक उसी के क़ब्ज़े में रहे, मोल लेनेवाले का कुछ अधिकार उस पर न होने पावे तो भी केता कुछ उस से लाभ नहीं उठा सकता। इस नियम के अनुसार हमारे पूर्व पुरुषों ने सोलह वर्ष से अधिक कन्या और पचीस वर्ष से अधिक लड़के की आयु होजाने पर विवाह रचाकर तुर्त ही दोचार ही दिन के भीतर एक को दूसरे पर अधिकार दिलाया जाना बताया था। किसी का १६ और २५ वर्ष से पूर्व तो विवाह होता ही न था आज जो गौने दुरागमन की रीति प्रचलित है, उस का प्राचीन पुस्तकों में तो कहीं पता भी नहीं है। यह बालविवाह के कारण आयुपूर्ण करने के लिये प्रचलित कराई गई थी, पर विवाह पश्चात् फिर पूर्ण होना असंभव था, वह ही हुआ। इसी लिये बतलाया है कि संग होने से प्रथम एक मरजावे तो वह विवाह न होने सदृश है, इस कारण कि विवाह का प्रयोजन पूर्ण ही नहीं हो पाया, जैसाकि पाराशर जी बताते हैं।

यद्वाहिताऽपि सा कन्या नचेत् सम्प्राप्तमैथुने।
पुनः संस्कारमर्हति, यथाकन्या तथैव सा॥

इसी कारण विवाह का अभिप्राय केवल प्रतिज्ञाओं का करना और उन का जीवनपर्यन्त निभाना ही है। जितने लोग वरयात्रा में गये हुए जनाती बराती विवाह में सम्मिलित होते हैं वे सब चाहे कन्या के पक्षवाले हों वा वर के

पक्ष के हों, सब साक्षी होते हैं। जो बराती जनवासे में पड़े सोते रहते हैं और विवाह के समय वेदी विवाह-स्थान (यज्ञ मण्डप) पर नहीं पहुँचते वे पातकी होते हैं। क्योंकि वर कन्या दोनों सब के सम्मुख बैठे हुए ऐसी बोली से जो सब लोग सुनलें मुँह खोल कर कहते हैं कि हे विश्वेदेवाः! इस यज्ञशाला में बैठे हुये विद्वान् लोगो, आप हम दोनों को समुञ्जन्तु निश्चय कर जानें कि हम प्रसन्नता पूर्वक गृहस्थाश्रम में एकत्रित रहने के लिये एक दूसरे को स्वीकार करते हैं। हमारे दोनों के हृदय जल के समान समशान्त और मिले हुए रहैं, जैसे दो ओर से आया जल मिलकर एक समदशा (बराबर सतह) धारण करलेता है, वैसे हम दोनों एक ही विचार के हो जावेंगे। जैसे मातरिश्वा प्राणवायु हम को प्रिय है, वैसे ही हम दोनों एक दूसरे को प्रिय समझेंगे और प्रसन्न रहेंगे। जैसे धाता सब का धारण करने वाला परमात्मा सब में मिला हुआ सब जगत् को धारण करता है, वैसे ही हम दोनों एक दूसरे को धारण करेंगे। जैसे (समुदेष्ट्री) उपदेश करने वाला श्रोताओं से प्रीति करता है वैसे ही हमारा आत्मा एक दूसरे से दृढ़ प्रेम को धारण करे, जैसा कि:—

ओं समञ्जन्तु विश्वेदेवाः समापो हृदयानिनौ।
संमातरिश्वा संधाता समुदेष्ट्री दधातुनौ॥

ऋ० मं० १० । अ० ७ । सू० ८५ । मं० ४७॥

अर्थात् वर बधू विवाह के समय सब को साक्षी बनाते हैं कि हम तुम को साक्षी देते हैं, आप हम दोनों को पहिचान लें और हमारी प्रतिज्ञायें स्मरण रक्खें। आज कल प्रायः यह

रीति प्रचलित है की स्त्री पुरुष का और पुरुष स्त्री का आपत्ति काल में भी नाम नहीं लेते। नाम लेना न केवल निर्लज्जता के कारण बुरा जानते हैं, वरन् नाम लेने से नरक गामी होना निश्चय किये बैठे हैं। मैं भी हर समय एक दूसरे को नाम लेकर पुकारना सभ्यता से गिरा हुआ मानता हूँ, पर विशेष स्थानो पर नाम लेना कोई पाप नहीं है। विवाह समय भरी सभा में एक दूसरे का नाम लेते हैं, इस लिये कि उपस्थित पुरुष सुन लें और स्मरण रक्खें कि अमुक नाम्नी कन्या का विवाह अमुक नामी पुरुष से हुआ था और यह कहने का किसी को अवसर न रहे कि वहां नाम नहीं बताया गया था। विवाह में वर पश्चिमाभिमुख खड़ा होकर पूर्वाभिमुख बैठी हुई कन्या के दाहने हाथ को अपने बायें हाथ पर चित रखकर ऊपर को उठाता है और अपने दाहिने हाथ से उठाये हुए वधू के दहने हाथ की हस्ताञ्जुलि अंगूठा सहित ग्रहण करके मन्त्र बोलता है, जिसका अभिप्राय यह है कि हम दोनों सौभाग्य के बढ़ने के लिये एक दूसरे के हाथ को ग्रहण करते हैं, आज से हम दोनों एक दूसरे के हाथ विकचुके हैं, आज से धर्म से यह मेरी पत्नी और धर्म से मैं पति होता हूं, आज से एक दूसरे का अप्रियाचरण कभी न करेंगे, हम और तुम अपने और आप के अतिरिक्त किसी दूसरे से प्रीति न करेंगे। जिस समय अग्नि अर्थात् यज्ञकुण्ड के चारो ओर फेरे कराये जाते हैं, तब एक पानी का भरा हुआ घड़ा लिये हुए उसके साथ जाता है कि कहीं कपड़ों में अग्नि की फुलझड़ी उड़कर या चटक कर न लग-जावे और निकट जल न होने से किसी को कुछ दुःख पहुंच जावे, दूसरा पुरुष दण्ड लिये हुये यज्ञ की रक्षा के लिये

खड़ा रहता है कि किसी ओर से कुत्ता आदि न आजावे और यज्ञ की सामग्री आदि को जूठा और अशुद्ध कर जावे, जो यज्ञरक्षा सम्बन्धी बार्त्तायें हैं। फेरे फिराते समय जो मंत्र उच्चारण किये जाते हैं, उन में इसी प्रकार की प्रतिज्ञाओं से सम्बन्ध रखनेवाले विषय हैं। वर कहता है मैं तन, मन से कुल की वृद्धि को देखता हुआ प्राप्त हूं और किसी उत्तम पदार्थ का चोरी से भोग नहीं करूंगा और दुर्व्यसनी पुरुष के बन्धनों को दूर करता हूं। वैसे ही स्त्री निष्कपट होकर रहने की प्रतिज्ञा करती है और यह कहती है कि मैं ज्ञानपूर्वक तेरा ग्रहण करती हूं तू भी ज्ञानपूर्वक ग्रहण कर। दो भजन उस समय वर, कन्या को प्रतिज्ञाओं के सम्बन्ध में सुनाये थे जिन्हें मैंने प्रथम ही सुना था, उन का उस समय बड़ा प्रभाव पड़ा था। मैं आप को भी लिखता हूं पढ़िये तो सही इस के अतिरिक्त आप ने भी बहुधा देखा होगा कि भुने धानों अथवा खीलों का लाजा होम कराया जाता है, क्या इस का अभिप्राय आपने जाना है, इस में बड़ा गूढ़ रहस्य है। पति कहता है कि आज से हम तुम दोनों धानों के समान मिल गये हैं, धानों में दो वस्तुयें हैं एक ठोस दूसरी हलकी, साधारणतया स्त्री पुरुष से निर्मल और कोमल मानी जाती है। इसी हेतु से धानों में दो चीज़ें हैं-एक भूसी, दूसरा चांवल। भूसी स्त्रीलिंग और चांवल पुल्लिंग है। इसी लिये आप थोड़ी देर के लिये समझलें कि आप भूसी और पति चांवल है। यह न समझिये कि आप का कुछ अपमान वा पुरुष का मान किया गया है। जब तक यह दोनों मिले हैं सब एक ही मूल्य पर बिकते हैं जिस भाव भूसी बिकती है उसी भाव चावल। जब तक हम एक दूसरे से सम्बन्ध

रखते हैं, एकसी प्रतिष्ठा दोनों प्राप्त करेंगे, एकसा मान्य होगा, यदि आप पुरुष से अलग होजावेंगी तो फिर आप को पैसा धड़ी भी भूसी के समान कोई न पूछेगा, पुरुष फिर भी अच्छे दामों चावल की भांति विक ही जावेगा। स्त्री सुनकर उत्तर देती है कि इसमें सन्देह नहीं कि धर्म से पतित हुई स्त्री का जीवन विगड़ जाता है, वह दो कौड़ी की हो जाती है वह दो कुलों को कलंकित करती है, परन्तु आप और मैं जिस अभिप्राय के लिये अर्थात् कुल की वृद्धि के प्रयोजन से विवाह करते हैं, यदि मुझ सी तुच्छ भूसी पुरुष जैसे चावल से अलग होगई फिर पुरुष एक भी चावल संसार में उत्पन्न नहीं कर सकता। इतनी निकृष्ट भूसी के साथ रहते हुए ही पुरुष सैकड़ों चावल उत्पन्न कर सकते हैं।

विवाह के समय पत्थर पर पैर रख कर प्रतिज्ञा कराई जाती है कि जैसा पहाड़ निश्चल है, जिस का यह पत्थर छोटासा भाग है, जिस प्रकार पत्थर के परमाणु ठसाठस मिले हुए दृढ़ हैं ऐसे ही हम और आप अपनी प्रतिज्ञाओं पर दृढ़ होकर मिल जावें और प्रतिज्ञायें अटूट रहें। फिर सूर्य्य के दर्शन कराये जाते हैं कि जैसा सूर्य्य संसार को प्रकाशित करता है वैसे हम और आप धर्मपरायण होकर अपने तपोबल द्वारा संसार को प्रकाशित करें अथवा जैसे सूर्य्य अपनी किरणों से पृथिवी से जल को खींच कर फिर उसी को वर्षा द्वारा देदेता है, ऐसे ही हम धन प्राप्त करके अन्यों के हित में व्यय करें।

फिर ध्रुव और अरुन्धती का तारा दिखाया जाता है कि जैसे ध्रुव अपनी जगह से नहीं हिलता अपनी कीली पर स्थिर है, उस के ओर पास और तारे घूमते हैं, ऐसे ही हम

और आप अपनी प्रतिज्ञाओं पर स्थिर रहें और महान् प्रतिष्ठा के भागी बनें।

तत्पश्चात् सात पद सब के सामने चलना पड़ता है जिस से प्रतिज्ञा पुष्टि का परिचय दिखलाया जाता है। इस प्रकार की प्रतिज्ञायें विवाह संस्कार में कराई जाती हैं कि जिस काम के वास्ते प्रतिज्ञा कर पैर उठाते हैं वह जीवन पर्य्यन्त निभायेंगे।

इस के अतिरिक्त और भी बहुत सी विधि हैं, मैं उन को पूर्णतया यहां पर नहीं लिख सकता, वह तो देखने और विचारने से विदित होंगी। इस में सन्देह नहीं है कि यदि प्राचीन विधि के अनुसार विवाह हुआ तो तुम्हारा घर देवस्थान बन जावेगा। यह जो आपने लिखा कि 'बाग लगे लगने नहीं पावे' इस को एक ऐसे उदाहरण के साथ जो कहानी से सम्बन्ध रखता है लिखता हूँ, जिस से सुगमता से समझ में आजावेगा। एक राजा ने दो मालियों को बुलवाकर आज्ञा दी कि तुम दोनों अमुक २ स्थान पर बाग लगाओ, पर इस का ध्यान रक्खो कि बाग लगे लगने नहीं पावे। एक ने यह समझा कि राजा बाग लगने को मना करता है, इस लिये जो पेड़ लगाता, थोड़े काल पश्चात् उन्हें उखाड़कर फेंक देता, फिर नये लगाता फिर उखाड़ डालता। दूसरे बुद्धिमान् माली ने विरांगड़ा बाग लगाया जिस के पेड़ बहुत अन्तर से लगाये, इस लिये कि वे खूब बढ़ें और फूलें, राजा कुछ काल पश्चात् देखने आया प्रथम माली को मूर्ख बताकर दण्ड दिया और दूसरे माली से बड़ा प्रसन्न हुआ और पारतोषिक दिया। सो पुत्र का विचार भी ऐसा ही प्रतीत होता है कि मैं जल्द २ बहुतसी सन्तान उत्पन्न नहीं

करूंगा, जिन का पालन, पोषण भी कठिन हो, जैसा कि बहुत सी स्त्रियों के साल भर में दो २ बच्चे उत्पन्न होजाते हैं पर उनका पालन उनके जी का जंजाल होजाता है, एक इधर रोता है दूसरा उधर सिसकता है, वे मारती जातीं गाली देती जातीं और घरका काम करती जाती हैं। उसे अपनी और पत्नी दोनों के आरोग्य रहने और उतनी ही सन्तानों के उत्पन्न करने का विचार है। जिनका पालन और शिक्षादि का पूर्ण प्रबन्ध कर सके और जब एक सन्तान के पालन की आवश्यकता न रहे तो दूसरी सन्तान उत्पन्न करे जिस से दोनों गृहस्थी में भी ब्रह्मचर्य्य का लाभ उठावेंगे और वीर्य्यवान्, बलवान, पराक्रमी, उत्साही बने रहेंगे। परमात्मा उस की सहायता करें, उसने वर्षों गुरुकुल में रह कर, कष्ट सहन कर, विर्य्य लाभ कर, सत्सङ्ग पाकर इन पवित्र विचारों को सीखा है उसने पढ़ा है कि—

शुक्रं तस्माद्विशेषेण रक्ष्यमारोग्यमिच्छता।
धर्मार्थकाममोक्षाणामारोग्यं मूलकारणम्॥

अर्थात् धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष का मूल कारण आरोग्यता ही है, कोई भी विना वीर्य्यरक्षा किये आरोग्यता को प्राप्त नहीं कर सकता। आरोग्यता का निर्भर वीर्य्यरक्षा पर है, क्योंकि (ब्रह्मचर्य्य प्रतिष्ठायाम् विर्य्य लाभः)जैसे गृह में दीपक का प्रकाश सुखों का कारण है, वैसे ही वीर्य्य शरीर रूपी गृह में मन के हर्ष और प्रसन्नता का संधान है। वह चाहता है कि विवाह योग्य अपने से विचार वाली कन्या से करले और जिन की शिक्षादि का भार पूरे तौर पर उठासके उतनी संतान उत्पन्न करले, अधिक नहीं। 'बाग लगे लगने नहीं

पाये' का अभिप्राय निवेदन किया गया। नाड़ी आदि के मिलने के विचार को जो बहुत विस्तार है, प्राचीन और वर्त्तमान दशा को मिलता हुआ आगमी पत्र में लिखूंगा। क्षमा किजिये, आप को भी पढ़ने में बहुत क्लेश होगा। यह जो आप ने लिखा है कि आप ने बहुत काल से दर्शन नहीं दियेसो प्यारी! मैंने अपना एक अत्योत्तम स्त्री से विवाह कर लिया है। आप पढ़ते ही चौंक पड़ेगी, कि यह क्या हुआ, मैं सच कहता हूं कि उस के थोड़े समय के संग से जो आनन्द प्राप्त हुआ है. वह आप के वर्षों के संग से प्राप्त नहीं हुआ। यदि मैं उस से विवाह न कर लेता तो इतने काल पर्यन्त निर्वाह कठिन होजाता। वह बड़ी महिमामय है, मैं उसका धन्यवाद अदा नहीं कर सकता। उसने मेरी सारी बुरी वासनाओं को दूर कर दिया, उस ने मुझे सन्ततोषी बना दिया. मेरा मान चढ़ाया, सभ्यों की सभा में बैठने और जाने के योग्य बनाया, मेरे मन को उत्साहित किया और मेरे विचारों को पवित्र किया। आप उसके नाम सुनने को विकल होंगी, सुनिये उसका नाम शान्ति है। मैं उस के साथ विवाह करने से पुनर्विवाह के दोप का भी भागी नहीं हुआ क्योंकि शान्ति पत्नी व भार्या है, आप मेरे इतने दिन तक न आने के अपराध को क्षमा करें। मेरा जी भी आप के देखने को बहुत चाहता है, पर अवकाश मिलने के कारण न आ सका। आप भी उस पुत्र के अतिरिक्त जिसके गुरुकुल से आने को लिखा है, इस शान्ति रूप स्त्री से उत्पन्न हुए क्षमा रूपी पुत्र को आप की सेवा में इस पत्र द्वारा भेजता हूं। आप इस पुत्र से प्रेम बढ़ावें, अपने पुत्रवत जानें, आपने सत्यं माता वाले श्लोक में क्षमा पुत्रः पढ़ा भी है, आप भी इसे पुत्र

बनाकर मेरी भांति सम्पूर्ण आपत्तियों से बची रहेगी, क्योंकि—

क्षमाशस्त्रः करे यस्य दुर्जनः किंकरिष्यति।
अतृणे पतितो वन्हिःस्वयमेव प्रशाम्यति॥

महाभारत, उद्योगपर्वान्तर्गत प्रजागर पर्व श्लो ५६॥

क्षमा रूपी शस्त्र जिसके हाथ में है उसका दुर्जन क्या कर सकता है; जहां तृण नहीं वहां गिरा हुआ अग्नि अपने आप ही शान्त हो जाता है।

जितना सुख शान्ति से उठाया है उससे अधिक आप क्षमा से उठाओगी, ज्यों ज्यों इस के प्रभाव से प्रभावित होती जाओगी उतना ही कठोर से कठोर वचन को भी उत्तर नम्रता पूर्वक दोगी। समझोगी कि दुष्ट मूर्ख के पास गाली और कठोर वचन होते हैं, वह अन्योंको देता है; पर सज्जनों के पास वे होते ही नहीं, वह कहां से देसके। संसार में खरहे के सींगको जो होता ही नहीं कोई देही नहीं सकता 'माथापि मुदये क्षमा' सामर्थ होते हुये क्षमा करना क्षमा कहलाती है। इस लिये आप अपनी तदनुकूल स्वभाव बनाइये तो सारे झगड़ों से बची रहोगी।

भजन विवाह समय जो वरकी ओरसे गाया गया।

तुम से वचन भरा के पत्नी बनाऊंगा मैं;
जो जो करी प्रतिज्ञा पूरी निभाऊंगा मैं॥१॥

पहिली तो बात यह है सुनलो ए प्राणप्यारी,
गर हो पढ़ी तो अच्छा, वरना पढ़ाऊंगा मैं॥२॥

सच्चा तो व्रत यही है, प्रण आज जो करोगी।
व्रत रहके भूखों मरना हरगिज़ न चाहूंगा मैं ॥३॥
अवतक पाखण्ड तुमने जो कुछ किया सो किया।
छुड़वा के सब अविद्या उत्तम बनाऊंगा मैं ॥ ४ ॥
जब २ मिलो किसी से, तब झुका के सरको।
कर जोड़कर नमस्ते तुमसे कराऊंगा मैं ॥ ५ ॥
ईश्वर सिवा किसी की, पूजा न करने दूंगा।
मीरा मसानि क़बरें पूजन छुड़ाऊंगा मैं ॥ ६ ॥
तकलीफ़ में तुम्हारी, बेशक रहूंगा साथी।
लेकिन वुलाके स्याने, हरगिज़ न लाऊंगा मैं ॥७॥
माता पिता सम्बन्धी, भाई बहिन कुटुम्बी।
कड़वा वचन किसी को, सुनने न पाऊंगा मैं।८॥
भारत की सारी नारी, मूरख हुई वेचारी।
उनको धरम की शिक्षा तुमसे दिलाऊंगा मैं ॥९॥
माता पिता की सेवा, प्रीती से करनी होगी।
दीनों पशुकी रक्षा, तुम से कराऊंगा मैं ॥ १० ॥
सन्ध्या, हवन, व पितृ, वलिवैश्वदेव, अतिथि।
नित पांचयज्ञ करना तुमको सिखाऊंगा मैं ॥११॥
मेले तमाशे तीर्थ, संगीत नाच रंग में।
तुमको न जाने दूंगा, और भी न जाऊंगा मैं ॥१२॥
भोजन और वस्त्र अपने, लायक़ अवश्य दूंगा।
लेकिन फ़िजूल खर्ची करना छुड़ाऊंगा मैं ॥१३॥
अब वासुदेव तुमने, शिक्षा करी जो हमको।
जहां तक बनेगा मुझ से मानूं मनाऊंगा मैं ॥१४॥

भजन विवाह समय वर और कन्या की ओर से गाकर
दोनों को सुना देने योग्य।

भजन विवाह समय जो कन्या की ओर से गाया गया ।

वचन दो सात जब हम को तभी प्रीतम कहाओगे ।
करो इक़रार पञ्चों में उसे पूरा निभाओगे ॥
पकड़ कर हाथ जो मेरा मुझे पत्नी बनाते हो ।
तो किश्ती उम्र की मेरी किनारे पर लगाओगे ॥
हमारे वस्त्र भोजन की फ़िकर करनी तुम्हें होगी ।
वचन मन कर्म से प्यारे मुझे अपना बनाओगे ॥
विपत सम्पति औ बीमारी ग़मी शादी और सुख दुख में ।
कभी किसी हाल में मुझ से जुदा होने न पाओगे ॥
जवानी और बुढ़ापे में ख़िज़ा बाहार यौवन में ।
निगाहे मिहर से हरदम खुशी मुझ को दिलाओगे ॥
तिजारत नौकरी खेती अर्थ और धर्म सम्बन्धी ।
करो कोई काम जब जारी हमें पहिले जनाओगे ॥
जो बिगड़े काम कुछ मुझ से करो एकान्त में शिक्षा ।
मगर नन्दी सहेलिन में न तुम हम से रिसाओगे ॥
हमें तज और तिरिया को दिया दिल तो तुम जानो ।
किये अपने को पाओगे जो मेरा जी जलाओगे ॥
अग्नि को साक्षी देकर जो अर्धांगिन किया मुझको ।
तो फिर बलदेव बायें पर मुझे अपने बिठाओगे ॥

११-द्वितिय पत्र पति की ओर से पत्नी को ।

धर्मवती पतिव्रता प्रेम प्यारी जी-नमस्ते प्रथम पत्र में निवेदन किया था कि परापरी त मिलाने में पूर्व और वर्त्तमान

निवेदन न कर पाया जिसका उत्तर आप देतीं, मैं आप को किसी आड़े समय पर ही स्मरण करती हूं और आप सदैव अपनी ललित और मनोहर शिक्षा और शान्तिदायक लेख से मेरे संशय निवारण किया करती हो। आप ऐसे २ समय पर काम आई हैं और ऐसा सुख पहुंचाया है कि जैसे भूखे को भोजन और प्यासे को पानी मिलने से प्राप्त होता है। मैं आपका धन्यवाद नहीं देसकती, परन्तु इस समय जिस चिन्ता में फँसकर मैंने आपको स्मरण किया है एक महती विपत्ति और सारी कठिनाइयों से कठिन कठिनाई है, गो अभी वड़ा भयानक और डरवाना रूप धारण किये हुये मेरे सम्मुख आ उपस्थित नहीं हुई-अभी अपना भयदायक बोल ही सुनाया है जिसके ही कारण न दिन में चैन न रात्रि में नींद, चित्त को इतना डावांडोल कर दिया है कि जिसका वर्णन नहीं। मुझे पूर्णविश्वास है कि मैं उसके आनेपर बावली होजाऊंगी क्योंकि इस महती विपति के सहारने की अपने में सामर्थ्य नहीं देखती, चित्त व्याकुल और मन क्षोभित होरहा है, क्या लिखूं मुझ से लिखा भी नहीं जाता। विपता का पहाड़ बताऊं तौ भी थोड़ा है, परन्तु बताती हूँ। सुनिये, मेरे परम पूजनीय जेठ दादा जीने जिठौत का यज्ञोपवीत संस्कार बड़े समारोह के साथ कराया और उसको सत्तरह १७ अठारह १८ वर्ष के लिये गुरुकुल फ़र्रुखाबाद * भेज दिया, अब वह इतने दिन तक कभी घर नहीं आवेगा, जब वह पच्चीस वर्ष का हो जावेगा तब घर आसकेगा। न जाने उस समय तक कौन मरा कौन जिया, हा उसकी माता जैसे मछली पानी विना

---

*नोट—जब यह किताब लिखी गई थी तब फर्रुखाबाद में था, अब वहां हां वृन्दावन मथुरा को उठगया है।

तड़पती वैसी तड़पा करती है। सासजी ने तो रोरो कर आंख सुजाली हैं, जेठजी ने एक की भी न सुनी। हाय २ होती ही रही पर उन्होंने गुरुकुल को भेज ही दिया, सारे घर में अति अशान्ति है, मुझको भी उसके जानेका अति दुःख है। यह हुआ सो हुआ, जेठानी की गोद में तो दूसरा बच्चा है, आप जानती हैं कि मेरे एक अकेला ही पुत्र है जो मेरी आंखों का तारा और कलेजे का टुकड़ा है। बड़ी कठिनाइयों से इतनी अधिक आयु होजाने पर जैसे तैसे छः वर्ष का कर पाया है दूसरा न कोई पुत्र है न कन्या, उसके लिये भी तो मेरे माननीय प्यारे पति जी यह सुनाते हैं कि इस को भी ८ वर्ष होने पर गुरुकुल भेज देंगे। उनकी बात मेरे दिल पर तीरसी छिदती है, कलेजा टुकड़े २ होजाता है, मैं सत्य कहती हूँ कि उसके पृथक् होने पर उस के शोक में मुझे अपने जीवन की आशा प्रतीत नहीं होती। माता की ममता बालक से अद्भुत होती है। किसी ने सच कहा है-

माकी ममता भाइयो संसार में प्रसिद्ध है।
घाव बेटे के लगे मा का कलेजा दग्ध है॥

सुना है वहां बच्चे नंगेपाऊं रहते हैं, माघ पूष की शर्दी में पैर ठठुर जाते और ज्येष्ठ अषाढ़ की धूप में पैरों में फफोले पड़जाते होंगे। रँगे पीले जोगियों की भांति कपड़े पहिना कर घर से भिखारी बनाकर भीख मंगाकर बच्चा भेजा गया, उस समय का बड़ा भयानक और रुलानेवाला दृश्य था। जब बच्चे इतने दिनों तक माता पिता से पृथक् रहेंगे तब फिर आकर भी माता पिता का क्या ध्यान करेंगे, उन्हें वन ही प्रिय होगा, ऐसी दशा में जब वह मुझ से अलग होगा

तो मैं कैसे रहसकूंगी, याद आने पर क्या करूंगी। घर काट-खाने को दौड़ेगा। आपको कुछ अधिक हाल ज्ञात होगा, आपने दूर २ भ्रमण किया है, आशा है कि वहां भी गई होंगी, इस लिये वहां की दशा का यथावत् वर्णन कीजिये और यह भी लिखिये कि मेरा ऐसे समय पर क्या कर्त्तव्य है आजतक मैंने पति की जहांतक होसकी सेवा की, कभी भी उनकी आज्ञा का उल्लंघन नहीं किया परन्तु अव मुझे जान पड़ता है, कि ऐसा करने पर मैं उनकी इस हट को सहन न करसकूंगी। वैसे तो वह भी वच्चे पर प्राण वारते हैं, मुझसे अधिक लाड़प्यार करते हैं, परन्तु नहीं जानती कि ऐसे कठोर वचन उनके मुख से कैसे निकल रहे हैं। एकवार नहीं वे अनेक वार कहचुके हैं। मैं सुनकर लोहूकासा घूंट पीकर रहजाती हूं, अभीतक कुछ उत्तर नहीं दिया है। जव उनका कथन कर्म की दशा में परिवर्त्तन होगा तो नहीं जानती कि क्या परिणाम निकलेगा। मेरी शुभचिन्तक भगिनी जी आप मुझे विचार पूर्वक शीघ्र उत्तर दीजिये, यदि होसके तो आप किसी भांति अवकाश निकाल कर उनसे मिलकर अपने सारगर्भित प्रभावशाली उपदेश से समझाकर इस कार्य्य से रोक दीजिये। मेरे ऊपर वड़ी दया होगी। मैं जन्म पर्य्यन्त आपका गुण गाती रहूंगी, जिससे वह इस विचार को अपने मन से निकाल दें। परमात्मा का दिया हुआ सव कुछ है रुपया व्यय करके वच्चे को मास्टर द्वारा घर पर रहते हुये वड़ी सी वड़ी शिक्षा दिला सकते हैं, वहां डेढ़ सहस्र रुपया दाखिल करना चाहते हैं। मैं पांच सहस्र रुपया तो अपने पिता से ही दिलासकती हूँ, और अपने पास से ही सव कुछ देसकती हूँ, न जाने उनकी मत किसने काट दी है। मैंने अभी

तक सुनलिया वा हँसकर टाल दिया, जो आपही के उपदेश का फल है, आपने समझाया था कि जब तक अच्छी तरह न समझ लेना तबतक उत्तर न देना और कठोर उत्तर कभी न देना, सहसा उत्तर देने की मनाई की थी, आप स्पष्टतया साधारण रीति से मेरा कर्तव्य बताती हुई उत्तर दीजिये मैं चाहती हूं कि पतिजी भी अप्रसन्न न हों और बच्चा भी मेरे पास से अलग और मेरी आंखों से ओट न हों । अभी दो वर्ष का अन्तर भी है । दृष्टि आप के उत्तर की ओर लगी है, जलदी कीजिये, लेख के अधिक बढ़जाने की परवाह न कीजिये, शेष कुशल है ।

आप की सुशीलादेवी ।

१३-उत्तर ज्येष्ठभगिनी का लघुभगिनी को ।

प्यारी विचारवती भगिनी ! नमस्ते ।

पत्र आया, हाल ज्ञात हुआ, मैं आप से अति प्रसन्न हूं, परमात्मा से प्रार्थना है कि वह सदा आप को प्रसन्नचित्त रक्खे और आप की बुद्धि को इस योग्य बनाये रहे कि आप हर बात के वास्तविक अभिप्राय का पता लगाने वाली बनो। जैसे सुनार सोने को कसौटी पर कसकर, तपाकर, छेदकर, काटकर परखता है उसी भांति तुम भी हर बात की बाल खाल निकाल कर खूब छान बान कर, जानकर धारण किया करो, असत् सम्मति प्रकट करना बुरा नहीं है, जब तक तुम जानती नहीं । जैसा तुम्हारी समझ में है कहना चाहिये, हां जब समझ में आजावे फिर भी अपनी बात पर हठ किये रहना पाप है । मैं अति प्रसन्न हूं कि आप अपनी सम्मति

को जैसी होती है प्रगट करती हो जिससे आशा होती है कि आप किसी दिन इस योग्य बनेंगी कि आप औरों को अपनी उत्तम सम्मति प्रदान कर सकेंगी और आप की सम्मति और मानेंगे। इस से और भी अधिक प्रसन्नता प्राप्त होती है कि आप सहसा उत्तर नहीं दे बैठतीं न काम कर बठती हैं, हक्का बक्का बनकर क्रोध में आकर शीघ्र वे सोचे समझे कठोर उत्तर दे बैठना बड़ी असभ्यता है।

सहसा विदधीत न क्रियामविवेकः परमापदांपदम्।

किरातार्जुनीय काव्ये।

अर्थात् विना विचारे जल्द काम करना परम आपदा का घर है। आप पर विदित हो कि अविद्या सारे क्लेशों और दुःखों की जड़ है। यह अविद्या ही नरक में लेजाती है, उस के विरुद्ध विद्या जिस का पर्य्यायवाची शब्द ज्ञान है, दुःखों से छुटाकर सुख प्राप्त कराता और मुक्ति तक दिलवाता है। जब तक मनुष्य अज्ञान अविद्या में ग्रसित रहता है तब तक उसे दुःखदाई वस्तुयें सुखदाइ दृष्टि आती हैं, और सुखदाई, दुःखदाई दिखाई पड़ती हैं और सैकड़ोंवार उन्हीं अवस्थाओं में फँसा हुआ न देखने वालों की भांति अन्धा और न जानने वालों की भांति पागल बना हुआ दुःखसागर में गोता खाता रहता और समझता है कि मैं अपनी प्यारी से प्यार करता हूँ, परन्तु वह प्यार उसके जीवन में प्राप्त होने वाले सुखों की जड़ पर कुल्हाड़ी का काम करता है, अनुचित प्रेम और तरफ़दारी को ही उचित और ठीक समझता है और यहांतक होता है कि वह संस्कार वर्षों में जाकर स्वभाव बन जाता है कि बड़े २ उपायों से भी नहीं जाता। हां उस के भाग्यवश

जब कभी सत्य उपदेष्टा, छल कपट से रहित मिल जाता है और सच्चा गुरु बनकर सत्य मार्ग बतला देता है और ज्ञान रूपी सूर्य्य के प्रकाश से यथावत् प्रकाशित और प्रभावित हो जाता है, तब वह जान लेता है कि यथार्थ में सच्चा सुख और दुःख क्या है। क्या मेरा आज तक स्त्री, पुरुष, बाप, भाई से वर्त्ताव रहा क्या होना चाहिये था, क्या उनके उचित ऋण मुझपर हैं और क्या मेरा कर्त्तव्य उनके साथ है मेरा और उनका साथ धर्म वृद्धि के लिये हुआ है अथवा पशुवत् भोग भोगने के लिये। प्रिय भगनी, इस संसार में मनुष्य योनि बड़ी कठिनाइयों से प्राप्त होती है, ऐसे अमूल्य और उत्तम शरीर को पाकर कर्त्तव्य (फ़र्ज़) का पूर्ण करना अति आवश्यक है।

नर समान नहिं कोऊ देही।
जीव चराचर याचत एही॥
साधन धाम मोक्ष कर द्वारा।
पाय न जेहिं परलोक सँवारा॥
दोहा—सो नर अति दुख पावहीं,
शिर धुनि २ पछिताहिं।
कालहिं कर्महिं ईश्वरहि,
मिथ्या दोष लगाहिं॥

कि इस मनुष्य शरीर के समान कोई दूसरा शरीर नहीं,

इसी शरीर के प्राप्ति की सम्पूर्ण जीव याचना करते हैं यह मोक्षद्वार तक के पहुंचाने का साधन है, इसको पाकर भी जिन पुरुषों ने परलोक नहीं सँवारा वह निश्चय ही दुःख उठाते और शिर धुनि २ पछताते हैं और कलियुग और भाग्य और ईश्वर को मिथ्या दोष लगाते हैं, इस लिये स्मरण रहे कि कर्त्तव्य एक बड़ा ऋण है, जैसे ऋणी विना ऋण चुकाये शान्त होकर सुख चैन से नहीं बैठ सकता।

एक कौड़ी क़र्ज़ हो या लाख हो।
दिहर में उस पुरुष की कब साख हो॥

इसी प्रकार मनुष्य का आत्मा विना अपना कर्त्तव्य पूरा किये निडर और शान्त नहीं हो सकता। क्या लिखूं बड़े विस्तार का विषय है, यहां पर लिख नहीं सक्री, केवल आप को यह बताती हूं कि माता बच्चा उत्पन्न कर लेने से ही पुत्रवती नहीं कहलाती, किन्तु बतलाया है कि गुणियों की गणना में जिनकी गणना नहीं उस पुत्र की माता यदि पुत्रः वती कहलावे तो बताओ वन्ध्या किसको कहते हैं, जैसा कि-

गुणिगणगणनारम्भे न पततिकठिनीससम्भ्रमायस्य। तेनाम्बायादि सुतनी वद् बन्ध्या कीदृशी भवति॥

माता पिता का इतना ही कर्त्तव्य नहीं है कि लड़का लड़की को विद्या ही पढ़ा दे, विद्या अवश्य पढ़ाना चाहिये परन्तु वह विद्या न हो जिससे बच्चों में औरों को नीचा देखने का स्वभाव उत्पन्न हो जावे वा आलस्य प्रमाद बढ़

जावे वा दूसरों पर गोले वरसाने वा हानि पहुंचाकर अपना प्रयोजन सिद्ध करने का ध्यान हो जावे, किन्तु वह विद्या होना चाहिये कि जिस में परमात्मा को जानकर सदैव दूसरों को लाभ पहुंचाने का ध्यान रहना चाहिये। विद्या वह है कि जिससे विनय पैदा हो। जबतक थोड़ी विद्या होती है तब तक अपने को ऊंचा देखता और समझता रहता है कि 'मम सदृशो द्वितीयो नास्ति' जब पूर्ण विद्वान् हो जाता है तब वह फले तरुवर की भांति झुकता जाता है। जब विनय होगी तबही योग्यता बढ़ेगी और धन प्राप्त होगा, तब धर्म करके सुख प्राप्त कर सकेगा, जब उसका अन्तर और बाह्य एक होगा जो मन में होगा वही वचन में, तब न कोई गुप्तचर उसके विरुद्ध होगा, न कोई और किन्तु धार्मिक और सत्ययुक्त होने से सब उससे प्यार करेंगे।

विद्या ददाति विनयं विनयाद्याति पात्रतताम्।
पात्रत्वाद् धनमाप्नोति धनाद्धर्म ततः सुखम्।

शिक्षाकी आवश्यकता तो आप भी अनुभव करती हैं, परन्तु वर्त्तमान शिक्षा बच्चों के लिये अति हानिकारक सिद्ध हुई है। देश में ज्यों २ शिक्षा बढ़ती जाती है त्यों २ अधर्म्म की उन्नति होरही है। मेरे देखते २ इस देशकी स्त्रियां कोई तम्बाकू नहीं पीती थीं किन्तु अपने तम्बाकू पीनेवाले पति के मुख के अपने मुख की ओर आजाने से घृणा करती थीं, आज कोई घर बचा है जिसमें स्त्रियां इससे बची हैं, और बच्चे तो हर समय सिंगार मुंहमेंलगाये हुये ही दिखाई पड़ते हैं। विलायत में कोई बच्चा सोलह वर्ष से न्यूनायु का सिगरट वा तम्बाकू नहीं पी सकता, इस लिये कहा है कि

उस माता के यौवन हरनेवाले मनुष्य के उत्पन्न होने से क्या लाभ जो अपने वंश के आगे ध्वजा के समान ऊंचा नहीं चढ़ता है।

किंतेन जातुजातेन मातु यौवनहारिणा।
आरोहति न यः स्वस्य वंशस्याग्रध्वजो यथा॥

पञ्चतन्त्रे।

वरन् उसको उत्पन्न हुआ कहा गया है जिससे देश की उन्नति होती है।, वैसे तो इस परिवर्त्तनशील संसार में पैदा होना और मरना चला ही जाता है।

सजातो येनजातेन याति देश * समुन्नतिम्।
परिवर्त्तिनि संसारे मृतः कोवा न जायते॥

नीतिशतक श्लोक ३०।

देखो कितने शोक की बात है कि देश में आज एम० ए० बी० ए० वकील बैरिस्टर बढ़ रहे हैं, परन्तु शान्ति के स्थान पर अशान्ति बढ़ रही है, अन्यों को धोका देना, कमीने झूठे हमले करना जीवनोद्देश बनाये बैठे हैं, यदि भूमिहार है तो कृपक के बच्चों के भूखों मरने का ध्यान नहीं, यदि साहूकार हैं तो अधमर्णः (उधार लेने वाले) की ओर प्रेम दया की दृष्टि नहीं, विकराल काल पड़ रहे हैं, सहस्रों बच्चे पाव २ भर दानोंमें बिक धर्म त्याग रहे हैं। सच्ची ईश्वर कृत मूर्तियों की यह दशा है, परन्तु अपनी बनाई हुई जड़मूर्तियों के लिये लाखों रूपये

* वंश भी कहीं २ लिखा है पर देश से मेरा प्रयोजन संसार से है।

लगाकर मन्दिर बना रहे हैं और मोहन भोग लगा रहे हैं। शिक्षा उन्नति पर है, प्रकाश का समय कहाजाता है; पर अभियोगों की गणना, बन्दियों की संख्या, पागलखानों, बन्दीगृहों, चिकित्सालयों की दिवारें बढ़ रही हैं, गांजा चर्स अफ़ीम शराब के ठेकों में प्रतिदिन उन्नति हो रही है, जुआ व्यभिचारादि दोषों की बढ़ती हो रही है। यह क्यों हुआ? बच्चे जिन माता पिता मुहल्ले बस्तीवालों के संग में रहते हैं वह शुभ गुणों से भरपूर नहीं, पाठशाला स्कूल के विद्यार्थियों का करेक्टर (आचरण) ठीक नहीं, यदि यही शिक्षा आप बच्चों को दिलाना उत्तम समझती हो तो मैं इस की अपेक्षा कहूंगी कि तुम्हारा बच्चा बे पढ़ा हुआ रहकर भोले भालेपन से पापों को न करता हुआ साधारण जीवन व्यतीत कर जावे तो सहस्रोंगुणा उन पढ़े हुओं से अच्छा है, जो गेहूं दिखाकर जौ बेचने वालालों की भांति छल कपट का जाल फैलाये भोले भालों की गरदन काट रहे हैं। कितने शोक का समय है कि आज दो रूपये का नौकर जो निपट मूर्ख लंपट निरक्षर है यदि एक पैसा सौदा लाने में चुरालेवे तो उसको चोर बतलाकर गालियां दे कर मारकर निकाल दिया जाता है, पर आज बड़े २ पढ़े लिखे न्यायालयों में नौकर सैकड़ों पते चुराकर दरहे हैं, सैकड़ों रूपये घूस में लेकर अपने भाइयों का गला घोंटरहे हैं, परउन्हें कोई चोर नहीं बताता, वरन् उलटा उन्हीं का हर जगह मान होता है। बहिन, जैसा शरीरिक पालन पोषण आहार की योग्यतानुसार होता है वैसे ही आत्मा बुरी भली संगत से बुराई भलाई गुप्त रूप से ग्रहण करती रहती हैं। बच्चों का हृदय अति कोमल और प्रभावित होनेवाला होता है और सदैव साथियों की

बात चीत और चाल चलन के अनुकरण के लिये उद्यत रहता है। जो रंग कि बचपन में बच्चे के स्वच्छ और उज्वल मन पर चढ़जाता है वह अमिट हो जाता है, फिर अच्छी संगत प्राप्त होते हुये भी सोचने समझने जानने पर भी कभी न कभी समय पाकर प्रादुर्भाव हो जाता है और बड़ा नीचा दिखाता है। इस के अतिरिक्त उन्नति के लिये शारीरिक और आत्मिक दोनों प्रकार की उन्नातियां समवाय सम्बन्ध के ढंग पर होनी चाहियें, यदि शारीरिक उन्नति हुई और आत्मिक नहीं तब पुरुष को अन्धा ख्याल करना चाहिये और आत्मिक हुई और शारीरिक नहीं तो लङ्गड़ा जानना चाहिये। जीवातत्मा की ज्ञानशक्ति को विद्या से और प्रयत्न को तप से सहायता पहुंचती है (विद्यातपोभ्यां भूतात्मा)। अन्धे लङ्गड़े युवापुरुष को साधारण बालक मार सकता है और दुःख पहुंचा सकता है। देश इन्हीं दो रोगों में से एक न एक रोग में ग्रसित हुआ अन्धे लङ्गड़े की भांति हाहाकार मचा रहा है, पर कर कुछ नहीं सकता। यह देश परोपकारी मस्तिष्क रखता हुआ सारे संसार का गुरू था, और आज तक उन्हीं की कीर्त्ति गागाकर अपने को ऊंचा जान रहा है। भारतवर्ष में यदि कुछ शारीरिक दशा अच्छी रखने वाले हैं तो वे वोदे कोरे संख मूर्ख गँवार हैं, जिन्हें विचारशील कहा जाता है उन में बहुत ही न्यून हैं जो परोपकारी विचार रखते हैं। जो हैं भी वे आरोग्यता खोये हुये निर्बल और दुर्बल होने के कारण काम करने से शिथिल हैं। यह क्यों हुआ, इन्हों ने घर का काम करते हुये ऐसे समय में जब स्वयं दो पैरों पर खड़े होने को असमर्थ थे अन्य दो पैरों की संरक्षकी का बोझ अपने ऊपर लेते हुये अर्थात् बाल्यावस्था

में विवाह कर सन्तानोत्पत्ति कर बल, वीर्य्य का नाश करते बुरी संगत में रहते हुए पठन-पाठन किया है, इसी कारण यह सब दुर्दशा है। शिक्षा से उस समय पूर्ण आशा होसक्ती है, कि जब उसका प्रबन्ध छल कपट से रहित स्वार्थता से पृथक परोकारी पुरुषों के हाथ में हो और आचार्य्य और संरक्षक बहुत ही सदाचारी पवित्रात्मा हर प्रकार के दोषों से पृथक सत्यवादी हों, इस लिये बतलाया है, कि:—

अश्वः शस्त्रं शास्त्रं वीणा वाणी नरश्च नारीच॥
पुरुष विशेषे प्राप्ता भवति योग्यश्च योग्यश्च ॥

अर्थात् १घोड़ा, २शस्त्र, ३शास्त्र, ४वीणा, ५वाणी, ६स्त्री, ७पुरुष योग्य अयोग्य पुरुषों को प्राप्त होकर योग्य अयोग्य बन जाते हैं। जो गुरु शिक्षक, रक्षक सब को अपना पुत्र समझ कर सब के दुःख दर्द में सम्मिलित रहकर स्वयं सच्चा आदर्श बनकर दिखलावेंगे तो इस में किञ्चित् सन्देह नहीं कि ब्रह्मचारी पवित्र और परोपकारी ही बनेंगे। यदि उनके शुद्ध मनपर यह संस्कार डाल दिया जावेगा कि आज परोपकारार्थ बड़े घराने का ईसाई अपना सारा सुख छोड़ कर एकान्त में जा कोढ़ियों के इलाज और उनके दुख दूर करने में लगता है और यहांतक होता हैं कि उनके संसर्ग के प्रभाव से स्वयं कोढ़ी होजाता है। जब इतना परोकार उसके मन में विद्यमान है तो परमात्मा का वरदान (बरकत) उस पर क्यों न उतरे। धर्म का सामना (युद्ध) धर्म से ही हो सकता है, पाप कभी धर्म को दबा नहीं सकता। तुम्हारी जय धर्म से होगी पाप से नहीं। यदि बच्चे समझ जायें कि थोड़ी देर के किये पाप के बदले न जाने कितने दिनों का

दण्ड, कारागार, कालापानी तक का संसारी न्यायाधीशों के जानकार होजाने पर प्राप्त होता है तो जिन पापों को ईश्वर के अतिरिक्त और कोई जान नहीं सकता उसके पलटे में न जाने कितने दिनों वरन् जन्मों किस किस योनि में जा दण्ड भुगतना पड़ेगा। नौशेरवां जो बड़ा न्यायाधीश प्रसिद्ध है, उसने राजतिलक धारणकर गद्दी पर बैठ अपने पुत्र को उस पाप में उसी भांति दण्ड दिया जैसा साधारण मनुष्य को दिया जाता था, जिस से ही वह अति प्रसिद्ध होगया। आज वह नहीं मरा है, उसका नाम भलाई के साथ प्रसिद्ध है, उसने सोचा था—

यदी पुत्र प्रियःको दीजै निकाल।
वहुत दिल पै बीतेगा रंजोमलाल॥

जो इंसाफ़की दीजिये कुछ न दाद।
तो दुनिया में आयेगा हरसू फ़िसाद॥

अन्त को न्याय पूर्वक निकाल ही दिया, यदि चोरी के भय से यहातक बच्चे को डरा दिया जावे कि हमारे पूर्व ऋषियों में से एक ऋषि एक मित्र ऋषि से मिलने गये थे, वह अपने स्थान पर नहीं मिले यह वहां उनके आने के पैंड़े में ठहर गये वह तीसरे पहिरे तक नहीं आये इन्हें क्षुधा लगी, देखा तो कुटी के निकट वाटिका में फल लगे हुये हैं, इन्हों ने मित्र का माल जान कर तोड़ कर खालिये। जब ऋषि अपने स्थान पर आये बड़े प्रेम से मिले कुशल क्षेम

१—दुख, रंज २—न्याय

आदि पूछकर अति काल होजाने के कारण प्रथम भोजनों को पूछा तब उन्होंने उत्तर दिया कि मैं तो तृप्त हो चुका हूं। कहा क्या खाया बतलाया कि आपकी ही वाटिका में से फल तोड़ कर खालिये तब ऋषि ने बतलाया कि इस में सन्देह नहीं कि यही फल मैं आपको खिलाता पर आप बिना मेरी आज्ञा तोड़कर खालेने से स्तेय (चोरी) के पाप के अपराधी अवश्य हुये, आप विचारिये तो सही कि यदि ऐसी प्रथा चल पड़े कि एक दूसरे की वस्तु को बिना पूछे सेवन करने लगे और कोई नियम न रहे तो कैसी अशांति फैल जावे, ऋषि बिना आक्षेप चुप होकर तुर्त अपना अपराध स्वीकार करके प्रायश्चित पूछते हैं और आज्ञा पाकर राजा के समीप जा स्वयं ही अपने हाथ कटाकर सच्चे धर्म का परिचय देते हैं।

जब वह जान जावें कि सुकरात को जब विष का कटोरा दिया गया और उसने हर्ष पूर्वक पान कर लिया, तब उस के निकट उपस्थित हुए चेलों ने प्रकट किया कि आपका निरपराध घात किया गया, सुक़रातने उत्तर दिया कि प्यारे मेरे हित चाहने वालो, क्या तुम यह चाहते हो कि मैं कलंकित अपराधी होकर मारा जाता मुझे यही तो प्रसन्नता है कि मैं किसी पाप के बदले नहीं मारा जाता, एक दिन अवश्य मरता, तुम हर्ष मनाओ कि तुम्हारा एक लीडर निष्पाप मारा जाता है, तुम भी नेकी के लिये प्राण त्यागना सीखो।

मरना भला है उस का जो अपने लिये जिये।
जीता है वह, जो मर गया उपकार के लिये॥

इत्यादि बातों से उसके अन्तष्करण पर संस्कार बिठादे

और अपने जीवन से भी वैसा ही दिखावें तो बच्चे देवता ही निकलेंगे-स्मरण रहे कि—

हरे वृक्ष की छड़ीसम, ज्यों चाहे लच जाय।
सूखे से नहिं लचत है, कोटिन करो उपाय॥

जो शिक्षा प्रणाली वहां रक्खी गई है उसकी स्कीम के देखने से यदि उसपर पूर्ण रीति से वर्त्ताव हुआ तो बच्चों के सुधार और मनुष्य बनने की पूर्ण आशा होती है इस लिये कि उन्होंने विद्या पढ़ाने के नियम को समझा है और दोनों उन्नतियों का ध्यान रखकर शिक्षा का ढंग स्थित किया है। जबतक शिक्षा का समय है बच्चों को हरप्रकार की सजावट दिखावट और बनावट (शौक) रुचि से बचाना चाहिये और शारीरिक उन्नति के लिये सुन्दर सात्विक भोजन और व्यायाम करते हुए जितेन्द्रिय रहकर अखण्ड ब्रह्मचर्य्य धारण कराना, और आत्मिक उन्नति के लिये परमेश्वर का यथार्थ ज्ञान वेदका अर्थ सम्मन्ध सहित तर्क वितर्क से शंका समाधान करते हुए श्रवण, मनन, निदिध्या-सन से साक्षात्कार कराते हुए, परमेश्वर को न्यायकारी बतलाते हुए, उसके भय से पापों से बचाते हुए पढ़ाना चाहिये। वह सब नियम उपस्थित हैं। जिन बुराइयों के छोड़ने और भलाइयों के ग्रहण करने का यज्ञोपवीत के समय उपदेश किया जाता है, उसका पूर्णतया गुरुकुल में अभ्यास कराया जाता है। आपने पण्डितों, गुरुओं को यज्ञोपवीत के समय ब्रह्मचारियों को उपदेश करते सुना होगा, निम्न बातों के करने की मनाई की होगी। सब प्रकार के नशे-शराब, अफीम गांजा, चर्स, तम्बाकू पीने, मांस, मछली, खटाई खाने

सुगन्धित सूंघने, गाने, वजाने, नाचने, सुर्मा, काजल लगाने, अति सोने, अति जागने और दिन में सोने, लोभ, मोह, शोक में फँसने झूठ वोलने, हाथी घोड़ा ऊंटपर चढ़ने, जूता छाता, धारण करने, तेल, उवटन लगाने, खाट पर सोने लघुशंका के विना उपस्थ इन्द्रिय के छूने, आठ प्रकार के मैथुनों अर्थात् १ दर्शन, २ भाषण, ३ स्पर्शन, ४ एकान्त, ५ सेवन ६ विषय कथा, परस्पर ७ क्रीड़ा, ८ विषयका ध्यान और संगकी मनाई की होगी और प्रातः चार वजे उठकर शौचादि से निवृत्त होकर दन्तधावन स्नान कर सन्ध्या अग्निहोत्र नित्यप्रति करने, वेद पढ़ने भोजन से प्रथम आचमन करने, गुरु के अच्छे गुणों और पवित्र शिक्षाओं को मानने, भूमि वा तख्तपर सोने, लँगोट कसे रहने, गुरु और वड़ों के अन्याय अधर्माचरण को त्याग न्याय धर्माचरण कर्मों और गुणों के सेवन करने, गुरु और वड़ों को नित्यप्रति नमस्कार करने, अच्छे गुणों के धारण करने का उपदेश सुनाहोगा। इन वातों के सुना देने से ही पूर्ण लाभ नहीं होता। गुरुकुल में वास्तविक साधन कराकर अभ्यास द्वारा स्वभाव वनाया जाता है। आजकल जो शिक्षा स्कूल में लड़कों को मास्टरों और अन्य पुरुषों के द्वारा मिलता है, वह उनके आचरणों को विगाड़ देती है। आरोग्यता के स्थान में अनेक प्रकार के रोग शरीर में उत्पन्न करदेती है। गुरुकुल में शिक्षा ऐसे स्थान पर दीजाती है जो कुचाली स्त्री पुरुषों और झगड़ालू गृहस्थियों के प्रभाव से दूर होती है। मैंने स्वयं गुरुकुल में जाकर देखा उपरोक्त यमानियम अर्थात् विधि और निषेध का पालन कराया जाता है, यह ही नहीं किन्तु आपने यज्ञोपवीत के समय तीन तार होने का कारण वतलाते हुये भी सुना होगा,

प्रत्येक पुरुष शतपथ ब्राह्मण के अनुसार तीन ऋणों को लेकर पैदा होता है, जैसा कि –

जायमानो हवै ब्राह्मणः त्रिभिर्ऋणैः ऋणवान् जायते।

इन तीन ऋणों का चुकाना मनुष्यमात्र का कर्त्तव्य होना चाहिए, वह गुरुकुल की शिक्षा से ही चुकाए जासकते हैं, जैसा कि मनु भगवान ने बताया है—

स्वाध्याये नार्चयेतर्षीन् होमैर्देवान् यथाविधि।
पितॄन् श्राद्धैश्चनॄनन्नै भूतानि बलिकर्मणा ॥

स्वाध्याय करके ऋषि ऋण और होम करके देवऋण और श्राद्ध करके पितृ ऋण चुकाना चाहिये, जब वह स्वयं गुरुकुल में नियमानुसार पढ़ेगा तब ही तो वानप्रस्थ बनकर अन्यों को पढ़ाकर उसके ऋण से उद्धार हो सकेगा। जब नित्यप्रति हवन करने का संस्कार पड़ जावेगा तब ही तो वह गृहस्थाश्रम और वानप्रस्थ तक निभा सकेगा और माता पिता के सेवा सम्बन्धी कर्त्तव्यों को जब भले प्रकार समझ लेगा तो आप उनकी सेवा करेगा और सुयोग्य सन्तान उत्पन्न कर सकेगा।

तीन तार जनेऊ के बहुतसी आवश्यकतायें बतलाये थे और बहुत से कर्त्तव्यों को स्मरण कराते थे जब तक तीन तार पहिने जाते थे, जब से छः तार पहनने लगे एक अपना और दूसरा अपनी स्त्री का, तब से वास्तविक मर्म ही भूल गये और बहुतों ने निरर्थक भार समझ कर उतार दिये।

थोड़े तालियां बांधने में सुगमता समझ कर पहिने रहे। हा शोक !

यह तीन तार बतलाते थे कि तुम्हारा जीवनोद्देश्य ब्रह्म-प्राप्ति है जिसका मुख्य नाम 'ओ३म्' है जो तीन अक्षरों अर्थात् अकार, उकार, मकार से बना है, जो समस्त विद्याओं का कोष है, जिसका आदि अक्षर अ और अन्त म है, जिस में सब स्वर और व्यन्जन अर्थात् समस्त विद्यायें आजाती हैं जो जागृत, स्वप्न, सुपुप्ति का बोधक है जिसका एक २ अक्षर अर्थात् अकार से विराट, अग्नि, विश्व उकार से हिरण्यगर्भ, वायु, तैजस, मकार से ईश्वर आदित्य प्राज्ञका ज्ञान हो जाता है।

(२) ईश्वर, जीव, प्रकृति तीन पदार्थ अनादि हैं जीव की बीच की दशा है एक ओर आनन्द और दूसरी ओर अन्धकार है, जब जीव ईश्वर की ओर लगता है तब आनन्द जब प्रकृति की ओर झुकता है तब दुःख और अन्धकार में फँसता है, यह समझ कर आनन्द की प्राप्ति का अपना उद्देश्य रखना।

(३) माता, पिता, गुरु, तीन आचार्य्य हैं इन के उपकार को कभी न भूलना प्रकृति की सत् रज, तम तीन अवस्थायें हैं उनको जान कर प्रकाश की ओर झुकना।

(४) वसु, रुद्र, आदित्य तीन प्रकार का ब्रह्मचर्य्य है इस-लिये पिता, परपिता, पितामह की डिगरी प्राप्त करना।

(५) आध्यात्मिक, अधिभौतिक, अधिदैविक तीन ताप हैं इन से बचना।

(६) तीन पदवाली गायत्री को निरन्तर जपना।

(७) प्रणव, व्याहृती गायत्री के अर्थ को भली भांति समझ लेना, इस में बड़ी विशेषता यह है कि परमेश्वर से प्रार्थना में बहुवचन पड़ा हुआ है कि तू सब की बुद्धियों को शुद्ध कर यह नहीं कि केवल अपने लिये ही याचना की हो इस को जान स्वार्थता को छोड़ देना।

(८) ह्रस्व, दीर्घ, प्लुत, उदात्त, अनुदात्त, स्वरित के यथार्थ मर्म को जानकर उच्चारण करना, इस लिये कि स्वरभङ्ग न होजावे।

(९) यह जानकर कि जो दुःख होगया वह बीत चुका जो वर्त्तमान है वह बीत रहा है इनका दूर करना पुरुषार्थ नहीं, अनागत आने वाले दुःख के दूर करने का प्रयत्न करते रहना चाहिये।

(१०) यज्ञोपवीत उरुजंघा तक रहता है जो तीन वर्ण ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य के ही अधिकारी होने का सूचक है इत्यादि बहुत से उपदेश हैं जो गुरुकुल में सार्थक होसकते हैं।

आप के भिक्षा मांगते समय आंसू अवश्य गिरे होंगे, परन्तु आप भीख मंगाये जाने के मर्म ही को नहीं समझीं। बच्चे से भीख इस लिये मंगाई जाती है कि आज तक तो तू अपने माता, पिता का पुत्र कहलाया, आज से संसार का पुत्र बनेगा, आज से तेरे भोजनों का भार पबलिक (सर्वसाधारणों) पर है न तेरे माता पिता पर, जैसा कि-

गुरोकुले न भिक्षेत न जाति कुलबन्धुषु।
अलाभेत्वन्यगेहानाम् पूर्वं २ विवर्जयेत्॥

मनु० अ० २ श्लो० १८४॥

गुरु के कुल में जातिकुल वन्धुओं के यहां भोजन करने की मनाई है यदि अन्यों से न प्राप्त हो तो भी क्रमशः पहिले पहिले को अवश्य छोड़ता जावे अर्थात् जाने पहिचाने सम्बन्धियों को छोड़ कर औरों के यहां भोजन करे। आज कल के बालक यह समझते हैं कि हमें माता पिता ने पढ़ाया है, इस लिये हम पर उनकी सेवा करना उचित है परन्तु गुरुकुल के ब्रह्मचारी सारे संसार को अपना पालन करने वाला समझते थे वह 'मातर्भिक्षां देहि' 'भगिनि भिक्षां देहि' कह कर भीख मांगते थे, वह सारे संसार के साथ माता पिता के समान भलाई करना अपना कर्त्तव्य समझते थे। आपने सुना होगा कि कांगड़ी गुरुकुल के ब्रह्मचारियों ने दक्षिण हैदराबाद में सन् १९०८ ई० में अहिला आने के समय आपस में सभा करके वहां के पुरुषों को कष्ट पहुँचने और धन सम्बन्धी हानि होने का बड़ा शोक प्रकट किया और सहायता करने के विचार से सोच कर सात दिन तक सब ने दाल और घी का खाना वन्दकर उसकी बचत को हैदराबाद भिजवाया, स्वयं कष्ट उठाया, पर इन्सानी हमदर्दी (मानवी सहाय्य) का परिचय दिया, कितना प्रत्यक्ष करके दिखलाया कि—

अयं निजः परोवेति गणना लघु चेतसाम्।
उदार चरितानान्तु वसुधैव कुटुम्बकम् ॥

कि उदारचित्त पुरुष सारे संसार को अपना कुटुम्ब जानते हैं, वह अपना पराया नहीं समझते, मनुष्यमात्र के साथ भलाई करना उचित जानते हैं, वैसाही करके दिखाया, यह एक साधारण उदाहरण है। आज कल उस शिक्षा का अभाव है, यदि प्रथम कीसी शिक्षा रहती तो कोई किसी का

शत्रु ही न होता। वर्त्तमान गुरुकुलों में समयानुसार सब पहिले फेसे नियम तो जारी ही नहीं हो सकते नहीं तो प्रथम तो गृहस्थी मातायें ब्रह्मचारियों के आने का नित्यही पैंडा हेरती थीं और अति प्रेम से पुत्र कहती हुई बड़े आदर से घर लेजाकर जिमाती थीं, उनके दुःख सुख को पूछती जाती थीं, यह समझती थीं कि इस समय हमारे पुत्र भी कहीं और जगह इन्हीं शब्दों को उच्चारण करते हुये माता भिक्षांदेहि भगिनी भिक्षांदेहि कहकर पुकारते होंगे, आपको तो हर्षित होना चाहिये था कि यह बच्चा हमारा आज भीख मांगे लेता है अब इसे भीख मांगना न पड़ेगा, यह नित्य सन्ध्या करते हुये "अदीनास्यामशरदः शतम्" का जाप करेगा, यह गुरु बनकर अन्यों को अपने आधीन करेगा, यह किसी के आधीन होकर भोजन न करेगा, यह दिन में बारहबार अर्थात् छः बार प्रातः छः बार सायं [योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः] का जाप करेगा, फिर भी आपस में किसी बालक से या जीवन में किसी मनुष्य अथवा पशु पक्षी से वैर कर सकेगा, कदापि नहीं। मैं तो आप के जेष्ठ को और जेष्ठानी की कोखको धन्यवाद देती हूं और सराहती हूं कि जिनकी कोख में उस बच्चे ने जन्म लिया जो गुरुकुल पढ़ने को भेजा गया। पूर्व काल में तो सभी क्या राजा क्या प्रजा के बालक गुरुकुल ही में पढ़ते थे, जहां धनाढ्य और निर्धन के साथ समान भाव एक प्रकार वर्त्ताव होने से उन में ईर्षाद्वेष का बीज उत्पन्न होने ही नहीं पाता था, दुखिया के हाल की राजा को सूचना रहती थी, एक रंक का बोल सुनकर राजा सिंहासन छोड़ देता था, यह नहीं था कि उस के फटे मैले वस्त्रों के कारण परे हटादिया जाता हो, उसकी

बात ही न सुनने दीजाती हो, सहपाठी (किलास फ़ेलो) होने से राजा का बालक रंक के लड़के से भाई की भांति प्यार रखता था, सुदामा और श्रीकृष्ण का जीवन चरित्र सूर्य्यवत् प्रकाशित है, सुदामा जी और श्रीकृष्णचन्द्र एक ही गुरुकुल में पढ़े थे, सहपाठी थे। सुदामा एक त्यागी, वैरागी, दरिद्री ब्राह्मण थे, और कृष्णजी द्वारिकाधीश हुये। सुदामा जी की स्त्री उन जैसी संतोषी और त्यागी न थीं, वह धनवानों की भांति निर्वाह करना चाहती थीं, वह जानती थीं कि इनके सहपाठी कृष्णजी बड़े ऐश्वर्यवान् राजाधिराज हैं। उनकी बड़ाई सुनतीं और अपने पति को उनके पास जानेको प्रेरित करती रहती थीं। सुदामाजी टालते रहते, पर वारवार की रगड़ से तो पाषाण भी घिस जाता है। [अति संघर्षण करै जो कोई। प्रगट अनल चन्दन से होइ] अन्त को एक दिन उनके पास जाने को तत्पर होगये। परन्तु मन में हर समय यही विचार रहता था, कि मंगिबो भलो न बाप से जो प्रभु राखे टेक, अदीना स्याम का जाप किया है, असंभव है कि महाराज से जाकर कुछ याचना करूं, परन्तु उनकी स्त्री ने चतुराई से अपनी दीनता श्रीकृष्ण पर विदित होजाने के अर्थ कुछ चावलों की कणकी उनके पल्लू में बांध दी कि इसको रास्ते में खाना और बचरहे उसे जब महाराज कहें कि हमारे लिये कुछ लाये हो, तब उन्हें देदेना।

सुदामाजी वहांसे विदा हो मार्ग व्यतीत कर द्वारकापुरी में पहुंचे, ज्योंही श्रीकृष्णजीके द्वारपर पहुंचकर द्वारपाल से कहला भेजा कि सुदामा ब्राह्मण अमुक स्थान से आया हुआ आपके दर्शनों का अभिलाषी है, उस समय श्रीमहाराजजी

रनवास में बैठे हुये थे, सुनते ही नंगे पांव दौड़े आये, सुदामाजी को देख झट चिपट गये और छाती से लगाकर अति प्यार किया, वहांपर जहां और बातें पूछीं वहां एक प्रश्न यह भी किया जिस से गुरुकुल शिक्षा की महानता प्रकट होती है, श्रीकृष्णकी प्रतिष्ठा करनेवाले आर्य और धर्मसमाजियों ! गुरुकुल कीशिक्षा के विरुद्ध वचन निकालने में अब आपको पाप होगा, देखो स्वयं महाराज मुक्त कण्ठ से पूछ रहे हैं,, जैसा कि भागवत में लिखा है—

कच्चिद्गुरुकुले वासं ब्रह्मन् स्मरसि नौ यतः।
द्विजो विज्ञाय विज्ञेयं तमसः परमश्नुते ॥

हे ब्राह्मण सुदामा ! क्या तुम्हें याद है कि हमने और तुमने उस गुरुकुल में निवास करके पढ़ा था जहां द्विज ज्ञान को प्राप्त करके इस अन्ध- काररूपी संसार से पार होजाते हैं या तमसः परमश्नुते या तमसे परे परमात्मा को प्राप्त होते हैं।

पश्चात् साथ लेजाकर अपने रनवास में बिठलाया, उससमय मित्र पर पूर्ण विश्वास था। हा शोक ! आज वह समय आगया है कि अभागे भाईपर भाई को विश्वास नहीं, बेटे को बापपर, पुरुष पर स्त्री को, स्त्री पर पुरुष को विश्वास नहीं। वहां पर श्रीकृष्ण ने कहा कि भाभी जीने हमारे लिये कुछ दिया है, वह उस पोटला को छिपाने लगे, तब महाराज ने हाथ बढ़ाकर छीनली, और खाने लगे और कि ऐसा स्वादिष्ट प्रिय भोजन आजतक मैंने कभी नहीं किया। तब रानी आदिने कहा कि महाराजको ऐसा भोजन स्वयं ही

अकेले खाना उचित नहीं, हमको भी देकर पाना चाहिये, तब आपने उत्तर दिया कि यह तो किसी को देही नहीं सकता, यह बड़े प्रेम का भेजा हुआ प्राप्त हुआ है। अन्तरिक भाव यह भी था कि अन्यों को यह विदित ही न होने पावे कि यह चावलों की कणकी है मुझे तो आनन्द प्रेम का आरहा है और इनमें वह प्रेम विद्यमान नहीं, कहीं हँसी न उड़ावें। फिर महाराज ने पाद्यअर्घ और आचमनीय जल देकर स्नान कराकर कपड़े बदलाये और बहुतसमय पर्य्यन्त रखकर नित नये भोजन कराये, बड़ी रुचि और प्रेमका वर्त्ताव किया। जब सुदामा जी जाने को तत्पर होते तब रोकते। मन्त्री को गुप्त आज्ञा दी कि पण्डितजी के निवासस्थान में बड़े ऊँचे महिल बनवाकर सर्व पदार्थ एकात्रित कराके हमें सूचना दो। अज्ञानुसार ऊंचे मन्दिर बन गये और आवश्यक पदार्थों का प्रबन्ध होगया, तब उनको जाने की आज्ञादी, परन्तु चलते समय न सुदामाजी ने मांगा न कृष्ण जीने ही दिया। जैसे गये थे वैसे ही लौटे, मार्ग में यह विचार मन में आया होगा कि पण्डितानीने जिस अभिप्राय से भेजा था, उनकी आशा पूर्ण न हुई, अति शुभ हुआ कि धर्म ने मुझे मांगने की आज्ञा न दी जिसके लिये ईश्वरका बड़ा धन्यवाद है।

कृतार्थ हूं मैं ईश्वर तेरी दयापै इस दम।
दाया से धर्म मेरा तूही बचा रहा है॥

इस प्रकार कोटानिकोटि धन्यवाद देते जब अपने स्थानपर पहुंचे, तब झोपड़ी का पता न लगा, वहांपर कुछ और ही विचित्र रचना पाई, तब सोचा कि यह तो वही

मसल हुई कि "चौबे छब्बे होनेगये पर दुबे ही रह गये" मेरी झुपड़िया भी गई, तब उनकी स्त्रीने जो उन के पधारने का पैड़ा हेरती थी, आकर पैर छूकर नमस्ते करके बतलाया कि यह आपके ही मन्दिर हैं, जहां आप गये थे उन्होंने ही बनवा दिये और सारा अवश्यकीय प्रबन्ध करादिया, ऐसा एक उदाहरण नहीं है, ब्रह्मचारियों के अर्थ राजा रास्ता छोड़ देते थे, उनकी आज्ञा के अभिलाषी रहते थे, राजा रघु एक ब्रह्मचारी से जो उनके यहांपहुंचा था पूछते हैं—

तवार्हतो नाभिगमेनतृप्तं मनोनियोगक्रिययोत्सुकं मे । अप्याज्ञया शासितुरात्मना वा प्राप्तोसि सम्भावयितुं वनान्माम् ॥

अर्थात् आपके दर्शनों से मेरा मन नहीं भरा, आप मेरे करने योग्य कोई आज्ञा कीजिये, आप गुरुकी आज्ञा से मुझे कृतार्थ करने आये वा आप ही चले आये, जरमन जो शर्मण से अपभ्रंश होगया है जहां कि संस्कृत की पुस्तकों का सूचीपत्र पचास ५०) मुद्रा से अधिक को आता है वहां का राजा विद्यार्थियों को प्रणाम करता था, उनके अर्थ मार्ग छोड़ देता था, इस विचार से कि जो पढ़ चुके पता लग गया, जो होनेवाले थे सो हो गये, इनमें पता नहीं है कि न जाने कौन मार्टनलूथर बन जावै, कौन ईसा हो जावे । देखो राजा मुंज, भोज के चाचा ने गुरुकुल में जाकर परीक्षा लेते समय भोज को अति योग्य पाया, जोकि भोज ही सिंहासन का अधिकारी था, सोचता है कि यह शीघ्र सिंहासन पर बैठेगा और मुझे सिंहासन छोड़ना पड़ेगा, इस लिये लोभवश होकर भोज के

वध करने की आज्ञा देकर उसे जल्लाद (वधिक) के हवाले कर दिया। भोज निरपराधी था, अपनी मृत्यु के कारण जान गया। और एक ठीकरी पर एक श्लोक बना,लिख दिया कि यह तुम राजा मुंज को दे देना और मुझे प्रसन्नता पूर्वक उनकी आज्ञा पालन करते हुये यमपुर पहुँचा दो। उस लेख ने उस पर इतना प्रभाव डाला कि उसने भोज को जीवित छोड़ दिया और किसी मृतक मृग की आंखें निकाल कर राजा मुंज के सामने रखदीं और वह श्लोक भी भेंट कर दिया जिसको पढ़कर राजा कटार निकाल कर आत्मघात पर उद्यत हो गया और अति व्याकुल होकर रो रो कर कहा कि या तो भोज को लाया जावे नहीं तो निस्सन्देह अपने कटार मारकर मुञ्ज भी उसी के पास पहुंचेगा। अन्त को भोज को ढूंढ़ कर लाया गया और मुंज सारा राज पाट उसे सौंप आप वनी वन तप करने को वन चला गया। वह श्लोक यह था—

मान्धाता समहीपतिः क्षितितलेऽलंकार-भूतो गतः। सेतुर्येन महोदधौ विरचितः क्वासौ दशस्यान्तकः॥ अन्ये चापि युधिष्ठिरप्रभृतयो यावन्त एवा भवन्। नैकेनापि समंगता वसुमती मुञ्ज ! त्वया यास्यति॥

सत्युग में मान्धाता बड़े प्रतापी हुये, परन्तु वे नहीं रहे। द्वापर में रावण जो कहता था कि मैंने मौत को चारपाई से बांध लिया, उसका चिन्ह मिट गया। त्रेता के अन्त पर सत्यवादी प्रतापी युधिष्ठिर का वा उसके राज्य का अब

पता नहीं है, परन्तु ज्ञात होता है कि यह तो कोई पृथ्वी को साथ नहीं ले गये, परन्तु राजा मुंज अवश्य ले जावेगा तब तो मुझ जैसे निरपराधी को मारने की आज्ञा दी है। भोजने गुरुकुल में यूनीवर्सल ब्रादरहुड (समान भ्रातृभाव) को वर्त्ता था, इस लिये वह अपनी ही जाति पर मोहित न था, उसने भले प्रकार जाना था कि किसी ज्ञानेन्द्रिय के न रहने से अन्य ज्ञानेन्द्रियोंकी हानि नहीं,परन्तु कर्मेन्द्रियोंकी हानिसे ज्ञानेन्द्रियों और ज्ञानेन्द्रियों की हानि से कर्मेन्द्रियों को हानि पहुंचती है। यदि क्षत्री के भलाई न करे तो कोई हानि नहीं, काम चला जा सकता है, पर अन्य से कार्य बन्द हो जाता है। जैसे कुम्हार, लुहार, बढ़ई, अपनी बनाई वस्तुयें न दें तो क्षत्री ब्राह्मण का काम नहीं चल सकता और उनके अनुचित सताये जाने पर यदि क्षत्री आदि उनकी रक्षा न करें और सहायता न दें तो उनका निर्वाह नहीं हो सकता। अपने कर्त्तव्य का ज्ञान किसी को बिना विद्या के नहीं हो सकता और यजुर्वेद अध्याय २६ मन्त्र २ 'यथेमां वाचं०' के अनुसार मनुष्यमात्र विद्या का अधिकारी है जानकर यह आज्ञा दी थी कि—

विप्रोपि यो भवेन्मूर्खो सतिष्ठतु पुराद्वहिः।
कुम्भकारोपि यो विद्वान् सतिष्ठतु पुरे मम॥

अर्थात् यदि विप्र बेपढ़ा है तो गांव से बाहिर चला जावे और यदि कुम्हार पढ़ा हो तो वह रहे। जिसका इतना प्रभाव था कि एकबार राजा भोजने एक लकड़हारे को बड़ा बोझ शिर पर धरे देखकर कहा था, "भारं वहसि दुर्बुद्धे तव स्कन्धौ न बाधति" कि तेरे शिर पर बहुत बोझ है तेरा कन्धा नहीं

दुखता। वह उत्तर देता है कि "भारं न बाधते राजन् यथा बाधति बाधते" राजाकी अशुद्धि की शुद्धि करता हुआ बताता है कि इतना बोझ पीड़ा नहीं देता, जैसा आप जैसे विद्वान् का आत्मनेपद बाधते के स्थान पर परस्मै पद बाधति बोलना दुःख देता है। ब्रह्मचारी अज जब गुरुकुल से समावर्त्तन कर घर आया है और इन्दुमती के स्वयंवर की सूचना पाकर उसके विवाहने की तैयारी करता है, सेना भी साथ चलती है, यह मना करता है कि यदि मैं अपनी रक्षा नहीं कर सकता तो मेरे विवाह करने पर धिक्कार है। पर कोई नहीं मानता मार्ग में एक स्थान पर घने वन में ठहरते हैं, एक उन्मत्त हाथी वन से निकल कर सेना की ओर दौड़ता है तब सब सेना व्याकुल होकर राजा अजकी ओर दौड़ती है कि बचाओ २। यह विस्मित होकर तीर से गांसी निकाल कर इस विचार से मारता है कि हाथी लौट जावे मर न जावे परन्तु जब जाके देखा जाता है तो हाथी मर गया अज को हाथी के मरजाने का अति क्लेश हुआ (पत्ती पै फूलकी लगा धक्का नसीमका। आंसू के बूंद आंखों से उसकी टपक पड़े॥) सारी सैना को लौटा दिया कि तुम्हारे कारण एक हत्या मुझ से होगई। आप मेरी रक्षाको आये थे तुमसे अपनी भी रक्षा न होसकी अकेले ही जाकर इन्दुमती को विवाह लिया जब अकेला देखकर अन्य स्वयंवर में सम्मिलित हुये राजोंने अजपर धावा कर दिया, तब अकेले ही ने सब को मूर्छित कर एक पाटी पर यह लिखकर लगा दिया कि तुम सबकी जानकी रक्षा किये मैं जाता हूं यदि चाहता तो सबकी जान लेसकता था।

दूर क्यों जाती हो श्रीमहाराजाधिराज मर्य्यादापुरुषोत्तम

के चरित्रों से कौन अज्ञात है। शोक! वह शिक्षा कहां गई। श्रीरामचन्द्रजी यदि गुरुकुल में शिक्षा पाने की दशा में वनके कष्टों को न सहन किये होते तो इतनी शीघ्र राजतिलक के स्थान पर अचानक चौदह वर्ष के वनवास की आज्ञा पिताके मुखारविन्द से नहीं, सुमाता से नहीं, किन्तु भरतकी माता अर्थात् विमाता से सुन हर्षपूर्वक जाने को न तैयार होजाते। जब कैकेयी कहती है कि पिता के दुःख के कारण आप ही हैं तो यह उत्तर देते हैं, कि यदि मैं हूं तो अभी आज्ञा पाकर अग्नि में प्रवेश होने को तत्पर हूं। जब बताया जाता है कि मैंने मांगा है कि भरत को राज मिले तब अति आनन्द से उत्तर देते हैं कि (भरत प्राण प्रिय पावैं राजू। विधि सब विधि मोहिं सम्मुख आजू ॥)

यदि भरतजी ने गुरुकुल में वेदों को न पढ़ा होता—

ईशावास्यमिदꣳ सर्वं यत्किञ्चिद्‌जगत्यामूजगत्।
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मागृधः कस्य स्विद्धनम ॥

य० । अ० ४० । मं० १ ॥

अर्थात् ईश्वर पत्ते २ के भीतर और बाहिर व्यापक होकर परिपूर्ण होरहा है और सबके कर्मानुसार स्त्री पुत्रादि देकर कहा है कि फल भोग करो और किसी के धन लेने की आकांक्षा मत करो, तो इतना बड़ा राज्य मिलने पर तुर्त स्वीकार करलेते, परन्तु वह धर्म मर्यादा को जानते हुए उत्तर देते हैं कि मेरा हक़ (अधिकार) नहीं है कि मैं राज्य करूं, अब मुझे ईश्वर ने नहीं दिया तो मैं कैसे ले सकता हूं। समझाया जाता है कि ईश्वर ने दिये तब ही तो माता ने मांगा

पिता ने दिया, रामचन्द्रजी देगये, हम सब मंत्रि आदि देरहे हैं। परन्तु उत्तर देते हैं कि तुम सब के देने से क्या होसकता है, यदि परमात्मा देते तौ मुझे ज्येष्ठ भाई बनाते। धन्य भाई भरत! तुमने राज्य से ही इनकार नहीं करदिया, वरन् यह समझकर कि रामचन्द्र तपस्वी बनकर वन गये हैं मैं भी उनके लौटने तक तपस्वी ही रहूंगा, वह जब तक जटा जूट रखाये रहेंगे मैं भी तब तक केश छेदन नहीं कराऊंगा, यदि वह अयोध्या में रहते तो तीन हाथ ऊंचे सिंहासन पर बैठते और मैं भूमि पर, अब वह भूमि पर रहते और सोते होंगे मैं तीन हाथ का नीचा गढ़ा खोद कर उससे नीचा ही बैठूंगा। धन्य अधिकार के ध्यान रखनेवाले भरत! उसी का प्रताप है, कि आज हर छोटे बड़े के मुँहपर यह शब्द हैं कि—

जो न होत जगजन्म भरत को।
सकल धर्म्मधुरिधरनि धरत को॥

नहीं तो आज गज़ गज़ भर भूमि के लिये चार २ रुपियों के लिये हाईकोर्ट तक जाते और सर फोड़ते हुये दिखाई पड़ते हैं, इस राज के पीछे भाइयों और चचों को क़तल (वध) किया गया, पिताको क़ैद किया गया, गुरुकुल की शिक्षा थी जिस से लक्ष्मण ने भाई की सेवार्थ अपना सुख उन पर वार दिया। जिस समय लक्ष्मण के शक्ति लगती है तो श्रीरामचन्द्र कहते हैं कि इतना दुःख मुझको अयोध्या के छोड़ने, सीता के हरेजाने पर नहीं हुआ, जितना दुःख आज भाई लक्ष्मण के शक्तिवाण लगने पर हुआ है। माता सुमित्रा को कौन मुँह दिखाऊंगा। सब चीज़ें मिलजाती हैं पर सहोदर भाई नहीं मिलता, जैसा कि—

सुतवित नारि भवन परिवारा।
होहिं जाहिं जग बारहिं बारा॥

अस विचार जिय जागो ताता।
मिलै न जगत् सहोदर भ्राता॥

जैहौं अवध कौन मुँह लाई।
नारिहेत प्रियबन्धु गँवाई॥

आज लक्ष्मणादि ब्रह्मचारियों के बलका कोई विश्वास नहीं करता था, प्रोफ़ेसर राममूर्ति ने ८४ चौरासी मन बोझा के हाथी को अपने ऊपर कलकत्ते में खड़ा कराके कुछ विश्वास दिलाया है। और दोदो मोटर को रोक और ज़ंज़ीर तोड़कर ब्रह्मचर्य्य केवल का परचय दिया है।

यदि सिंह वा सर्प वा कोइ और दुःखदाई जन्तु किसी मनुष्यादि के मृत्यु के कारण हों वा हानि पहुंचावें तो उनपर किसी प्रकार का शोक नहीं हो सकता, क्योंकि उनको भले बुरे के समझने की योग्यता नहीं दी गई है परन्तु यदि मनुष्य, मनुष्य को लोभ वा मोह से हानि पहुंचावे और अनुचित लाभ उठावे तो उसपर शोक के अतिरिक्त और क्या कहा जा सकता है। चाहे जैसा उत्तम प्रस्ताव उठाया जावे कभी विना धर्म के सफलता प्राप्त नहीं होसकती। कुछ काल से कुछ पुरुष स्वदेशी वस्तुओं को लेने लगे तो बहुत से दुकानदारों ने झूठ बताकर धोका दिया और अधिक

मूल्य प्राप्त किया। सुना है कि एक दुकान पर इतना कागज़ देशी विकने लगा कि वह सब की आवश्यकतायें पूरी न करसका, कागज़ के न मिलने के कारण उसने विलायत से कागज़ मँगाया और उस पर (मेड इन इण्डिया) छपवा दिया। सहस्रों की संख्या का कागज़ होने से स्टेशन मास्टर ने पता लगाया तो ज्ञात होगया कि यह वही कपटी पुरुष है जो झूठा विश्वास दिलाकर धर्म्मभ्रष्ट कर कलंकित होरहे हैं यह सच्चा धार्मिकभाव यदि उत्पन्न होगा तो गुरुकुल की शिक्षासे होगा। यह वह शिक्षा होगी जो पोलीटिकल देशी और प्रवन्ध सम्वन्धी झगड़ों से पृथक होगी, जो जगत् गुरु वनने से ही अपनी प्रतिष्ठा समझेंगे जैसे कि पूर्वकाल में 'एतद्देश प्रसूतश्च के' लेखानुसार थे। मुझे हँसी भी आती है और आपकी वेसमझी पर, बुरा न मानिये, शोक भी होता है, क्या तुम समझती हो कि बालक के सुख दुःख की तुम स्वयं ज़िम्मेदार (प्रतिभू) हो, तुम ही उसके सुख के साधन एकत्रित कर सकती हो। सो प्यारी, तुम क्या यदि सारा संसार मिलकर यत्न करे, सम्पूर्ण वैद्य डाक्टर सर पीट कर मरजावें, परन्तु उसकी आज्ञा को कोई टाल नहीं सकता, हम सब फल भोगने में परतन्त्र हैं। रामचन्द्र जी राजतिलक की आशा में रात्रि को सोये थे प्रातः चौदह वर्ष को वनवास भेजदिये गये। शाह फ़िरांस नैपोलियन वोनापार्ट रात्रि को इस अभिलाषा को मन में धारण कर सोया था कि प्रातः महाराजा शाहिंशाह वनूंगा, कौन जानता था कि कल क़ैद करके स्यण्ट हलेना के क़िले में वन्दी वना भेजदिया जावेगा। दूर क्यों जाइये कलकी वात है। हमारे स्वर्गवासी महाराजाधिराज एडवर्ड सप्तम जिन के राज में एक करोड़

८ लाख वर्गमील भूमि थी, जिनके राज्यमें सूर्य्य कभी नहीं छिपता था धन सम्पत्ति का महान् ऐश्वर्य्य था, बड़े २ तत्त्वदर्शी योग्य डाक्टर विद्यमान थे परन्तु वे भी ऐसे सामानों के होते हुये भी रोगग्रस्त होकर फोड़ा निकलने की पीड़ा के कारण अपने राजतिलक की नियत तिथि पर तिलक न कर सके, दो मास के लिये तिथि हटानी पड़ी, तो तुम बेचारी क्या उसकी रक्षा कर सकती हो, इसी साल सन् १९०८ ई० में एक भाई का लड़का ८ वर्ष का गुरुकुल के कुएं में गिरकर निकल आया थोड़ी पिण्डली में चोट लगी और दूसरे भाई की आठ वर्ष की कन्या घर में कुएं में गिरकर बेचारी जान से गई। मौत और जीवन के लिये तो गुरुकुल और घर दोनों एक से ही हैं, उसका रक्षक हर समय उसके साथ है सब दुःख सुख के कोषों की ताली उसी के पास है। यह भी ज्ञात रहे कि संसार की किसी वस्तु में सुख दुःख नहीं है, केवल अपने विचार ही हैं जो कभी सुख का कभी दुःख का रूप धारण किये हुये दिखाई पड़ते हैं। कभी कोई वस्तु प्रिय कभी वह ही वस्तु अप्रिय हो जाती है। भूखे को साधारण भोजन प्रिय लगता है, अघाने को स्वादिष्ट भोजन की ओर भी रुचि नहीं होती। राजा सेना से पृथक होकर साधारण गँवार कृपाण की शरण जाकर जौ की रोटी खाकर उसको धन्य वाद देता है, सेवक ऐश्वर्य्य पाकर अपने सेव्य का प्रणाम स्वीकार नहीं करता। एक कपड़ा धनाढ्य उतार कर फेंक देता है, भृत्य निर्धनी उसे पहिन कर अपनी प्रतिष्ठा समझता है। एक रंक झोपड़ी का रहने वाला जब राव होजाता है तब वह अपनी झोपड़ी में आग लग जानेपर दुःख नहीं पाता, एक राव से जब रंक होजाता है तब वह अपनी वर्त्तमान झोपड़ी

से ही बड़ा प्रेम करता है। यही दशा है कि अभी अपने बच्चे को गोद से अलग करना बुरा समझती हो, जब तुम्हें कभी सच्चा ज्ञान प्राप्त हो जावेगा तब तुम अपने बच्चे को ही नहीं किन्तु अपने सर्वस्व को और आप को उस गुरुकुल पर वार दोगी, तब अपना जन्म सुफल समझोगी। गुणों को जान कर ही चीज़ों से हानि लाभ उठाया जा सकता है। वस्तु का ठीक सेवन सृष्टि को स्वर्ग और विरुद्ध नरक बना देता है। अग्नि जल का प्रत्यक्ष उदाहरण आप के सन्मुख उपस्थित है, उसी आग पानी से रेल तार बनाकर एक ओर कितना लाभ उठा रहे हैं, तुम उस आग से रोटी ही पका सकती और हाथ जला सकती हो। नदियों से नहरें कटा कर लाखों रुपया पैदा कर लिया गया परन्तु तुम उनकी जय ही बोलती रहीं और अपना नाश कर बैठीं, यह तक न सोचीं कि गंगा, यमुना जिनकी तुम जय बोलती हो लड़ाई किस से है, कहोगी किनारों से, जब जय होती है तब अहिला आता है और पास के गांव के गांव डूब जाते हैं वा नहाते हुये प्रति वर्ष कोई न कोई डूबती हो। अब बताओ कि इस जय से तुम्हारी तो क्षय हुई, न जाने तुम्हें (जिससे मेरा प्रयोजन अपनी समस्त भगिनियों से है) अपनी जय का कब ध्यान आवेगा।

यह बात मेरी अपने जी में धारलो कि बालक स्वरूपवान् अच्छा नहीं, धनवान् अच्छा नहीं, यदि अच्छा है तो वह जो शुभ गुण युक्त हो, जो अपना सुधार करसके और औरों को लाभदायक बनासके, धर्म जैसी प्यारी वस्तु को भय और लोभ से तो क्या जान जाने पर भी न त्यागे। पूर्ण भगत्

प्रहलाद आदि का जिन्हों ने असह्य कष्ट सहकर भी धर्म बचाया ध्यान रक्खे और समझ ले कि—

होते सीरत[1] से हैं मरदान दिलावर[2] मुमताज[3]।
वरना सूरत[4] में तो कुछ कम नहीं हैं चील से बाज़॥

ऐसा पुत्र बनाओ जो परोपकारी बन अन्यों के हितार्थ प्राण वारे और समझे कि [सर्वेपामेव शौचानामर्थं शौच परंस्मृतं। योऽर्थे शुचिः स शुचि नहिं मृद्वारी शुचिःशुचिः] पेट पालन सदा पवित्र और परिश्रम की कमाई से करे तब जानूं कि आप की बच्चे से सच्ची प्रीति है, नहीं तो ऐसी प्रीति तो कुत्ती बिल्ली कबूतरी तक को अपने बच्चों से होती है, सम्पूर्ण पशु पक्षियों में पाई जाती है, फिर आप में विशेषता ही क्या रही, न जाने आप का क्या विचार है. पांच सहस्र क्या पांच लक्ष भी व्यय करके यदि आप बच्चे को शुद्धाचारी सत्यवादी धार्मिक न बना सकीं तो करोड़ों की सम्पत्ति को क्षण भर में फूंक देगा, धनकी रक्षा के लिये भी तो बलकी आवश्यकता है, यदि बल नहीं होता तो निर्बल के धनको चोर डाकू धौल मार कर छीन लेते हैं, वह धनको भी कैसे रक्षा कर सकेगा। आप भोली नहीं हैं " लठ की जोय सब की सलहज कहाती है " इस लिये प्यारी, धन दौलत प्रसिद्धता मान प्रतिष्ठादि किसी की इतनी आवश्यकता नहीं है जितनी कि पवित्र शुद्धाचरण की है। मैंने कई बार गुरुकुल फ़र्रुखाबाद में जाकर देखा, अब वहां नब्बे के लगभग ब्रह-

१ स्वभाव। २ वीर। ३ प्रतिष्ठित। ४ रूप।

चारी हैं, अभी यहां आये तीन वर्ष भी पूरे नहीं हुए हैं, मैं गुरुकुल कांगड़ी को भी गई थी वहां तो अब २५० से कुछ अधिक हैं, मैं तो उन ब्रह्मचारियों के तपको देखकर उन के माता पिता को बड़ा भाग्यशाली समझती हूं और मुंह से निकल जाता है कि " धन्य २ इनकी माता को जिनकी कोख लिये अवतार " परमात्मा से प्रार्थना करती हूं कि इन की तपस्या पूर्ण हो और यह देश ही नहीं वरन सर्वदेश जो पापों से नरकधाम बन रहे हैं इनके द्वारा स्वर्गधाम बन जावें और वह भलाई (नेकी) के लिये कठिन सी कठिन विपत्तियों को तृणवत् समझें, उनका यह दृढ़ विचार हो कि—

शब[1] हो हवा हो धूप हो तूफां हो छेड़ छाड़ ।
जंगल[2] के पेड़ कुछ नहीं लाते हैं ध्यान में ॥
संसारकी विपत्तिसे हिलजाय जिसका दिल ।
इन्सान[3] होके कम हैं दरख्तों[4] से शानमें ॥

अभी तो तुम्हारे बच्चे की बहुत थोड़ी आयु है, तुम भले गुरुकुल पर वा वैसे ही जाकर अथवा मेरे साथ चलकर देख आओ तो तुम्हें ज्ञात हो सके कि कैसा प्रबन्ध रक्षादि का वहां है. बच्चों के रक्षक ऐसे गृहस्थी होने चाहिये जिन्हों ने इस विचार को लेकर वानप्रस्थाश्रम में पग रक्खा हो कि गृहस्थाश्रम में हमारा पुरुषार्थ अधिकांश अपनी सन्तान के हितार्थ लगता रहा अब आजसे सम्पूर्ण बालकों को जो गुरुकुल में हैं पुत्रवत् समझूंगा और पुत्रों की भांति उनके

[1] रात । [2] वन । [3] मनुष्य । [4] पेड़ों ।

हित में लगूंगा और जैसी वेदों में आज्ञा है समय पड़ने पर रुग्णादि दशा में शिष्यों की गुदा तक को अपने रोगी पुत्र की भांति शुद्ध करने में ग्लानि न करूंगा। तथापि जैसा प्रवन्ध वहां है मकान पर साधारण पुरुप तो कर ही नहीं सकता. डाक्टर कम्पौण्डर रहते हैं, भोजनों का उत्तम प्रवन्ध है, दो वक्त दूध मिलता है, किसी बात की न्यूनता नहीं, आगे को दिन २ उत्तम ही होते जानेकी सम्भावना है। आप सूर्य्य निकलें तक सोती रहती होंगी, क्या जाने कि प्रातः सवेरे उठने के क्या लाभ हैं।

वायू प्रातकी चलत है, तन मन अनुकूल।
उठकर जौ उस समय में, सेवे ताकी मूल॥
ताके मुख की छवि बढ़े, अंगहोय बलवान।
मुखकी सुख कलिका खिले, बुद्धि गहे अतिज्ञान॥

ग्रीष्म में चार बजे शरद में ५ बजे, ब्रह्मचरी उसी भांति उठाये जाते हैं, जैसे रामचन्द्र को विश्वामित्र उठाते थे।

कौशल्या सुप्रजा राम पूर्वा सन्ध्या प्रवर्त्तते।
उत्तिष्ठ नरशार्दूल कर्त्तव्यं दैवमाह्निकम्॥

कि हे कौशल्या के पुत्र रामचन्द्र नरों में सिंह के समान! पूर्व सन्ध्या का समय निकट हुआ उठकर देवयज्ञ और नित्यकर्म करो, वे ब्रह्मचारी भी उसी प्रकार उठते हैं जैसे कि श्रीरमचन्द्र उठते थे—

तस्यर्षेः परमोदारं वचः श्रुत्वा नरोत्तमौ।
स्नात्वा कृतोदकौ वीरौ जपेकं परमं जपम्॥

विश्वामित्र के वचन सुन राम लक्ष्मण उठकर स्नानादि से निवृत्त हो कर परम जप अर्थात् गायत्री का जप करते हैं, उसी प्रकार गुरुकुल के बच्चे उठकर प्रातरग्निम ० आदि वेदमन्त्रों से स्तुति प्रार्थना करके शौचादि दन्त धावन स्नान संध्या गायत्री हवनादि कर पठन-पाठन में लगते हैं, उस दृश्य को देखकर मुर्झाया हुआ मन भी तो कली की भांति खिल जाता है और ऋषियों का समय स्मरण हो आता है। बहिन मत समझो कि यह मेरा पुत्र है वरन् यह समझ लो कि यह परमात्मा की दी हुई एक धरोहर है, इसकी भलाई के लिये हमारा और तुम्हारा और सब सम्बन्धियों का कर्त्तव्य है। मेरी सम्मति में तुम इस से अधिक और कोई भलाई सन्तान के साथ नहीं कर सकती कि उसको गुरुकुलों में शिक्षा दिला सको। बुद्ध की अन्तिम यही शिक्षा थी कि हम तो मनुष्य जाति की सेवा को ही निर्वाण (मोक्ष) समझते हैं, यदि नरक में उत्पन्न होकर अन्यों के लिये लाभदायक बन सकूं तो इससे अधिक मेरा सौभाग्य और क्या होसकता है। यदि आप के पुत्र का भी ऐसा विचार हो गया कि मेरा मुख्य कर्म संसार की सेवा करना है, जिसके लिये माला गुदड़ी के धारण करने और भेष बनाने की आवश्यकता नहीं, तो निश्चय जानो कि तुम्हारा भी जन्मसुफल हो जावेगा। परोपकारी धर्मात्मा पुरुष गुरुकुल की सेवा कररहे हैं "माली सींचे केवड़ा ऋतु आये फल होय" जिन साधारण और विशेष पुरुषों ने गुरुकुल कि सेवा के अर्थ अपना बहुत कुछ त्यागन किया है, यथार्थ में

उन्हों ने ही गुरुकुल की महिमा का अनुभव किया है। आप के एक पुत्र के जाने न जाने से गुरुकुल का कुछ बड़ा लाभ नहीं है वहां तो अब उद्यान पुष्पित वा वाटिका लगी है, शतशः कोकिल और फीरू आदि पखेरू आप ही पहुंच कर अपने मधुर और सुरीले शब्द सुनावेंगे और भंवरे गुंजारेंगे अर्थात् अपनी प्यारी से प्यारी वस्तु धन सम्पत्ति को उस पर वारेंगे। परन्तु तुम्हारे जीवन का पुरुषार्थ और तुम्हारे पुत्र के जीवन की सफलता इसी में है कि बच्चे को गुरुकुल की शिक्षा दिलाओ, चाहे फ़र्रुखावाद में चाहे काङ्गड़ी में, मुझे आप के पति का ऐसा पवित्र विचार सुनकर अति हर्ष हुआ है। मैं परमात्मा से प्रार्थना करती हूं कि आप के पति का दृढ़ विचार हो और आपकी बुद्धि पवित्र हो। स्मरण रहे कि प्रथम जो चेले बनते हैं वह ही समय पाकर गुरु बनते हैं, पहिले स्टूडएट बन कर ही मास्टर बनते हैं। मेमों के भी पुत्र हैं वे भी माता कहलाती हैं, उन्हों ने भी नौ महीने पेट में रक्खा है, परन्तु वे ज़रा २ सी आयु में विलायत पढ़ने भेज देती हैं, वह लौट कर कोई जज कोई कलक्टर कोई कमिश्नर बनता है। तुम्हारे यहां की मातायें जो गोद से अलग करना ही नहीं जानतीं उनके बच्चे भीख मांगते वा दश २ रुपयों की नौकरी को मारे २ फिरते हैं आपका बच्चे से साच्चा प्रेम बढ़े। मेरे लेख में यदि कठोरता जान पड़े तो मेरा अपराध क्षमा कीजिये। मैंने स्वतन्त्रता से अपनी सम्मति प्रकट करदी, आप अन्यत्र भी विचार कीजिये, मेरी औषधि कड़वी अवश्य है, पर पान करने से लाभदायक होगी। जबलाभ उठाओगी और वहां प्रवेश कराकर दो वर्ष पश्चात् उसकी शरीरिक दशा और बुद्धि का चमत्कार देखोगी तब मुझे

स्मरण करोगी और मेरी बात का मान करोगी, इतना लिखना अधिक है, आगे नमस्ते। बच्चे को मेरी ओर से प्यार करना और तेजस्वी होने का आशीर्वाद देना, यदि आप की समझ में आजावे तो गुरुकुल के लाभ बच्चे को समझाती रहना, जिससे उसका प्रेम गुरुकुल से बढ़जावे और जाते समय आपका बिछुड़ना उसपर भार न हो।

१४-पत्र चेलीकी ओरसे गुरुमाता को

परमपूज्य ब्रह्ममूर्ति सकल गुणनिधान धर्मोपदेष्टा

गुरुमाताजी, नमस्ते।

आज मुझे आपकी सेवा से पृथक हुये बहुत दिन बीत चुके, गृहस्थी बने भी अधिक समय होगया, आप बड़ों की दया से दो फल भी प्राप्त हुये एक तीन सालकी कन्या और एक आठ साल का आपका सेवक पुत्र है, जो साधारण भाषा भली भांति लिख पढ़ लेता है। पंडित जीवाराम की बनी हुई पहिली दूसरी पुस्तक पढ़ादी गई है और छै अध्याय अष्टाध्यायी के भी कण्ठ होचुके हैं, अब मेरे माननीय उसके पिता ने यज्ञोपवीत की तिथि असौजसुदी दशमी नियत की है, वह मेरी सम्मति से नियमानुसार यज्ञोपवीत कराकर गुरुकुल भेजना चाहते हैं। मैं बालक को गुरुकुल की पढ़ाई के लाभ और रहन, सहन के विषय में समझाती रहती हूं, मेले पर भी लेजाकर उसको ब्रह्मचारियों के रहने का स्थान दिखा लाई, अपना और पिता का प्रेम उसके मनसे हटाती और गुरुकुल का प्रेम बढ़ाती रहती हूं। यज्ञोपवीत में उसके पिता ने अपनी शक्त्यनुसार व्यय करने और योग्य पण्डितों के

बुलाने का प्रबन्ध कर लिया है, उनके गुरुजी भी आवेंगे। मैं अपने को बड़ाही भाग्यशालिनी समझूंगी यदि आप भी ऐसे समय पर पधारेंगी और मुझे कृतार्थ करेंगी। आप निश्चय जानिये कि यह आपही की शिक्षा का फल है कि मुझे अपने अकेले प्रिय पुत्र को गुरुकुल भेजते हुये किञ्चित् भी दुःख नहीं होता। मेरा विचार है कि माता का सच्चा प्रेम पुत्रों से यही है कि उसको सच्ची शिक्षा से शिक्षित करदें और उसको शुद्ध और पवित्र बनादें। ऊंची शिक्षा सब चाहते हैं, परन्तु मैं सदाचार को ऊंची शिक्षा से बढ़िया और बहुमूल्य भूषण समझती हूँ। आज स्वामी जी महाराज को जो यह महान् पदवी महर्षि की प्राप्त हुई है, यह केवल विद्या का ही प्रताप नहीं है, वरन् उसका मुख्य कारण उनका सदाचार और देश-भक्ति है, नहीं तो आज उनके पीछे बहुत से संन्यासी कैसे कलंकित हुए और हो रहे हैं। संसार जानता है कि बाबा नानक की शिक्षा अति परमित थी, परन्तु जो पद उन्होंने प्राप्त किया वह अभीतक बड़े २ विद्वानों को भी नहीं मिलपाया। यह सब उनके आचरणों की पवित्रता का कारण था। मनुष्य की जेब (खलीती) में चाहे कच्ची कौड़ी भी न हो तो कुछ हानि नहीं, यदि छाल और पत्तियों से निर्व्वाह करना पड़े तो कुछ परवाह नहीं, परन्तु आचरण की चादर पर धब्बा न आने देना चाहिये। आज अमृत के ढूंढने में दुनियां मारी २ और भटकती फिरती है, पर उत्तम स उत्तम अमृत यही सदाचार है। हा, आज वास्तविक पारस पत्थर का मान नहीं किया जाता जो परमात्मा ने इसे अति अनुग्रह से दान दिया है, जिसको अलंकार से इस प्रकार वर्णन किया है कि एक गहन वन से मिली हुई बस्ती के निकट रहता

हुआ भड़भूजा निर्धनता से पीड़ित हुआ बड़ा व्याकुल भटक रहा था, एक दयालु संन्यासी का जिसके पास पारसपथरी थी उस ओर आगमन होगया उसने उसकी कुदशा देख सब से बड़े धर्म (न च धर्मो दया परः) का ध्यान करके वह पारसपथरी उसी भड़भूंजे को छः मास के लिये देदी और बतला दिया कि जितना लोहा सोना बनाना हो, इस नियत समय में बना लेना। समय बीतने पर फिर यह पथरी पलभर भी न रह सकेगी। वह भड़भूंजा बुद्धि का अंधा उस को लेकर पेठ (बाज़ार) गया लोहे का भाव पूछा ज्ञात हुआ कि कुछ मँहगा होरहा है, विचार किया कि सस्ता होने दो तब लेकर सोना बनालूंगा। एक मास के पश्चात् फिर गया और भी मँहगा ज्ञात हुआ और लौट आया। ऐसे ही कई बार गया आया, पर उसने लोहा मोल न लेपाया, न सोना बना पाया। छै मास की अवधि बीत गई, उसने घरकी कड़ी तवे हँसिये को भी सोना न बना पाया। इतने में संन्यासी आ पहुंचा और अपनी दी हुई पथरी उससे लेली, उसने फिर बहुतेरा चाहा, गिड़गिड़ाया, परन्तु उसने पागल बताया और छीनली। यह दृष्टान्त है, दृष्टान्त इसका यह है कि यह अनेक योनियों अर्थात् तिरासीलाख निन्यानवे हज़ार नौसौ निन्यानवे योनियों में चक्कर लगाता हुआ भड़भूंजे की नाई विकल फिर रहा था दयालु परमात्मारूपी संन्यासी को उस पर दया आई और मनुष्य शरीररूपी पारसपथरी उसकी आयु की अवधि नियत करके दान दी कि तू स्वतंन्त्रः कर्त्ता) कर्म करने में स्वतन्त्र किया गया है धर्म, कर्म रूपी सोना चाहे जितना इकट्ठा करले। जब यह अवधि बीत जावेगी फिर किसी प्रकार एक मिनट का जीवन

चाहे और धर्म संचय करना चाहे तो नहीं मिल सकेगा। जिससे पता लगता है कि धर्म के लिये सदाचार और समय ही आवश्यक वस्तु की चिन्ता नहीं होती और यूँ हीं अमूल्य समय खोदिया जाता है एक पैसा कोई मांगे तो उसका देना कुछ न कुछ भारू होता है, परन्तु यह सांसारिक और पारलौकिक सुखों की जड़ कि जिसका एक २ पल अनमोल है उस के निष्प्रयोजन गँवाने और लुटाने में कुछ ध्यान नहीं होता। सदाचारी पुरुषों की बातों का प्रभाव पड़ता है नहीं तो कहने वालों का कथन भी व्यर्थ चला जाता है, बतलाया भी है—

आत्मानं तु यथा कुर्यात् तथा अन्यस्य शास्तिवै। स्वदान्ते दमयेदन्यान् आत्मा हि किल दुर्दमः॥

आत्मा को ऐसा बना लेना चाहिए जैसा औरों को बनने का उपदेश करता है परन्तु यह कठिन और टेढ़ी खीर है।

पर उपदेश कुशल बहुतेरे।
जे आचैरं ते नर न घनेरे॥

कथनी मीठी खांड़सी, और करनी विषकी लोय
कथनी छोड़ करनी करे, तो विषसे अमृत होय॥

यदि आपको वैसा बनां लिया तो अन्यों को वैसा बना

लेना कुछ भी कठिन नहीं। मैं परमात्मा से प्रार्थना करती हूं कि मेरा पुत्र दो नौका पर पैर धरकर चलनेवाला न बने, उसका बाह्य और आन्तर्य एक हो, उसके वचन और कर्म में भेद न हो। इतने पापी मेरे विचार में ज्वारी, शराबी नहीं जितने वे हैं जो भीतर से बगुलारूप और बाहिर से हंस स्वरूप हैं, जिनके मनमें कुछ है पर वाणी से कुछ कहते हैं जिनके भावों का पता नहीं चलता, जिनका चिमगादड़ जैसा जीवन है जो पंखेरुओं में जाकर पर दिखा देते हैं कि हम तुम में हैं और पशुओं में जाकर दांत दिखा देते हैं कि हम तुम्हारे सहायक हैं। चाहे से क्या होता है मेरी इच्छा तो यह है कि मेरा पुत्र यथार्थ सत्यवादी ब्रह्मचारी वचन कर्म समान रखनेवाला बने जो परमात्मा की दया से कुछ दूर नहीं इस लिये आप से प्रार्थना है कि आप कुछ प्रथम से पधारें आपके पधारने का यह फल होगा, बच्चा बड़ा दृढ़ हो जावेगा, आपकी वाणी फलवती है मुझे निश्चय है कि आप मेरे लेख से सहमत होंगी। माई जी! मैंने गुरुकुल में जाकर जो देखा तो बच्चे सब प्रसन्न आरोग्य पाये, उनके मुखड़े चमकते और रोशन दिखाई दिये। हां एक दो नाममात्र को ज्वर से पीड़ित अवश्य थे सो क्या घर पर नहीं होजाते हैं वहां पर पढ़ने लिखने सन्ध्या हवनादि के अतिरिक्त और कोई काम ही उन्हें करना नहीं पड़ता, इस कारण पढ़ाई भी अधिक होती है तीन वर्ष में अष्टाध्यायी अर्थ उदाहरण सहित समाप्त होजाती है जिसके वास्ते ही काशी में वर्षें बीत जाती थीं, यह सब समझती हुई भी जब उस समय का ध्यान आजाता है कि वह बच्चा लँगोटी पहिन, मूंजी बन्धनकर, बसन्ती वस्त्र पहिन कर जब प्रथम मुझसे यह

कहेगा कि "माता भिक्षां देहि" मैं उस समय कहीं मातृ प्रेम में डूबकर रोने न लग पड़ूं जिसका बच्चे पर बुरा प्रभाव पड़े वैसे तो मैं किसी समय अपने मनको थोड़ा नहीं करती न बालक पर अपने प्यार और प्रेमका प्रभाव पड़ने देती हूं, क्योंकि मैं जानती हूं कि बालक का मन (फ़ोनोग्राफ़) का बाजा है जैसा माता उस में भर देती है वह ही बजा करता है आप आकर देखेंगी कि वह गुरुकुल जानेकी बड़ी खुशी मना रहा है, कभी २ मैं उसको अकेले तख्त पर सुला देती हूँ कि बच्चा तख्तपर तुम्हें वहा सोना पड़ेगा प्रातः पूछती हूं कि कुछ कष्ट तो नहीं हुआ और क्यों होता तुम्हारा शरीर पुष्ट होता है, वह भी कहता है कि कुछ नहीं। सच भी है कि सोजाने पर सुपुप्ति दशा में न कंकणों की सुधि रहती है न मखमली बिछौनों की। कभी नंगे पांव जाड़े गर्मी, शीत और धूप में फिराती हूं कि देखें कौन वीर बहादुर है जो धूप में नग्न पांव घूम आवे, वह भी बढ़ावे में आकर खूब घूमता है, मैं पूछती हूं कि पैर तो नहीं जलगये वा ठठुर तो नहीं गये, वह कहता है कि नहीं। फिर मैं प्यार से उठा लेती हूं छतरी मांगता है मैं कह देती हूं कि तुम ब्रह्मचारी हो ब्रह्मचारी छतरी नहीं लगाते। मिर्च, खटाई अभी से खाने को नहीं देती और यह दोनों तो बच्चे के पिता भी नहीं खाते, इस लिये कभी पड़ती ही नहीं, यदि आप आजावेंगी तो आप मुझे भी धीरज बँधादेंगी और बालक में भी एक अनोखी क्रूक फूंक देंगी। आपका प्रथम से ही अनुभव बढ़ा हुआ था अब तो ठिकाना क्या होगा, आप अवश्य पधारिये और उधर से भी कृतार्थ कीजिये। मैं बार २ आप को इस लिये बल देकर लिख रही हूं कि परमात्मा ने स्वा-

भाविक माता के हृदय में बच्चे का प्रेम उत्पन्न कर दिया है, अलग होने पर उसका उबल आना सम्भव है, मैं सँभाल बहुत रही हूँ और सँभालूंगी भी। ईश्वर सहायता करे, अधिक नमस्ते।

१५–उत्तर गुरुमाता का चेली को।

धर्ममूर्ति बेटीजी! नमस्ते।

आपका पत्र प्राप्त हुआ, पढ़कर आप के भावों को जान कर जो प्रसन्नता हुई वह लिखने में नहीं आसकती, परमात्मा आप जैसी पवित्र पवित्र विचार वाली स्त्रियों को सर्वसुखों से भरपूर करे। मातायें आप जैसी अवश्य लक्ष्मी का रूप जैसी अवश्य लक्ष्मी का रूप और देवी का स्वरूप हैं। सन्तान का उत्पन्न कर लेना ही स्त्री, पुरुषों का कर्त्तव्य कार्य्य न था, वरन् उनको मनुष्य बनादेना उनका फ़र्ज़ होता था। राजा होता है बल और धनसे, पर मनुष्य, मनुष्य बन सकता है संस्कार से, उन शुभसंस्कारों से संस्कृत करना माता पिता का मुख्य काम है। इस समय ऐसे विचार कहां सुने जाते हैं। आज तो सन्तान बहुतायत से उत्पन्न करली जाती है पर पालन का कुछ भी ध्यान नहीं, जिसका प्रतिफल यह है कि कोई धर्म भ्रष्ट हो नाना पाप कमाता है, कोई धर्म छोड़ नाना प्रपञ्च रचनेवाले झूठे मतों में जा सम्मिलित होता है। सच तो यह है कि पालन और शिक्षा एक बालक की भी कठिन है। तुम्हारे लिखने के अनुसार, बच्चे का हृदय पिघली हुई धातुसा ही होता है, जो बचपन में मुहर छाप लगजाती है वह अमिट होजाती है। जो मातायें

शिक्षित नहीं हैं, उनकी सन्तानों का शुभलक्षणयुक्त बनाना महान् परिश्रम से होसकता है, जैसा कि कहा है—

यावन्न साक्षरा माता तावत्तद्बालबालिकाः।
निरक्षराहि तिष्ठन्ति विनोपाय सहस्रकैः॥

और जो मातायें शिक्षित हैं वह सैकड़ों आचार्य्यों और उपाध्यायों का काम बालक के लिये देती हैं, इस में तनिक संदेह नहीं।

उपाध्यायात् दशाचार्य आचार्याणां शतंपिता।
सहस्रंतु पितॄन् माता गौरवेणातिरिच्यते॥

मनु० अ० २ श्लो० १४५॥

दश उपाध्यायों के बराबर आचार्य्य और सौ आचार्य्यों के बराबर पिता और सहस्र पिताओं के बराबर माता बालक को शिक्षा देसकती है।

तुम्हारा एक ही पुत्र परमात्मा ने दया की तो कुल का प्रकाशक ही नहीं वरन् जगत् में प्रकाश फैलाने वाला होगा, मैं अब दुर्बल और कृश अधिक होगई हूं, यदि स्वास्थ ठीक रहा तो अवश्य उपस्थित हूंगी। तुम्हें अपने यज्ञोपवीत के समय का स्मरण होगा, जो शिक्षायें तुम्हें बताई गई थीं और उनका ध्यान पढ़ते समय दिलाती रहती थी, उसका ही यह प्रभाव है। सत्य तो यह है कि यह यज्ञोपवीत संस्कार स्वर्ग की नसेनी और परमात्मा तक पहुंचाने का साधन है

इसके भीतर वड़े गूढ़ रहस्य भरे हैं, इसीका नाम प्रतिज्ञासूत्र, इसीका नाम व्रतवन्ध है अर्थात् आज से वच्चा प्रतिज्ञाओं और व्रतों में बांधा जाता है और दूसरे जन्म में पग रखता है।

अग्ने व्रतपते व्रतं चारिष्यामि तत्ते प्रब्रवीमि तच्छकेयम् तन्मेराध्यताम्। ते नध्यास-मिदमहमनृतात्सत्य मुपैमि स्वाहा। इदमग्नये इदन्नमम्।

संस्कार विधि वेदारम्भ प्र०।

आदि मन्त्र बुलवाकर प्रतिज्ञा कराई जाती है कि हम दूसरों के उपकारार्थ जनेऊ पहिनते हैं और व्रत करते हैं। स्मरण रहे कि संसार का उपकार कौन कर सकता है वह वह ही जिस ने व्रत धारण किया हो। व्रत का ध्यान ब्रह्मचारियों के मस्तिक में ही आसकता है, व्यभिचारियों के नहीं। पहिला जन्म माता पिता से हुआ था, अव दूसरा गुरु पिता और विद्या माता से होता है। आज इस यज्ञोपवीत की भी दुर्दशा हो रही है झूठी रीति उस में दर्शाई जाती है अर्थात् वालक कहीं जाने वाला नहीं पर कहलाया जाता है कि काशी को जाता हूं, दूसरा कह देता है कि यहां ही पढ़ा देंगे। जो भिक्षादि मार्गव्यय और गुरुकुल सहायतार्थ आती है वह घर रखली जाती है। आज प्रतिज्ञा कराई जाती है, ब्रह्मचारी वनाया जाता है वह उसी दिन तोड़ दी जाती है और समावर्त्तन भी हो जाता है। प्रायः तो यज्ञोपवीत विवाह के दो एक दिन प्रथम ही कराया जाता है, फिर ब्रह्मचर्य्य कैसा।

परन्तु प्रथम तो विना गुरुकुल गये कोई बच्चा द्विज कहला ही नहीं सकता था, वह विद्यास्नातक, व्रतस्नातक विद्याव्रत स्नातक ब्रह्मचारी बनता था। आज तो अब गुरुकुल स्थापित हुये हैं, कहीं एक भी ऐसे ब्रह्मचारी उपस्थित नहीं, पर युधिष्ठिर के समय में ऐसे दश सहस्र ब्रह्मचारी सोने के पात्रोंमें भोजन करते थे, जैसा कि महाभारत से विदित है—

दशतानि सहस्राणि स्नातकानां महात्मनाम ॥
भुञ्जंते रुक्मपात्रीभिः युधिष्ठिर निवेशने ॥

पहिले प्रत्येक को ब्रह्मचर्य्य व्रत धारण कराया जाता था, बाल्यावस्था के विवाह का नाम न था, अब समझाने पर भी कि जो बच्चा ब्रह्मचारी नहीं रहता वह अपने हाथ से अपनी आयु, तेज, बल, वीर्य्य, प्राज्ञः श्री यश पुण्य और अपनी प्रियवस्तु को खो देता है, जैसा कि—

आयुस्तेजो बलं वीर्य्यं प्राज्ञः श्रीश्च महायशः।
पुण्यञ्चमत् प्रियत्वं च हन्यतेऽब्रह्मचर्य्यया ॥

परन्तु कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ता, इस लिये, वह बराबर रहते थे, अर्जुन से पराजय होने पर राक्षसी ने यही तो कहा था कि—

ब्रह्मचर्य्यः परो धर्मः स चापि नियतस्त्वयि ।
यस्मातूतस्मादहंपार्थो रणेऽस्मिन् विजितस्त्वया

हे अर्जुन, तेरा कुछ ब्रह्मचर्य्य मुझ से अधिक है इस लिये ही तूने रण में मुझे परास्त कर लिया, आज तो वह समय आगया था जैसा कि किसी उर्दू जानने वाले ने कहा है—

अभीजो कलका बालक है ज़माने से है नावाक़िफ़[1]
ज़नोफ़रज़िन्द[2][3]दुखतरखेशोअक़रबा[4]औरसुसरभीहैं
नहीं इंसान के बच्चे यह शाह दूलह के चूहे हैं
यह आगामी नसल[5] है आपकी इसपर नज़र[6] भीहै

बेटी जी, मैं आप को नितान्त आश्चर्य्य जनक बात लिखती हूं कि बहुत सी स्त्रियां जो मूर्खा और गँवार होती हैं शाहदूलह की क़बर पर जाकर उस मिट्टी के चबूतरे से, जिससे कोई चाहे जितनी मिट्टी खोद ले जावे वह मना नहीं कर सकता, मिन्नत मांगती हैं कि मेरे पहिला जो पुत्र होगा वह तुम्हारी क़बर पर छोड़ जाऊंगी। यह मिन्नत का हाल उस के गांव में प्रसिद्ध हो जाता है दाई जनाने वाली उत्पन्न होते ही कुछ उस के सर को दबा और कुचल देती है और कुछ माता को गर्भ की दशा में ऐसा ध्यान रहता है कि क़बर का वैसा ही चूहा सा पैदा होगा जैसा वहां देखा था, जिस से वह चूहासा बच्चा रह जाता है। यह न समझिये कि चूहे के बराबर रहता है तात्पर्य्य यह है कि वह बहुत बड़ा जवान नहीं होता। वह माता जाकर उस पर छोड़ आती है जिस को वहां के मुजावर (खादिम, सेवक) पालन करते और अपना दास बनाते और अनुचित सेवा कराते हैं। इन

१ अनजान। २ स्त्री। ३ पुत्र। ४ नातेदार। ५ सन्तान। ६ दृष्टि।

दुष्टा स्त्रियों ने उस मसल (कहावत) को चरितार्थ कर दिया जो यदि स्वामी जी महाराज न जगाते तो इस देश की होनेवाली थी कि (वालिश्तिये) बिलश्तिये पैदा होंगे और कुलसी से बैंगन तोड़ेंगे, हाशोक !

जो उपदेश ब्रह्मचारी को सुनाया जाता है वह गुरुकुल में ही चरितार्थ होगा, बेटीजी ! तुम जो बार २ बल देकर लिख रही हो कि आप आजावेंगी तो मुझे शान्ति होजावेगी सो यह केवल आप की योग्यता और मेरी प्रतिष्ठा बढ़ानी है नहीं तो मैं क्या आप को शान्ति प्रदान करा सकती हूं, हां शान्ति तो आप को शान्तिस्वरूप परमात्माही अवश्य देंगे। आप का बच्चा तो गुरुकुल जाता है जब जी चाहे जाकर देख आ सकती हो. परमात्मा तो महान् कठिन समय में भी शान्ति प्रदान कर रहे हैं। जहां तक होसकेगा मैं अवश्य आऊंगी, मुझे ऐसे महान् यज्ञ में सम्मिलित होने की स्वयं उत्कण्ठा होरही है आप की योग्यता परमात्मा दिनोदिन इसी भांति बढ़ाता रहे और आप के पुत्र को तेजस्वी, वर्चस्वी और दीर्घायु करे। आप दो श्लोक मेरी ओर से बच्चे को भलीभांति स्मरण करा देना और अर्थ समझा देना। यदि मैं आगई तो कुछ और भी बातें उसे बताऊंगी नहीं तो उस के जीवन सुधार के लिये यह अधिक हैं।

वनस्पतेरपक्वानि फलानि प्रचिनोति यः।
सनाप्नोति रसं येभ्यो बीजं चास्य विनश्यति॥
यस्तु पक्व मुपादत्ते काले परिणतं फलम्॥
फलाद्रसं सलभते विजाच्चैव फलं पुनः॥

महाभारत, उद्योग पर्वान्तर्गत प्रजागरपर्व, श्लोक १५, १६॥

अर्थात् जो कच्चे फलों को तोड़ता है उससे रस नहीं मिलता और बीज भी नाश होजाता है जो समय पर तोड़ता है तो फल से रस और रस से बीज प्राप्त होता है, इस दृष्टान्त का दार्ष्टान्त समझा देना।

एक बात सौ बातों की मैं बताये जाती हूं कि गुरुकुल में भी माता के डाले हुए प्रभाव को गुरू आदि की सारी शक्तियां मिलकर भी परिवर्तन नहीं कर सकती और उनका घोर परिश्रम भी निष्फल जासकता है मंदालसा की जीती जागती मिसाल [उदाहरण] विद्यमान है प्रथम के पाचों पुत्र सन्यासी हुये और राजादत्त अपने पति को मनोमलीन देख कर फिर जब छठा पुत्र उत्पन्न किया फिर उसे सारी गुरुकुल की शक्ति भी मिलकर सन्यासी न बना सकी अपने पांचों भाइयों को हराया और राजाधिकारी बना, इस कारण आप उसके हृदय क्षेत्र में उत्तमोत्तम बीज बोइये।

———०———

* ओ३म् *

तृतीय अध्याय ।

जिस में नित्य नैमित्तिक कर्म्मों के त्यागने से जो हानि हुई उनका वर्णन है जिनके लिये माताओं से प्रार्थना है ।

माताओं से निवेदन है ।

नारीधर्मविचार के प्रथम भाग और इस भाग के पूर्व लेख से आप को पूर्व पुरुषों, स्त्रियों, पूत्रों की दशायें भली भांति विदित होचुकी हैं, यदि विचार दृष्टि से देखें तो यह पूर्वजों के चरित्र मनुष्य की आयुरूपी नौका केलिये संसार सागरके मार्ग में लाइटहौस अर्थात् प्रकाशस्तम्भ का काम देते हैं। इनको विचारने और सोचनेसे आपको विदित हो जायगा कि आप कैसे २ धर्मात्मा, पुरुषार्थी, योगी, वीर बच्चे उत्पन्न करती रही हो वे भी आपही के पुत्र थे, और हम भी आप के पुत्र हैं हमें अपना जीवन सुख से बिताने के लिये तीन वस्तुओं के पुष्ट करने की आवश्यकता थी, अर्थात् अन्न भरने के लिये उदर की, बल भरने के लिये छाती (सीने) की और सूक्ष्म विचार (ख्यालात) भरने के लिये मस्तक की। जब यह तीनों क्रमानुसार भरे जाते हैं तब एक से

दूसरे को सहायता प्राप्त होती रहती है और काम चलता रहता है आज इस के विपरीत किन्ही २ का किंचित् मस्तक तो भरा जारहा है परन्तु छाती और उदर नितान्त खाली है। उनके भी जिनके मस्तक (दमाग़) में विद्या ज्ञान भरीगई है उनकी दशा अकथनीय सी हो गई है । उनकी नज़ाकत से नज़ाकत भी शर्मा गई है। हा बल पूर्वक थूक नहीं सकते,धेले का सोंठ जीरें का पानी चाश्नी के लिये पीते हैं, दो रोटियों की भूख नहीं, चार पग पैदल चल नहीं सकते, धोती तक (धनपात्र होते हुए) पहिन नहीं सकते । जब आधी धोती नौकर थामे हुए पहिनाता जाता है तब पहिन पाते हैं। शौच तब जाते हैं जब प्रथम नौकर पानी का लोटा उठाकर प्रथम पुरीषालय में रख देता है। छत्री बहुत हलकी खटकेदार हाथ में रखते हैं इसलिये कि हाथ ऊपर उठाने में दर्द न होने लगे। यदि बेत हाथ में रखते हैं तो माशे तोले तौल का, केवल शोभा के लिये, समय पड़े रक्षा चाहे कुत्ते से भी न हो सके। यदि हथियारों का लैसेंस है वा उनके रखने का अधिकार प्राप्त है तो उनके लगाने और बांधने का अधिकार नौकरों को है। बात चीत धीमे २ करते है, यदि बच्चे ज़ोर से बोलते हैं तो उनके रोकने की आज्ञा होती है। चाल ऐसी चलते हैं कि बताशा न फूटने पावे; कहां तक बताऊँ आज क्षत्रियों की वह हास्यजनक दशा है कि ईश्वर बेली। रात्रि को कोठे की सांकर देकर सोते हैं, यदि चूहे बर्तन खड़काते हैं तो भय से खाट पर सिमट कर एकत्रित हो जाते हैं, यदि कहीं बर्तनों की जेट ही खड़बड़ाती हुई गिर पड़ी तब तो चोर जान डर कर अपनी खाट से उछलकर स्त्री की खाटपर जा गिरते हैं कि बचाओ मेरी…! जिनके पुरुषा कल तक लोहे के वस्त्र पहिन्ते

थे, सर पर लोहे की टोपी रखते अर्थात् ज़िरह बकतर और खोदादि धारण करते थे, उनकी ऐसी दशा क्यों हो गई। केवल इसलिये कि उनका उदर नहीं भरा जाता, जिसके कारण छाती में बल नहीं आता, न मस्तक पूर्णतया अपना कार्य्य कर सकता है। क्या जिन के मस्तक भर गये है उन के पास उदर भरने की सामग्री नहीं। सामग्री की अभी सब को तो न्यूनता नहीं, भविष्य में चाहे कुछ हो। हां दूसरी ओर ऐसे भी विद्यमान हैं कि जिन के उदर भरे जाते हैं तो मस्तक शून्य हैं, बहुधा तो उदर और मस्तक दोनों के भरने की सामग्री न होने के कारण भूखों मरते और कोरे लंठ हैं। माताओ, इसका कोई कारण है [कारणाभावात् कार्य्या-ऽभावः] बिना कारण के कार्य्य नहीं होता, वास्तव में इस का कारण आप की असावधानियां हैं, आप ने बच्चे नहीं उत्पन्न किये बरन् खिलौने बनाये, नहीं नहीं मैं भूल गया जान बूझ कर यत्नतः कुम्हार की नांई भी खिलौने बनाने का भी प्रयत्न नहीं किया, वह स्वयं ही स्वाभाविक नियम से बन गये; जब बन गये तो आप उनकी यथावत् रक्षा भी न कर सकीं, क्यों नहीं की क्या उन से प्यार न था, प्यार तो था परन्तु रक्षा करना नहीं जानती थीं। बाल विवाह के कारण स्वयं ही क्षीन थीं, अनपढ़ होने के कारण अज्ञानी थीं, फिर "किस की वह ले खबर ज़िसे अपनी ख़बर नहीं" अन्धा अन्धे को क्या रास्ता दिखा सकता है, सोता हुआ सोते को क्या जगा सकता है। माताओ! बुरा न मानियो, हज़ार में एक आध यदि हुई भी तो उनकी न होने में ही गणना है। मैंने एक पत्र में पढ़कर नोट कर लिया था कि हे विवाहिता नवयुवो! यदि तुम अपने उत्पन्न होनेवाले बच्चों के पालन पोषण

और शिक्षा के व्यय का भार सहार सकते हो तो अपनी विवाहित स्त्री से निम्न लिखित दश प्रश्न पूछो । यदि वह इन प्रश्नों का शान्तिदायक उत्तर देदे तो बच्चा उत्पन्न करने का प्रयत्न करो, नहीं तो तुम यदि अपनी कुटिल इच्छाओं की पूर्ति के अर्थ पशुवत् समागम करते हो तो तुम दोनों, स्त्री पुरुष दुःखदाई वधिक पापी सन्तान के घातक हो। वह दश प्रश्न यह हैं—

१-वह अपने गृह सन्तान की आवश्यकता समझती है।

२-यदि समझती है तो आनेवाले पाहुनेको विना दुःखित किये हुए हर्ष पूर्वक नौमास तक अपने पेट में खेलने, कूदने सोने को जगह दे सकती है।

३-क्या बच्चे का इतने दिन अपने रक्त से पालन कर सकती है।

४-क्या गर्भ की दशा में गर्भ के कष्टों को क्रोध के स्थान पर शान्ति से सहन कर सकेगी वा सहन करने का यत्न करैगी।

५-क्या हर समय विशेषतया गर्भकी दशा में वीर, स्वतन्त्र, न्यायी, प्रसन्न चित्त, आरोग्य, नम्र बनने का यत्न करैगी।

६-क्या इस बात का ध्यान रक्खैगी कि बच्चे को श्रेष्ठ और दुष्ट बनाना माता पिता के हाथ में है, जिस में माता का भारी हिस्सा (भाग) है।

७-क्या वह बालक को रोते हुये देखकर क्रोधित होने वा मारने पीटने के स्थान पर सावधानी से हर्षपूर्वक चुपाने

की आदत वनावेगी और कभी अफ़ीमादि नशा बच्चे को न खिलावेगी।

(८) बच्चे को कभी फ़क़ीर, हौआ, भूत, प्रेतादि का भय दिलाकर डराया तो नहीं करेगी।

(९) क्या बच्चे के सुलाने, जगाने, खिलाने वस्त्र पहिनाने आदि कर्त्तव्यों को प्रेम से पूरण करेगी।

(१०) क्या बच्चों के साथ हर समय हँसनी शक्ल से वर्त्तेगी और उनका मान करेगी।

यदि माताओ, उपरोक्त बातों को विचार कर सन्तान उत्पन्न करतीं तो क्या हमारे उदर, छाती, मस्तक की ऐसी बुरी दशा होती, कदापि नहीं। यही कारण हुआ कि तुम्हारा पुरुषों से संग किसी अन्य मन्तव्य और प्रयोजनार्थ हुआ, जिसका यह फल है कि तुमसे पुरुषों की चित्त वृत्ति विवाह के बहुत ही थोड़े दिनों के पश्चात् बदल जाती है। वह अपने को ऊंचा और आपको नीचा समझने लगते हैं, बात २ पर तुम पर क्रोधित होते हैं, बच्चों पर भी झुंझलाते हैं। तुम बधिक की नाईं पुरुषों से कांपती हो, तुम भी उनका गुस्सा (क्रोध) बच्चों पर उतारती हो। उन बेचारे बच्चों की पिता क्रोध और माता दुख के कारण मनकी कलिका खिलने ही नहीं पातीं, वरन् मुर्झाकर रहजाती है। फिर बतलाइये कि उनकी उन्नति कैसे हो, उन के शरीर के भाग कैसे अपना काम करें। कैसे अन्न, बल, ज्ञान उन में भरा जासके। हमारी इच्छा है कि आपकी पूजा हो, आपका मान बढ़े, आप साक्षात् देवी लक्ष्मी बनें। यदि आप प्रसन्न रहें। तो आपके प्रभाव से हम भी प्रभावित हों और सुख प्राप्त कर सकें। मनु

भगवान् ने बतलाया है कि जहां स्त्रियों की पूजा होती है उस घर में देवता निवास करते हैं। यदि स्वर्ग वास्तव में कोई स्थान है, जहां देव निवास करते हैं तो वह घर ही निश्चयात्मक स्वर्ग है जहां स्त्री, पुरुष के सम्बन्ध अति रस-दायक और प्रेम शृंखला वा रज्जू में जकड़े हुए हैं। इस के विपरीत यदि तुम किसी मनुष्य को जीवित नरक में देखना चाहते हो तो उस पुरुष को देखलो कि जिसकी पत्नी उससे प्रसन्न नहीं वा वह अपनी पत्नी से अप्रसन्न है। वह घर ही स्वर्ग है जहां स्त्री, पुरुष के मन आपुस के क्लेश के कांटों से साफ़ हैं—

जहां परस्पर प्यार है, एक दूसरे के मित्र हैं, वहां अति परमेश्वर की दया है और धन्यवाद का स्थान है, तभी तो बताया है कि यदि गृहस्थी में सुख भोग की इच्छा हो तो उस स्त्री से, जो अप्सरा (परी) सी स्वरूपवान पर दुष्ट सुभाव वाली हो, कोसों भागना चाहिये; और यदि चुड़ैल जैसी कुरूप हो पर स्वभाव की उत्तम हो तौ उससे प्यार और प्रेम करना चाहिये। इस में किंचित सन्देह नहीं कि वह घर नरक से भी गया हुआ है जिस में पुरुष के मन में स्त्री की ओर से एक कांटा है जो रात दिन खटकता है। यह वह दुःखदाई कांटा है जो स्त्री पुरुष के सारे जीवन को विपत्ति का घर बना देता है, उस की रात्रि की मीठी नींद को और दिन के सुख चैन को उससे छीन लेता है। माताओ तुम्हारे लिये इससे अधिक नरक इस संसार में और क्या हो सकता है कि दिन-रात बेचैन रहती हो, उस बेचैनी का कारण पुरुष के प्रेम का अभाव वा न्यूनता है अथवा उसका दुष्ट वर्तावा और कमीनगी है। ऐसा बेचैन मन यदि किसी

वस्तु की इच्छा कर सकता है तो वह मौतकी, जिससे वह नरक से छूट सकै। यही कारण है कि सैकड़ों स्त्रियां आज आत्मघात करतीं, विष खातीं, फांसी देतीं, कुयें बावली में गिरतीं दिखाई पड़ती हैं। इस में आपका भी इतना अधिक पाप नहीं है, इस लिये कि आप मूर्ख हैं, आपके ज्ञान के नेत्र अन्धे हैं, दिव्य चक्षु खोले ही नहीं गये वरन् पुरुष जो ज्ञानवान है, पढ़े लिखे हुशयार चतुर सुजान हैं, वे आपकी अपेक्षा और भी अधिक गिरगये हैं। आपको मैं इस वहिशीपने और विद्याविहीन होने की दशा में भी धन्यवाद देता हूं, क्यों कि मेरा विचार है कि आप अब भी उनसे अधिक धर्मात्मा हैं, जैसाकि—

(१) जब स्त्रीसे कोई पुरुष माता वहिन कहकर कुछ पूछता है तो वह सदैव मधुर और नम्र उत्तर देती हैं, परन्तु पुरुष कुछ न कुछ ऐसे भी हैं जो वहुत कठिन और कठोर उत्तर देते हैं; स्त्रियों की वाणी सर्वत्र नर्म और पुरुषों की कड़ी होती है।

(२) किन्हीं २ भाग्यहीन अधर्मी पुरुषों को अन्य स्त्रियों से माता भगनी दुहिता कह पुकारते लज्जा आती है, इन शब्दों को कहकर पुकारने वाले वहुत थोड़े पुरुष हैं। परन्तु मातायें जब अन्य पुरुष से कुछ मांगना वा कहना चाहती हैं तो उनकी जिह्वा से भाई, भय्या का शब्द सम्बोधन के साथ २ अवश्य निकलता है, तिस पर भी वे दुष्ट साधारण स्त्रियों से वा अकेली स्त्री के होने पर वड़ा अनुचित शब्द कह वैठते हैं कि तूने मुझे भाई क्यों कहा, अमुक क्यों नहीं कहा, ऐसी भौजी आदि अनेक अप शब्द कहकर अपनी जिह्वा अपवित्र करते हैं, हा शोक!

(३) किसी ने भी एक दृश्य तक ऐसा न देखा होगा कि किसी ऊंचे वा नीचे वर्ण अथवा धनाढ्य वा निर्धन तक की स्त्री ने किसी अनजान पुरुष को कहीं जाते देखकर कोई अनुचित शब्द उनकी ओर संकेत करके कहा हो, परन्तु पुरुष पापी सैकड़ों ऐसे देखे गये कि मूर्ख स्त्रियों को, जिनसे कोई जान पहिचान नहीं, रास्ता निकलते देख कर अपनी दूकान वा स्थान से बैठे हुये ज़ोर से आपस में हंसीकरने लगते हैं, इस लिये कि एक दृष्टि हमारी ओर देखले। बहुधा दुष्ट तो ऊंचे स्वर से बरसो, राम २ सीताराम २ कहने लगते हैं। हाय! कैसे दुष्टों के भाव मलीन हैं और कैसे स्थान पर राम शब्द का उच्चारण करते और राम भक्त और सनातनधर्मी होने का परिचय देते हैं। जिन रामका चरित आप पढ़ चुकी हैं कि स्वप्न में भी पर स्त्री का ध्यान न करने वाले थे।

(४) मांस, मदिरा, भंग, चर्स, चांडू, मदक तमाखू खाने पीने वाले जितने पुरुष हैं, उतनी स्त्रियां कदापि नहीं वरन् उन्हें पुरुष ही अपने सुख के लिये अपने अनुसार कर रहे हैं, फिर भी उनकी संख्या अभीतक अति न्यून है।

(५) जुआ, शतरंज, ताश, चौसर, गंजफ़ा, कपतैन, सोरही खेलने वाले, तीतर, मुर्गा, बटेर, मेंढ़े लड़ाने वाले, सारा दिन गप्पों में काटने वाले जितने पुरुष हैं, स्त्रियां नहीं।

(६) स्त्रियों में पुरुषों से लाज अधिक है।

(७) पुरुष की स्त्री मर जावे वह सन्तान होते हुये भी दूसरा तीसरा चौथा पांचवां विवाह करता है, आयु चाहे साठ से ऊपर निकल गई हो, परन्तु स्त्रियां लाखों ऐसी विद्यमान हैं कि जिन्हों ने पुरुषकी सूरत तक न देखी, जिन्हें

न विवाह की सुध है न सुहाग नष्ट होने की, परन्तु अपनी सारी आयु निष्कलंक काट दी और काट रही हैं।

(८) पुरुष एक स्त्री के होते हुये भी अधिक विवाह रचाते हैं और जात विरादरी [भैया वन्दी] में सम्मिलित हैं परन्तु * स्त्री एक भी ऐसी नहीं है जिसने एक पुरुष से अधिक से विवाह किया हो वरन् सहस्रों ने प्राण तक देकर अपना धर्म बचाया और पर पुरुष का हाथ तक अपने शरीर में न लगने दिया। इनके अतिरिक्त और बहुत से पाप हैं जो पुरुष करते हैं स्त्रियां नहीं, जिनको मैं यहां पर असभ्यता के कारण लिख नहीं सकता।

यह बातें हैं जिनके कारण आपका मान, आपकी प्रतिष्ठा मेरी दृष्टि में अधिक है, मैं परमात्मा से भी प्रार्थी हूं कि आपमें दिन प्रति दिन शुभ गुण बढ़ते और दुर्गुण दूर होते रहें, इसलिये सभ्य और सज्जन धर्मात्मा पुरुषों से आपके हित के लिये अपील करता हूं जो विचार से अधिक लाभ दायक होगी और को भी अपने तुल्य जानने और मनुष्यता का वर्ताव करने में सहायक होगी और जैसा २ पात्र कुछ शुद्ध उज्वल इसे मिलेगा उतनी ही उतनी अधिक प्रभाव डालेगी। सूर्य्य का प्रकाश तो शीशे सोने कोइले लोहे पर समान पड़ता है, पर लोहे कोइले पर नहीं चमकता सोने और शीशे पर चमककर और ही झलक दिखाता है। इसी प्रकार जैसे शुद्ध अन्तःकरण वाले पढ़ने वाले होंगे उतना ही यह अधिक चमकेगी अर्थात् प्रभावित होगी।

*कञ्चननियों पातुरों से कुछ सम्बन्ध यहां नहीं।

अपील स्त्रियों के हितार्थ पुरुषों से ।

स्त्रियों की आयुरूपी नौका के पार लगाने वाले पुरुषो ! ध्यान दो कि जिस मनमें शान्ति नहीं, हर्ष नहीं, सुख नहीं, चैन नहीं, वहां अति आवश्यक है कि नरक कुराड़रूपी भट्टी की ज्वाला प्रज्वलित हो। जब अग्नि लगती है तब वह नहीं जानती कि कौन सी नई छानी है, कौनसी पुरानी, वह बुहारी तक नहीं छोड़ती और समस्त घरवालों पर एक सी प्रभावित होती है। स्त्री के दुःखी और जले मन का धुवां पुरुष के सुख के पौदे को जलाकर भस्म कर देता है। हा ! तुम स्त्रियों को देवियां कहते हो, क्या कारण है कि तुम्हारे घर में एक देवी आती है परन्तु तुम्हारा घर देवस्थान के स्थानपर नरकस्थान बन जाता है। क्या आप उसके समझने में चूंके वा वास्तव में वह कोई ऐसी वस्तुयें अपने साथ लाती हैं जिससे आप के घर में आग भड़क उठती है और सारा घर जल जाता है। केवल घर ही नहीं जल जाता वरन उसके मन का सुख चैन भी जलकर राख का ढेर बन जाता है और तुम विवाह करके अधिक शोकातुर होजाते हो जिससे तो विवाह न होने की दशा में अच्छे थे, इसलिये हे विवाहित और अविवाहित पुरुषो, देवी का निरादर मत करो। अपराध उनका नहीं है आप का ही है, क्यों कि आपने विवाह से प्रथम इस बात के समझने का यत्न ही नहीं किया कि वह जिसको हम अपने घर बुलाते हैं उसके साथ हमारा क्या सलूक होना चाहिये। आप यह समझते हो कि वह हमारी प्रसन्नता के लिये आई है और उसका कर्त्तव्य है कि वह आप को प्रसन्न करे। परन्तु तुम इस बात को भूल जाते हो

कि क्या तुम्हारा यह कर्त्तव्य है वा नहीं कि तुम उस की प्रसन्नता के कारण बनो, यदि तुम अपने हर्ष और सुख की, अपने बुलाये हुये पाहुन (महमान) की अपेक्षा परवाह करते हो तो आप को उचित है कि अपने घर के द्वारपर ऐसा नोटिश (विज्ञापन) लिख कर लगादो कि यह वह घर है, जिस में घर वाले पाहुन के सुख पर अपने सुखको मुख्य समझते हैं, जिससे कोई आप के घर आने की इच्छा ही न करे। एक पवित्र पुस्तक में लिखा है कि तुम अपनी पत्नी से ऐसा ही प्रेम करो जैसा आप से करते हो। पर आप ऐसा नहीं करते। इस लिये कि स्वार्थी हैं। आप अपनी पत्नीको आप नहीं समझते, वरन् अपने को स्वामी और उसे सेवक समझते हो। यदि उनको आप जैसा समझते तो ऐसा कौन पुरुष है जो अपनेको हर्षित और प्रसन्न रखना नहीं चाहता। एक महा पुरुष ने स्त्री पुरुष के सम्बन्ध को बताते हुये यूं वर्णन किया है कि परमात्मा ने वर को वधूपर जो अधिकार दिया है वह एक स्वामी के सेवक पर अधिकार के भांति नहीं है, किन्तु वह अधिकार ऐसा ही है जैसा कि धार्मिक पिता को अपने पुत्र पर होता है। यह कदाचित् वार्ता आप के लिये नई हो, क्योंकि आप के देश में स्त्री के लिये पुत्री का शब्द मुँह से निकालना ही पाप और अधर्म समझा जाता है। केवल इस कारण कि आप के यहां स्त्री के सम्बन्ध अति अपवित्र हो चुके हैं और तुम इतने गिर गये हो कि तुम्हारे मन में स्त्री के लिये ऐसे पवित्र विचार, जो दुर्वासनाओं से शून्य हों, आने ही असम्भव हैं, जो एक पिता के मन में पुत्री के लिये आते हैं। क्या पिता अपनी पुत्री की ओर काम दृष्टि अर्थात् (शहिवत भरी निगाह से) देख सकता है क्या पिता

के मन में पुत्री के लिये बुरे विचार उत्पन्न हो सकते हैं, यदि नहीं हो सके तो क्यों, इस लिये कि वह सम्बन्ध ऐसा है कि जहां इस प्रकार के विचारों की समाई नहीं। यदि आप के मन में वह ही पवित्रता नहीं है जो कि पिता के मन में है तो आप गृहस्थाश्रम में प्रवेश करके कदापि सुख पूर्वक जीवन व्यतीत नहीं कर सकते, इन्द्रियों का दास कदापि हर्षित नहीं हुआ करता। सब राजा हैं यदि इन्द्रियों के स्वामी हैं, जैसी राजा की दशा दास के आधीन हो जाने से हो जाती है वैसी ही वरन् उस से बहुत बुरी उसकी होजाती है जो इंन्द्रियों का दास बन जाता है। सच तो यह है हमारे देश में अनाथों की संख्या १२ करोड़ है, वह अनाथ जिनका जीवन भारागहन है जो जीवित मृतक के सदृश हैं। आप विस्मित होंगे कि वे कौन हैं और कहां हैं, हा यह आप की स्त्रियां हैं, आप की चहीती पत्नियां हैं, जिनको बड़े लाड़ चाव से घर में लाये, परन्तु उन अनाथों की आप ने क़द्र न की। अनाथ वह हैं जिस के सर से माता पिता की रक्षा का हाथ उठ जावे, वधू नितान्त एक अनाथ की अवस्था में आप के घर आती है, वह अपने माता पिता के प्यार को अपने भाइयों के दुलार को छोड़ती है, इसलिये उस से अनाथ अधिक और कौन हो सकता है। वह किस के लिये अपना अनाथ बनना स्वीकार करती है। अपने लिये नहीं वरन् आप के लिये। देखो इस अनाथ के मन में एक अवकाश उत्पन्न हो गया है, वह अवकाश माता पिता और भाई बहिनों के प्रेम का अभाव है। यदि पत्नी के लिये आप का कोई कर्त्तव्य है तो यही है कि आप इस अवकाश को भरदें। "हूमर" ने इस अवकाश के निमित्त कहा है कि तुम अपनी स्त्री के पिता हो,

तुम अपनी स्त्री की माता हो, तुम अपनी स्त्री के भाई हो। चाहे आप के देश में यह लेख अनुचित और असभ्यता का बोधक हो, परन्तु यदि गहिरे विचार से देखोगे तो तुम्हें इमर की बात में प्रेम का चित्र दिखाई देगा। जब तक तुम अपने पवित्र और निर्मल प्रेम से अपनी पत्नी को निश्चय नहीं करा देते कि यदि इसने अपने पिता के प्रेम को आप के निछावर कर दिया है तो आप के मन में पिता का प्रेम उसके लिये उपस्थित है, यदि आप के घर में वह ही प्रेम है जो उसके माता पिता के घर में था, यदि आप के दिलमें वह ही प्यार भरी प्रतिष्ठा है जो उसके भाई के मन में है तो समझा जासकता है कि आपने अपने कर्तव्य को पूर्ण किया और आप एक अनाथ के माता पिता भ्राता सिद्ध हुये। आप के घर नरक के सदृश क्यों बन रहे हैं, इस लिये कि तुम अपनी स्त्री के लिये पिता प्रतीत नहीं हुये, वरन् मजिस्ट्रेट सिद्ध हुये। भाई नहीं प्रतीत हुये, वरन् चोर प्रतीत हुये। सखा नहीं निकले, वरन् गठकत्तर निकले। साथी नहीं बने वरन् कारागार के दरोगा बने। रक्षक नहीं बने, वरन् भक्षक बने। यही कारण है कि हमारे आपके घरों से उन दुखित हुओं के शब्दों से जो उनके हृदयरूपी भट्टी में अशांतिरूपी अग्नि से सुलग और प्रज्वलित होकर और उस पर उनके रात दिन के रोने के आंसुओं के गिरने से धूम्ररूप में बदल कर जो मेघ मण्डल में पहुंचता है, वह ही अंगारों का रूप धारण करके आप और हम पर गिरता है और सुख का बंटाधार कर देता है, जिसके कारण जीवन एक जीका जंजाल बन जाता है, गृह मर्घट श्मशान भूमि वा दुःख क्षेत्र बन रहे हैं। इस कारण कि हमारे घरों में

अनाथ क़ैद हैं, वह अनाथ जिन्हें हमने अनाथ बनाया, जिन्हें आपने उनके माता से पृथक किया, जिनसे आपने दृढ़ प्रतिज्ञा की और अपना हाथ दिया पर इनके लिये न पिता ही बने, न भाई, न सखा वरन् इन्द्रियों के स्वाद के दास बने और आपने उनको दास बनाना चाहा और बनाया। पस आप कपटी और धोखा देने वाले छली सिद्ध हुये, इस धोखे और कपट के बदले जितना भी कष्ट मिले अथवा विपत्तियां पड़ें और असह्य दुःख मिले, बुरे से बुरा हाल हो वह सब थोड़ा है।

एक महापुरुष ने कहा है कि जो कन्या अपने सारे सामान सहित दासी बनाकर दासत्व में बेचदी जाती है उसकी दशा एक विवाहिता स्त्री की अपेक्षा फिर भी अच्छी कही जा सकती है। क्योंकि उस दासी को तो उस दासीपने की अवस्था में मज़दूरी तो मिल जाती है। पर यह विवाहिता तो अपनी कमाई से अपने पाऊं के लिये साकरें मोल लेती जाती हैं जो एक खोई हुई स्वतन्त्रता का बहुत बड़ा बदला है। बाइबिल की कहानी से प्रकट है कि स्त्री पुरुष के दिल का टुकड़ा है, स्त्री की उत्पत्ति पुरुष की पसली से बताई है, पुराने रूमियों ने स्त्री पुरुष के पाक मिलाप के विषय में एक कहानी गढ़ी थी कि पहिले पहिल पीटर ने ऐसे मनुष्य उत्पन्न किये जिनके दो सर चार २ हाथ चार २ टांगे थीं, वे बड़े ही बलवान् और वेगवान् थे। यदि स्त्री का मन दुःख दर्द के काले २ बादलों से आच्छादित नहीं है, यदि पुरुष के मनको सन्देहरूपी काले सर्पने नहीं डसा है, यदि दोनों के मन में स्वतन्त्रता और प्रकाशरूपी नदी बहरही है तो निश्चयात्मक वे देवस्थान हैं। यदि यह सच है कि पति पत्नी का

सम्बन्ध स्वामी और सेवक का सम्बन्ध नहीं है तो फिर ज्ञात होना चाहिये कि क्या सम्बन्ध है। एक महापुरुष ने इस नाते को शरीर और आत्मा से उदाहृत किया है कि स्त्री पुरुष का सम्बन्ध ऐसा है जैसे शरीर और जीव का। यदि पुरुष जीव है तो स्त्री शरीर है, जीव नहीं चाहता कि शरीर को उसकी आवश्यकताओं से रोके, जीव शरीर की रक्षा करता है, उसको राह बताता है, उसके लिये आवश्यक पदार्थ एकत्रित करता है, और उसकी सम्पूर्ण उचित इच्छाओं को पूरा करता है। इसके पलटे में शरीर अपने आपको जीव को सौंप देता है, इस लिये कि जीव उससे उत्तम काम ले। शरीर के बिना जीव क्या है, निकम्मी वस्तु है। जीव के बिना शरीर मृतक मट्टी है, जीव चाहता है कि एक पहाड़ पर चढ़कर चमत्कार देखे, परन्तु यदि शरीर उसको चलने को पाऊं और देखने को आंखें नहीं देता तो जीव क्या कर सकता है, शरीर शीतोष्ण से कैसे बच सकता है, यदि जीव उसे वह साधन न बताये जो उसकी रक्षा के लिये आवश्यक हैं, इस से स्पष्टतया ज्ञात हो गया, जैसा शरीर का जीव पर और जीव का शरीर पर अधिकार है वैसा ही स्त्री का पुरुष पर और पुरुष का स्त्री पर है।

अच्छे २ घरों में देखा गया है कि स्त्री पुरुषों में अनबन होकर डण्डे पर नौबत पहुँच गई, पुरुष स्त्री पर क्यों हाथ उठाता है, इस लिये कि वह समझता है कि वह बागी होगई है वा इस के अधिकार से बाहर जा रही है। वास्तव में तो यह उस की निर्बलता और नपुंसकता का कारण है, स्त्री ऊंट नहीं है, परन्तु निर्बल और पुरुषार्थ हीन पुरुष ऊंट के नकेल इस लिये डालता है और डण्डे मारकार बिठलाता है

कि वह उस पर चढ़कर उसे अपने आधीन करें; जो पुरुष डण्डे के बलसे और नकेल डालकर स्त्रियों को आधीन करना चाहते हैं वह इस बातका परिचय देते हैं कि उनके निकट स्त्रियों की (पोज़ीशन) ऊंट से अधिक नहीं कि जो यदि नकेल से सीधी नहीं होती तो डण्डे मारकर सीधी करो। ज्योतिषशास्त्र, सूर्य्यसिद्धान्तादि में बताया है कि चन्द्रमा सूर्य्य से प्रकाश पाता है. यह ठीक है, चन्द्र और सूर्य्य जितना अपने आप को एक दूसरे पर प्रकट करते जाते हैं उतना ही सूर्य्य का प्रकाश चन्द्रमा पर अधिक पड़ता है और चन्द्रमा उतना ही अधिक प्रकाश सूर्य्य से प्राप्त करता है। परन्तु जितने इन दोनों के सामने एक दूसरे से छिपे रहते हैं उतनी ही प्रकाश की चाल न्यून हो जाती है। चतुर्दशी की रात्रि का चन्द्रमा कितना शोभायमान और प्रकाशवान है, इसी लिये कि चन्द्रमा का सम्पूर्ण सामना सूर्य्य के सामने खुला है और उसने अपने आपको सूर्य्य से छिपा नहीं रक्खा। परन्तु क्या वही चांद अति घिनौना और कुरूप धारण नहीं करलेता और प्रकाश हीन नहीं हो जाता जब उस के और सूर्य्य के बीचमें पृथिवी आजाती है। स्त्री पुरुष के सम्बन्ध पर दृष्टि डालो, एक चन्द्र है तो दूसरा सूर्य्य है। इन दोनों के बीचमें प्रेम और प्रकाश है। यदि आप पतिको सूर्य्य मानलें तो स्त्री उस अवस्था में उसके प्रकाश से प्रकाशित हो सकती है जिस अवस्था में कि इन के मन एक दूसरे के लिये उसी प्रमाण से खुले हैं। जिसमें खुले रहने चाहियें, और उन दोनों के बीच में स्वार्थता, कपट, संदिग्धता, सन्देहादिरूपी पृथिवी नहीं आगई है। पति जितना अधिक प्रकाश अपनी पत्नी के मनपर डालता है, उतना ही उसका

मुख प्रफुल्लित और मन फूल की तरह खिलता और सुशोभित होता जाता है। पति के प्रेम के मेह की बूंदों से पत्नी के मनरूपी पेड़का मैल धुलता और हराभरा होता जाता है, परन्तु ज्योंही इन दोनों में किसी प्रकार की उपरोक्त रुकावटें आजाती हैं तो जैसे सूर्य्य की किरणों के न पड़ने से घर में अँधेरा घुप हो जाता है उसी प्रकार उसमें अन्धकार रूपी क्लेश की किरणें चहुँ ओर से घिरजातीं आच्छादित होजाती हैं। मानों चांद होते हुये ग्रहण लगजाता है। घर में प्रकाश था पर अब नहीं है, मानों प्रकाश का देवता घर से भाग गया है और अन्धकार का राक्षस घर आघुसा है। वही घर जो प्रथम प्रकाश के कारण सुखदाई था, अब अन्धकार के आजाने से दुःखदाई बन गया है।

इतना लिखकर विनय पूर्वक आप पिताओं से माताओं की ओर से अपील करता हूँ कि शास्त्र बुद्धि से आपके और माताओं के अधिकार और हक़ एक दूसरे पर समान हैं, दोनों मिलकर पूर्ण पुरुष बनते हो, आप उन्हें अवश्यही आत्मवत् ही समझिये और उन्हें धार्मिक सदाचारिणी सत्य-वादिनी परोपकारी स्वयं बन कर बनाइये। जब वह प्रसन्न रहेंगी तभी तो हम और आनेवाली सन्तानों को स्वयोग्य बना सकेंगी, यदि आप इस समय उनके साथ अनुचित व्यवहार करेंगे तो क्लेश भोगने ही पड़ेंगे वरन् कर्मफल अनुसार क्या जाने दूसरे जन्म में तुम्हेंही स्त्री योनि में पहुँच कर उसी की स्त्री बनकर ब्याज सहित दुःख भोगने पड़ें और जब वह ऐसे दुष्ट वर्ताव तुम्हारे साथ करे जैसा आज तुम कर रहे हो तो सच बताइये कि आपका क्या हाल हो

और यह घराही हुआ है, क्या खूब सौदा नक़द है इस दे हाथ उस हाथ ले। इस लिये आप बुद्धिमान् हैं बुद्धिमान् ऐसा कार्य्य नहीं करते कि परिणाम में लज्जित होना पड़े। आप मेरे निवेदन पर ध्यान देकर अग्रशोचि बनकर अवश्य ही उचित इनका मान कीजिये, जिससे घर शान्ति धाम बने और सुख प्राप्त होसके।

इसके पश्चात् माताओ, मैं आप के सम्मुख उसी निवेदन को रखता हूँ कि आपके अधिकार मैंने यथाशक्ति पुरुषों पर अपील द्वारा प्रकट कर दिये, पूर्ण आशा है कि वे इस पर अवश्य ध्यान देंगे, पर आप का विचार पुरुषों की ओर वैसा ही रहे जैसा हरिश्चन्द्र की स्त्री का था जो अपने और पुत्र के बिकजाने के पश्चात् अपने पति के वियोग समय परमात्मा की ओर मुख करके आंखें मीच कर प्रार्थना के तौर पर कहती है—

यदि दत्तं यदि हुतं ब्राह्मणास्तृप्ता यदि ।
तेन पुण्येन मे भर्त्ता हरिश्चन्द्रोस्य वै पुनः ॥

अर्थात् मेरे किये हुये पुण्य कर्मों के फल से फिर भी मुझे हरिश्चन्द्र ही प्राप्त हों। माता जी, वे विचारे पुरुष भी आपकी मूर्खता और अनुचित प्रबन्ध से इस समय अति दुःखित हैं, वे इसी लिये आपका मान नहीं करते कि आप उनके योग्य नहीं। जब योग्यता होजाती है तो उसकी हर स्थान में प्रतिष्ठा होने लगती है। देखो तो सही, उन्हों ने कितना कष्ट उठाकर पढ़कर योग्यता प्राप्त की। आप काला अक्षर भी भैंस के बराबर नहीं जानतीं तिस पर आप उनकी

सच्ची और अच्छी और अपने हितकी बात नहीं मानतीं और निपट अनार्य्य गँवार मूर्ख भंगी चमार भौते स्यानों वरुओं ठगियों की बात पर विश्वास कर लेती हो, जिसके कारण वे स्वयं दुःखी और तंग होकर तुमको भी दुखी और तंग करते हैं, जिसके कारण आप की वह दुर्दशा है कि ईश्वर बेली—

समझा न पुरुषों ने तुम्हें हरगिज भी क़ाबिल बात के।
तुम स्त्रियां कहलाईं लेकिन बांदियां बन कर रहीं॥

शोक ! शोक ! शोक !

इस लिये, अब आप से प्रार्थना है कि अब भी आप मेरे निवेदन पर ध्यान देकर सच्ची पतिव्रता, साक्षात् देवी बन जाइये। आप जब अपना सुधार कर लेंगी, तब पुरुषों का भी सुधार कर सकेंगी। जब स्वयं देवी बन जाओगी, आप ही देवते उत्पन्न कर लोगी। हम तुम सब सुख के अभिलाषी हैं, परन्तु सुख कैसे मिलता है, यह ज्ञात ही नहीं। सुख मिल सकता है परस्पर की प्रीति से, प्रीति जब होती जब एक को दूसरे पर विश्वास हो, विश्वास के लिये सत्य प्रधान है, बिना सच्चाई सत्य व्यवहार के विश्वास नहीं होता, सत्य-वादी होने के लिये अभ्यास की आवश्यकता है, जब तक सत्य बोलने सत्य काम करने का अभ्यासी पुरुष नहीं बनता तब तक झूठ बोल जाना आदि सब सम्भव है। इस लिये कि गिरतौ स्वयं ही जाता है पर उठाने के लिये परिश्रम करना पड़ता है। अभ्यास बिना ब्रह्मचर्य्य धारण किये और नितान्त सत्य का अभ्यसी बने कैसे हो सकता है, इससे ब्रह्मचर्य ही सुख प्राप्ति का मूल निश्चित हो सकता है, इसकी महिमा अपार है; बताया था।

शुक्रं तस्माद् विशेषेण रक्ष्यमारोग्यमिच्छता।
धर्मार्थ काम मोक्षाणां आरोग्यं मूल कारणम्॥

शोक! उसी मूल के नष्ट हो जाने से सब नष्ट होगया, आप इसकी सब से प्रथम जहां तक होसके रक्षा करें, पतियों को समझाती और विवाह समय की प्रतिज्ञाओं को याद दिलाती रहें, आप पशुत्व इच्छाओं का निरन्तर त्यागन कर दीजिये, इन में सुख लेशमात्र नहीं है निरर्थक भ्रम से मान रक्खा है। अच्छे से अच्छे यथाशक्ति आय व्यय पर ध्यान रखकर भोजन कीजिये, शुद्ध और सुथरे वस्त्र पहिनिये, प्रसन्नचित्त रहिये, परोपकार अन्यों की भलाई में लगिये और इन्हीं गुणों से युक्त सुन्दर सन्तान उत्पन्न कीजिये। आपको विदित होकि एक स्त्री अति सुन्दरी राजा भोज के दरबार में पहुंची थी, उसको देखकर राजा ने कहा था कि— "रूप द्राविण गुण युक्तोपितनयः" कि क्या तू सुरूपवान और धनवान पुत्रकी अभिलाषिणी है? उसने उसी समय श्लोक बनाकर और वही खंड उसमें जोड़कर उत्तर दिया है, जिससे उसकी तो योग्यता और बुद्धिमत्ता प्रकट होती है और हमें यह शिक्षा मिलती है कि माताओं को कैसा पुत्र उत्पन्न करना चाहिये। जैसा कि—

वरं गर्भ स्रावो वरमृतुषुनैवाभिगमनं।
वरं जातः प्रेतो वरमपि च गर्भेषु वसतिः॥
वरं बन्ध्या भार्या वरमपि च कन्यैव जनिता।
न चाविद्वान् रूपद्रविण गुणयुक्तोपितनयः॥

अर्थ—गर्भका गिरजाना अच्छा है, ऋतुकाल में पुरुष के समीप न जाना अच्छा है, उत्पन्न होते ही मरजाना अच्छा है, कन्या ही कन्या होना अच्छा, वन्ध्या होना वा गर्भ में ही रहना अच्छा, परन्तु अविद्वान् रूप द्रव्यसम्पन्न पुत्र अच्छा नहीं। माताओं को माताओं की बात भली लगती है, यह एक पण्डिता माता की शिक्षा है, इस कारण आप इस माता की शिक्षानुसार ऐसी ही सन्तान उत्पन्न कीजिये। जो विद्वान् हो जिसके द्वारा यह देश ही नहीं वरन् सारा संसार स्वर्गधाम बनजाने की आशा होसके और हम और आप और बच्चों को उस राजाकी भांति पछताना न पड़े। आप पूछेंगी कि किस राजाकी तरह। मैं बताऊंगा कि संगलद्वीप टापू में एक बड़ाभारी राजा था, उसकी राजधानी में एक पागल पुरुष भी रहता था उसके पागलपने की बातें अति प्रसिद्ध होगई थीं, लोग सुनकर बहुत हँसते थे, मानो वह एक खुश मसखरा सा था। होते २ उसकी राजाको खबर लगी कि आपकी नगरी में अमुक एक बड़ा प्रसिद्ध पागल है, पागलों को राह गली बालक बड़े छेड़ते ही रहते हैं, राजाने भी उसे बुलाया, जो कुछ बातें उसने उल्टा उत्तर दिया, राजा की दृष्टि में भी वह वास्तविक पागल प्रतीत हुआ और उसने अपने हाथ की छड़ी उस पागल को दे दी और कह दिया कि यदि तुझे किसी समय तुझ से अधिक कोई अन्य पागल मिल जावे तो उसे यह छड़ी दे देना, नहीं तो अपने पास रखना। वह पागल उसे अपने पास रखता था और खोज में रहता था कि कोई मुझ से अधिक पागल मिले तो उसे यह दे दूं, पर नहीं मिला था। दैवयोग से थोड़े समय उपरांत उसी राजा के रुग्ण होने का चर्चा सारे राज में फैल गया,

चहुं ओर से पुरुष राजा के देखने और कुशल पूछने को आने लगे, इस पागल को भी खबर मिली;यह भी जानेवालों के साथ लगा हुआ किसी प्रकार वह छुडी हाथ में लिये हुये राजा के समीप पहुंच गया, राजाने उसको विठलाया, इसने प्रथम (मिज़ाज) कुशलक्षेम पूछी, राजाने कहा उत्तम नहीं, अब अन्तिम समय है, जाना ही जाना लगरहा है। उस ने कहा कि यह तो वतलाइये कि कबतक आप लौटेंगे? राजाने कहा कि तू निरा पागल है, अरे वहां से जाकर कोई नहीं लौटता, मैं भी नहीं लौटूंगा। कहा अच्छा यह तो बतलाइये कि आप इस अपने हाथी खाने से कितने हाथी साथ ले जावेंगे। कहा अरे पागल वहां हाथी साथ नहीं जाते, फिर उसने कहा कि दसबीस वढ़िया आपकी सवारी के घोड़े तो अवश्य जावेंगे वहां आप किस पर चढ़ेंगे। कहा कोई नहीं, फिर कहा कोई रानी वा कोई सिपाही, प्यादा, नौकर, चाकर, कुछ खाने, पीने, कुछ और आपके सुखकी सामिग्री साथ जावेगी वा नहीं, जिसकी अन उपस्थिति में कैसे आपका निर्वाह होगा, वताया कुछ नहीं। तब उसने कहा फिर कोई अन्य गुप्त सामान आपने अपने साथ जाने वाला इकट्ठा किया है वा प्रथम से वहां भेज दिया है, कोई चार दिन के लिये कहीं जाता है तो आवश्यक सामान साथ लेजाता है, आप इतने लम्बे चौड़े सफ़र में जहां से लौटना नहीं, कैसे रह सकेंगे, कृपया मुझे वड़ी आशंका है, इसे निवारण करदीजिये। राजा ने कहा कि यही एक बड़ी डरावनी भयानक रूप धारण किये मेरे सन्मुख एक मूर्ति खड़ी है जो मुझे डरा रही है। हा शोक! मैंने अपने जीवन में ऐसे शुभकर्म उत्तम कार्य्य नहीं किये हैं जो मेरे साथी

बनकर मेरे सुखके साधन बनते। वहां तो केवल अपना किया हुआ कर्म ही साथ जा सकता है, शेष सारी सम्पत्ति सुत, दारा, पशु, पक्षी, यहीं ही रहजाते हैं, परन्तु अब पछताता हूं समय नहीं कि कुछ करसकूं। मैं अपनी चाल में चूक गया। मैं जिस लिये आया था उसे भूलगया। कर्त्तव्य के पूरा न करने से आज रोता हुआ संसार को छोड़ता हूं। सच कहा है—

यावत् स्वस्थमिदं शरीर मरुजं यावज्जरादूरतो। यावच्चेन्द्रिय शक्तिर प्रतिहता यावत्क्षयो नायुषः॥ आत्मश्रेयसितावदेव विदुषा यत्नोविधेयो महान्। सन्दीप्ते भवनेतु कूपखननं प्रत्युद्यमः कीदृशः॥

वैराग्यशतके भर्तृहरिः श्लो० ७५।

जब तक शरीर स्वस्थ है, बुढ़ापा दूर है, जबतक इन्द्रियां बलिष्ट हैं, जबतक मौत निकट नहीं आगई तब तक साथ जाने का समान इकट्ठा कर सकता है फिर कुछ नहीं, क्योंकि आग लगजाने पर कुआ खोदने से अग्नि शान्त नहीं हो सकती। जब तक पानी निकलेगा तब तक अग्नि सब स्वाहा करदेगी। सो अब क्या हो सकता है। तब उस पागल ने वह छड़ी अपने हाथ की राजा को देदी कि आप की आज्ञानुसार यह एक आप की भेंट है। शोक कि आप ने जानकर भी कि चरागों की चमक महिफ़िल तलक है, दिये की रोशनी महिशर तलक है, ईश्वरीय आज्ञा का उल्लंघन किया जिस

से राजा शोक सागर में डूबकर हाहाकार मचाता, शिर धुनता, हाथ मलता, पछताता, अश्रुपात करता हुआ खाली हाथ चलवसा।

माताओ! आप ऐसी सन्तान उत्पन्न करें और ऐसा उद्योग और यत्न करें और उनको ऐसी उत्तम शिक्षा दें जिस के अनुसार वे रोते हुये न जावें। देखो, जब बच्चा उत्पन्न होता है उस समय बच्चा तो रोता है परन्तु घर बाहर वाले हँसते और हर्ष मनाते हैं। आप उस का जीवन ऐसा पवित्र बनादें कि वह बच्चा जैसा रोता हुआ पैदा हुआ था वैसा रोता हुआ न जावे, वरन् मरते समय उस के लिये दूसरे रोते और शोक करते हों और वह अपने पुण्य के प्रताप से अपने गुण कर्मों के बल पर हँसता हुआ चला जावे। यह आप से सब सम्भव है, आप चाहें तो गर्भाधान से ही अपने सदाचार द्वारा उत्तम से उत्तम गुण उस में धारण करादें और उसकी आत्मा को इतना बलवान् और धर्म परायण बनादें जिससे वह इतना दृढ़ होजावे कि सोते जागते उसके मुख से हर्ष और शोक के अवसरों असह्य दुःख पड़ते और विपत्ति आने पर भी यही निकलता रहे कि—

न जातु कामान्नभयान्न लोभाद् धर्म्मं-त्यजेज्जीवितस्यापिहेतोः। धर्मोनित्यः सुख-दुःखेत्वनित्ये जीवो नित्योहेतुरस्यत्वनित्यः॥

महाभारत, उद्यो० प्रजा० प० श्लो० १२। १३॥

कि धर्म जैसी प्यारी वस्तु को, जो मरने पर मित्र और सहायक होती है, जिसको "त्रिलोकी दीपको धर्मः" तीनों

लोकों में जिससे प्रकाश फैलता है बताया है, जो मरते समय हँसाता और रुलाता है उसे कामासक्त होकर वा भय से घबड़ा कर लालच में फँसकर तो क्या जीवन के मोह से भी न छोड़े, वह ही धर्मात्मा कहाता है। धर्म सदैव रहने वाला नित्य है, यह सुख दुःख सब अनित्य यहां ही रह जानेवाले हैं। जीव न पैदा होता है न मरता है, न कभी पैदा हुआ है न होगा। यह अजर है, अमर है अछेद है, अभेद है, यह शरीर के मारे जाने से नहीं मरता, यह शस्त्र से नहीं कटता, यह अग्नि से जलाया वा पानी से भिगोया वा हवा से सुखाया नहीं जासकता। उस की मनरूपी घड़ी में सत्य-ज्ञान रूपी कूक भरदो कि तुम्हारे जीवन का उद्देश्य अपने जाती लाभ के लिये नहीं वरन् सारे संसार के मनुष्य और पशु पक्षी तक के लाभ के लिये है। जिन २ शुभ और शान्ति दायक बातों से तुम्हें लाभ पहुँचा हो और तुम्हारे आनन्द का कारण हुआ हो उनको औरों पर प्रकट न करना वा छिपाना पाप है। जैसा कि अन्धे और कुये को देखकर उसे कुये को न बताना पाप है वरन् उन्हें वैसा ही बताना और वैसा ही बनाना पुण्य है। इसी प्रकार यदि कोई पुरुष भूल कर उलटे मार्ग से जारहा है, किसी ने उस जानकर उलटा मार्ग बतादिया है वा बताने वाला भी सत्य मार्ग नहीं जानता इस पथिक को मधुर और प्रेम युक्त वाणी से समझा कर कि यदि आप इसी मार्ग से चले जावेंगे;तो जहां पहुंचना है उससे और भी दूर होते जाओगे बतादेना मुख्य धर्म और मनुष्य का कर्त्तव्य कर्म है। धर्म पर चलना प्रत्येक का काम नहीं होता धर्म पर चलना छुरे की धार पर चलने के समान कठिन है। इस की राह में बड़े २ झाड़ी झंकर, काटे कुबड़े लोभ के

और बड़े २ चटयल, रेतीले मैदान, मोह के विकराल विष-धारी सर्प, बिच्छू, क्रोध के गहरे खाव खाड़ी जिन में गिरने से हड्डियां तक चकना चूर हो जावे, काम की बीच में रोकते हैं। ऊंच २ पहाड़ पुत्रैषणा, वित्तैषणा, लोकैषणा के टकराकर बड़े २ मगरमच्छ कपटी छली झूंठे धोका देने वाले दम्भी दुष्ट राक्षसों के आगे बढ़ने नहीं देते। इन रुकावटों के दूर करने और उनसे पृथक रहने का उपाय बता और समझा दो। भलाइयां उसके स्वभाव में धारण करादो, जिस में वह पवित्र ईश्वर विश्वासी होकर कि परमात्मा सदैव धर्मात्मा की सहायता करता है जीव निस्सन्देह अल्पज्ञ है परन्तु सर्वज्ञ परमेश्वर का आश्रय लेकर बड़े से बड़ा काम कर सकता है, दृढ़ता और वीरता के साथ ईर्षा द्वेष को परे हटा कर, रंगरूप मत मतान्तर की तफ़रीक़ से प्रथक होकर, सब को एक ही पिता का पुत्र जान मनुष्य मात्र को एक इन्सान अपने तुल्य समझ, सारी कुरीतियों को हटाता हुआ, धैर्य्यादि दस चिन्हों की प्राप्ति से शान्त चित, अन्यों के उपकार में लगा हुआ अपने उद्देश्य को न भूलता हुआ, वेद आज्ञाओं और वेद अनुयाइयों को आदर्श बनाता हुआ, रास्ते के औरों के लिये कांटे कुवड़े यथाशक्ति दूर करता हुआ चलाही जावें, तो अवश्य ही किनारे लगा, सच्चे स्वामी की गोद में जा बैठगा। माता जी! आप भी माता हैं, इसी भांति परमात्मा भी माता है, आप का बच्चा जब सरकने लगता है तब वह जब सरकते सरकते रोतें हुए अपनी शक्त्यनुसार परिश्रम कर तुम्हारे निकट तक आजाता है, उस समय आप यह समझ कर कि अब इसकी शक्ति समाप्त हो गई, इसने अपनी समर्थ्यभर काम कर लिया तो झट उसे गोद में

उठाकर दूध पिलाती हो, इसी भांति परमात्मा जिन में क्रिया स्वाभाविक है जो पर पुरुषार्थी हैं, जो कालचक्र नित्य नियम से चल रहे हैं, सूर्य्य चन्द्र को भ्रमण करा रहे हैं, जब देखते हैं कि इसने बल और सामर्थ्य भर मुझे सर्वत्र और न्याय-कारी जान पाप से डरकर यत्न कर लिया, तब माता के समान उसकी इच्छा को पूर्ण करते हैं। आप उसके मन पर पत्थर की लकीर की भांति निश्चय कर दो कि धर्मके सामने कभी आहार भोजन की भी चिन्ता न करनी चाहिये। उस स्वामी ने हमारे भोजनों के प्रबन्ध का आप ही जिम्मा लिया है, उसने हमारे जन्म से प्रथम माता के स्तनों में दूध उत्पन्न कर रक्खा था, तुम सदा धर्म से धन कमाया करो अधर्म से न कमाना, यह एक शुद्धी सब शुद्धियों से बड़ी है। जैसाकि—

सर्वेषामेव शौचाना मर्थशौचं परं स्मृतम्।
योऽर्थे शुचिर्हि सशुचिर्नमृद्वारि शुचिः शुचिः॥

मनु० अ० ५। श्लो० १०६॥

अर्थ—अर्थात् द्रव्य की शुद्धि सब शुद्धियों से बढ़कर है, वास्तव में यही एक शुद्धी है, मिट्टी पानी की शुद्धी तो नाम मात्र है, उसकी कोई शुद्धियों में गणना नहीं।

हम कर्म फल भोगने के लिये और आगे को कुछ कर सकने के लिये किसी अवधि के लिये बन्दियों की भांति इस मृत्यु लोक में आये हैं, हम संसार में देखते हैं कि राजद्रोही तक का बन्दी जब कारागार भेजा जाता है तो उस के भोजन बस्त्र का बिल साथ साथ जाता है, सरकार उसके भोजनों का प्रबन्ध अपनी ओर से करती है, तो सब से बड़ी सरकार

क्या नहीं करेगी, अवश्य करेगी। पर इसी भरोसे पर यदि पुरुषार्थ करना छोड़ बैठें तो भी धर्म से गिर जाने से पापी बन जावेंगे। जिन के हाथ पैर नहीं हैं उन्हें वह वैसे ही पहुँचाता है, परन्तु जिनको हाथ पांव दिये हैं उन्हें हाथ पांव चलाना पूर्ण परिश्रम करना ही कर्त्तव्य है। आप लौट फेर कर जब तब ब्रह्मचर्य्य का महत्व बालक और बालिकाओं को अवश्य समझा दिया करो, यही सब की जड़ है, जिस के बिना न कोई साधन ठीक हो सकता है न किसी प्रतिज्ञा को कोई पूर्ण कर सकता है। समझाओ कि सुना है थोड़े समय की बात है काशीनरेश के दादा वा परदादा किसी असाध्य रोग में रोग ग्रस्त हुये, यह दशा हो गई कि रोग के कारण खाट से उठने की शक्ति न रही, उनका डाक्टरी इलाज प्रारम्भ हुआ, अंग्रेज़ डाक्टर वहां उपस्थित थे, इतने में एक संन्यासी साधू भी राजा के देखने को चले गये। साधारण हाल पूछा, किस की औषधि होती है, बताया कि डाक्टरी इलाज है, फिर पूछा कि दवा से कुछ लाभ हुआ, तो उपस्थित डाक्टर ने उत्तर दिया कि अभी तो तीन घंटा तक औषधि पिलाये नहीं बीते, हिन्दुस्तानी वैद्यों की तो हानि लाभ जानने की तीन दिन की अवधि है, महात्मा ने कहा आप उनका अपमान क्यों करते हैं उन में तो अब भी ऐसे २ विद्यमान हैं जो ५ मिनिट में आरोग्य कर सकते हैं। उसने कहा कि इतना सफ़ेद झूठ भी तो वह ही बोल सकते हैं, भला कौन है, तब महात्मा ने कहा कैसे पता लगे कौन झूठ बोलता है, अच्छा लो हाथ कंगन को आरसी क्या है, यही जिन्हें बात तक करना भारागहन है, करवट का लेना कठिन है, पांच मिनट में अभी रोग रहित होकर खड़े होकर चलने फिरने लगेंगे,

आप घड़ी हाथ में लेकर देखिये छः मिनट नहीं लगेंगे, उस महात्मा ने दृष्टि भर उनकी ओर देखना आरम्भ किया और राजा ने रोगरहित होना-पांच मिनट में ही चलने लगे, तब तो डाक्टर विस्मित होकर हैरत के समुद्र में डूब गये और उन महात्मा की अति आवभगत करने लगे और इस बात के बतादेने और सिखा देने की बड़ी अभिलाषा प्रकट की, तब महात्मा ने बताया कि जो पुरुष चालीस वर्ष पर्यन्त ब्रह्मचारी रहा है यह विद्या उसी को प्राप्त हो सकती है, अन्य को नहीं। इसी प्रकार ब्रह्मचर्य्य का महत्व बतलाती हुई एक ही उपास्य देव का उपास्य बना दो। वेदों में उसी एक की पूजा का वर्णन है। सृष्टि में सम्पूर्ण कार्य्यों में एक ही नियम काम करता हुआ उसके एक होने का पता देरहा है। संसार में भी सबकी यही अभिलाषा पाई जाती है कि हम एक की आज्ञा पालन करने वाले बन सकते हैं, जहां बहुत से हाकिम अपनी २ अलग २ सम्मति रखते हैं कोई सेवक वहां नहीं रुकता। इसलिये आप ईश्वर पर अपनी सन्तानों का कम से कम इतना तो प्रेम और विश्वास करादो जितना कि एक राजा पर रानी को था। ध्यान पूर्वक सुनिये एक राजा की सात रानी थीं, उस की छोटी रानी एक कंगाल घराने की अति सुन्दरी, रूपवती, विदुषी, सुशीला, धर्मात्मा थीं जिसका विवाह सब के पश्चात् हुआ था, उन प्रथम की छः रानियों ने उसको देखकर आपस में सम्मति की कि यदि राजा ने उसे देखा तो हम तुम सबको छोड़ सम्भव है कि उसीके होरहें। ऐसा कुटिल विचार कर राजा को दर्शन होने ही न दिये। उन रानियों ने राजा को ऐसा अपने पर मोहित कर रक्खा था कि जिसके कारण उसने छोटी का कभी

ध्यान ही न किया। समय जाते जान ही नहीं पड़ता, बारह वर्ष बीत गये, राजा ने उसका मुख तक न देखा, न कभी कोई उसकी बात पूछी। तत्पश्चात वह किसी आवश्यक कार्य्य से कलकत्ते गया, वहां उसे अधिक समय तक रहना पड़ा, वहां से अपनी सातों रानियों को लिख भेजा कि जिस जिसको जो जो वस्तु प्रिय हो और मंगाना हो लिख भेजें, वह मैं यहां से लेता आऊंगा, यह बड़ा नगर है, यहां पर सब पदार्थ मिल सकते हैं। जिसको पढ़कर छः रानियों ने नाना प्रकार की आभूषण सम्बन्धी वस्तुयें मँगाईं, पर छोटी रानी ने एक लकीर खींच कर लिफाफे में बन्द कर चिट्ठी भेज दी। सब रानियों की चिट्ठियां खोलीं और पढ़ी गईं, सबकी वस्तुओं के लेने की आज्ञा दीगई, जब छोटी रानी की चिट्ठी पढ़ी, उसे खाली एक लकीर खिंची हुई देख कर यह कहकर कि यह बड़ी अभागिन है यहां से भी कोई वस्तु न मँगाई और मन्त्री की ओर फेंक दी कि इस पागल को खाली एक लकीर खींचकर भेजने से क्या लाभ था। तब मन्त्री ने देखकर राजा से कहा कि अन्नदाता, उसने लिखा तो है कि मुझे अन्य किसी वस्तु की आवश्यकता नहीं है, यदि है तो केवल एक आपकी, मुझे एक आपके चरणों की लालसा है और की नहीं। जिससे राजा के मन पर बड़ा प्रभाव पड़ा कि वहां से लौट कर फिर किसी रानी के यहां न गया और अपना उसी छोटी रानी से प्रेम बढ़ाया और सबको छोड़ के एक का होरहा। एक दिन राजा ने रानी से पूछा कि आप के इतने दिन कैसे कटे, उसने उत्तर दिया कि आपके चरणों के ध्यान में उपस्थित रखने को मुझे एक स्वामी तुलसीदास की चौपाई ही बहुत थी जिसने मेरे चित्त को शांत रक्खा। चौपाई यह है—

जापर जाको सत्य सनेहू।
मिलिहै ताहि न कछु संदेहू॥

मुझे आपसे सच्चा प्रेम था, मैं मसल सुनती थी कि एक दिन घूरे के भी भाग जागते हैं, धर्म के पालन में चाहे प्रथम कुछ कष्ट भी सहना पड़े, पर उसका परिणाम अच्छा होता है। मैंने निजधर्म का पालन किया, उसका फल जो मिलना था वह मिला। माता जी, आप भी ऐसा ही आचार विचार रखती हुई सन्तानों को भी वचन, कर्म द्वारा शिक्षा देना कि रानी के सत्य स्नेह के कारण राजा प्राप्त होगया और अपार सुखका लाभ हुआ, तो जिसका सत्य प्रेम दृढ़ निश्चय राजों के राजा महाराजों के महाराजा परमात्मा पर होजावे तो उसकी प्राप्ति से उस आनन्द का लाभ हो सकता है जिसकी प्राप्ति से फिर किसी सुख की इच्छा नहीं रहती, जिसके मिलजाने पर सारी मनोकामनायें पूर्ण हो जाती हैं। कहावत है —

एक विद्वान् तपस्वी ब्राह्मण की एक कन्या थी, उसने कुछ धन एकत्रित करके उसके विवाहार्थ एक साहूकार के पास जमाकर दिया कि जब कन्या विवाह योग्य होगी उस समय लेकर विवाह करदूंगा। परन्तु जब विवाह ठहर गया तब उसने साहूकार के पास जाकर धन मांगा, उस अधर्मी साहूकार ने साफ़ इनकार कर दिया और दो चार और उलटे वचन उपहारमें कहे कि आप ब्राह्मण पण्डित होकर मुझ पर झूठा दोषारोपण करते हैं, मुझे कब दे गये थे, कोई रसीद पुर्जा भी है, कोई साक्षी भी है, वह उत्तर देता है कि किसीके सामने तो नहीं दिये थे परन्तु अमुक समय अमुक स्थान पर

देगया था, पर उस साहूकार ने दे जाना स्वीकार न किया, अन्त को यह अपने घर लौट आया, कन्याके विवाह के कारण इसका मन उदास और तन मलीन मुख कान्तिहीन हो गया, टोले बस्ती वालों और पड़ोसियों से बातचीत हुई, एकने सम्मति दी कि राजा यहां का बड़ा दयालु और धर्मात्मा है आप उससे जाकर फ़रयाद कीजिये और सारा हाल निवेदन कीजिये, उसने वैसा ही किया, राजाने ब्राह्मण से कह दिया कि श्वः के दिन जाकर उसकी दुकान पर बैठना, मैं दश बजे उधर से होकर निकलूंगा और हाथी खड़ा करके आपको नमस्ते प्रणाम करूंगा।

आप उत्तर देकर कुशल पूछना, मेरे जाने के पश्चात् वह साहूकार तुम से पूछेगा कि क्या राजा तुम्हें जानते हैं तो कह देना कि मेरी उनसे जान पहिचान है, जिससे तुम्हारा धन मिल जावेगा।

उस ब्राह्मण ने दूसरे दिन दश बजे से प्रथम ही जाकर वहां आसन जमाया. दश बजे राजा वहा होकर निकले, कुछ काल ठहर नमस्ते कर हाल पूछ कर चले गये. साहूकार देखता रहा, जाने के पश्चात् ब्राह्मण से पूछा कि आपको राजा जानते हैं तो उसने उत्तर दिया कि प्रत्यक्ष आंखों से देखकर कानों से सुनकर फिर यह पूछना तुम्हारी कैसी मूर्खता है, यदि मेरा प्रथम से परिचय न होता तो मुझे देख हाथी रोककर क्यों प्रणाम करता, मेरा राजा से बड़ा मेल है और इनके द्वारा और न जाने कितने एसे औरों से मेल है, तब साहूकार बहुत घबड़ाया और कहा कि मैंने आपके धन की चर्चा लड़के से की थी, मैं तो बुढ़ापे के कारण भूल जाता हूं, पर उसे स्मरण है. आपको उस दिन के उत्तर से

जो कष्ट हुआ हो उसे क्षमा कीजिये और अपना धन जब चाहिये हो ले जाइये। तब ब्राह्मण ने कहा कि मैं तो उसी दिन लेने आया था, विवाह अति समीप आपहुंचा, इससे अधिक आवश्यकता और कब होगी, देना हो तो अभी मँगा दो। यह सुन उसी समय रुपया मँगा दिया गया। इसके लिखने का यह अभिप्राय है कि साधारण राजा के मेल से ब्राह्मण का धन मिल गया तो महाराजा परमात्मा के मेल हो जाने पर क्या नहीं मिल सकता। माताओं, आप संसार के मनुष्यों में एक का भी नाम बताओं कि जिसने धर्म के लिये कष्ट न सहा हो और नाम पालिया हो वरन् (झण्डे दुनियां में उन के गड़े हैं। शीश जिनके धर्म पर चढ़े हैं।) देखो तो ईसाई लोग आज ऐसे २ देशों में जहां के मनुष्य, मनुष्यों को भी खा जाते हैं नानाप्रकार के कष्ट सहकर बहुत से उन के भोजन भी बनकर वहां पहुंचते हैं और उन का सुधार करते हैं, भयानक जंगलों और ऊंचे पहाड़ों में जा रत्नों को खोजते हैं और बूटियों के गुणों के जानने में लगते हैं फिर क्यों परमेश्वर की ओर से उन के सरपर दया की वर्षा न हो और उनका गौरव न बढ़े। आज जो उन्हें यह ऐश्वर्य्य प्राप्त है उन के बड़े परिश्रम का फल है, वे बड़े पापी हैं जो दूसरों के ऐश्वर्य्य को देखकर कुढ़ते और विना परिश्रम किये ही उस से अधिक प्रतिष्ठा चाहते हैं। संसार में दूसरों का मन्दिर ढहा देने से कोई बड़ा नहीं बन जाता वरन् उसके मन्दिर से अपना मन्दिर बड़ा और ऊंचा बनाने से बन सकता है। माता -ी, आप अपने बच्चों के मन में मकान ऊंचा बनाने के वि ारों के स्थान में उनकी आत्माओं के ऊंचे बनने के विचारों को भरना, जिस से वह अपने जीवन

का यह उद्देश्य बनावें कि वे स्वयं अपने उदर में अन्न और छाती में बल और मस्तक में सत्य ज्ञान भरकर अपने विचारों और साहस को सदैव ऊंचा बनाये रहें और उसकी उन्नति का सदैव ध्यान रक्खें और यही अन्यों को शिक्षा दें। जो पुरुष अपनी जाति, वर्ण, देश संसार के पुरुषों के गृहों के छत्ते ऊंचे बनाने के स्थान में उनके आत्माओं को धार्मिक और ऊंचा बना जाता है वह ही जाति, देशादि का सब से बड़ा सेवक और शुभचिन्तक कहा जा सकता है। ऊंची आत्माओं का नीचे घरों में रहना अधिक उत्तम है, उनकी अपेक्षा कि नीचे आत्मावाले मनुष्य ऊंचे महिलों में शयन करें। परमात्मा आप को उत्साह दे कि आपको मेरे निवेदन पर ध्यान हो और मेरी प्रार्थना और परिश्रम शुभहो आप पुत्रों को ही नहीं वरन् पुत्रियों तक को झूंठे आभूषणों के धारण करने से रोक दें तो उनका बहुत सा समय नष्ट होने से बच जाय और शरीर भी निरोग्य और सुथरा रहे वरन् इस प्रकार सच्चे भूषणों को भी बता दो जैसा कि एक माता ने पुत्री को उपदेश किया था।

ज़रोसीम[1]का सरपै टीका न देना।
जो देना हो फ़हमो फिरासत[2] का देना॥
न कानों में पत्त पहिन्ना तू अपने।
न माथे पै बेंदी लगाना तू अपने॥
यदि शौक़ है तुझ को बेंदी का प्यारी।
बदी छोड़ देना यह शिक्षा हमारी॥
जो कानों में अपने पहिन्ना ही चाहो।

1 सोने चांदी। 2 बुद्धि समझ।

पतीव्रता तुम धर्म जी से निभाओ ॥
जड़ाऊ करणफूल हरगिज़ न पहनो।
मगर देश उपकार पर तन को वारो ॥
न काजल को आंखों में बेटी लगाना।
लगाना यदि शील काजल लगाना ॥
महावर लगाने की क्या है जरूरत[1]।
यदि तुझ में है जौहरेपाक अस्मत[2] ॥
तिलाई न नथ कान में तू पहिन्ना।
मगर[3] मीठी वातों से मन नाथ लेना ॥
न सुसराल में मोती वालों पै अड़ना।
न हसली न मिस्सी की खातिर झगड़ना ॥
मगर रखना आचार व्यवहार ऐसे।
कि सब में बनी आब[4] मोती सी रहवे ॥
हँसी का राज रहे मुखड़े पै प्यारी।
न विगड़े कभी तेरा मुखड़ा दुलारी ॥
यह हँसली है सोनेकी हँसलीसे बढ़कर।
कि तू हरसमय खुश रहे और खुशतर ॥
गले के न फिर हार दरकार होवें।
गले की यदि नेकियां हार होवें ॥
वरों की तुझे कुछ नहीं है जरूरत।
यदि तुझमें बल और साहस है हिम्मत ॥
न चांदी की तू आरसी को पहिन्ना।
मगर अन्य पुरुषों से तू आर[5] करना ॥

१ आवश्यकता। २ पवित्रता। ३ किन्तु। ४ प्रतिष्ठा। ५ लाज।

दुआ क्या करेगी पहिन करके बेटी।
जगत की दुआ तुझको काफी बेटी॥
नहीं अच्छे लगते यह चांदी के छल्ले।
कि तू है बरी मक्र छल और दगा से॥
बला से जो पैरों में झांझें न होवें।
मगर धर्म मार्ग में पग तेरे रहवें॥
तो यश और कीर्ति भी दुनियां में सारी।
चन्द्र की भांति फैल जावेगी बेटी॥

इत्यादि सहस्रों उनकी उपयोगी बातें समझाकर पवित्र बना दो, मैं आप का बड़ा ही कृतज्ञ हूँगा। मैं आप को नमस्ते करता हूँ और यदि इस प्रार्थना में कोई अनुचित वार्ता लिख गई हो तो उसकी आप से क्षमा मागता हूँ।

---

१ छल

* ओ३म् *

चतुर्थ अध्याय आरम्भः।

जिसमें नित्य नैमित्तिक कर्मों के करने का पुनः प्रार्थना करके निम्न बातोंको बतलायाहै।

१-एक पारिवारिक दृश्य को नवजीवन से लिखा है जिससे समय-विभाग बनाने और गृह प्रवन्ध और रहन-सहन में बड़ी सहायता मिलैगी।

२-ईश्वर और उसका अवतार।

३-स्वामी दयानन्द और आर्यसमाज।

४-भारत के त्यौहारों में से कई प्रसिद्ध त्यौहारों का वर्णन किया है।

५-संक्षेप से चिकित्सा विषय वर्णन किया है जिसके साथ विदेशी खांड का सेवन जो सर्वथा हानिकारक और धर्म नाशक है उसके खाने का निषेध किया है।

६-कई पहेलियां जो बच्चों को बुद्धि बढ़ाने के अर्थ माताओं को पूछना चाहिये।

७-पाक विद्या विषय जो बहुत सूक्ष्म से लिखा है।

अब, माताओं, आप से पुनः प्रार्थना की आवश्यकता नहीं रही क्योंकि यथाशक्ति आप से प्रथम ही निवेदन कर दिया गया है, अब आप निम्न बातें जिनको उलटा समझा कर वा कुछ का कुछ बताकर आपके चित्त को सत्य मार्ग से

वा सत्य बातों के ज्ञान से पृथक कर रक्खा है वा आप को सुनने और जानने का अवसर नहीं मिला है लिखी हैं, आप इन्हें एकान्त में बैठकर विचार और अपनी और देश वरन् संसार का उद्धार करें।

नं० १ पारिवारिक दृश्य।

[नवजीवन नं० ४ पृष्ठ १० से]

श्रीमदनजीत जी एक माननीय सज्जन हैं, वह युक्तप्रान्त के एक नगर में सरकारी नौकरी पर नियत हैं, आपने विलायत की यात्रा भी की है, उनकी भार्य्या का नाम श्रीमती सत्यवती जी हैं। इनके घर में एक ६ वर्ष का कुमार और दो पुत्रियां हैं, घर वा बंगला नदी के तीर पर एक छोटी सी वाटिका के अन्दर है, मदनजीतजी प्रातः और सायंकाल को छोड़ अपने कार्य में दिन भर रहते हैं। वैदिक सिद्धान्तों ने गृहपति तथा गृहणी के मन पर इतना प्रभाव डाला हुआ है कि अद्भुत पश्चिमी सभ्यता से भी बढ़कर वह अपने आचार व्यवहार में अधिक शान्ति अधिक प्रेम और अधिक आनन्द को लाभ करते हैं। इनकी मित्र मण्डली के सभासद दूर २ तक फैले हैं। कोई ही दिन जाता होगा जब दो एक मित्र और सज्जन उनके गृह की शोभा को नहीं बढ़ाते। पति पत्नी बड़े प्रेम से बाहर के आयेहुए मित्रों (तथा अतिथियों) सज्जनों का स्वागत और सत्कार करते हैं। उनके गृह के समीप ही एक अतिथिशाला है, जिस में तीन बड़े कमरे और उनके आगे सुविस्तृत बरामदा है, कमरों में फर्श (बिछौना) आसन, मेज़, कुर्सी आदि सर्व आवश्यक वस्तुएं हर समय उपस्थित रहती हैं। स्नानागार और

पुरीषागार भी निकट ही हैं, अतिथि के आने पर गृहपति को कुछ परिश्रम नहीं करना पड़ता, तीन सज्जन परिवार सहित अतिथिशाला में आनन्द पूर्वक निवास कर सकते हैं। आज इस अतिथिशाला में किसी समाज के एक प्रतिष्ठित आर्य पुरुष पधारे हैं, वह परिचयार्थ श्रीमदनजीत के एक मित्र (अथवा प्रधान मन्त्री) आर्यसमाजों का पत्र लाये हैं, कोठी पर पहुंच कर सूचना दी और भृत्य ने सन्मान पूर्वक उनका पत्र अन्दर पहुंचा दिया। क्षण भर में चाबी लेकर नौकर बाहर आया और उन्हें अतिथिशाला का एक कमरा खोल दिया। थोड़े ही मिनट बीतने पाये थे कि श्रीमती सत्यवती बाहर आई और उनके निवासादि का प्रबन्ध यथोचित करा दिया। इस समय अनुमान से पांच बजे का वक्त है। श्रीमती अपने बालबच्चों को संवारने में निमग्न हैं। उसका नियम है कि वह पति के गृह में आने से पूर्व ही अपने तीनों बच्चों को नहला धुला शुद्ध और शुभ्र वस्त्र पहिनाकर अपने पति के स्वागत के लिये तय्यार रहती है। बच्चे उसके दोनों हाथों को पकड़े हुये हैं, उसका हृदय कमल आनन्द से प्रफुल्लित हो रहा है। गृहपति ने अपने नियमानुकूल दिन भरका काम समाप्त कर लिया है और वह गाड़ी पर चढ़कर घर आता है। कोठी के सामने गाड़ी को छोड़ दिया और (चन्द क़दम) कई पग पैदल चलकर गृह की ओर बढ़ा। सत्यवती ने आगे बढ़कर नम्रता पूर्वक अपने स्वामी को दोनों कर जोड़ नमस्ते कही, बच्चों ने भी हँसते २ नमस्ते की और माता के हाथों को छोड़ पिता के पांव को लिपट गये, पिता ने सन्मान पूर्वक सब को नमस्ते की और बच्चों को प्यार किया। इधर से तीनों भृत्य आगये, उन्होंने भी झुक कर

नमस्ते की, श्रीमदनजीत ने प्रेम पूर्वक नमस्ते कह उत्तर दिया और गृह वृत्तान्त पूछा। एक भृत्य ने अतिथिशाला की ओर अँगुली कर निवेदन किया कि एक सज्जन तीन वजे से आये हुये हैं, श्रीमदनजीत ने अपनी भार्या को सम्बोधन कर पूछा कि क्या उनका सब प्रबन्ध होगया। उसने हां में उत्तर दिया और पति के संग होकर अतिथिशाला की ओर चल पड़ी। नौकर और बच्चे सभी संग थे, बरामदे में पहुँच कर श्री मदनजीत ने नम्रभाव से नमस्ते कही और उस आये हुये सज्जन से कुशल समाचार पूछकर पत्र पढ़ा। उनकी आवश्यकताओं पर ध्यान देकर एक भृत्य को उनके पास छोड़ा, आज्ञा लेकर मकान के भीतर गये। श्रीसत्यवती जीने पूर्व से ही यथाविहित प्रबन्ध किया हुआ था, विश्राम गृह में सब चले गये, एक पलंग पर सुन्दर बिछौना बिछा था उस पर श्रीमदनजीत जी कपड़े उतार विश्राम के लिये लेट गये। तीनों बालक हँसते खेलते स्पर्द्धा से पलंग पर आये और प्रेम भरी बातें करने लगे। इधर सत्यवतीजी ने कुर्सी पर बैठ बाजा बजाना आरम्भ कर दिया, अनुमान आध घण्टे तक वह प्रार्थना उपदेश और मनोज्ञ भजनों को आनन्द पूर्वक गाती रही। उसका नित्य का नियम था दिमागी काम से थकेमांदे पति के मन को प्रसन्न करने तथा विश्राम के लिये वह नित्य उस समय तक बराबर गाती और बजाती थी जब तक कि वह स्वयं बन्द करने की आज्ञा न दें। मदनजीत ने इत्यलम् कहकर विश्राम की आज्ञा दी और 'अनुगृहीतोऽस्मि' कहकर अपने हार्दिक भाव को प्रकट किया। बाजे को छोड़ते ही सत्यवतीजी ने एक भृत्य को बुलाया और स्वयं कमरे के कोने में पड़ी हुई एक मेज़ को उठाकर पति के पलंग के

समीप ले आई। रूमाल उठाया तो कुछ थाली में आहार्य्य द्रव्य, दूध और ताजे मेवे और काटे छिले हुये फल धरे थे, जिन्हें उसने पूर्व से ही प्रस्तुत कर रक्खा था मुंह व हाथ धुलाये और मदनजीत ने सपरिवार उस मधु आहार को खाना आरम्भ कर दिया। इस समय तक पति पत्नी में कुछ भी वार्त्तालाप नहीं हुआ था, मदनजीत ने अपनी सहधर्मिणी से घर के कुशल समाचार पूछे और कुछ मिनट की वार्त्तालाप के पश्चात् सत्यवती जी ने पति के समीप कुछ डाकपत्र और कुछ समाचारपत्र लाकर रखदिये और स्वयं बच्चों सहित कमरे से बाहर चली गई। इसी समय मदनजीतजी समाचारपत्रों को पढ़ते और मित्रों के पत्रों का उत्तर दिया करते हैं। इसी समय सत्यवतीजी पाकशाला के भृत्यों के कार्य्य का अवलोकन किया करती हैं। अनुमान है।। साढ़े छः बजे का समय है। शीतल समीरण प्रवाहित हो रही है। भगवान सूर्य्य आकाशमण्डल के पश्चिम की ओर रक्तिमा छोड़ दृष्टिपथ से दूर हो गया। गाड़ीवान पर्य्यटन के लिये गाड़ी तैयार करलाया है श्रीमदनजीत के तयार होजाने पर सत्यवतीजी तीनों बालकों सहित उत्तम वस्त्र पहिन कर बाहर आई। सत्यवतीजी ने भूषणों को धारण नहीं किया है, हां उस के शरीरस्थ स्वच्छ वस्त्र सुन्दर और सभ्यता का दृश्य जतलाते हैं। उसके बच्चोंने कोई भी जेवर (गहना) नहीं पहिना, उनके कपड़े भी बड़े साफ़ सुथरे हैं। कोठी से बाहर कोई एक मील तक गाड़ी में गये और एक उद्यान की रविश पर टहलने लगे। थोड़ी देर के पश्चात् सायंकाल का अन्धेरा होने लगा। पक्षी अपने २ घोंसलों की ओर जाने लगे। यह भी लौट कर घरमें आ कुछ

मिनट तक विश्राम किया था कि सत्यवती ने अपने गृह की निर्मल छत्तपर हवन का सामान एकत्रित किया। दोनों ओर लम्बे आसन बिछा दिये गये और सूचना देने पर सब एकत्रित हो गये। हमारे अतिथि आर्य्य भाई भी उपस्थित हुये। सब ने उच्चस्वर से प्रार्थना मन्त्र पढ़े और तदनन्तर नियम पूर्वक हवन का आरम्भ हुआ। बालक और बालिकाओं का उच्चारण, गृहिणी, गृहपति और अतिथि का मिलकर एक स्वर से वेदमन्त्रों का उच्चारण करना कैसा सुन्दर दृश्य है। हवन के पश्चात् सब ने यथा विहित सन्ध्या की तदनन्तर उन्हीं आसनों पर भोजन परोसा गया। गृहिणी और गृहपति का हृदय अति विशाल और असंकीर्ण है, सदाचारी सज्जनों के लिये उनका गृह हर समय खुला रहता है, वहां जातपांत के बन्धन भी कभी फटकने नहीं पाते, सभी एक आसन पर मिलकर आनन्द पूर्वक भोजन पाते हैं। सत्यवती जी भी प्रबन्धादि को देख भालकर स्वयं भी आ सम्मिलित हुईं। सत्यवती जी को न केवल अन्य सज्जन मित्रों तथा अतिथियों के संग बैठकर खाने की आज्ञा दी गई है, वरन् दोनों समय प्रायः बालक, गृहपति और गृहिणी इकट्ठे बैठकर भोजन पाते हैं। भोजन सात्विक और इतना सादा था कि उसकी आर्थिक दशा को देखकर लोग परिहास करते थे। खाना होचुका। श्रीमदनजीत जी अतिथि के संग बाहर अतिथिशाला में गये। कुछ देर तक वहां सामाजिक विषयों पर वार्त्तालाप करते रहे। तदनन्तर वह विश्राम के लिये घर आये। सत्यवती जी इस समय बच्चों को सुलाने अपने तथा पति के कमरे में वस्त्रादि प्रबन्ध करने में लगी हुई थीं। बच्चे सोगये, सत्यवती जी ने प्रातःकाल के लिये भृत्यों को कार्य्य

बांट दिया और स्वयम् सब कामों से निपट कर स्वामी से बात चीत करने लगी। दश बजे पति से आज्ञा ले नमस्ते कह अपने पृथक कमरे में सोने के लिए चली गईं। प्रातः काल अभी चार नहीं बजने पाये थे कि सत्यवती जी उठकर भृत्यों को जगारही हैं, पति के स्नानादि नित्य कर्मों के लिये जलादि का प्रबन्ध किया, स्वयं नहा धोकर तैयार हुईं। इधर श्री मदनजीतजी की आंख खुली, दोनों ने प्रेम पूर्वक नमस्ते की वह भी नित्यकर्म कर ५॥ बजे से पहिले ही निपट गये, अब उनका बाह्य पर्यटन के लिये जाने का समय है। दोनों पैदल आध घंटे में घूमकर वापिस आगये और मिलकर सन्ध्या हवन किया। तब प्रातराशी आहार जो भृत्य ने प्रस्तुत कर रक्खा था ले आगया। कुछ खाचुकने पर श्री मदनजीत जी स्वध्याय तथा निज कार्यों के लिये पढ़ने के कमरे में चले गये। सत्यवती जी ने बच्चों को जगाया, नहलाया, धुलाया, वस्त्र पहिनाये और कुछ खिलाकर उन्हें एक भृत्य के संग बाहर भेज दिया। कुछ काल के लिये गृहकार्य को देखभाल कर वह भी स्वाध्याय के लिये अपने कमरे में चली गई ठीक ६॥ साढ़े नौ बजे भोजन खाने का समय नियत था, ६ बजे सत्यवती जी ने भोजन का प्रबन्ध करना आरम्भ किया और साढ़े नौ बजे तक थालियां तथा आसनादि सब निश्चित स्थान पर प्रस्तुत किये गये, नियम पूर्वक सबने मिलकर खाना खाया, कुछ विश्राम कर १०॥ बजे श्रीमदनजीत जी प्रेम तथा नम्रता पूर्वक नमस्ते कर अपने कार्य पर चले गये। दो पहिर का समय ही सत्यवती के लिये परिश्रम का समय है। गृह के परिमार्जन और शोधन का प्रबन्ध कराना, बच्चों की शिक्षा का विचार

करना, अपने लेख, पाठ तथा पत्रों का उत्तर देना, बच्चों के वस्त्रों और अन्य अन्य शिल्प के अनेक कार्य्यों का सम्पादन करना, गृहागत अतिथि तथा परिवारों की सेवा सुश्रूषा करना बाहर के मित्रों तथा निमन्त्रण देने वाले सज्जनोंके घर जाना, इत्यादि विविध कार्य्यों का सम्पादन करना सब उसी का काम था। गृह प्रबन्ध, भोजनादि की सामग्री को इकट्ठा करना आदि सब कार्य्य उसे इसी समय में ही करने पड़ते थे। इन सब बातों के करते हुए भी प्रार्थना, शील, नम्र और धार्मिक स्त्री पुरुष अपने गृह को सुख और शान्ति का ध्यान तथा परस्पर के प्रेम का केन्द्र बना रहे थे। जहां आकर विश्राम पानेवाले मित्र नित्यप्रति उच्च महान् और सद्भावोंको लेकर अपने २ घर जाते थे।

माताओं! आपने पढ़ लिया, यदि आप भी सत्यवती जैसा प्रबन्ध करें तो सर्व सुख आपको प्राप्त हो और पुरुषों के भी भाग खुल जावें। मुझे आशा है कि अब आप मुझे कदापि निराश न करेंगी और "बीती ताहि बिसार दो आगे को सुध लेहु" पर ध्यान देंगी। और भूषण बच्चों को कदापि न पहिनावें, भूषणों के कारण बच्चे प्यारे बड़ी बेदर्दी के साथ मारे जातेहैं। मेरी सम्मति में तो उन माता पिताओं को ही फांसी लगनी चाहिये जिनके झूठे प्यार के कारण बच्चे मारे जाते हैं।

नं० २ ईश्वर और उसका अवतार

माताजी, प्रथम भाग में आपको ध्यान पूर्णतया इस ओर आकर्षित न कर सकने का यह कारण था कि मैं जानता था कि प्रथम आपको इस योग्य बना दिया जावें अर्थात् ईश्वर

की दया से आप इस योग्य बन जावें कि इन बातों को समझ सकें। मेरी सम्पूर्ण परिश्रम यह था कि आप के हृदय पाप रूपी मलों से छूट विक्षिप्तता को त्याग शुद्ध और स्थिर हो जावें। मिथ्या कल्पित क़बर ताज़िया पेड़ पक्षी भूत प्रेत कंकर पत्थर आदि की पूजा और अधर्म की वासनाओं के विचार आपके मनसे दूर हो जावें, जिससे यह आशा हो कि यदि कोई रंग उसपर नहीं चढ़ाया जावे तो चढ़ सकता, इसी प्रकार जिनके मन अज्ञान अविद्यासे मैले वा पापोंसे काले हैं उनपर भी ईश्वर जैसे निराकार निर्विकारके ज्ञान और विश्वास का रंग चढ़ना अति दुस्तर होता है। यह और बात है कि हम पापी जन ईश्वर को मानते हैं और अन्यों को मानने को भी उपदेश करते हैं परन्तु पाप करते समय उसकी आज्ञाओं को भूल जाते हैं, इसलिये मक्कार (छली) हैं। ईश्वरका मानना उसी को कहते हैं कि उसको जान और मान पापों से बचें, नहीं ऐसे आस्तिकों से वे नास्तिक कोटि गुणा अच्छे हैं जो ईश्वर को नहीं मानते पर पाप नहीं करते हैं। माताजी, यह नियम है कि जब तक कोई बासन खाली नहीं कर लिया जाता उसमें कोई अन्य वस्तु भरी नहीं जा सकती। इसी प्रकार जब तक मन कुसंस्कारों से खाली नहीं होजाता तब तक उसे अच्छी बातों का धारण करना तो एक ओर रहा, उस को सुनना और मानना भी भारी गहन होता है। रेलगाड़ी पर बैठे हुये पथिकों को जब तक उतर नहीं लेने देता और आप चढ़ने लगता है, कितना कष्ट उठाना पड़ता है। मैं यह प्रतिज्ञा नहीं करता कि आप को ईश्वर का साक्षात्कार कर दूंगा, क्योंकि मैंने स्वयं भी अभी साक्षात्कार नहीं कर पाया, परन्तु यह मैं जान गया हूं कि किसी वस्तु का अर्थात्

गुणीका प्रत्यक्ष नहीं होता है, केवल गुणों का प्रत्यक्ष होता है उससे ही गुणी को प्रत्यक्ष करते हैं। जैसे हाथ पाऊं आंख कान आदि का ज्ञान कर ही शरीर वाले देवदत्त का प्रत्यक्ष होता है, देवदत्त को कोई प्रत्यक्ष नहीं करता, इसी प्रकार परमेश्वर के गुणों से ही गुणी परमेश्वर का प्रत्यक्ष हुआ करता है। इसके अतिरिक्त यह बात भी ध्यान करने योग्य है कि यदि एक पुरुष ठीक रास्ता तो बता नहीं सकता, पर यह बता रहा है कि जिस रास्ते तुम जारहे हो यह रास्ता मैं जानता हूं कि ठीक नहीं है, इसको सुनकर यदि वह पथिक वहीं खड़ा रहे तो भी उतने कष्ट से तो अवश्य बच जावेगा जो उसी ठीक रास्ते के जानने पर उतना ही और लौटना पड़ता। जैसे शाजहांपुर से बनारस जाना है, पर वह लाहौर की ओर जारहा है, यदि लाहौर पहुंच कर मालूम हो कि तू रास्ता आरम्भ ही से भूला तो लाहौर से शाहजहांपुर आने और लौटने के कष्ट से तो अवश्य बच जावेगा। यदि बतानेवाला यह कह रहा है कि यह रास्ता लाहौर जानेका है, काशी का नहीं है, यद्यपि मुझे काशी का मार्ग ज्ञात नहीं इस लिये जो कोई उलटे मार्ग पर जाने से जो ईश्वर प्राप्ति से और दूर करता जाता है रोक दे और ठीक रास्ता यम नियम आसन प्राणायाम प्रत्याहार धारणा ध्यान समाधि की यथावत् न बता सके, तो भी समझ लेना चाहिये कि उसने कुछ हलका कर दिया। इसी प्रकार यद्यपि मैं आंखों से आप को परमेश्वर को नहीं दिखा सकता, क्योंकि ईश्वर इन चर्म चक्षुओं का विषय नहीं वह तो ज्ञान चक्षु से ही देखा जा सकता है। इनसे, जो कुछ, यथाशक्ति ज्ञान द्वारा जान सका, उसके ही अनुसार आप को भी अनु-

भव कराना चाहता हूं। वह कुछ अपनी ओर से नहीं, वरन् जैसा कुछ एक दूसरे से सुनकर और सत्यार्थ प्रकाशादि ग्रंथों से जाना है, उसी को लिखता हूं। साधारण उत्तर तो यह है कि ईश्वर है। जिस के नाम ब्रह्म, परमात्मा आदि अनेक हैं। जो सच्चिदानन्दादि लक्षण युक्त है। जिस के गुण, कर्म, स्वभाव पवित्र हैं। जो सर्वज्ञ निराकार, सर्वव्यापक, अजन्मा अनन्त, सर्वशक्तिमान् दयालु न्यायकारी, सर्वसृष्टिकर्त्ता-धर्त्ता हर्ता, सब जीवों को कर्मानुसार सत्यन्याय से फलदाता आदि लक्षण युक्त है। अर्थात् वह सारे क्लेशों से रहित है, वह जन्म-मरण के दुःखों को नहीं सहता। परन्तु मैं समझे हुए हूं कि आप का तृप्ति उदाहरण रहित प्रतिज्ञाओं अर्थात् रूखी-सूखी विना लवण की चटनी से नहीं हो सकती। इस लिये, मैं यथाशक्ति और भी समझाने का प्रयत्न करूंगा। आप कहेंगी कि जब प्रथम लक्षण प्रमाण से ईश्वर की सिद्धि हो जावे, तो पश्चात् उसके अवतार के होने के विषय में देखा जावेगा। माताओ! यह बड़ा गूढ़ विषय है। आप सब ईश्वर को माननेवाली आस्तिक हैं; नास्तिक तो हैं नहीं जो इस पर वादविवाद हो। इस लिये, ऐसा प्रश्न उठाना ही वृथा है। तथापि, निवेदन है कि आप संसार में नियमपूर्वक काम होता देखती हैं, वा अनियम? यदि नियम से सूर्य्य पृथिवी आदि काम करते हैं, तो, उसको नियम में चला रहा है वह ईश्वर है। विना बनाये कोई वस्तु नहीं बनती, इसलिये इस सब जगत का जो बनाने वाला है वह ही ईश्वर है, वह ही इन सबका आदि कारण है। यह सुनकर आप शंका कर सकी हैं कि यदि यही सत्य है कि विना बनाये कोई वस्तु नहीं बनती और कारण के विना कार्य नहीं होता तो

कारण का भी कारण और परमेश्वर को बनाने वाला कोई और होना चाहिये ? इसका यह उत्तर है कि कारण का कारण,मूल की मूल (जड़) सूर्य्य का सूर्य्य, दीपक का दीपक नहीं होता अर्थात् आपको सूर्य्य को देखने के लिये अन्य सूर्य्य की वा दीपक के देखने के लिये अन्य दीपक की आवश्यकता नहीं पड़ती, इसी तरह ईश्वरका ईश्वर नहीं होता। यदि कहो कि ईश्वर के होने में कोई प्रमाण नहीं क्योंकि ईश्वर का प्रत्यक्ष होता नहीं और बिना प्रत्यक्ष की व्याप्तिके अनुमान भी नहीं हो सकता तो उसे कैसे मानलें, क्योंकि तीन काल उसका प्रत्यक्ष नहीं होता न अनुमान प्रमाण संघटित बिना प्रत्यक्ष का व्याप्ति के होता है और अनुमान के बिना उपमान और शब्द प्रमाण हो ही नहीं सकता,इसलिये प्रमाण शून्य होने से ईश्वर की सिद्धि नहीं हो सकती और " लक्षण प्रमाणाभ्यां वस्तुसिद्धि ". के न्याय ऐसे ईश्वरका मानना ठीक नहीं, परन्तु हम पूछते हैं कि कहीं ऐसा नियम है कि जिस चीज का इन्द्रियों से ज्ञान न हो वह वस्तु नहीं होती, यदि कहो ऐसा ही होता है तो इन्द्रियों से न देखने से ईश्वर के होने से इनकार करती हो आप उन इन्द्रियों को किस प्रमाण से जानती हो, यदि आप कहें कि इन्द्रियों से तो आत्माश्रय दोष आता है अर्थात् आपही देखने की वस्तु और आप ही देखने का कारण नहीं हो सकता। यदि कहो दर्पण में अपनी आंख को देखते हैं जिससे आंख का होना आंख से ही देखती हैं जिससे आंख का होना आंख से ही जाना जाता, परन्तु यह कहना ठीक नहीं क्योंकि दर्पण के भीतर आंख नहीं है वरन् आंख का प्रतिबिम्ब है, इससे अनुमान से जानना तो मान सकते हैं, परन्तु यह कहना कि आंख को आंख से देखते हैं, ठीक नहीं। वरन्

आंख से आंख के प्रतिबिम्ब को देखकर उससे आंख के होने का अनुमान करते हैं, यह ठीक होगा। यहा तो अनुमान से ही होगया, परन्तु रसना इन्द्रिय अर्थात् चखने की शक्ति का किससे ज्ञान करोगी, न तो वह रूप है जो आंख से दीख पड़े न वह शब्द है जिसको कान से ज्ञान हो अर्थात् रसना इन्द्रियों का ज्ञान किसी इन्द्रिय से नहीं हो सकता। अब सोचिये कि जिन इन्द्रियों से न देखने के कारण तुम परमात्मा के होने से इनकार करती हो वह तुम्हारी इन्द्रियां ही प्रत्यक्ष नहीं, जिससे आपको सिद्धान्त स्वयं झूठा सिद्ध होता है। इसके अतिरिक्त जो मनुष्य ऐसे विचार रखतेहैं कि प्रत्यक्षही सब प्रमाणोंका मूलहै, जिस वस्तुका प्रत्यक्ष न हो उसका होना ठीक नहीं वह बहुत बड़ी भूल में हैं। क्योंकि प्रत्यक्ष के बिना अनुमान किसी वस्तु का ज्ञान हो ही नहीं सकता, और पदार्थ के एकही भागका प्रत्यक्ष होता है शेष का अनुमान से ज्ञान हुआ करता है, यदि केवल प्रत्यक्ष का ही प्रमाण मानलें तो किसी वस्तु का भी ज्ञान न होगा। बता आया हूं कि गुणी का कभी प्रत्यक्ष नहीं होता केवल गुण प्रत्यक्ष होते हैं, उसी के सम्बन्ध से गुणी का ज्ञान होता है। द्वितीय बहुतसी अवस्थायें ऐसी हैं जिनके कारण चीज़ों की उपस्थिति में भी उनका ज्ञान नहीं होता।

१-बहुत निकट होने से जैसे आंख के अति समीप लगा हुआ तृण वा आंख में पड़ा हुआ अञ्जन।

२-बहुत दूर होने से जैसे तिलहर बैठे हुये काशी।

३-बहुत सूक्ष्म होने से जैसे परमाणु।

४-बहुत बड़ा होने से जैसे हिमालय पर्वत।

५-बीच में व्यवधान (परदा) आजाने से जैसे आंख पर हाथ रखलेने से वा बीच में दीवार होने से दूसरी ओर की वस्तु दिखाई नहीं पड़ती।

६-इन्द्रियों में दोष आजाने से जैसे वधिर को गाना सुनाई नहीं देता।

७-सातवें मन के अन्य ओर लगे होने से जैसे ध्यान लिखने में लगा होने से पास होता हुआ गाना सुनाई नहीं देता।

इन सात अवस्थाओं में तो उपस्थित वस्तुओं का भी प्रत्यक्ष नहीं होता तो इन्द्रियों से प्रत्यक्ष न होने से ही ईश्वर के होने से इनकार ठीक नहीं, आप को भूख लगी है क्या आप ने भूख को देखा है, आप के पीड़ा होती है कृपा करके पीड़ा के रूप का मुझे भी तो दर्शन कराइये। ईश्वर के होने में मानसिक प्रत्यक्ष अनुमान शब्द सब प्रमाण उपस्थित हैं, पर यह गूढ़ विचार की बातें हैं, इस लिये विस्तार के भय से और आपका अमूल्य समय अधिक न लगजाने के कारण इतना ही लिखना उचित समझा गया, क्योंकि हम आप दोनों उस ईश्वर के माननेवाले उसके सेवक और उपासक और सहमत हैं और आप को "सपर्यगाच्छुक्रमकायमव्रणम्" और "अशब्दमस्पर्शमरूपमव्ययम्" मन्त्र भी स्मरण होंगे उनके अर्थ भी समझाये गये होंगे, उन में कैसा स्पष्ट बता-दिया है कि ईश्वर स्थूल, सूक्ष्म, कारण शरीरों से अलग है। इस पर पक्षपातियों को यह अर्थ करते सुना गया कि अकायम् में आके अर्थ नहीं के नहीं हैं वरन् हां वा निश्चय के हैं अर्थात् ईश्वर का शरीर है। जिन्हें अर्थ बताते यह नहीं सूझा कि यदि हम अकायम् के अर्थ शरीरवाला करते

हैं तो इसी मन्त्र में आया अपापविद्धम् के अर्थ पापवाला करना पड़ेंगे, जिस से ईश्वर पर कलंक आरोपण करने के पापके भागी बनेंगे, न जानें क्यों लोभवश ऐसे सत्यार्थों का अनर्थ कर पापभागी बनते हैं। आगे "अपाणिपादो जवनोग्रहीता" में तो नितान्त स्पष्ट कर दिया है कि परमेश्वर के हाथ नहीं परन्तु सब का रचन और ग्रहण करता है, परमेश्वर के पैर नहीं परन्तु सब से अधिक वेगवान्, चक्षु का गोलक नहीं तौ भी सब को देखता, कान नहीं पर सबकी बातें सुनता है और सारे संसार में परिपूर्ण होने से ही पुरुष कहाता है। इसी को गोस्वामी तुलसीदास ने अपनी चौपाइयों में यूँ वर्णन किया है—

बिन पग चले सुने बिन काना।
कर बिन कर्म करैं विधि नाना॥

आनन रहित सकल रस भोगी।
बिन वाणी वक्ता बड़ योगी॥

बिनतन परसु नैन बिन देखा।
गहे घ्राणबिन बास अशेषा॥

जिनका वही उपरोक्त अभिप्राय है, इसके अतिरिक्त तीन पदार्थ ईश्वर, जीव, प्रकृति अज निम्नमन्त्र में बताये हैं।

अजामेकां लोहित शुक्ल कृष्णां वह्वीः

प्रजासृजमानांसरूपाः । अजोह्येको जुषस्मणोऽ
नुशेते जहात्येनां भुक्त भोगामजोऽन्यः ॥

श्वेताश्वतरोपनिषद् । अ० ४ । मं० ५ ॥

यदि आप ईश्वर के अवतार के विषय में न भी ध्यान दें तो मैं गीता और रामायण से श्रीकृष्ण और श्रीरामचन्द्र के कहे हुये वाक्य आपकी भेंट करता हूं कि उनका अपना ईश्वर के विषय में क्या विचार था, देखिये श्रीकृष्ण जी अर्जुन से कहते हैं—

उत्तमः पुरुषस्त्वन्यः परमात्मेत्युदाहृतः ।
योलोकत्रयमा विश्यविभर्त्यव्ययईश्वरः ॥
तमेवशरणं गच्छ सर्वभावेन भारत ।
तत्प्रसादात्परांशान्ति स्थानं प्राप्स्यसि शाश्वतम्

गी० अ० १५ श्लो० १७ ॥

अर्थ-उत्तम पुरुष और है जिस को परमात्मा क नाम से उदाहृत किया गया है, जो तीनों लोक में व्याप्त है और अव्यय है, जिसको ईश्वर कहते हैं, सो तू अर्जुन अपने सम्पूर्ण भावों को लेकर उसके शरण जा, उसी के प्रसाद से तू परम शान्ति को प्राप्त हो सकता है, अन्यथा मुक्ति को नहीं पासकता, यह तो रहा उनका ईश्वर के विषय में विचार जिस में वह परमेश्वर को (अन्यः) दूसरा बताते और सर्वव्यापक सिद्ध करते हैं, आगे आप श्रीकृष्ण के उस वाक्य पर ध्यान दीजिये जो उन्होंने अपने विषय में लिखा है—

वहूनि मे व्यतीतानि जन्मानि तव चार्जुन ।
तान्यहं वेद सर्वाणि नत्वं वेत्थ परंतप ॥

गी० अ० ४ श्लो० ४ ॥

अर्थ-मेरे और तेरे अर्जुन वहुत से जन्म हुये हैं, मैं योगी होने के कारण उन्हें जानता हूं पर तू नहीं जानता, जब वह उधर ईश्वर को अजन्मा वताते हैं इधर अपना जन्म स्वीकार करते हैं, जिससे आप ही विचारें कि मरना और जन्मना जीव के लिये हो सकता है ईश्वर के लिये नहीं, अव रहे श्रीरामचन्द्र वह भी स्वयं वतला रहे हैं—

आत्मानं मानुषं मन्ये रामं दशरथात्मजम् ।
सोहं यस्ययतश्चाहं भगवान् तद् व्रवीतुमे ॥

अर्थात् मैं आत्मा हूं, मनुष्य हूं, दशरथ का पुत्र हूं, राम मेरा नाम है, इतना मैं अपने को जानता हूं और जो कुछ आप जानते हों वह मुझे वतावें ।

नोट-अपनी दशा को जैसा वह आप जान सकता है अन्य कोई भी जान नहीं सकता, तिसपर एक ऐसे सत्यवादी का वचन जो कभी झूंठ मुँह से नहीं कह सकता, इस के अतिरिक्त तुलसीकृत रामायण भी वताती है कि श्रीराम हनुमानजी के पूछने पर स्पष्ट वताते हैं कि-

कौशलेश दशरथ के जाये ।
हम पितु वचन मान वन आये ॥

राम नाम लक्ष्मण दोउ भाई ।
संग नारि सुकुमार सुहाई ॥
यहां हरी निश्चर वैदेही ।
खोजत विप्र फिरत हम तेही ॥

यह तो उनके मुख की बातें हैं, आप कहेंगी कि फिर उन्हें ईश्वर क्यों कहने लगे । क्या आज आप नहीं देखतीं कि स्वार्थी और खुशामदी जन साधारण मनुष्यों से यह कहते देखे जाते हैं कि आप हमारे गुसैय्यां, आप हमारे स्वामी हैं, आप हमारे अन्नदाता हैं, आप ऐसे हैं, आप वैसे हैं, न कहने योग्य शब्द कहने लगते हैं, श्रीमहाराज तो अपने समय में भी पुरुषोत्तम कहलाते थे तो उनके लिये उस समय जब क्षत्री राजों का राज था जो कुछ न बता देते थोड़ा था । अधिक आप पर एक कहानी से स्पष्ट प्रकट हो जावेगा कि जैसे एक पथिक बहुतेरा कहता रहा कि मैं पथिक हूं ईश्वर नहीं, परन्तु उसने एक न मानी और उसे ईश्वर ही बताता रहा और पीछा ही न छोड़ा, जब तक उससे अपने प्रश्न का उत्तर न ले लिया ।

कहानी ।

एक रास्ता चलते हुए पथिक ने एक मनुष्य को पेड़ पर चढ़े हुए जिस डाली पर बैठा था उसी को काटते हुए देख कर कह दिया कि अरे तू क्या गिरना चाहता है जो उसी शाखा को काट रहा है जिस पर बैठा है ? परन्तु उस समय तो उसने न माना, पथिक कुछ दूर चला कि वह डाली

समेत भूमि पर आ गिरा तब यह झट उठकर यह कहता हुआ (कि यह पथिक मनुष्य नहीं था वरन् परमेश्वर था तब तो आगे को होने वाली बात बता गया और जो कह गया वही हो गया) पथिक के पीछे दौड़ा और कहने लगा कि आप तो गुसैंय्यां हैं, आप साक्षात ईश्वर हैं। वह बेचारा बहुतेरा मना करता है कि मुझ जैसे साधारण पुरुष के लिये ऐसे शब्द उच्चारण करना घोर पाप है, पर कौन मानता है वह यही कहता साथ चला जाता है कि भविष्य की बात परमेश्वर के अतिरिक्त और कौन बता सकता है, जब वह दूर तक ऐसा कहता चला गया तब उसने कहा कि आपका प्रयोजन क्या है क्यों इतना कष्ट उठाते मेरे पीछे चलरहे हो, तब कहा कि अच्छा मुझे यह बता दो कि मैं किस दिन मरूंगा, पथिक कहता है कि मैं नहीं बता सकता, वह ज्यों २ मना करता यह उतनी ही अधिक लल्लो पत्तो करता जाता और कहता कि बड़े भाग से आज मिल पाये; अबतो बिना पूछे कदापि आपका पीछा नहीं छोडूंगा, अन्त को उस बेचारे ने यह कहकर कि तुम सात दिन में मर जाओगे अपना पीछा छुड़ाया उसने कहा कि सप्त दिवस होते हैं इन्हीं दिनों में से किसी न किसी दिन यह भी मर जावेगा, पर उसने लौट कर अपने नगर में प्रसिद्ध कर दिया कि मुझे साक्षात् भगवान के दर्शन हुए थे वह मुझे बता गये कि तू सातवें दिन मर जावेगा और सातवें दिन का पैंड़ा हेरने लगा, जब सातवां दिन आया इसने कहा मैं मर गया मुझे ले चलो, भला उसे कौन बोलते और चलते फिरते हुये को लेजाता, अन्त को यह कुली करके स्वयं ही श्मशान की की भूमि में जा पहुंचा और गढ़ा खुदाकर पैर लटका कर

बैठ रहा अर्धरात्रि को उधर होकर कुछ पुरुष निकले, उससे पूछा कि कौन, उत्तर दिया कि हम हैं मुरदे तब उन्हों ने कहा कि मुर्दे भी बोलते हैं? कहा फिर हम हैं भी तो दिन के मुर्दे, क्या तुमको नहीं मालूम कि दिन के मुर्दे बोलते और बातें करते हैं।

इसके कथन से यह अभिप्राय है कि जिस प्रकार वह रूख चढ़ा पुरुष उस पथिक के वार २ मना करते हुये भी उसको ईश्वर वताता रहा और यहां तक नौवत पहुंचाई कि जीते हुये मरघट में पैर लटका कर वैठ रहा, पर उसने पथिक की ओर से ईश्वर होने का विश्वास तनिक भी नहीं हटाया; इसी प्रकार श्री रामचन्द्रजी और श्री कृष्णजी स्वयं मना करते हुये भी उन्हें ईश्वर वता दिया गया और ईश्वर जो आकाशवत् सर्वत्र परिपूर्ण हो आकाश से भी सूक्ष्म है और जैसे आकाश का कोई प्रतिविम्ब नहीं पड़ता और न कोई उसका चित्र खींच सकता है वैसे ही परमेश्वर का कोई फोटू वा चित्र नहीं वना सकता। सब जानते हैं कि समुद्र लोटे में नहीं समा सकता तथापि मूर्खों ने समुद्रको लोटे में भरने के समान परमेश्वर को एकस्थानी वताया और उसका चित्र बना लोक हँसाई की है, जिसके कारण नानाप्रकार के कष्टों को सहना पड़ा, पर उनको ईश्वर वताना नहीं छोड़ा। माताओ! इससे कहीं यह न समझ जाइये कि श्रीकृष्ण वा श्रीरामचन्द्रजी की प्रतिष्ठा मेरी दृष्टि में कुछ कम है, कदापि नहीं, मैं उन्हें अपना बड़ा माननीय प्रतिष्ठित शिरमौर समझता हूं पर शोक तो है उन भोले भाले भाइयों पर कि जिन के मस्तक बहुत दिन विचारशून्य पड़े रहने से पड़ी रहनेवाली वस्तु के समान बोसीदा निकम्मे होगये हैं, जिन्हें सोचने

और विचारने का ज्ञानही न रहा, जिन्हें अपना हितैषी और शत्रु नहीं जानपड़ता, निन्दा करने वालों वरन् पूर्वप्रतिष्ठित पुरुषाओं का नामतक मिटानेवालों से जो वास्तविक उनके शत्रु हैं जिनका मुख्य प्रयत्न यह है कि वह आपकी उन्नति में बाधक होकर जैसा का तैसाही रहने दें, उनको अपना हितैषी जानते हैं और बड़े २ पढ़े लिखे उनकी टेढ़ी और कपटयुक्त चालों को नहीं समझते तो आप साधारण स्त्रियां क्या समझ सकती हैं। यह बात सब स्त्री पुरुष समझते हैं कि दो विरोधी पदार्थ एक समय में एक स्थानपर नहीं रहते, एक समय में रात और दिन दोनों नहीं होते न दोनों परस्पर विरोध रखने वाली बातें सत्य होती हैं अर्थात् यह सत्य नहीं होसकता कि ईश्वर है भी और नहीं भी है, दो में एक ही बात सत्य होगी, मिसेज़ ऐनीबेसेण्ट आदि जिन्हें देवी बसन्ती बतलाया जाता है उन्होंने बड़े बड़े पढ़े लिखों को अपनी ललित और मधुर वक्तृता शक्ति से अपने पर ऐसा मोहित किया है और चेला बनाया है कि उन्हों ने साधारण बातों में भी बुद्धि से विचारना छोड़ दिया है। देखिये उनके मत में एक अनीश्वरवादी, दूसरा ईश्वरवादी दोनों अपने मतको मानते हुये मेम्बर बन सकते हैं उन के यहां एक मांस खानेवाला दूसरा न खानेवाला दोनों ही मेम्बर होसकते हैं, परस्पर विरोध का कुछ विचार नहीं, गङ्गागये सो गङ्गादास यमुना गये सो यमुनादास, शेम और शोक के स्थान पर चियर्ज़ देते और तालियां बजाते हैं। वह देवी हमारे माननीय आदर योग्य योगीश्वर और मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण और श्रीराम की हस्ती (अस्तित्व) ही मिटा रही हैं, पर इनका उस ओर किञ्चित् ध्यान

आकर्षित नहीं होता। गङ्गा का नहाना कहां रहेगा जब वह केवल अलङ्कार बता रही हैं, वह उससे पृथक गङ्गा और कुछ नहीं बताती। आप पूछेंगी कि किस तरह, सुनिये गङ्गा के विषय में हमारा तो यह विचार है कि गङ्गा का जल भारतवर्ष के ही नहीं वरन् संसार भर के जलों से शुद्ध और पवित्र जल है। लण्डन के डाक्टरों की साक्षी है कि टेम्स से तीन सौ गुणा गङ्गा का जल उत्तम है, उस में नित्य नहाने, जल पान करने से शुद्ध जल के सेवन से लाभ प्राप्त होसकते हैं और शारीरिक रोग निवृत्त हो सकते हैं। पर मन की शुद्धि सत्य से होसकती है, जल से नहीं। इस विचार से गङ्गा मत नहाओ कि वह पाप दूर कर देगी, पाप तो पाप कर्मों के न करने और शुभ कर्मों के करने से ही दूर हो सकेंगे, जिस को सभी बुद्धिमान् मानते हैं कि कोई मनुष्य चोरी कर गङ्गा में नहा आवे तो वह नहाना उसके दण्ड पाने को बचा नहीं सकता। आज इसी झूंठे विश्वास से कि गङ्गा पाप मोचनी है, स्वयं गङ्गा की छाती पर जाकर घोर पाप करते हैं।

देवी वसन्ती ने अपने एक व्याख्यान में गङ्गा के विषय में प्रकट किया कि गङ्गा के अर्थ ज्ञान और शिव के अर्थ कल्याण के हैं। जब ज्ञान होता है तभी कल्याण होता है। यह समझकर फिर कौन गङ्गा नहाने जावेगा। इधर तो देवी वसन्तीजी ने गङ्गा पर कृपा की उधर आप के पंडितो ने वर्षों पहले लिखते २ अन्त को संवत् १९५५ विक्रमी में गङ्गा का अन्त्येष्टि संस्कार कर दिया, पर दोष आर्यों पर आरोपण किया जाता है। यह तो एक बीच में बात आगई। अब आप ध्यान दृष्टि से देखिये कि हम श्रीरामचन्द्रजी को मर्य्यादा पुरुषोत्तम आप की भांति मानते हैं उनके पगों पर पग धर

कर चलनाही जीवनोद्धार समझते हैं। परन्तु उपरोक्त देवी ने उन के विषय में भी मनगढ़त अध्यात्म अर्थ यों गढ़ा है कि मत समझो रामचन्द्र दशरथ के पुत्र थे वरन् राम से अभिप्राय जीवात्मा और सीता से बुद्धि और रावण से काम से है। जब जीवात्मा बुद्धि द्वारा काम को मारता है तब परमेश्वर को प्राप्त करता है। आप का राम से ईश्वर और सीता से जीव, रावण से इन्द्रियों का तात्पर्य्य है। जब जीव इन्द्रियों को रुलाता है तब ईश्वर को प्राप्त करता है। अब आप ही समझें कि राम, सीतादि ऐतिहासिक पुरुष न रहे तो फिर सारी रामायण और दशरथादि की कहानियां झूठी हुई वा नहीं। इसी प्रकार इन्द्रियों को गोपी, कृष्ण को ईश्वर, नदी को तमोगुण, धर्म को वस्त्र बतलाया है। भला इन शब्दों के ऐसे अर्थ भी किसी पुराने कोष में हैं और ऐसे अर्थ प्रथम भी किसी ने माने हैं। यह सम्पूर्ण बातें आर्य्य समाज के दवाव पड़ने और ठीक २ उत्तर न देसकने से गढ़ी गई हैं, ऐसा ही मीन आदि अवतारों के विषय में भी लिखा है। मीन अवतार विष्णु के असुर जिस का नाम सिंहासुर था जो वेदों को लेगया था उसके नाश करने के लिये मछली का शरीर धारण किया, यह बात पुराणों में लिखी है। इसका अध्यात्म अर्थ यह है कि मछली से तात्पर्य्य जीव से है जो कि ब्रह्मरूपी समुद्र में रहता है, जीवन, मृत्यु का भय वैदिक मसाइल को ख़तरे में डालने वाला है, संसार ही सिंहासुर है, जब ईश्वर का ज्ञान होता है तब असुर तबाह होता है तभी वेदों की माहियत (वास्तविक दशा) खुल जाती है।

नोट—सोचिये कि किसी संस्कृत डिक्शनरी (कोष)

में यह प्रमाण मिलसकता है कि यह अलंकार है वा यह अर्थ दिखाये जा सकेत हैं।

यह बताना अधिक लाभदायक जानकर बता दिया गया, अब आप फिर उसी जगह पर आजाइये। सब अवतारों में जितने भी माने जाते हैं सबसे मुख्य दो ही अवतार राम, कृष्ण के हैं जिनका यदि आप ठीक पता लगना चाहो तो रामायण, महाभारत से ही लगा सकती हो, किसी अन्य ग्रन्थ की आवश्यकता नहीं। आप जानती हैं कि उपास्य, उपासक दो शब्द हैं जिन्हें दूसरी भाषा में आबिदमाबूद कहते हैं, सेव्य, सेवक पृथक होते हैं अर्थात् एक वह जो सेवा वा सन्ध्या करता है दूसरा वह जिसकी सेवा वा सन्ध्या की जाती है, अब आप विचारिये कि यह दोनों उपास्य थे वा उपासक। श्रीकृष्ण महाराज ने तो स्पष्ट ही अर्जुन से संकेत किया है कि तुम उसकी शरण जाओ जो तीनों लोकों में व्याप्त होरहा है जिसको परमात्मा कहते हैं। और आप को अर्जुन ने सन्ध्योपासना करते देखा था जैसा कि महाभारत से विदित है।

यामभात्रार्द्ध शेषायां दध्यद् ब्रह्म सनातनम्।

श्रीकृष्ण जी पहरात्रि शेष रहे से सनातन ब्रह्मका ध्यान करते थे वाल्मीकी रामायण में लिखा है जिस में से दो श्लोक पीछे एक पत्र में भी लिख चुका हूं परन्तु यहां भी पुनः लिखता हूं जिससे स्पष्ट प्रकट है कि श्रीरामचन्द्रजी उपासक थे न कि उपास्य।

कौशल्या सुप्रजाराम, पूर्वा संध्या प्रवर्तते।
उत्तिष्ठ नरशार्दूल, कर्तव्यं दैवमाह्निकम्॥

अर्थ—विश्वामित्र जी कहते हैं कि हे कौशिल्यापुत्र नरों में सिंहके समान पूर्व सन्ध्या का समय आगया उठो और सन्ध्या हवन नित्यकर्म करो।

तस्यर्षेः परमोदारं वचः श्रुत्वा नरोत्तमौ।
स्नात्वा कृतोदकौ वीरौ जपेकः परमं जपम्॥

श्रीरामचन्द्र जी नरों में उत्तम ऋषि विश्वामित्र परम उदार के वचन सुन करके स्नान और आचमन कर परम जप अर्थात् गायत्री का जप करते हैं।

कुमारावपितां रात्रि मुषित्वा सुसमाहितौ।
प्रभातकाले चोत्थाय पूर्वसंध्यामुपासते॥

दोनों कुमार भी रात्रि में शयन करके समाधान हुये प्रातःकाल उठकर पूर्व सन्ध्योपासना करते हैं।

प्रशुचीम परमं जाप्यं समाप्यनियमनानि च।
हुताग्निहोत्रमासीनं विश्वामित्रमवन्दताम्॥

वही कुमार नियमपूर्वक परम पवित्र गायत्री के जप और अग्निहोत्र किये हुये विश्वामित्र को वन्दना करते हैं।

यह तो रही वाल्मीकि रामायण, इसी प्रकार और भी कई जगह लिखा है कि लक्ष्मण जी जल लाये फिर आचमन करके तीनों रामलक्ष्मण सीता ने सन्ध्या की, अब तुलसीकृत रामायण जिसे आपने भी अवश्य पढ़ा ही होगा।

प्रात समय मुनि आयसु पाई।
सन्ध्या करन चले दोउ भाई॥

पुरजन कर गुहार घर आये।
रघुवर संध्या करन सिधाये॥

एक स्थान पर श्रीरामचन्द्रजी का मन संध्या करते समय और ही ओर जाना लिखा है, मुझे यहां उस से कुछ प्रयोजन नहीं, इसका उत्तर बाबा तुलसीदास से लीजिये, मैं तो यहां यह सिद्धकरता हूं कि श्री महाराज सन्ध्या प्रातः सायं किया करते थे, वह लिखते हैं।

विगत दिवस मुनि आयसु पाई।
सन्ध्या करन चले दोऊ भाई॥
प्राची दिशससि उग्यो सुहावा।
सिय मुखसरिस देख सुखपावा॥
बहुर विचार कीन्ह मन माहीं।
सीय वदन सम हिमकर नाहीं॥

॥ दोहा ॥

जन्म सिन्धु पुनि बंधु विष,दिन मलीन सकलंक।
सियमुख समता पाव किम, चन्द्र वापुरोरंक॥

वैदेही मुख पटवर दीन्हे।
होय दोष बड़ अनुचित कीन्हे॥

आप को इन प्रमाणों में नर शार्दूल नरोत्तम शब्द भी स्पष्ट मिले और उन का उपासक होना भी विदित हो गया मनुष्यों की भांति उनका भी मन संध्या समय इत उत भटक जाना भी प्रकट होगया। आप और अधिक क्या प्रमाण चाहती हैं, अब आप इस परिणाम पर अवश्य पहुँच गई होंगी कि परमात्मा कोई और है जिसकी वह उपासना करते थे, उसी की हमें भी करनी चाहिये। एक जगह पर जहां रावण रथ पर सवार होकर आया है और विभीषण ने कहा है कि आप इसे विरथ कैसे जीतेंगे, यहां पर जो रामचन्द्र ने रथ बताया है उसे तो हमने दशहरा के वर्णन में लिखा है, वहां पर भी बताया है कि—

ईश भजन सारथी सुजाना, व्रत चर्म
संतोष कृपाणा।

मैं ऐसे रथपर चढ़ा हुआ हूं कि जिसका ईश्वर भजन रूपी सारथी है अर्थात् मैं ईश्वर की आज्ञा माननेवाला, न्याय से पग न हटाने वाला, ईश्वर का उपासक और ईश्वर विश्वासी हूं। यदि कहो कि औरों को सन्ध्या आदि का दिखाना था, तो यह बात आप के मुख से भली लगती है और आप ऐसे महान् पुरुष को सन्ध्या दिखावे के लिये करनेवाला बताते हैं जो शोक का स्थान है। यह भी एकान्त में बैठकर विचारिये कि जब श्रीरामचन्द्र और श्री कृष्ण का जन्म नहीं हुआ था तब भी कोई सृष्टि का कर्ता, धर्ता, हर्ता था वा नहीं, और उनके शरीर को किस ने बनाया। आप कह उठेंगी कि उन्हों ने अपने शरीर को आप ही बना लिया तो मैं कहूंगा कि यह शरीर बनाने से प्रथम तो शरीरवाला

नहीं था, नहीं तो शरीर बनानेवाला कोई अन्य मानना पड़ेगा उसी को हम मानते हैं। यह भी नियम है कि कोई अपने कन्धे पर आप ही नहीं चढ़ सकता न आप बाप और आप ही बेटा हो सकता है। इस के अतिरिक्त यह भी तो सोचिये कि ऐसा कौनसा काम है जो विना जन्म लिये नहीं करसता। कहेंगी कि रावण कंसादि को कैसे मारता। आप को बहिकाया गया है। यह बड़ी मोटी बात है। देखो किसी वस्तु का बनाना कठिन है वा बिगड़ना। सब एक स्वर होकर कह उठोगी कि बनाना। तो जब रावण कंस के शरीरों को उसने विना अवतार लिये बना दिया, तो मारने के लिये अवतार लेना कितनी मूर्खता है। परमेश्वर हथोड़ा बसूली कन्नी रुखानी लेकर नहीं बनाता, न कुदार फावड़ा लेकर गिराता और बिगाड़ता है, न वह सब का प्रबन्ध छोड़ कर किसी एक के पीछे पड़ जाता है, वह तो एक पल में अपना अनन्त स्वाभाविक बल और क्रियारूप शक्ति और नियम से करोड़ों को बनाता और बिगाड़ता है। देखो इस समय भी लाखों मनुष्य करोड़ों पशुपक्षी अर्बो कीट पतङ्गादिक के अपने २ नियम से उन के गर्भ में बच्चे अण्डे आदि बन रहे हैं, उस की महिमा अपार है, स्त्रियां सवारी में रेल मे जा रही हैं, पखेरू गगन मण्डल में उड़ रहे हैं, परन्तु परमात्मा बनाये ही जाते हैं, इस लिये कि वह अपरिमित सर्वव्यापक सर्वशक्तिमान् है। कोई २ नास्तिकादि यह भी कहते हैं कि प्रत्येक के शरीर उन के माता पिता बनाते हैं, इस में ईश्वर का क्या है यह ठीक नहीं, क्योंकि यदि माता पिता बनानेवाले होते तो बालक के रोगग्रस्त होने और मरने पर आप ही चंगा और जीवित कर लेते और रोते कदापि नहीं। आंख के जाते रहने पर

दूसरी आंख बना कर लगा देते, सो आंख बनाना तो एक ओर रहा कोई पुरुष सृष्टि की आदि से लेकर आज तक एक सरसों का दाना तक तो बना ही न सका इस से जानलो कि जो गर्भ में बच्चे और बीजों को बनाता है वही ईश्वर है। आज ईश्वर को हम इसी लिये मान रहे हैं कि सृष्टि की आदि से लेकर अन्त तक उस के सारे काम नियमानुसार होते हैं,उस की रचना विचित्र है,उसकी सब रंगरेज़ोंने नक़ल उतारी है, पर सब रंगतें कच्ची हैं धुलने से जाती रहती हैं, पर उस के रंगे फूल पत्तों पर लाखों मन वर्षा का पानी पड़ने से भी नहीं धुलते न रंग बदलते हैं जो सूक्ष्म से भी सूक्ष्म है। आपने कभी सुनार की दुकान पर जाकर देखा है मोटी स्थूल वस्तुओं कण्डे आदि के उठाने के बड़े २ चिमटे होते हैं, पतली छोटी चीज़ों के पकड़ने की बहुत छोटी चिमिटियां होती हैं, आपने गृहों के छिद्रों में होकर आते हुए सूर्य के प्रकाश में धूल के टुकड़ों जिनको त्रिसरेणु और ज़र्रा भी कहते हैं देखा होगा, बालक उन्हें मुट्ठी बन्द करके पकड़ते हैं फिर खोल करके देखते कि मुट्ठी में आगये वा नहीं तो कुछ दृष्टि नहीं आता, त्रिसरेणु से ३६० वां भाग परमाणु है, उनको पकड़ कर वही सृष्टि बना सकता है। जो उन से भी सूक्ष्म हो, परमात्मा ही सब से सूक्ष्म लतीफ़तर हैं, इस लिये उन्हें पकड़ कर सृष्टि बनाते हैं। क्योंकि बताया है (नियतावैव समूहत्वं साकारत्वं) नियत अवैव (मुफ़रिद) जब मिलजाते हैं अर्थात् सावैव (मुरक्कब) होजाते हैं तो साकार कहलाते हैं। आप कहेंगी कि बिना हाथ पांव के वह परमात्मा कैसे पकड़ सकता है, निराकार का तो सृष्टि आदि बनालेना समझ में नहीं आता। इस बात को जब आप

सोचेंगी तो ज्ञात हो जावेगा कि निराकार ही बना सकता है साकार बना ही नहीं सकता। आप किसी वस्तु को हाथ से उठाती हैं, पर हाथको काहे से उठाती हैं, सरको किस से हिलाती हैं, इतने भारी अपने शरीर को जिसे मरने पर चार आदमी उठावेंगे किस के द्वारा लिये हुए फिरती हो, बताओ तो सही कि कौन साकार इन्हें उठाये फिरता है। कहोगी कि जीवात्मा जो निराकार और परमाणु से सूक्ष्म है, उसके निकल जाने पर फिर साकार हाथ रहता हुआ तृण को भी नहीं उठा सकता न सर हिला सकता है। जिस से सिद्ध है। कि निराकार ही सब काम कर सकता है साकर स्वयं कुछ नहीं कर सकता, हां साकार में निराकार की सहायता से काम करने की शक्ति आती है, मानों साकार निराकार का साधन वा करण है।

परमात्मा सर्वव्यापक हैं, इस लिये वह सर्वत्र रचना कर रहे हैं और सर्वव्यापक दो नहीं होते क्योंकि एक ही सी दो चीजें एक ही वस्तु में प्रवेश नहीं करसक्तीं; यह न्याय की बात है। आप "अणोरणीयान् महतो महीयान्" मंत्र की सूचना देकर बतावेंगी वह ईश्वर छोटे से छोटा और बड़े से बड़ा है जितना चाहे छोटा बन जावे जितना चाहे बड़ा, यदि आपका कथन ठीक होता तो वेदमन्त्र में एक ही जगह परस्पर विरोध गुणवालों का इकट्ठा होना न बन सकता। इस के उत्तर में मैं निवेदन करता हूँ कि आप के बताये हुये मंत्र में विरोध नहीं "अणोरणीयान्" के अर्थ छोटे से छोटा नहीं हैं वरन् सूक्ष्म से सूक्ष्म हैं, इस लिये विरोध नहीं, विद्या की बात कभी झूंठी नहीं होती, एक ही पुरुष अंधा और सूझता दोनों हो, यह नहीं होसकता न एक ही समय में

दिन और रात दोनों हो सकते हैं, इसीलिये ही जो परमात्मा निराकार है वह साकार कभी नहीं हो सकता। और निराकार तो सारे सनातनधर्मी मानते ही हैं, बहुतेरी जगह लिखा भी है जैसा किः—

निराकार ओंकार मूलं तुरीयं।
गिराज्ञानगोतीत ईशं गिरीषम् ॥

इस में भी हमारी प्रतिज्ञा कि ईश्वर निराकार है, सब को स्वीकार है अब रही यह बात, कि साकार भी है वह उपरोक्त हेतु और उदाहरणों के सन्मुख स्थिर नहीं रह सकी और सूर्य्य में प्रकाश भी है और अन्धकार भी, यह तीनों काल में असम्भव है। इसी प्रकार ईश्वर निराकार भी है और साकार भी. असम्भव है।

यदि कहो कि हमारा ध्यान निराकार पर कैसे जम सकता है, तो इस के उत्तर में मैं निवेदन करूंगा कि यह तो बताइये कि आपका मन साकार पर ही कब स्थिर हुआ है, मन जिस से ध्यान करती हो वह तो अति चञ्चल है थोड़े ही काल पल क्षण में सैंकड़ों कोस जाकर लौट आता है तो वह किसी मूर्तिमान पदार्थ पर कैसे ठहर सक्ता है, मन का स्वभाव है कि इसने किसी पदार्थ के अन्त का पता लगाया नहीं। अर्जुन ने भी श्रीकृष्ण से इसी विषय में प्रश्न किया है जैसा कि—

चञ्चलं हि मनः कृष्णः प्रमाथि बलवद्दृढम्।
तस्याहं निग्रहं मन्ये वायोरिव सुदुष्कृतम् ॥

गी० अ ६। श्लो० ३४॥

हे कृष्ण, मन बड़ा चंचल है, इसका निग्रह करना वायु के सदृश कठिन है, वहां पर श्रीकृष्ण ने उत्तर दिया है—

असंशयं महाबाहो मनोदुर्निग्रहं चलम् ।
अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येण च गृह्यते ॥

गी० अ० ६ । श्लो० ३५ ॥

कहा कि अर्जुन, इस में किंचित् सन्देह नहीं कि मन बड़ा चंचल है. पर यह वैराग्य और अभ्यास से निग्रह किया जा सकता है, चाहे जैसा कोई चंचल मनुष्य नट आदि क्यों न हो उस से कह दिया जावे कि अमुक खम्भे पर बराबर चढ़े उतरे वह अवश्य थक जावेगा और स्थिर हो के बैठ जावेगा । इसी भांति मन जब प्राणायामरूपी खम्भ पर निरन्तर चढ़ता और उतरता रहता है तो आप थक कर स्थिर हो जाता है । दूसरे मन परमात्मा का अन्त कभी लगा नहीं सकता, वहां इस की कूदफांद बन्द होजाती है आप ही स्थिर हो जाता है, जिस से निश्चय पूर्वक समझ लीजिये कि मन को रोकने वाली शक्ति केवल एक निराकार, अनन्त, परमात्मा में ही है, अन्य में नहीं । ध्यान के लिये स्पष्ट ही लिखा है "ध्यानं निर्विषयं मनः" जहां मन निर्विषयी हो जाता है वह ध्यान है । जीवात्मा बाहर प्रकृति को देखता है जो अशान्ति और दुःख का मूल है, जिसका जितना २ सम्बन्ध बढ़ता जाता है उतना ही परमात्मा से दूर होता जाता है । जब इस की भीतरी वृत्ति होती है तब ही अपने भीतर व्यापक परमात्मा को जो सुख स्वरूप है देखकर आनन्द प्राप्त करता है, जिस के लिये कहा भी है ।

आंख कान मुँह मूंद के, नाम निरञ्जन लेय।
भीतर के पट जब खुलें, बाहिर के पट देय॥

यदि कोई धोखा दे कि बाहर भी देखकर ध्यान कर सकता है, यहां भी वही भी का झगड़ा खड़ा करें तो उनको बतादो कि जो बाहर की ओर होता है वह विषय कहाता है ध्यान नहीं, महाराज कृष्ण ने इस का निर्णय गीता में कर दिया है, जैसा कि—

ध्यायतो विषयान्पुंसः संगस्तेषूपजायते।
संगात्सञ्जायते कामः कामात् क्रोधोभिजायते॥
क्रोधाद्भवति सम्मोहः सम्मोहात्स्मृति विभ्रमः।
स्मृतिभ्रंशाद्बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात्प्रणश्यति॥

गी० अ० २। श्लो० ६२॥

अर्थ—जहां विषयों का ध्यान हुआ अर्थात् इन्द्रियों का विषयों से सम्बन्ध हुआ तुर्त संग की इच्छा होती है, संग होने से काम उत्पन्न होता है काम से फिर क्रोध होता है, क्रोध से मोह, मोह से स्मृति का नाश हो जाता है, स्मृति के नाश से बुद्धि का नाश हो जाता है और बुद्धि के जाते रहने से फिर उसका भी नाश हो जाता है।

यही हमारी अधोगति का कारण हुआ, जो विषयों को ध्यान समझा और अपना नाश कर बैठे।

इस पर भी एक ओर से और एक प्रश्न उठता है कि व्याप्य के पूजने से व्यापक की पूजा होजाती है, क्योंकि हम

नित्य देखते हैं जब किसी पुरुष के पैर सहलाते वा दबाते हैं तो पैर में व्यापक जीवात्मा को सुख मिलता है, उङ्गली के सहलाने से आत्मा ही सुख लाभ करता है, इस से सिद्ध है कि जड़ वस्तु के पूजने से उस के अन्तर व्यापक परमात्मा की पूजा होती है और वह भी उसी भांति प्रसन्न होता है जैसे जीवात्मा।

इस का उत्तर यह है कि यदि यह आपका उदाहरण ठीक मान लें तो जहां पर उँगली के सहलाने से सुख मिलता है तो काटने से दुःख भी मिलता है, तो जिस वस्तु के पूजन से आप परमात्मा को सुख पहुंचना बताती हो उसी के टूट जाने से दुःख पहुंचना भी मानना पड़ेगा, फिर तो परमात्मा गाड़ी के चलने, आग जलने, रगड़ने, काटने, छेदने, चलने फिरने आदि से अपार दुःखों का भण्डार बन जावेगा, परन्तु परमात्मा क्लेश से अलग है जैसा कि—

'क्लेशकर्मविपाकाशयैरपरामृष्टः विशेष ईश्वरः'

योग ६० ॥

अब आप यह शंका अवश्य करेंगी कि फिर ईश्वर निर्गुण और सगुण है वा नहीं, मैं बताऊंगा कि अवश्य है, तो आप कह उठेंगी कि जो निर्गुण है वही निराकार, जो सगुण है वह साकार है। माताजी, निर्गुण और सगुण से निराकार साकार से कोई सम्बन्ध नहीं है, निराकार के अर्थ केवल मुफरद के हैं और साकार के मूर्त्तिमान सावैव मुरक्कब के हैं, पर (गण्यन्ते येते गणवा यैर्गणयन्ति ते गुणाः यो गुणेभ्यो निर्गतः स निर्गुण ईश्वरः) जितने सत्व रजस् तमः रूप रस स्पर्श गन्धादि जड़ के गुण अविद्या अल्पज्ञता राग

द्वेष और अविद्यादि पञ्चक्लेश जीव के गुण हैं उन से जो पृथक है, इस से परमात्मा निर्गुण है और 'यो गुण सह वर्त्तते स सगुणः" जो सबका ज्ञान सर्व सुख पवित्रता अनन्त बलादि गुणों से सगुण और इच्छादि गुणों से रहित होने से निर्गुण है, वैसे ही जगत् और जीव के गुणों से पृथक होने से परमेश्वर निर्गुण और सर्वज्ञादि गुणों सहित होने से सगुण है, अर्थात् ऐसा कोई भी पदार्थ नहीं जो सगुणता और निर्गुता से पृथक हो। जैसे चेतन के गुणों से पृथक होने से जड़ पदार्थ निगुर्ण और अपने गुणों के सहित होने से सगुण, वैसे ही जड़ के गुणों से पृथक होने से जीव निर्गुण और इच्छादि अपने गुणों से सहित होने से सगुण, ऐसे ही परमेश्वर में भी समझना चाहिये। यह कभी न समझो कि साकार परमेश्वर इसलिये है कि सगुण है, इसलिये आप सदा उस एक परमात्मा जो सर्वव्यापक है सब भूतात्माओं के कर्मों का साक्षी होकर फल दाता है, जो केवल और निर्गुण है उसी की उपासना सदा करती रहो जिससे सदैव सुखी और मोक्ष की भागी रहो। याद रक्खो-

एकोदेवः सर्वभूतेषु गूढः सर्वव्यापी सर्वभूतान्तरात्मा।

कर्माध्यक्षः सर्वभूतादि वासः साक्षी चेता केवलो निर्गुणश्च॥

श्वेताश्वतरोपनिषद्। अध्याय ६ मं० ११॥

जिस परमात्मा ने शरीर में अद्भुत ज्ञान पूर्वक सृष्टि

रची है, जिसको विद्वान् लोग देख कर आश्चर्य मानते हैं, देखो तो भीतर हाड़ों का जोड़, नाड़ियों का बन्धन, मांस का लेपन, चमड़ी का ढक्कन, प्लीहा, यकृत, फेफड़ा पंखा, कला का स्थापन, जीव संयोजन, शिरोरूप मूल रचन, लोम नखा दिकास्थापन, आंख की अतीव सूक्ष्म शिरा का तारवत् ग्रन्थन, इन्द्रियों के मार्गों का प्रकाश जीव के जागृत, स्वप्न, सुषुप्ति अवस्था के भोगने के लिये स्थान विशेषों का निर्माण, सब धातुओं का विभागकरण कला कौशल स्थानादि अद्भुत सृष्टि को बनाया है।

आप उस के अतिरिक्त किसी की पूजा न करें, तुलसी दास ने भी कहा है, भरतजी रामचन्द्र के सन्मुख शपथ खाते हैं—

जो परिहर हरि हर चरन, भजें भूत गन घोर।
उनकी गति मोहिं देउ शिव, जो यह सम्मतिमोर॥

अर्थात् जो ईश्वर को छोड़कर किसी मरे हुये वा भूतों से बने पदार्थों को भजता वा सेवा करता है उस अधोगति को प्राप्त हों यदि मेरी सम्मति आप के बनोवास के लिये हो।

नं० ३ स्वामी दयानन्द और आर्य्यसमाज।

प्यारी बहिनो! सृष्टि की आदि से आज पर्य्यन्त यह

प्रवाह चला आता है कि जब २ अधर्म बढ़ता है, लोग अधिक पापी, दुराचारी होजाते हैं वैदिक धर्म की मर्य्यादा भ्रष्ट होने लगती है, अविद्या अन्धकार के बादल वेदरूपी सूर्य्य पर आच्छादित होने लगते हैं, संसारीजन दुःखों से पीड़ित होकर हाहाकार मचाते हैं, उस समय परमात्मा जो दयालु हैं एक न एक ऐसी शक्ति संसार में भेजते हैं कि वह दुःखों से बचाये और शान्ति का मार्ग बतलाये। जब राजा होकर नहीं २ वेदों, दर्शनों का पण्डित होकर रावण हिंसा मांस मदिरा का सेवन और अत्याचार करने लगा, ब्रह्मचारिणी, तपस्विनी "वेदवती" को कामातुर होकर खींचने लगा, तब क्या आवश्यकता न थी कि श्रीरामचन्द्र महाराज आते और ऐसे पापी को जिसे अपने बल का बड़ा घमण्ड था जो हवा, पानी, आग से अंग्रेज़ों की भांति यान और फुहारे आदि कलों द्वार काम लेने के कारण अहंकार में चूर था उसे नीचा दिखाते और उसका अहंकार तुड़ा अन्यों को पापों से बचाते। ऐसे ही जब कंस जैसा पापी जिसने ऐसे महाघोर पाप का प्रचार कर रक्खा था कि भानजी, भानजों का जो पुत्री और पुत्र के समान होते हैं वध करा देता था, जिस के अन्य दुष्टकर्मों की गिन्ती ही न थी, ऐसे समय में क्या कृष्ण जैसे धर्मरक्षक दुष्टविदारक के आने की आवश्यकता न थी जो उसे मार, संसार को दुःखों से छुड़ाते। इसी प्रकार वाम मार्ग के हटाने के लिये गौतम और नास्तिकता के मिटाने के लिये स्वामी शंकराचार्य्य के आने की परम आवश्यकता थी, वे आये और अपना कर्त्तव्य पूरा कर गये (यथा राजा तथा प्रजा) राजा का प्रभाव प्रजा पर पड़ता है, जब हिन्दुओं के रक्त से गारे सनाये जाते थे,

उन के शिखा सूत्र उतारे जाते थे, कठिन दुराचार अधर्म छारहा था, स्त्रियां धर्म बचाने के निमित्त सहस्त्रों की गणना में अग्नि प्रवेश हो रहीं थीं तो क्या उस समय गुरुनानक जैसे महापुरुष के आने की आवश्यकता न थी। जब २ आवश्यकता पड़ी परमेश्वर की प्रेरणा से महापुरुष आये और काम करगये। मुसलमानों के समय में तो केवल तलवार के भय से धर्म छुड़ाया जाता था, उस समय हमारे पुरुषाओं ने प्राणों तक से सामना किया, मौत का भी भय न किया, पर अपना धर्म बचाया। अन्य जिन देशों में यह जहादी झण्डा गया देश के देश मुसलमान बन गये, परन्तु यही देश है कि पांच हज़ार वर्ष से गिरता गिरता फिर भी कुछ न कुछ बचा हुआ है, पर अधमरा व मरे के सदृश बना हुआ अधर्म से पीड़ित सिसक रहा है। माताओं ने प्राण त्याग छुरी कटार खा अग्नि में भस्म हो जैसी धर्म की रक्षा की, उसको आप पूर्व माताओं के चरित्रों में पढ़ चुकी हो, मुसलमानों के अत्याचार के समय से यह समय धार्मिक अवस्था के लिये अति भयानक समय था, क्योंकि इस देश वाले हठी और दुराग्रही नहीं सदैव से बुद्धि और तर्क दो ही इन के शस्त्र रहे हैं, यदि इनके द्वारा इन्हें कोई परास्त करदे तो फिर इन्हें इस बात के मानने में कुछ मानापमान नहीं रहता। इनके कुछ भाग अच्छे थे इस लिये इनके सौभाग्य से इंगलिश राज्य इन्हें प्राप्त हुआ जिसने इन्हें धार्मिक स्वतन्त्रता प्रदान की और इंगलिश भाषा और लाजिक, साइंस, भूगोल, खगोल, रेखागणितादि पढ़ा कर इनके मस्तक को इस योग्य बनाया कि यह लकीर के फकीर न रहें और यह कुछ सोचने समझने वाले बन गये। इधर देश में सैकड़ों ईसाई

स्कूल स्त्री पुरुषों की शिक्षार्थ नियत होगये. उस के सैकड़ों उपदेशक पादरी हिन्दुओं के मतों का खण्डन बाईबल का प्रचार करने लगे। हिन्दू मत के शिक्षक और रक्षक कुछ तो स्वार्थता में फँसे. जो हैं सो महाराज के अतिरिक्त पढ़े ही न थे न सभ्यता से हर्ष के साथ उत्तर दे सकते थे, जो कुछ विद्वान् जानते थे वह अपनी एक समूह के प्रतिकूल आवाज निकालना अनुचित जानते थे। हिन्दू मत ऐसी दुर्दशा को पहुँच रहा था कि जितने कंकर उतने ही शंकर थे। ईसाई उपदेशकोंने मैदान सूना देख कर किसी प्रकार के जबर जुल्म तलवार से नहीं वरन् समझा कर रामपरीक्षा कृष्णपरीक्षा सुना २ कर साधारण पुरुषों को नहीं वरन् बड़े बड़े ऊंचे घरानों को ईसाई बना रहे थे। विद्या के भण्डार काशी में ही नीलकण्ठ शास्त्री ईसाई हो गये, पर कोई उन्हें ईसाई मत की बुराइयां और अपने मत की भलाइयां दिखा कर बचानेवाला न था। बालकों में अनुकरण करने का विशेष स्वभाव होता है वह उन्हें कोट पतलून पहिनाने, निकटाई कालर लगाने, ईसामसीह की प्रतिष्ठा उनके मनपर बिठलाने और "ईसामसी प्रभु प्राण बचैया" आदि गीत गवाने अपनी दुआ और प्रार्थना में सम्मिलित करने, नाना प्रकार के लोभ दे ईसाई बनाने लगे थे। हिन्दूमत कच्चे धागे के सदृश था कि इस में अन्य कोई मतवाला ईसाई मुसल्मान तो सम्मिलित हो ही नहीं सकता था चाहे धोखे से भी किसी ने पानी व हुक्का पीलिया हो झट उसे निकाल बाहर कर देते थे। ऐसी दशा में अति निकट वह समय आनेवाला था कि सारा भारतवर्ष ईसाइयों के गीत गाता होता और जैसे ओल्ड अमेरिकन कहीं जंगलों से ढूंढ कर

नुमायश में लाकर दिखलाये जाते हैं, ऐसे ही कदाचित् नाममात्र कोई भारतवर्षीय वेद अनुयायी शेष रहजाता। सैकड़ों तो (हिरण्यमयेनपात्रेण सत्यस्यापिहितंमुखम्) से बेखबर चमकीले मुखड़े की प्राप्ति के लालच में ही धर्म, कर्म को तिलाञ्जलि दे बैठे। भारतवर्षीय अपनी वेद विद्या और अपने धर्म से नितान्त अज्ञात थे, प्रत्येक कहता था कि वेद तो लोप होगये, वेद सत्युग के लिये हैं कलियुग के लिये अठारह पुराण हैं, जिस में से प्रत्येक दूसरे के विरुद्ध कैसा भयानक परिणाम वाला समय था। यहीं तक आपत्ति नहीं थी एक दो दुःख होते तो रोया जाता, आपने सुना होगा कि एक विधवा नारी के दुःख भरे आहों के धुयेंसे जो ऊपर जाकर अंगारे बनकर बरसते हैं नगर के नगर भस्म हो जाते हैं। स्मरण रक्खो कि इतना संसार के किसी पदार्थ का प्रभाव नहीं पड़ता है जितना कि एक सताई हुई दुःखिया की आह से पड़ता है।

तुलसी आह गरीब की, सात स्वर्गलों जाय।
मुये बैल के चाम से, लोह भस्म हो जाय॥

इस देश में लाखों बालविधवायें नित्यप्रति अपने माता, पिता, पाधा, पुरोहित की जान को रोरो कर कोस रही थीं सारे देश में दो करोड़ पिच्चासी लाख से अधिक विधवाओं की संख्या तो १९०१ की जनगणना से ही विदित है, जो कठिन विपत्तियों को सहती और हाहाकार मचाती थीं, पर कोई उनके दुःख की बात भी पूछनेवाला न था। अभागा पिता ५०, ६० वर्ष की आयु में अपना तीसरा चौथा विवाह रचता था, पांच वर्ष की आयु में विधवा हुई कन्या की ओर

जो माता पिता की अज्ञानता का फल भोग रही थीं, किसी को ध्यान ही न था। उनके माता, पिता की बुद्धि तो देखिये कि जिन्हों ने इतनी न्यूनावस्था में विवाह कर दिया कि १६०१ की मनुष्यगणना में उन विधवाओं की संख्या १०६४ है जिन की आयु एक वर्ष तक की है यही नहीं था वरन् व्यभिचारीकी दुकानें हाटमें खुले खज़ाने भलेमानसों के सरों पर खुलरही थीं जहां जहां "सर्वे वर्णाः द्विजातयः" के अनुसार धर्म, कर्म से पतित हो गये थे, जो द्विज ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य आज किसी का पीकदान चाहे वह सोने चांदी वा मुरादाबादी क़लईका ही क्यों न हो हाथों से नहीं उठाते थे हा शोक ! वहां जाकर वे ही उस व्यभिचारिणी के क़लई की हुई अर्थात् पाउडर लगाये हुये मुख पर मोहित हो उसके मुख रूपी पीकदान को जिस में नीच से नीच जाति के पुरुष दो आना वा दो रुपया देकर थूकजाते हैं उसे जिह्वा से जाकर उठाते थे, यह ही नहीं जिस देश में अलाउद्दीन खिलजी के समय में एक १) रुपया का तीस सेर अकबर के समय में रुपया का बीस सेर घृत बिकता था जब अंग्रेज़ आये थे तब भी ३॥ सेर बिकता था वही घृत तीन पाव पर पहुंच गया था, वह भी महाभ्रष्ट चर्बी आदि मिला हुआ, सहस्रों परमात्मा के बनाये हुये पुरुष शरीरमें वृक्षोंकी भांति पशुओंके मांसकी क़लम लगा अर्थात् मांस धारण कर पशुता बढ़ा रहे थे, मदिरा आदि नशों के पान का कहना ही क्या था, हा शोक ! आप विवाहिता अपने सत्य पर दृढ़ रहनेवाली गृहस्थी माताओं के आदर सत्कार की तो समाप्ति ही हो गई थी पुरुष स्त्रियों को दासी से भी नीच जानते थे, आप के धर्म शिक्षक वे थे, जिन्हें स्वयं शिक्षा की आवश्यकता थी, जिनका परमभूषण

चिलम और चिमटा ही था, नगर नगर में सब दुकानें विद्यमान थीं यदि नहीं थीं तो धर्म की जहां धर्म के जिज्ञासुओं को धर्म की व्यवस्था प्रेम से दी जाती थी, जहां शंकायें तर्क वितर्क से समझाकर सभ्यता से निवृत्ति की जाती थीं! वहां की आत्मायें ऐसे भयानक और अंधकार के समय में जब कि अविद्या और अज्ञानरूपी काली २ घटायें छा रही थीं पापों के फल स्मरण से हृदय कंपायमान हो रहे थे, जितने पुरुष थे उतने ही पंथ थे, जैसे कई दिनों के घिरे हुये बादलों को देख कर बच्चे, बूढ़े घबड़ा उठते हैं और चाहते हैं कि परमेश्वर कृपा करे शीघ्र सूर्य्य निकले और अन्धकार दूर हो, आंखें खुलें अन्धकार के कारण आज अपनी सुखदाई वस्तुयें दुःखदाई हो रही हैं। जिनका उद्देश्य मिल कर रहना और परोपकार था वह अपनी अलग २ ढपली बजाते और एक दूसरे के रक्त के प्यासे हो रहे हैं, दोनों हाथ जोड़ प्रार्थना है अब शीघ्र दया व कृपा कर उन बादलोंको हटायें, मैं सत्य कहता हूं कि ठीक उसीतरह जैसे बालक अपनी वृद्धमाता से पूछता है कि यह घटाटोप कैसे हटेगा और भानुका दर्शन प्राप्त होगा अर्थात् कैसे यह नास्तिकता नहीं २ मक्कारी दूर होगी, जो परमेश्वर को मानते भी जाते हैं कोई कोई यथार्थ कर्मों का फलदाता भी बताते हैं पर वेही घोर पाप करते हुये नहीं लजाते, वह माता सुनकर उत्तर देती है कि यदि पश्चिम की ओर से प्रबल वायु चल पड़े वा आंधी आजावे तो सम्भव है कि बादल छिन्न भिन्न होकर सूर्य दिखाई पड़े, अर्थात् श्रीकृष्ण महाराज के लेखानुसार—

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।

अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम् ॥

गी० । अ० ४ । श्लो० ७ ॥

कोई प्रतापी तपस्वी आत्मा उत्पन्न हो जावे जो अपने तपोवल से सत्य ज्ञान प्राप्त कर तदनुकूल अपना आचार व्यवहार बनाकर संसार को दिखा जावे और भूले भटकों की आंखों में अपने सत्योपदेश रूपी ज्ञान का अञ्जन लगाजावे तो वेदों का दर्शन और पापों का छेदन अवश्य हो जावे। ठीक उसी समय में परमात्मा की प्रेरणा और अपार दया से स्वामी जी महाराज का आगमन हुआ। उन्हों ने अविद्यारूपी बादलों को अपने तपोवल और ब्रह्मचर्य्यरूपी प्रचण्ड वायु से अविद्या अज्ञानरूपी बादलों को छिन्न भिन्न कर दिया और सारे मतवादियों का बता दिया कि जिस प्रकार सूर्य्य मनुष्य मात्र के लिये है, किसी पुरुष विशेष के लिये नहीं, वैसे ही, वेदरूपी सूर्य्य सब मतवादियों की शान्ति के लियेहै, किसी मत विशेष के लिये नहीं। जैसे सूर्य्य सृष्टि की आदि से है सहस्त्र व लक्ष वर्ष पश्चात् दूसरा नहीं आजाता, इसी प्रकार वेद भी ईश्वरीय ज्ञान का प्रकाशक सृष्टि की आदि से है वह कभी दूसरा नहीं बदल जाता। जिस प्रकार ईश्वर पूर्णज्ञान वाला है, इसी प्रकार वेद सम्पूर्ण विद्या का भण्डार है। यदि वेद आदि सृष्टि से प्रकाशित न होते तो उस समय कैसे अन्धकार से पार हो सकते। जब मीठे और खट्टे, अच्छे बुरे का ज्ञान नहीं था तो मनुष्य कैसे पदार्थों का सेवन करते, कैसे एक दूसरे के साथ वर्त्ताव करते। जब हज़रत ईसा का जन्म नहीं हुआ था तो इञ्जीलरूपी दीपक कहां, जब हज़रत मुहम्मद साहिब का पता नहीं था तो

क़ुरानशरीफ़रूपी क़राडील कहां, जब दाऊद संसार में नहीं आये थे तब ज़बूररूपी लेम्प कहां था, जब मूसा का ज़हूर ही न था तो तौरेतरूपी लालटैन के भी दर्शन न थे, जब ज़रदश्त ही न थे तो ज़िन्दावस्थारूपी फ़ानूस कहां से रोशन होती, केवल यह प्रतिष्ठा इन वेदों ही को प्राप्त है कि जब किसी मत मतान्तर का पता नहीं था कोई दीपक प्रकाशित न हुआ था, जब किसी पुरुष को ज्ञान नहीं था तब परमात्मा ने उस तरह नहीं जैसे गुरु शिष्य को शिक्षा देता है, जो शिक्षा गुरू द्वारा मिलती है वह तालीम कहाती है, जो सृष्टि की आदि में विना किसी सम्बन्ध विशेष के परमात्मा से प्राप्त होती है वह इलहाम होता है वेद इलहाम (ईश्वरीय-ज्ञान) है। तालीम (शिक्षा) नहीं हैं। वेद सूर्य्य हैं और सब मत मतान्तर दीपकादि हैं, दीपक जब जले जब आंखें थीं, सूर्य्य छिप गया था। मनुष्य का काम है कि आवश्यकता के पश्चात् बनाता है, दीपक लेम्प जब सूर्य्य नहीं रहता जलते हैं। परमात्मा का काम पै आवश्यकता से प्रथम बनाता है, सूर्य्य प्रथम बना लेता तब वह मनुष्य और आंखें बनाता है, वेद आवश्यकता से पहिले बने, जब अर्बों वर्षों तक प्रकाश वेदों से रहे तब किताबें बनीं, पांच सहस्र वर्ष से प्रथम की कोई किताब नहीं, यदि परमेश्वर पश्चात् प्रकाश देता तो उस पर दोष आता। सूर्य्य ईश्वरी प्रकाश है, उस का प्रकाश सब को विना मूल्य एकसा मिलता है। वैसे ही वैदिक शिक्षा मनुष्य मात्र को एकसी है अर्थात् वेद मनुष्य मात्र के लिये हैं। मज़हबी किताबें खास के लिये जिस तरह दीपकों का पांच बजे से प्रथम होना सिद्ध नहीं होता इसी प्रकार महाभारत से पहिले किसी मत का पता नहीं लगता। दीपक को

वायु का भय होता है, सूर्य्य बताता है कि वायु की आवश्यकता है। मज़हबी पुरुष बुद्धि और तर्क से घबड़ाते हैं, वेद बतलाता है कि इस के जानने के लिये बुद्धि और तर्क की आवश्यकता है। दीपक के तले अँधेरा रहता है, सूर्य्य के तले नहीं। सहस्रों दीपकों के जलते हुये अन्धकार बना रहता है, एक सूर्य्य के आते ही अन्धकार दूर हो जाता है। मज़हबी चिरागों से झगड़े फैलते हैं, वैदिक सूर्य्य से झगड़े दूर होते हैं। वेदों की शिक्षा सारे मनुष्यों को भाई, प्रकृति को माता, पुरुष परमात्मा को पिता बताती है, पर ईसाई मत विना ईसा के रहबर मज़हब में सम्मिलित किये ठहर नहीं सक्ता। मुसलमानी मज़हब में वशिष्ठ (रसूल) का होना परमावश्यक है, वैदिक धर्म विना किसी के साक्षी बनाये स्थिर और क़ायम है। मनुष्य की बनाई हुई नियमावली में पक्ष होता है, अपनों से ममत्व अन्यों से घृणा मानने वालों से प्रेम, न मानने वालों को वध तक का दंड पाया जाता है, वेदों में परमेश्वरीय ज्ञान के भीतर मनुष्य क्या बकरी, गाय, चींटी तक से वैसा ही वर्त्ताव रखने की आज्ञा है जैसा अपने से, देखो ऋग्वेद—

ओं यः पौरुषेयेण क्रविषा समङ्क्ते यो अश्व्येन पशुना यातुधानः। यो अघ्न्याया भरति क्षीरमग्ने तेषां शीर्षाणि हरसापि वृश्च ॥ सूक्त० ८ अ० । ४ । म० १ अनु० ७ सूक्त ८७ मं० । १६ ॥

जो यातुधानः मांस भक्षक (पौरुषय क्रविष) पुरुष का मास और (अश्व्येन पशुना) घोड़ा आदि पशु के मांस को खाता है और जो बछेड़ को न देकर गौका दुग्ध हरलेता है इनके शिरों को हे अग्ने परमात्मन् अपने तेज से (विवृश्च) काटिये।

परमेश्वर का आप काम न कर सकना दूत एजएटों का रखना, परिमित (महदूद) होने का रोग है, हिसाब लिखना भूल के रोग का इलाज (चिकित्सा) है वैदिक परमात्मा अपना सृष्टि प्रलय आदि सब काम आप ही करता न दफ़तर रखता न भूलता है, वरन् वह परमाणु परमाणु के भीतर बाहिर उपस्थित होकर विना अन्य की सहायता के अपना सब काम आपही करता है और सब के कर्मों के अनुकूल फल देता है, वेदों की शिक्षा परमेश्वर के प्रत्येक गुणों को सदैव स्थिर रखने वाली है, और मत की नहीं। इस का परमेश्वर सदैव स्वामी व्यापकादि गुणों से युक्त बना रहता है, जो ईश्वर के अतिरिक्त जीवादि को अनादि नहीं मानते उनका नहीं। स्वामी जी ने उस असली सूर्य्य वेद के पुनः दर्शन कराये, उनका सत्यार्थ भाष्य किया; उस के प्रचार में असह्य कष्ट सहे पर उपकार से न हटे बता दिया कि जब सूर्य्य प्रकाशित हो जाता है फिर कौन दीपक जलाता है, यदि कोई मूर्ख दिन में बत्ती जलाता है तो उसका प्रकाश इतना मन्द हो जाता है कि वह स्वयं अपने को प्रकाशित नहीं कर सकता। तुम सब मिलकर सूर्य वेद ही सामने रखदो सब स्वयं अपने आप दीपक ठंडे करने लगेंगे। किसी के दीपक बुझाने में दो बातें होती एक अन्धकार दूसरे झगड़ा सूर्य्य के निकलने पर दोनों बातें स्वयं दूर हो जाती हैं।

स्वामीजी ने एक बात भी नई अपनी ओर से नहीं लिखी न कोई नया दर्शन रचा न अपना कोई नया पंथ चलाया न वह आर्य्यसमाज के जन्मदाता हैं, हां उन्हों ने उन्हीं बातों को जो वेदों में वर्णन हैं अर्थात् उन औषधियों की अप्राप्ति से जो अमृत तुल्य हैं पुरुष महाभयानक रोगों में फँसे हाहाकार मचा रहे थे उनको धैर्य बंधाया और बड़े परिश्रम से वेद भाष्यरूपी औषधि तैयार करके आर्यसमाज रूपी महा औषधालय मनुष्यमात्र की चिकित्सार्थ खोल दिया, अर्थात् प्राचीन औषधालय पुनरोत्थापित कर दिया, इस लिये वह आर्यसमाज के पुनरोत्थापक अवश्य हैं। उस समय में भी कुछ लोग उन बातों के जानने वाले और मानने वाले और ऋषिकृत ग्रन्थों के पढ़ने वाले (जिनके पढ़ने का स्वामी ने उपदेश किया) वर्त्तमान थे पर यह सब "सौ स्याने और एकै मता" की भांति समझते थे कि—

एकस्त्वं गहनेऽस्मिन् कोकिल नकलं कदाचिदपि कुर्य्याः। साजात्य शंकयाऽमीनत्वां निघ्नन्ति निर्दयाः काकाः॥

अरी कोकिला; तू इस घने बाग में अपनी मीठी और सुरीली आवाज़ मत निकाल यह कौवे तुझे काला होने के कारण अपनी सजातीय समझ कर नहीं मारेंगे आवाज़ निकालते ही तेरी मौत आजावेगी।

यही विचार था जिस के कारण गुरु, मांस मदिरा न सेवन करता हुआ भी अपने मांसभक्षी शिष्य को त्यागने के उपदेश करने में असमर्थ था ध्यान इस दोहे पर था कि—

हितहू की कहिये न तहां जहां नर होय अबोध।
ज्यों नकटे को आरसी होत दिखाये क्रोध ॥

यह सोच २ चुप थे, जो जानते थे वह पहाड़ों, वनों में जो एकान्त में अपनी उन्नति का यत्न करते थे, यह सोच कर और भी चुप थे कि हमारे तनिक से पुरुषार्थ से क्या हो सकता है, पुरुषार्थ तो नष्ट ही हो जावेगा, सम्भव है कि साथ ही हम भी नष्ट हो जावे, परन्तु धन्य महर्षि स्वामी जी महाराज को, जिन्हों ने सांसारिक सुखों पर लात मार कर महा कष्ट और विपत्तियों को सहन कर प्राणों तक को गंवा कर दिखला दिया कि एक ईश्वर विश्वासी, सदाचारी, ब्रह्मचारी का इतना बल होता है। यदि आप न दिखलाते तो किसे विश्वास आ सकता था कि एक पुरुष भी इतने गिरे हुओं को उठा सकता है। आपने वसन्तऋतु बनकर कोयल और कौवे का अन्तर भी दिखला दिया कि यद्यपि दोनों काले हैं पर कौवा और कोयल और है अर्थात् सूर्य्य और है, दीपक और मज़हब और है, धर्म और है।

काकः कृष्णः पिकः कृष्णः को भेदः पिककाकयोः। प्राप्ते वसन्तसमये काकः काकः पिकः पिकः ॥

स्वामी ने सनातन और नवीन को अलग किया, ऋषिकृत को मनुष्यकृत से छांट दिया सत्य असत्य का निर्णय किया, ब्राह्मणों को अपनी प्रथम प्रतिष्ठा का स्मरण कराया, बतलाया कि तुम्हारा दया सब से बड़ा धर्म था तुम हर्षपूर्वक दान

लेते थे, राजा मोरध्वज के दान देते समय शिर पर आरा रखने से बायें नेत्र से आंसू निकलने पर आपके बड़ोंने मना कर दिया था कि ब्राह्मण किसी को रुलाकर, मन दुखा कर दान नहीं लेते जिसका राजाने यह उत्तर दिया कि दान देने के कारण नहीं रोता बाया शरीर इस लिये शोकातुर है कि मेरे किस जन्म के पाप उदय हुये कि आधा भाग ब्राह्मण के काम आया, इस आधेका क्या होगा। हा! आज वह तुम्हारी दया कहां गई कि जो दो वर्ष के अनाथ बच्चे और उसकी बीस वर्ष की विधवा माता पर जिस के पालन पोषण का और कोई सहारा नहीं रहा, आप उस के पति के वैतरणी पार कराने के झूंठे बहाने से उस का रहा सहा सब धन माल ले लेते हो और उसको लेजाकर अनुचित व्यसनों में गँवा देते हो, यदि सचाई से काम करो तो जहां आज चार छः संस्कार भी उत्तम रीति से नहीं होते उनकी जगह सोलह संस्कार कराकर भले प्रकार अपना पालन कर सकते हो।

माताओ! तुम मत समझो कि स्वामीजी ने कहीं ब्राह्मणों की निन्दा की वा उन्हें बुरा बताया। वे सब से अधिक हितैषी ब्राह्मणों ही के थे, आप का पुत्र कहीं खेल रहा हो दूसरा बालक आप के किसी निकट सम्बन्धी का और तीसरा पड़ोसी का हो, आप पड़ोसी के लड़के से यही कह देंगी कि चल तेरे बाप से कह कर मार कराऊँगी, पर सम्बन्धी के बालक का कान पकड़ोगी और अपने पुत्र को अधिक ताड़ना दोगी, इस लिये कि सब से अधिक हित आपको अपने पुत्र का है और आप सब से अधिक उसकी भलाई चाहने वाली हैं। यदि स्वामी ने वर्त्तमान के नाम

मात्र ब्राह्मणों के छल को प्रकट कर उन्हें विद्या का महत्त्व बताया, उनके पूर्वजों का चरित्र सुनाया तो उनके साथ बड़ा सलूक किया, चार छः संस्कारों के स्थान पर सोलह संस्कार सुझाये कि इनको विधिपूर्वक कराके यथाशक्ति अपनी दीक्षणा भी प्राप्त करो पैसे सुपारी के लिये अमूल्य समय का नाश न करो, हर प्रकार उन्हें ध्यान ब्राह्मणों के सुधार का था वह जानते थे कि ब्राह्मणों के सुधार से देश का सुधार हो सकता है, अन्यथा नहीं। उन्हों ने बतलाया कि मनुष्य मात्र को ब्राह्मण बनने का यत्न करना चाहिये, जैसे मनुष्य मात्र सच बोल सकता है, भोजन खा सकता है, विद्या पढ़ सकता है, ईश्वरी आज्ञाओं का पालन उल्लङ्घन कर सकता है, इसी तरह मनुष्य मात्र चाहे किसी देश विशेष का हो चाहे किसी वर्ण का हो शौच, आस्तिकता, वेदों में अभ्यास, गुरुपूजा, प्रिय बोलने, अतिथिसत्कार, यज्ञ करने से ब्राह्मण का शरीर कहा सकता है जैसा कि—

शौचमास्तिक्यमभ्यासो वेदेषु गुरुपूजनम् ।
प्रियातिथित्वमिज्या च ब्रह्मकायस्य लक्षणम् ॥

इसी तरह वेद पढ़ाने, दान देने और लेने यज्ञ करने और कराने से ब्राह्मण कहला सकता है, ब्राह्मण ही सुधार की जड़ होते है, उनके तुल्य कोई लाभ नहीं पहुंचा सकता राजा अन्य को अपना राज देकर फिर राजा नहीं रह सकता, लखपती दूसरे को लखपती बना कर आप हज़ारपती भी नहीं रहता, परन्तु ब्राह्मण लाखों को ब्राह्मण अर्थात् आप जैसा विद्वान् बनाकर आप वैसा ही बना रहता है, हां जो विद्वान होकर दूसरों को विद्वान् नहीं बनाते वा बनाना नहीं

च हते वे ब्राह्मण नहीं, शिर ब्राह्मण हैं उस में जिह्वा कर्म और ज्ञान दोनों प्रकार की इंद्रिय हैं जिनका काम है कि जो ज्ञान प्राप्त करें, वह अन्यों को उपदेश करदे।

स्वामीने नास्तिकोंको आस्तिक वनाया। ईश्वर का विश्वासी वनाया। नियम है कि पुरुष जिस ओर देखता है उससे पीछे की ओर को नहीं देखता, इसी नियम से जो कोई परमेश्वर को प्राप्त हो कर अपने को भूल गये और यह कहने लगे कि परमेश्वर ही परमेश्वर दीखता है वा परमेश्वर ही परमेश्वर है, जिन की वातों को सुन तात्पर्यको न जान आज महालण्ठ, घोर पापी, कपटी, निपट मूर्ख भी अपने को ब्रह्म वताते और अपने पाखण्ड जाल में फँसाते जाते थे उनके पाखण्ड को खण्ड खण्ड और उनके घमण्ड को चकनाचूर कर दिया, उन्हें निश्चय करा दिया कि जीव की वीच की दशा है। एक ओर प्रकृति दूसरी ओर ईश्वर है प्रकृति के देखने से ईश्वर को नहीं देखता, पर प्रकृति नहीं वन जाता, इसी प्रकार ईश्वर के देखने से ईश्वर नहीं वन सकता। लोहा आग की संगत से आगसा प्रतीत होता है, पर आग नहीं हो जाता इसी प्रकार सिवाय ईश्वर के और कुछ न दृष्टि आने से जीव, ईश्वर नहीं हो सकता, स्पष्ट समझा दिया।

खासान + खुदा खुदा न समझो, लेकिन * जिखुदा जुदा न समझो॥

स्वामी जी ने हिन्दू मत को जो कच्चा धागा समझा जाता था उसे रेशम के रस्सा के समान पुष्ट वना दिया कि

+ ईश्वर समीपी। * ईश्वर से।

जो अब बड़े २ बलपूर्वक तोड़ने से नहीं टूट सकता। स्वामी ने उलटे मार्ग का सीधा प्रवाह चला दिया जो नित्य प्रति वैदिक धर्मियों के शिखा, सूत्रको विधर्मी ईसाई, मुसलमान अधिकांश लालच और धोखे से अपने प्रपञ्च में फांस दूर करा रहे थे और बेधड़क अपना मज़हब बढ़ा रहे थे ८०० आठसौ वर्ष के भीतर शिखा, सूत्र उतरवा कर इन से निकल कर ८ करोड़ मुसलमान बन गये, १०० वर्ष के भीतर ३० लाख से अधिक इन्हीं के भाई ईसाई होगये, पर इनके शरीर पर जूं रेंगने के समान भी ख्याल न हुआ। इन्हों ने अपने को उत्तम और ऊंचा और दूसरों को निकृष्ट और नीचा देखने का ऐसा क्लोरोफ़ार्म सूंघा कि इनके सारे अंगोपांग कट गये, पर इन्हें होश ही न आया। वह इतने बेसुध हुये कि इतना भी ध्यान न रहा कि आय न हो और व्यय होता रहे तो भाया भरा कुवां खाली हो जाता है, जिस में आय (दरआमद) का पता नहीं है, बराबर (बरआमद) व्यय ही होता है तो ऐसे हिन्दू धर्म के स्थिर रहने की कितने दिन आशा की जा सकती है। हिसाब गणित के त्रैराशिक से इस को लगाकर इस की स्थिति की अवधि का आप को पता लग सकता है। यदि कोई बेचारा भूल से धोखे से पानी आदि पी लेता था और जब वह आकर अपने भाइयों से प्रार्थी होता था कि मेरा अपराध क्षमा कर के मुझे मिला लो मैं तुम्हारा भाई हूं तो यह उसे ऐसा कठोर उत्तर देते थे, कि कहीं……… धोये बछड़ा थोड़े ही होते हैं तुम्हारे पीछे क्या हम भी भ्रष्ट होजावें। जिन को सुनकर वह फिर कभी इनकी ओर मुंह न करता था और इनका परम शत्रु बन गौरक्षक के स्थान पर गौभक्षक बन जाता था।

इन्हें इतना भी पता न था कि एक पेड़ से कटे हुये ज़रा से डण्डे के कुल्हाड़े में पड़ जाने से वैसे सैकड़ों पेड़ काट कर फेंक दिये जाते हैं, वैसे ही इस एक दण्डारूपी पुरुष के पेड़रूपी समूह से पृथक होकर कुल्हाड़ेरूपी विधर्मियों में जामिलने से "घर का भेदी लंका ढाये" के अनुसार न जाने क्या परिणाम निकलेगा। परन्तु उसी ऋषि के उपदेश का आज यह फल है कि सहस्रों की संख्या में आज वह लौट २ कर अपने सब से पुराने और प्यारे धर्म में आ सम्मिलित हो रहे हैं और सच्ची शान्ति प्राप्त कर रहे हैं।

उसी का फल है कि आज हमें समझाया जाता है कि हे आर्य्यसमाजियो! तुम एक आदम के गेहूं खाने के बदले सारे मनुष्यों को बिहिश्त से निकाले जाने पर मुसलमानों और सारे मनुष्यों के पापों के बदले अकेले ईसा को सलीब दिये जाने पर तो खिल्ली उड़ाते हो और अबदी सदैव रहने वाले नरक का खण्डन करते हो, परन्तु जिनके पुरुषों ने कोई पाप किया होगा और वह पतित किये गये होंगे उनकी सन्तान को चाहे वे तुम से उत्तम ही क्यों न हों पतित समझे जाते हो, यदि नहीं चेते तो रावण जैसा हाल होगा जो विभीषण के रामचन्द्र से मिलजाने पर हुआ था।

जिस मूर्त्तिपूजा को यवनों की कृपाण आठ सौ वर्ष में न निकाल सकी, स्वामी ने अपने मुखाग्र प्रचार से बिना दबाये डराये सच्ची मूर्त्तिपूजा बता कर निकाल दी। जिन मन्त्रों के महीधर सायणाचार्य्य के किये हुये अर्थों के कारण ईसाई मुसलमान हँसी उड़ाते थे, और जिनके कारण चरवाहों के गीत वा भांड़, धूर्त्तों के बनाये हुये बताते थे, स्वामी जी ने उन के सच्चे अर्थ निरुक्तादि से कर के उन्हें निर्दोष सिद्ध

कर दिया। आप ध्यान तो दें, हा! कैसी अपने बड़ों और देवतों की हँसी उड़ाई जाती थी, प्रजापति ब्रह्मा को बता कर उन्हें अपनी कन्या की ओर भोग की नियत से दौड़ना कथाओं में सुनाया जाता था जो एक रूपकालंकार था उसकी मिट्टी खराब की गई थी।

प्रजापतिर्वै स्वां दुहितरमभ्यध्या वाद्देवा-मेत्यन्य आहुरुष समित्यन्येता मृश्या भूत्वा-रोहिती भूता मभ्यैत ॥

अर्थात् यहां प्रजापति सूर्य्य को कहते हैं, सूर्य्य की दो कन्या एक प्रकाश दूसरी उषा, क्योंकि जो जिस से उत्पन्न होता है वह उस की ही सन्तान कहाता है, इस लिये उषा जो कि तीन चार घड़ी रात शेष रहने पर पूर्व दिशा में रक्तसी देख पड़ती है वह सूर्य्य की किरण से उत्पन्न होने के कारण उस की कन्या कहाती है। उस से उषा के सन्मुख जो प्रथम सूर्य्य की किरण जाकर पड़ती है वही वीर्य्य स्थान के समान है, इन दोनों के समागम से पुत्र अर्थात् दिवस उत्पन्न होता है, प्रजापति और सवितः यह शतपथ में भी सूर्य्य के नाम हैं इसी के ठीक अर्थों को न जान कर महिम्न स्तोत्र में लिख मारा है।

प्रजानाथं नाथ प्रसभमभिकं स्वां दुहितरं।
गतं रोहिद्भूतां रिरमयिषु मृग्यस्य वपुषा ॥
धनुष्पाणियांतं दिवमपि रुपत्राकृतममुं।
त्रसंतंतेऽद्यापि त्यजति न मृगव्याधरभसः ॥

क्या इस को भी पढ़कर आप यह नहीं कह उठेंगी कि स्वामी जी ने देवतों की प्रतिष्ठा को बचाया है, और भी सुनिये निम्न लिखित मन्त्र का पौराणिक और स्वामी के किये हुये अर्थों को विचार कर देखिये कितना अनर्थ है।

इन्द्रागच्छेति गौरावस्कन्दिन्नहल्यायैजारेति। तद्यान्येवास्य चरणानि तैरेवैन मेतत्प्रमोदयिषति ॥

इस का अर्थ आप ने वहुधा कथाओं में सुना होगा कि देवों का राजा इन्द्र देवलोक में देहधारी देव था। वह गौतम ऋषि की स्त्री अहल्या से जार कर्म किया करता था। एक दिन जब इन दोनों को गौतम ने देख लिया तब इस प्रकार शाप दिया कि तू पाषाण रूप हो जा, परन्तु जब उन्हों ने गौतम से प्रार्थना की कि हमारे पाप का मोक्ष कब और कैसे होगा, तब इन्द्र से तो कहा कि तुम्हारे तो सहस्र भाग के स्थान में सहस्त्र नेत्र हो जावें, अहल्यासे कहा कि जब रामचंद्र अवतार लेकर तेरे पर पैर धरेंगे उस समय तू फिर अपने स्वरूप में आजावेगी। कैसा अटकल वे जोड़ गढ़ दिया। सृष्टिक्रम से विरुद्ध हो तो उनकी वला से। वास्तव में सूर्य्य का नाम इन्द्र रात्रि का अहल्या, तथा चन्द्रमा का गौतम है, यहां चन्द्रमा और रात्रि का स्त्री पुरुष के समान रूपकालंकार है। चन्द्रमा अपनी स्त्री रात्रि से सब प्राणियों को आनन्दित करता है और उस रात्रिका जार आदित्य है जिसके उदय होने से रात्रि अन्तर्ध्यान हो जाती है और जार अर्थात् यह सूर्य्य ही रात्रिके वर्त्तमान रूपको विगाड़ने वाला है। स्त्री पुरुष मिलकर

रहते हैं,इस लिये ही चन्द्रमा और रात्रि आई है। चन्द्रमा का नाम गौतम इस लिये है कि यह अनेक वेग से चलता है, सब ग्रहों से तेज चलने वाला है, ढाई दिन में एक राशि से दूसरी राशि तक पहुंच जाता है, गौ का अर्थ चलनेवाला और तमका शीघ्र है रात्रि को अहल्या इस लिये कहते हैं कि उस में अह (दिन) लय हो जाता है तथा सूर्य्य रात्रि को निवृत्त कर देता है इस लिये वह उसका जार कहाता है, इस लिये स्वामी ने सत्यार्थ दिखाकर बता दिया है कि रूपकालंकार विद्या को न जानकार अनर्थ किया है।

उता स मैत्रा वरुणो वासिष्ठोर्वेश्याब्रह्म मनसोऽधिजातः । द्रपिसंस्कन्नं ब्रह्मणादैव्ये न विश्वेदेवाः पुस्करेत्वाददंति ॥

इस का अर्थ यह किया जाता था और पंडित जी व्यासगद्दी लगा कर भरी स्त्रियों में बैठकर कहते थे कि जिस को मुझे लिखते हुए भी लाज आती है पर उनको तो रोका नहीं जाता, जब सभ्यता बढ़ेगी तो ऐसी कथायें स्त्रियों को नहीं सुनाई जावेंगी, इस लिये उनको यदि सच्चा अर्थ ज्ञात हो जावेगा तो उसके प्रभाव से बची रहेंगी और पापों में इस लिये तो नहीं फँसेंगी कि देवतों ने घोर पाप किया तो हम क्यों न करें।

देखिये पौराणिक यह अर्थ सुनाते हैं कि एक समय इन्द्र की सभा में उर्वशी नाच रही थी उसे देखकर मित्र और वरुण देवता कामासक्त हो गये और उनका वीर्य्य स्खलित हो गया; देवतों ने देख विश्वादेव नामी देवता को आज्ञा दी

कि वे कमलपत्र पर ले लें तदनुसार ही किया गया और उसी से वशिष्ठ उत्पन्न हुये।

शोक ! कितना अनर्थ किया गया और इस का स्त्री पुरुषों पर कितना बुरा प्रभाव पड़ा होगा।

यदि सायणाचार्य्य और उनके अनुगामी यूरोपियन विद्वान् जानते कि मित्र उस देवता का नाम है जो मेघ को उत्पन्न करता है और वरुण वह वायु है जो मेघों का जलरूप करता है तथा उर्वशी बिजली को कहते हैं। और जल का नाम वशिष्ठ है और सूर्य्य की किरणों का विश्वेदेवा कहते हैं, तो उक्त अर्थ की कल्पना वेदों में न करते। मुख्य तात्पर्य्य इस का यह है कि मित्र वरुण पवनों से उस समय वसिष्ठ अर्थात् जल गिरता है जब कि उर्वशी बिजली चमकती है और उस जल को विश्वेदेवा अर्थात् सूर्य्य की किरणें उठाकर आकाश को ले जाती हैं।

यदि आप कात्यायनभाष्य को देखें तो पता लगे कि उस में किस प्रकार दयापर वज्र प्रहार किया गया है और कैसी अश्लील वार्त्तायें लिखी हैं, हमारी तो ईश्वर से प्रार्थना और आप से सविनय निवेदन है कि आप ऐसी पुस्तकों के देखने का स्वप्न में भी न विचार करें, स्वामी जी ने बताया कि तुम्हारे पुरुषाओं को राज त्यागते कुछ काल नहीं लगता था वे वैदिक फ़िलासफ़ी से ही जगत् गुरु थे, तुम भी उसी फ़िलासफ़ी को लेकर जगत् को जीत सकते हो। तुम्हें गुरु बनना है, राजा नहीं बनना है, भीख मांग कर कोई भीख देने वाले की बराबरी नहीं कर सकता, साइंस उनसे बढ़कर अधिक नहीं जान सकते। इस लिये पूर्ण ब्रह्मचारी अपनी फ़िलासफ़ी पढ़ाकर फ़िलासफ़र बनाओ, वे सारे संसार को

चेला बनावेंगे और गुरु बनकर पुजेंगे। जो प्रतिष्ठा स्वामी विवेकानन्द और स्वामी परमानन्द और स्वामी राम तीर्थ के अमरीका जाने और कितनों को चेला बनाने से हुई, वह प्रकट है। यह मैंने बहुत संक्षेप से स्वामी जी के आगमन की आवश्यकता और उनके विचारों को प्रकट किया है। विदित रहे कि जिस प्रकार मार्टन लूथर वर्त्तमान यूरुप के सुधार का बाप माना जाता है, इसी तरह सदैव के लिये स्वामी दयानन्द का नाम भारतवर्ष के रिफ़ारमेशन के इतिहास में सब से प्रथम रहेगा। जिस शारीरिक, आत्मिक,सामाजिक अवस्था में आर्य्य संतान ५ सहस्र वर्ष से गिर रही थी और गिरते २ अब अन्तकाल को पहुँच गई थी, उस के सम्पूर्ण रोगों का इलाज एक ही सत्यार्थ प्रकाशरूपी नुस्खे (औषधियोग) से किया। इस दयालु डाक्टर ने जिन रोगियों के फोड़े अपने सुधारूपी नश्तर से छेड़ना चाहे उन्हों ने लातें चलाईं, गालियां दीं, ईंट पत्थर बरसाये, ईसाई बताया, परन्तु ऋषि ने कुछ परवाह न करके अपने कर्त्तव्य का पालन किया और उनका दुःख दूर किया और अति कष्ट उठाकर मनोवाञ्छित फल पाने के अर्थात् धर्मार्थ काम मोक्ष प्राप्ति के लिये कल्पवृक्ष आर्य समाज लगादिया, जिसमें आकर नित्यप्रति रोगी चंगे हो हो घर जारहे हैं और बहुत से उस में सीखकर कम्पौंडर बन अन्यों की चिकित्सा कररहे हैं और शान्ति का मार्ग दिखा रहे हैं। आपको पतारहे कि जब गिलेल्योने जो १५६४ ई० में इटली में उत्पन्न हुआ था और सन् १६४२ में जिस साल न्यूटन उत्पन्न हुआ था, परलोकगामी होगया, उसने कापरनीकस के इस ख़्याल को पुष्ट किया था कि सूर्य्य के ओर पास सब तारे घूमते हैं और पृथिवी भी, उसपर वह

जेलखाना (कारागार) भेजा गया था। परन्तु आज मुसलमान जो भूमि को स्थिर मानते हैं वह भी परीक्षा समय उसको घूमता ही हुआ लिखते हैं, चाहे कैसे पक्के दीनदार क्यों न हों। धर्मसमाजी जो भूमिको चटाईवत् मानते हैं पर वह भी वही लिखते हैं। देखो कितना उस समय में और अब में परिवर्तन है। जब प्रथम टीका चला था तब स्त्री पुरुष अपने बच्चों को छिपाते थे, दूरसे देखकर कहते थे कि भागो वह लोखड़ा (लुहूकढ़ा) से बिगड़ा शब्द था कहकर भगा देते थे, बहुधा स्थानोंपर बेचारे वेक्सीनेटर मूर्खों के हाथों से मारे पीटे गये, पर आज वह ही टीका है कि हर्ष से स्वयं लेजाकर कुछ भेंट देकर लगवाते हैं। ऐसे ही कोई आर्य्यसमाज को मतकटा कहता था, कोई गाली देता था, कोई ढेले बर साता था, कोई ईसाई बताता था, पर अब ज्यों ज्यों सच्ची और वास्तविक दशा आर्य्यसमाज की विदित होती जाती है और होती जावेगी उतनी ही हमदर्दी बढ़ती जाती है और उतनाही हित दिन प्रतिदिन बढ़ता जावेगा। मैं समाज के कामों और सार्वभौमिक नियमों को पूर्णतया बता नहीं सकता इसके नियमों से आपको विदित होजावेगा इसका सम्बन्ध किसी जाति विशेष वा देश वा पुरुष विशेष से नहीं है। इसका छटा नियम बताता है कि संसार का उपकार करना इस समाज का मुख्य उद्देश्य है। इसका सातवां नियम है कि सबसे प्रीतिपूर्वक यथायोग्य वर्त्तना चाहिये। नवां नियम है कि प्रत्येक को अपनी ही उन्नति से सन्तुष्ट न रहना चाहिये, किन्तु सबकी उन्नति में अपनी उन्नति समझनी चाहिये। आर्य्यसमाज एक ऐसी सुसाइटी है जिसकी कोई कार्य्यवाही गुप्त नहीं, जिसके सभासदों के नाम नियम पूर्वक रजिस्टरों

में लिखे रहते हैं, जो साप्ताहिक, वार्षिक अधिवेशन में काम होता है वा कोई पुस्तक वा समाचार पत्र पढ़ा जाता है सब लिखा जाता है। प्रत्येक पुरुष जो इसके सिद्धान्त को मानता है और कुछ सहायता करने को तत्पर होता है वह आर्य्यसमाज की प्रबन्धकर्तृसभा का मेम्बर बन सकता है आर्य्यसमाज में सैकड़ों किताबें लिखी गईं जो मूल्य से सब को मिल सकती हैं, इस के जीवन में एक भी ऐसी किताब नहीं लिखी गई जो इसके मेम्बरों को ही मिल सकती, अन्यों को नहीं। इस समाज का मुख्य उद्देश्य संसार से पापों का हटाना और भलाई फैलाना है, इस के मेम्बर पशु, पक्षी किसी को भी नहीं सताते, जो कोई इस में सम्मिलित होकर भी पाप नहीं छोड़ते वा भलाई नहीं करते वह वास्तविक आर्य्य नहीं हैं। किसी कविने एक कवित्त में आर्य्यसमाज को बताया है:—

वेदों का ज्ञाता परमाता सब शास्त्रन के ज्ञानहू को दाता सब सुजन को साज है। शास्तर प्रवीणा वेद धर्मधुरीना सत्यकर्म लवलीना सब सृष्टि को सरताज है॥ कहत कवि टीकम अविद्या की वारिदमें गहरे गम्भीर बूड़ो भारत जहाज है। ताके उबारिबे को वेदन की बल्ली हाथ ले खेवट को रूप धरे आर्य समाज है॥

इस समाज का चौथा नियम है कि सत्य के ग्रहण करने और असत्य के त्यागने में सदा उद्यत रहना चाहिये,इस लिये सभासदों का यह ध्यान है कि—

सभां वा न प्रवेष्टव्यं वक्तव्यं वा समञ्जसम्।
अब्रुवन् विब्रुवन्वापि नरो भवति किल्बिषी॥

मनु० अ०। श्लो०।

कि सभा में जब सम्मिलित हो तो सच कहे जो मनुष्य सभा में जाकर झूंठ बोलता है, वा किसी के दबाव या स्नेह या पक्ष से झूंठ बोलता है, वा अपनी सम्मति ही नहीं देता वह पापी होता है. इस लिये सचाई के साथ समाज का मुख्य तात्पर्य यह है कि यह चाहता है सब मनुष्य मात्र एक हों और बुराइयों को छोड़कर शुद्ध और पवित्र हों, कोई आपस में न लड़ें, अपने दोषों के ही छोड़ने का प्रयत्न करते रहें, तीनों प्रकार की हिंसा से बचें, सब प्रकार के नशे त्यागें सचाई के लिये कष्ट सहें, किसी प्रकार के प्रबन्ध सम्बन्धी पोलिटिकिल विषयों से सम्बन्ध न रक्खें, ब्रह्मचारी बनकर ऋतुगामी हो कर गृहस्थी करें, जिस दिन से जन्म लें उस दिन से मरते दम तक ईश्वर प्राप्ति के उद्देश्य को कभी न भूलें आदि २ बहुत सी बातें हैं जिनको मैं कुछ भी न लिख सका।

अब ऐसे कई पुरुषों की सम्मति लिखता हूँ जो न समाज के मेम्बर हैं न आर्य्यसमाजी हैं वरन् उस से विरुद्धता रखते हैं।

सनातनधर्मसभा लाहौर (प्रकाश) १६ वैशाख संवत् १९६६ वि०।

१६ अप्रैल सन् १९०९ शुक्रवार को सनातनधर्म सभा लाहौर में श्रीमान् पं० विष्णुदास जी बी० ए० ने लेकचर दिया जिस में आपने बतलाया कि भारत वर्ष में तीन सौ साल से बहुत प्रवाह चलरहे हैं, सब से अधिक भयानक प्रवाह आपने ईसाई मत को बताया और कहा कि इस मतने आते ही हमारी उच्च जातियों को हड़प करना प्रारम्भ कर

दिया और उस समय जब कि उन्हों ने अपना प्रचार प्रारम्भ किया अच्छे २ घरानों के पुरुष अपने बड़ों को गालियां निकाल देना अपनी प्रतिष्ठा समझते थे, और बराबर ईसाई हो रहे थे, परन्तु इस प्रवाह के कुछ पश्चात् एक महापुरुष आया जिसने इस प्रवाह को बड़ी सफलता के साथ रोका और वह महापुरुष जिसने डूबती हुई हिन्दू जाति को बचाया वह महाऋषि दयानन्द था। इस के ऐहसानात (उपकार) जो हिन्दूजाति पर हैं इनको उतारना हिन्दूजाति की सामर्थ्य से बाहर है। आज उनकी कृपा से हम यह नहीं सुनते कि किसी उच्च घराने का ब्राह्मण वा क्षत्री ईसाई हुआ है। यही नहीं वरन् आर्य्यसमाज के कालिज और स्कूल हम पर बहुत सा इहसान कर रहे हैं,जिनके लिये हमें उनको धन्यवाद देना चाहिये। हां यदि कुछ उनसे हमको मतभेद है तो यह साधारण है, क्योंकि प्रथम भी जैमिनिजी को पतञ्जलि से और दूसरे ऋषियों को आपस में मतभेद था, इनको छोड़ कर जो इहसान इस महापुरुष के हमपर हैं, उनका हमको धन्यवाद देना चाहिये।

जास्टिस शंकरनायर साहिब प्रेसीडेण्ट सोशिल कानफ्रेंस दिसम्बर हालीडेज सन् १९०८ ई०।

आप के व्याख्यान का खुलासा दूसरी जनवरी सन् १९०९ के बंगाली पत्र से ८ मई सन् १९०९ ई० के मुसाफ़िर आगरा में छपा था, जिसमें से संक्षिप्त वृत्तान्त लिखा जाता है, जिससे पता लगेगा कि आर्यसमाज दिन बदिन कितना पापुलर, हरदिलअज़ीज़, सर्वप्रिय होता जाता है।

निम्न बातों पर अति बुद्धिमता से तक़रीर (वक्तृत्व) की और यह रिज़ोल्यूशन पास हुये।

१—स्त्रियों की शिक्षा का बहुत ही पूरे तौर पर ध्यान होना चाहिये।

२—दूर देशयात्रा में किसी प्रकार रुकावट नहीं है।

३—हिन्दुओं, आर्यों की दशा को उत्तम बनाने का यत्न होना चाहिये।

४—बचपन का विवाह होना ठीक नहा।

५—सर्व जातियों के आपस में मिलजाने और उनके आपस में शादी विवाह होने में कोई हानि नहीं।

६—जाति पांति के कठिन नियम जो कि देशोन्नति में रुकावट के कारण हैं शनैः २ दूर किये जावें।

७—जो पुराने मज़हब मत से पृथक होजावें उनको स्वीकार कर लेना जो भाई धर्म से पतित होजावें फिर गले लगाना चाहिये।

८—धर्म की उन्नति और बच्चों की रक्षा करनी चाहिये।

९—आपस में मेल, मुहब्बत क़ायम रखना चाहिये।

इस का भी प्रसिद्ध व्याख्यान में बहुत बल दिया गया कि वर्ण, गुण कर्म पर निर्भर है न कि पैदायश (जन्म) पर, और यह कि उन विपत्ति ग्रसित लोगों को जो कि नीच जाति के नाम से पुकारे जाते हैं सुसाइटी में जगह देकर उनकी दशा को अच्छा बनाया जावे और विधवा विवाह की ओर विशेषतया ध्यान दिया जावे।

नोट—यह बात सूर्य्यवत् प्रकाशित है कि इन सब बातों पर आर्य्यसमाज सहमत ही है। उसी व्याख्यान में यह भी

बतलाया था कि यह बृटिश राज्य की बरकत है कि हम लोगों को पबलिक पर अपने विचारों के प्रकट करने का अवसर प्राप्त हुआ है, परन्तु प्रथम पुरुष जिस से सोशल इवल्यूशन पर प्रथम दृष्टि डाली वह काठियावार का एक नामी ब्राह्मण था, यह नामी पण्डित (अर्थात् स्वामी दयानन्द सरस्वती जी महाराज) जिस ने इतना परिश्रम और प्रयत्न सोशल भलाई में किया, यह कोई नई बात नहीं है जिस के लिये अधिक यहां लिखा जावे। सम्पूर्ण संसार का परोपकार करना उस विचार शील शुद्ध बुद्धि का उद्देश्य था। योग्य प्रधान से अपने व्याख्यान में यह भी प्रकट किया था कि स्त्रियों के लिये धार्मिक शिक्षा ही उचित है नहीं तो सम्भव है कि साधारण शिक्षा उनके लिये लाभदायक होने के स्थान पर हानिकारक होजावें।

नोट—यह दो निकट की सम्मतियां लिखी गईं वैसे तो बाबू सुरेन्द्रनाथ बनर्जी और पादरी एंडरयोज़ और मिस्टर शारदाचरण प्रथम जज कलकत्ता मिसिज़ एनीबिसेण्ट आदि की बहुत सी सम्मतियां प्रत्येक मत अनुयाइयों की उपस्थित हैं और प्रत्येक मत से निकल निकल कर अनेकान् पुरुष इस में सम्मिलित हो चुके हैं और होते जाते हैं, जिस से प्रत्यक्ष प्रमाण और क्या हो सकता है। आर्य्यसमाज में आकर जो उसका मेम्बर बनता है उस को कुछ न कुछ सहायता धन सम्बन्धी देना पड़ती है, इस में किसी प्रकार के लोभ से मेम्बर नहीं बनाया जाता न छल से बुलाकर मिलाया जाता है, वरन् यह समझा कर कि जिस प्रकार चाहो सोने की भांति कसौटी पर कसकर तपा कर छेद कर काट कर पीट कर परीक्षा करलो तब अपने प्रवेश पत्र पर हस्ताक्षर करो।

जय सत्य की होती ही है अंजाम बरहाल ।
सोना जो खरा है तो तपाने में क्या है टाल ।

यदि आप ने श्रीपण्डित दीनदयालुजी का, जो धर्म सभा के महोपदेशक हैं, व्याख्यान सुना होगा तो ज्ञात हुआ होगा कि वह प्रथम की अपेक्षा कितनी बातें मान गये हैं और अब किस प्रतिष्ठा से आर्य्यसमाज को देखते और स्मरण करते हैं और उसके प्रचलित किये हुए कामों की बड़ाई और सराहना करते हैं । मैं १५ मार्च से १० अप्रैल सन् १६०६ ई० तक सरकारी चिकित्सालय फतेगढ़ में असिस्टेंट सिवलसर्जन बाबू विश्वम्भरनाथ के स्थान पर रहा था, वहां पर सायं समय कई ब्राह्मण सनातन धर्मी फ़रुखाबाद से डाक्टर साहिब को मिलने आये तो उन्हों ने कहा कि पण्डित दीनदयालुजी ने मेरे भाई से कहा कि तुम सब काम वही करो जो आर्य्यसमाजी करते हैं परन्तु केवल आर्य्यसमाज में नाम न लिखाओ और अपने को आर्य्यसमाजी न बताओ ।

बस, माताजी ! अब आपको भली भांति विदित हो गया कि आर्य्यसमाज और स्वामी दयानन्द का क्या मन्तव्य (मिशन) था, और क्या उसकी पोज़ीशन है, अब आगे आप निष्पक्ष अंग्रेज़ की सम्मति पढ़ें और विचारें कि आर्य्यसमाज क्या है ।

यह सम्मति जिल्द ४ नं० ४१—२६ कार्तिक सम्वत् १६६५ विक्रमी १० नवम्बर सन् १६०८ ई० समाचार पत्र प्रकाश लाहौर में छपी थी, जिन्हों ने हिन्द में नईजान नामी पुस्तक से जो ३५ पृष्ठ की मेनचिस्टर गारडीन के मुख्य पत्रप्रेरक मिस्टर नैविलसन ने लिखा है ।

आप लिखते हैं इस में संदेह नहीं कि आर्य्यसमाज के बाज़ मेम्बरों ने पार्लाटेक्स में भाग लेना प्रारम्भ कर दिया है, क्योंकि ऐसे समय में फ़ख्याज़ाना तबियतों के लिये पार्लाटिक्स एक न रुकनेवाली कशिश का प्रभाव रखता था, परन्तु समाज का वहैसियत मजमूई (समूहावस्था) पार्ली- टक्स से कोई सम्बन्ध नहीं, यह एक धार्मिक सभा है, एक सार्वभौमिक चर्च है, जिसका उद्देश्य नौजवानों (युवापुरुषों) को वेदों की आज्ञा के अनुकूल धार्मिक शिक्षा देना है। एक मनुष्य पुराने विचारों के हिन्दुओं, मुसलमानों और ईसाई पादरियों की मुख़ालिफ़त (विरोध) के अर्थ समझ सक्ता है, क्योंकि समाज अपने मज़हब (धर्म) के प्रचार में बहुत बलवान् है और बहुत से पुरुषों को अपने हल्के समाज में प्रविष्ट करती है, परन्तु गवर्नमेण्ट हिन्द सख्त ग़लती (बड़ी भूलों) पर है जो इस को सिडीशन (राजविद्रोह) का मरकज़ (केन्द्र) समझती है। दोनों के लीडरों ला० मुन्शीराम और ला० हंसराज ने हर प्रकार के पुलेटीकल काम से सदा विरोध किया है और विद्यार्थियों को पार्लाटेक्स पर बहिस (वादविवाद) करने से उतना ही रोकते हैं जितना रालेके सरक्योलर का उन को ध्यान है कि जब तक लोगों के आचार और मस्तक की उन्नति नहीं होती, किसी उन्नति की आशा रखना बड़ा तुच्छ विचार है। मैं उन के साथ सहमत नहीं क्योंकि मेरा विश्वास है कि क़ौमी स्पिरिट की उन्नति के लिये मुल्की आज़ादी का होना लाज़िमी है, परन्तु समाज पर पार्लाटेक्स का दोष लगाना और किसी जालसाज़ी वा झूठ से लाभ उठाने की कोशिश करना जिससे इस सुसायटी पर सिडीशन का दोष सिद्ध हो जावे, केवल उस

अज्ञानता के चिन्ह हैं जोकि एक महकूम कौम (आज्ञा अनुयायी प्रजा) के अन्दर रहते हुये अलग रहने से उत्पन्न होती है। सन् १९०७ ई० में लाला मुन्शीराम ने इसी विषय पर सिविल मिलटरी गज़ट में समाज की पोज़ीशन का डिफ़ीनेशन (लक्षण) शाये करवाया था, यह लक्षण ऐसा बुद्धि और युक्ति से परिपूर्ण था अर्थात् माकूल मुदल्लिल था कि इस पत्र को भी जो कि इस पत्र को भी जो कि इंगलो इण्डियन परचों में हिन्दुस्तानियों की विरुद्धता में प्रसिद्ध है इस लेख की खूबी का काइल होना पड़ा।

नोट—मुसलमानों और ईसाइयों की ओर से जो सरतोड़ विरुद्धता आर्य्यसमाज की कीजाती है, इसके भेद को भी मिस्टर नेविलसन् ने खूब समझा है, आप लिखते हैं—

दयानन्द के मिशन के अभाग्य समझिये कि उसने अपनी कोशिशों को हिन्दू तवहमात और सामाजिक बुराइयों की सफ़ाई तक परमित न रक्खा, वरन् ईसाइयत और इसलाम के अन्दर जो अनुचित राज़नामे घुस आये और इज़ाफ़ा हो गये हैं, उनकी भी ज़बरदस्त तौर पर तरदीद (प्रत्याख्यान) की और जो सफलता उस को हिन्दुओं को मुसलमान और ईसाई होने से रोकने में प्राप्त हुई इस से हम इस प्रत्यक्ष विरोध का कारण दर्याफ्त कर सकते हैं, जो आर्य्यसमाज के सम्बन्ध में ईसाई पादरियों और मुसलमान मौलवियों की ओर से ज़हूर में आती रही।

नोट—एडीटर प्रकाश। यह है एक निष्पक्ष अंग्रेज़ की सम्मति, उस सलूक की बाबत जो मुसलमान ईसाइयों की ओर से आर्य्यसमाज के साथ किया जाता है, क्या हमारे

मुसलमान भाई हमें यह सुनायेंगे कि हमने मिस्टर नेविनसन को घूँस देकर (फ़िक़रे) लिखाये हैं।

इसके के अतिरिक्त मिस्टर वरन साहिब बहादुर कमिश्नर मनुष्यगणना विभाग १९०१ में जो सम्मति समाज के विषय में प्रकाशित की है वह पढ़ने योग्य है। यहां पर गुरुप्रान्त नेशन लेख बढ़जाने से नहीं लिखी गई।

माताओ! निश्चय पूर्वक जानलो कि कामधेनु और कल्पवृक्ष और कहीं नहीं है यही वर्त्तमान आर्य्यसमाज कामधेनु और कल्पवृक्ष है, यह उत्तम और शुभ सारी कामनाओं को पूर्ण कर देता है, आप इस में सम्मिलित हों और इस के नियमों को विचारें, उन्हें जीवनोद्देश्य बनावें और स्वामीजी को अपना आदर्श। तो मनोवाञ्छित फल प्राप्त हो सकते हैं। अभी हम आदर्श योग्य नहीं, स्वामी जी अपने जीवन में डिगे नहीं, वे निष्कलंक रहे उनके अनुगामी बनकर सर्वसुख लाभ कर सकते हैं। माताओ! वह समाज काणा है जहां स्त्रियां नहीं जातीं, वह समाज लंगड़ा है जहां उनके बैठने का स्थान नहीं। शोक है! शोक है!! कि आप मिट्टी के चबूतरे को पूजती डोलीं, फेरे पग्धारी में मारी फिरीं पर समाज में जाने में लाज है। कथाओं में जाती हो फिर न जानें क्यों समाज में जाती घबड़ाती। आप को उचित है कि पृथक् स्त्री आर्य्यसमाज स्थापित करो, अपनी बहनों का उद्धार करो, स्वयं नियमानुसार कार्य्य करो, आर्य्यसमाज के दसो नियम नीचे लिखे जाते हैं इन्हें विचारो और मुखाग्र स्मरण करलो। बहुत से समाजी बड़ी लम्बी चौड़ी बातें बनाते हैं पर पूछो तो नियम भी याद नहीं निकलते। तुम भी उनकी भांति हंसी करानेवाली न बनना यह तुम्हारे जीवन

में बड़ा परिवर्त्तन करेंगे और सारी बुराइयों को दूर कराके आपको अच्छाई और पवित्रता की मूर्ति बना देंगे।

माताओ! तुम आर्य्यसमाज और स्वामी दयानन्द पर प्राण वारो। स्वामी के सब ऋणी हैं, पर आप पर सब से अधिक ऋण है। आप की सब से अधिक दुर्दशा थी, आपकी दशा को कोई नहीं पूछता था, पुरुष नाना प्रकार के आप पर जुल्म करते थे और आप को पैर की जूती समझकर आप के हक़ (स्वत्व) को पैरों तले कुचल रहे थे। स्वामी दयानन्द ने जो निर्बलों का सहायक था, आप का सच्चा हितैषी बन सब से अवाज़ उठाई। पुराने ऋषियों के पश्चात् प्रथम दयानन्द ही था। जिसने भारत वर्ष की स्त्रियों पर तर्स खा कर उन्हें इन दुःखों से छुड़ाया है। देखो उसने केवल स्त्रियों को वेद पढ़ने ही की आज्ञा ही नहीं दी वरन् उसने उनका पुरुषों के तुल्य अधिकार बताया। विवाह के नियम दोनों के लिये समान बताये, एक स्त्री को जिस प्रकार एक पुरुष से विवाह करने की आज्ञा दी उसी प्रकार एक पुरुष को केवल एक स्त्री का ही पति होना उचित ठहराया। जिस प्रकार एक स्त्री अन्य किसी से सम्बन्ध करने से घृणित समझी जाती है उसी प्रकार एक पुरुष भी अपनी स्त्री के अतिरिक्त दूसरी स्त्रियों से सम्बन्ध करने से पापी समझा जाता है। यदि अक्षत योनि स्त्री का पुनर्विवाह करना अनुचित नहीं समझा तो पुरुष भी अक्षत वीर्य होना चाहिये। इस कारण उनका धन्यवाद दो और तन मन धन से सहायक बनो और समाज के नियम पढ़ो और कंठ (याद) करके उसी के अनुसार अचरण करो।

आर्य्यसमाज के नियम ।

१—सब सत्य विद्या और जो पदार्थ विद्या से जाने जाते हैं उन सबका आदि मूल परमेश्वर है ।

२—ईश्वर सच्चिदानन्द स्वरूप, निराकार, सर्वशक्तिमान्, न्यायकारी, दयालु, अजन्मा, अनन्त, निर्विकार, अनादि, अनुपम, सर्वाधार, सर्वेश्वर, सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी, अजर, अमर, अभय, नित्य, पवित्र और सृष्टिकर्त्ता है, उसी की उपासना करनी योग्य है ।

३—वेद सत्य विद्याओं का पुस्तक है, वेदका पढ़ना पढ़ाना और सुनना सुनाना सब आर्य्यों का परम धर्म है ।

४—सत्य के ग्रहण करने और असत्य के छोड़ने में सर्वदा उद्यत रहना चाहिये ।

५—सब काम धर्मानुसार अर्थात् सत्य और असत्य को विचार करके करना चाहिये ।

६—संसार का उपकार करना इस समाज का मुख्योद्देश है अर्थात् शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक उन्नति करना।

७—सब से प्रीति पूर्वक धर्मानुसार यथायोग्य वर्त्तना चाहिये ।

८—अविद्या का नाश और विद्या की वृद्धि करनी चाहिये ।

९—प्रत्येक को अपनी ही उन्नति से सन्तुष्ट न रहना चाहिये किन्तु सबकी उन्नति में अपनी उन्नति समझनी चाहिये ।

१०—सब मनुष्यों को सामाजिक सर्व हितकारी नियम पालन में परतन्त्र रहना चाहिये और प्रत्येक हितकारी नियम में सब स्वतन्त्र रहैं ।

प्रश्न—आर्य्यधर्म में क्या विशेषता है, इस का सन्तोष जनक उत्तर मिलना चाहिये ।

उत्तर—इसका उत्तर तो कुछ न कुछ उपरोक्त लेख में वर्णन होचुका है तथापि संक्षेप से और भी सुनिये।

(१) यह परमेश्वर को देशकाल की सीमा से अनवच्छिन्न समझ कर उसी की स्तुति प्रार्थना उपासना द्वारा उस के पवित्र गुणों के चिन्तन में अपने मनको लगाता है, परमात्मा की एकता और उसके महत्व का दर्शन जिस उत्तमतासे इस धर्म में किया गया है इस से बढ़कर किसी और जगह नहीं मिल सकता, इस में ईश्वर के साक्षी वा दुत का पता नहीं, वेद जो सब से प्राचीन समस्त विद्याओं का भंडार है जो अनृत व्याघात पुनरुक्ति दोष से रहित मनुष्यमात्र के लिये और जिनका उपयोग प्राणीमात्र के लिये है उसको यह अपना धर्म पुस्तक मानता है जिस में किसी मध्यस्थ की बीच में आवश्यकता नहीं।

(२) समस्त मतवादी अन्वीक्षा और तर्क से अपने को बचाते हैं परन्तु यह मनुष्य को मननशील बताकर प्रत्येक को विचार और तर्क से काम लेने की प्रेरणा करता है।

(३) स्त्रियों को अर्द्धांगिनी मानना, बहु विवाह का न होना, स्त्रीव्रत और पतिव्रत धर्म का पालन करना इस धर्म जैसे किसी अन्य में प्राप्त न हो सकते।

(४) अन्यान्य दवाव लोभ भय से किसी को अपना अनुगामी बनाना युद्ध कलह और विवाद से अपनी उन्नति चाहना इस धर्म में वर्जित है।

(५) झूठी करामातें, सृष्टिक्रम से विरुद्ध बातें, भानमती के तमाशे, रसायन के लटके, ईश्वर के फिरश्ते, नाना प्रकार के क़िस्से, जादू, जिन्न, भूत, परी, शैतान, कलयुग की भूल-

भुलैयां इस धर्म में नहीं हैं जैसी कि अन्य मतों की पुस्तकें इन कल्पित और बनावटी गाथाओं से भरी पड़ी हैं।

(६) इस धर्म पर आक्रमण होनेपर सहस्रों स्त्रियों ने धर्म बचाने के अर्थ अपने को अग्निकुण्ड में प्रवेश करदिया, सैकड़ों बच्चों नें मौत को धर्म के सन्मुख तुच्छ जाना जो धर्म के महत्व का साक्षी है।

(७) सत्य की जिज्ञासा और धर्म के निर्णयार्थ प्रत्येक मनुष्य को उत्तेजित करना, विद्या बुद्धि और युक्ति के विरुद्ध किसी बात को न मानना, प्रत्येक विद्वान् सज्जन धर्मात्मा का आदर करना और उनकी शिक्षा और दीक्षा से संसार को बोधित करना, प्रेम और स्वहृद्भाव से सत्यधर्म्म को फैलाना, युक्ति और प्रमाण से लोगों के संशय मिटाना, परोपकार और निष्कर्म कार्य्य की महिमा जतलाना, कर्मानुसार फल पाने की व्यवस्था को प्रतिपादन करते हुये पुनर्जन्म को सिद्ध कर ईश्वर के न्याय और दया आदि गुणों को सार्थक बताना इत्यादि इस धर्म के पवित्र चिन्ह हैं।

(८) उपरोक्त जैसे दश नियम किसी मत में आपको नहीं मिलेंगे।

भारत के कई प्रसिद्ध त्यौहार।

त्योहारों के विषय में सामान्यतया यह प्रश्न माताओं की ओर से होते हैं इनका मुख्य अभिप्राय क्या है और यह किस निमित्त से स्थापित किये गये थे और उस समय पर हमारा क्या कर्त्तव्य है। बहुधा जन पोपलीला बताकर छोड़ देने का उपदेश कर देते हैं वरन् बिना समझाये, धमका कर रोक देते हैं। कई जगह माताओं ने ऐसे प्रश्न किये कि हम

से हमारे व्रत नियम छुड़ाये ही जाते हैं, पर कुछ करने को नहीं बताया जाता। उन त्यौहारों पर अड़ोस पड़ोस की स्त्रियां गृह लिपा पुताकर खूब सजाती हैं, गाती बजाती आनन्द मनाती हैं, हम वैसे ही मन मारे उदास निरुत्साह होकर घर में बैठी रहती हैं। इसका प्रभाव हमारी आत्मा पर अच्छा नहीं पड़ता, यही कारण है कि और स्त्रियां हमारे विचार अनुकूल नहीं होतीं, वरन् हंसी उड़ाती हैं। खाली समय भी नहीं कटता, सो क्या यह सब त्यौहार और व्रत निरर्थक हैं वा इन में कुछ सार भी है। मेरे विचार में उन माताओं के प्रश्न ध्यान करने योग्य हैं. आशा है कि कोई योग्य विद्वान् उनके प्रश्नों का यथार्थ उत्तर देंगे और कोई सन्तोष जनक पुस्तक द्वारा उत्तर प्रदान करेंगे।

यह जितने त्यौहार हैं उनमें से बहुत ऐसे हैं जिनको पूर्व पुरुषाओं ने ऋतु और काल की आवश्यकतानुसार विशेष कारणों और मुख्य प्रयोजनों से नियत किये थे, यद्यपि वर्त्तमान में उनमें अधिक परिवर्त्तन होगया है, मैं अपनी सम्मति अनुसार कई त्यौहारों की व्यवस्था संक्षेप से लिखूंगा कि वे बड़े आवश्यकीय हैं, उन्हें विचार कर जो जो कुरीतियां उनमें प्रवेश होगई हैं उन्हें निकाल कर उत्तम लाभदायक क्रियाओं का ही पुनः प्रचार कीजिये। इनके अतिरिक्त जो त्यौहार आवें उन पर भी यदि आप चाहें बहुत प्रसन्नता से गृहशुद्धी के अर्थ लिपा पुताकर नहा धोकर साफ़ उत्तम सुथरे वस्त्र बदल कर जितना नित्य हवन करती हो उससे कुछ विशेष किया करो यदि सम्भव हो तो अपने घर के अतिरिक्त टोले बस्ती की भी स्त्रियों को सम्मिलित किया करो और सब मिलकर मधुर स्वर से वेद गान किया करो। ईश्वर स्तुति, प्रार्थना के

मन्त्र पढ़ा करो वा सम्मिलित हुई स्त्रियों में से थोड़ी सी स्त्रियां मिलकर जिनकी आवाज़ और स्वर मिलते हों ईश्वर सम्बन्धी, देशसुधार, स्त्रीसुधार और ऐसे भजन जिनसे अपने अधिकारों की अपील होती हो और जिनसे मन धार्मिक कामों की ओर झुकता हो, चित्त प्रसन्न और आनन्दित होता हो ऊंचे वा नीचे स्वर से गान कीजिये, भजनों की पुस्तकें प्रत्येक स्थान पर आर्य्यसमाजों से मिलती हैं।

त्यौहारों की वास्तविकता और कुरीतियों के निवारण और सुधर्म के संचालन विषय पर व्याख्यान दिया कीजिये, आपका समय बड़े हर्ष से बीतेगा। हमारा मुख्य तात्पर्य तो यही है कि कुटिल और दुष्टा स्त्रियों के संग से बचो और जैसे आज कल फूहड़ और कामोत्तेजित राग गाये जाते हैं उनका स्वप्न में भी नाम न लो। माताओ! इस पुस्तक में भजनों का लिखना अनुचितसा प्रतीत होता है तथापि त्यौहारों के वृत्तान्त की समाप्ति पर छः भजन सूचनार्थ लिखता हूं। आप ऐसे ही भजन गाया कीजिये। आप सर्वोत्तम मनुष्य योनि में उत्पन्न होकर कंकर पत्थर झाड़ झंकड़ आदि को पूजती फिरती थीं, आप बुरा न मानें आप को सभ्यजन बड़ी तुच्छ दृष्टि से देखा करते थे, बुरे शब्दों से पुकारते थे, हमारे प्रयत्न से यदि आप की प्रतिष्ठा बढ़े, आप सभ्य और धर्मात्मा बन कर एक अपने पति और ईश्वर की पूजनेवाली बनें तो हमारे अहोभाग्य। इस लिये पुनः आप से प्रार्थना है आप उत्तम २ भजनों का ही गान करना और ऐसे भजन कभी न गाना जो अश्लील सभ्यता से गिरे और निरे खण्डन के हों। यदि खण्डन करना तो कुटिल बुरी रीतों का, कठोर

हृदय विदीर्ण करनेवाले तो वचन तक न बोलना। इस नियम का अधिक ध्यान रखना "जब अच्छी बातों का प्रचार होने लगता है, बुरी बातें आप से आप भाग जाती हैं। सचाई जब अपना घर बना लेती है तब झूठ के कान पकड़ कर आप ही निकाल देती है।" यदि ऐसी स्त्रियां आजावें जो समझाने पर न समझती हों और विघ्नकारी हों उन से भी कठोरता से बात चीत नहीं करनी चाहिये, यदि उन का सुधार असम्भव हो तो उन को आगे को न बुलाओ उस समय उन का कटु वचन भी सुनकर हँस कर ही टाल जाओ, जिस से वह आप ही लजा जावेंगी और अन्यों पर अच्छा प्रभाव पड़ेगा। शास्त्रों में व्रतों की बड़ी महिमा है परन्तु व्रत के अर्थ नियम के हैं, यदि अच्छे २ नियम आप करें तो ऐसे व्रत आप को शुभ हों, हां लंघन करनेवाले व्रतों का साधारणतया और सौभाग्यवती स्त्रियों को विशेषतया निषेध है, आप पूछेंगी कहां, पाराशर स्मृति में लिखा है।

सौभाग्यवती या नारी उपोष्य व्रतमाचरेत्।
आयुष्यं हरते पत्युः सा नारी नरकं व्रजेत॥

अर्थ—जो सौभाग्यवती स्त्री उपोष्य अर्थात् लंघन करने वाले व्रत करती है वह अपने पति की आयु क्षीण करती है और आप नरक को जाती है।

एक दिन में तीन २ व्रत जो तिथिवार जन्म मरणादि के हेतु से देश में देख पड़ते हैं।

और पुरुषों की अपेक्षा अधिक स्त्रियों के सर मढ़ने का कदाचित यह तात्पर्य्य है कि बालविवाह के कारण स्त्रियां देश में अधिक विधवा दिखाई पड़ती हैं, उन को दुर्बल और

उन के मन के वेग को अन्य ओर से रोकने अर्थात् निर्बलता के कारण अनुचित विचार न उत्पन्न होसकने के विचार से इनने व्रत उनके सर थोप दिये हों कि उन्हें व्रतों से छुट्टी ही न मिले और वह शीघ्र आरोग्यता खोकर मृत्युलोक पधार जावें, तो भी कुछ थोड़ी पाप की बात नहीं है कि व्रतों के कारण सच्चे व्रतों की व्रतों की प्रथा उठ गई। हां दण्ड के लिये प्रायश्चित्त और जनेऊ के समय पर व्रत करना बतलाया है, उस में भी दुग्धादि के सेवन का विधान है।

अब १ देव शयनी एकादशी, २ व्यास पूर्णिमा (अषाढ़ी) ३ श्रावणी जिसे ऋषितर्पण और सलोनों और रक्षाबन्धन भी कहते हैं, ४ नागपञ्चमी, ५ दशहरा, ६ दिवाली, ७ होली ८ कुवार और चैत्र के नौ व्रत, ९ देवउठानी एकादशी इतने त्यौहारों की संक्षेप से व्यवस्था लिखी जाती है, तत्पश्चात भजन लिखे जावेंगे।

देवशयनी एकादशी, व्यास पूजा, अषाढ़ी, श्रावणी, द्योठान।

विदित हो कि "विद्वांसो हि देवा" अर्थात् विद्वान् ही देवता कहलाते हैं वा शतपथ ब्राह्मणानुसार—

किं पुनस्तत्त्वदेवा ज्ञातमर्हन्ति देवा इत दिव्यदृशः देवा इतः पण्डिताः इत्यर्थः।

अर्थात् दिव्यदर्शी और पण्डित को देवता कहते हैं।

देवो दानाद्वा दीपनाद्वा द्योतनाद्वा द्युस्थानो भवतीतिवा। निरुक्त। अध्या० ७। खं० १५॥

अर्थ—देवता देते हैं, देवता प्रकाश करते हैं, देवता जतलाते हैं, देवता प्रकाश के स्थान हैं।

प्रथम काल में जो परोपकारी ऋषि, मुनि विद्वान, संन्यासी, अतिथि भ्रमण करते थे, वह अपना भ्रमण आषाढ़ सुदी एकादशी से वर्षाऋतु आगमन के कारण बन्द कर देते थे, जिस को कहा जाता था कि आज से देव सोवेंगे। वह महात्मा वर्षाऋतु में प्रत्येक नगर ग्राम में निवासार्थ पधारते थे, ग्रामीण जन उनका शुभागमन करते थे और प्रसन्न चित्त से उनका आदर सत्कार करते थे। वह महात्मा नगरस्थ स्थापित पाठशालाओं की परीक्षा लेते थे, जिस की तिथि आषाढ़ सुदी पूर्णमासी नियत थी, जो व्यासपूजा के नामसे प्रसिद्ध है पूर्णिमा और अमावस्या को पाक्षिक बड़े २ हवन होते थे, इससे आप ही पता लगा सकती हैं कि इस तिथि पर महात्माओं के पधारने की प्रथम पूर्णिमा और विद्यार्थियों की परीक्षा और यह कि कथा किस स्थान पर विठलाई जावे आदि प्रबन्ध के लिये कैसा उत्सव मानाया जाता होगा। आप को विदित रहे की आज कल भी जहां २ कथायें वैठती हैं वह सब वर्षाऋतु में ही श्रावण मास में ही विठाई जाती हैं, जो महात्मा, संन्यासी आदि भ्रमण बन्द कर ठहर जाते थे वह सोते ही नहीं रहते थे, वरन् वह कथाओं, उपदेशों, शिक्षाओं, व्याख्यानों द्वारा ग्राम निवासियों को एकत्रित कर उनके मनके मैल छुड़ाते और सत्योपदेशरूपी अमृत पिलाते थे सत्सङ्ग से ही मनुष्य जीवन का सुधार होता है, सत्सङ्ग की महिमा अपार है।

सन्तसमागम हरिभजन, तुलसी दुर्लभ दोय।
सुत दारा और लक्ष्मी, तो पापी के भी होय॥

पारसपथरी सन्त में, वड़ो अन्तरो जान।
वह लोहा कञ्चन करै, यह करले आप समान॥

जिसका तात्पर्य्य यह है कि पारसपत्थर लोहे को सोना वना सकता है, पर पारस नहीं करसकता, परन्तु साधुसन्त आप जैसा अपने सत्सङ्ग द्वारा वना सकते हैं, संगत का प्रभाव पशु पक्षी तक पर पड़ना आप को पूर्व संस्कार सम्बन्धी लेख में ज्ञात हो चुका है, जव उपदेश सुनते और सत्सङ्ग से लाभ उठाते एक मास व्यतीत होजाता था तव एक मास के अन्तपर पूर्णमासी के दिन वड़ा यज्ञमण्डप़ बना कर सुगन्धित पुष्टिकारक रोग नाशक मिष्टकारक पदार्थों से बड़े समारोह उत्साह से हवन यज्ञ करते थे, जो स्त्री पुरुष लगातार सम्मिलित होते रहते थे जिन के संस्कार पवित्र होते थे जो यज्ञ के अधिकारी होते थे उनके हाथ में एक डोरा चिन्हार्थ वांधा जाता था, जिसका अव तक प्रचार है। ऐसे पुरुष जिन के यज्ञ में शरीक होने अथवा उनके सदाचार के कारण रखड़ी (राखी) वांधी जाती थी, अपने साथी सम्बन्धी जनों में वड़ी प्रतिष्ठा से देखे जाते थे और जो पुरुष अपने किये हुये पाप पर पश्चात्ताप कर और लज्जित होकर भविष्य में उससे पृथक रहने की प्रतिज्ञा करते थे उनका प्रायश्चित्त किया जाता था, इस के अतिरिक्त वर्षाऋतु में सील आदि से वायु विगड़ जाने से जो रोग फैलने की सम्भावना होती थी उसका भी भय दूर हो जाता था, वर्षा की आवश्यकतानुसार हव्य नियत करके यज्ञ करते थे, यह दिन बड़ा ही उत्तम और शुभ समझा जाता था इस लिये कि उस दिन परमात्मा की आज्ञा के सेवन में स्त्री पुरुष

लगते थे और सब से बड़े परोपकार में जिस से शत्रु तक लाभ उठाता है भाग लेते थे। जो धागा ऋषि मुनि योग्य और पात्र को देखकर छानबीन करके अपने पवित्र हाथों से बांधते थे उसी की यह बिगड़ी हुई प्रणाली है कि आज इस दिन पर कई क़ौमों के स्त्री पुरुष धागा लिये हुए पैसा, धेला, कौड़ियां तक लेकर बहुतों के घर जाकर बांधते फिरते हैं। यज्ञों, हवनादिकों का तो नाम ही मिट गया, उसके स्थान में नृत्यादि अधर्म युक्त कार्यों में अवश्य धन व्यय होता है, जिस का आज यह भयानक परिणाम है, कि देश महामारी कालादि महा क्लेशों और भयानक रोगों में ग्रस्त होकर हाहाकार मचारहा है, सच है—

अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम्।
नाभुङ्क्त्वा क्षीयते कर्म कल्पकोटि शतैरपि॥

किया हुआ कर्म विना भोगे नहीं रह सकता, अवश्यमेव भोगना पड़ता है, इस लिये आप प्रसन्न होकर इस त्यौहार को पुनः जीवित कीजिये और यज्ञ द्वारा महात्माओं से शिक्षा ग्रहण करती हुई उनका सत्कार कीजिये, जहां सदाचारी की मान प्रतिष्ठा नहीं होती वहां पर कदापि दुःखों से पीछा नहीं छुट सक्ता।

दूसरे मास की पूर्णमासी को दूसरा यज्ञ होता था और उसमें भी वैसा ही चिन्ह बांधा जाता था और परमात्मा की अनन्त महिमा का वर्णन विविध प्रकार किया जाता था। कुछ काल से इसके विषय में एक कहानी जो बिलकुल झूठी है जिसमें सृष्टि नियम विरुद्ध बहुत सी बातें लिखी हैं गढ़कर

एक दिन प्रथम ही अपना टका सीधा करलिया जाना प्रतीत होता है।

तीसरे मास की शरत्पूर्णिमा के नाम से प्रसिद्ध ही है और अवतक उस दिन पर आनन्द मनाया जाता है और ईश्वर के गुणों का कीर्त्तन किया जाता है। वे महात्मा संन्यासी अपना भ्रमण फिर पूरे चार मास पश्चात् मिती कार्तिक शुक्ल एकादशी से प्रारम्भ करते थे जिसका नाम ड्योठान अर्थात् देवोत्थान था आज वास्तविक मर्म को न जानकर सोवो देव उठो देव की ध्वनि मचाई जाती है, दोनों एकादशी भ्रमण वन्द करने और आरम्भ करने की थी। ऋषि मुनि अधिकांश गंगा के किनारे विचरते और योगाभ्यास करते थे, इसलिये चार मास के संग के प्रभाव से नगर २ से उनको गंगातट पहुंचाने और अन्य महात्माओं के सत्संग और उपदेश से लाभ उठाने के लिये गंगातट तक जाते थे। गंगा पर सत्संग का एक बड़ा मेला होता था, जो आज तक होता है, आज उस में भी वड़ा परिवर्त्तन होगया है। वहां जाकर गुण लाभ नहीं करते वरन् और पाप की गठरी बांधकर घर ले आते हैं जिनके वर्णन की आवश्यकता नहीं है।

दशहरा।

यह भी भारतवर्ष का एक प्रसिद्ध त्यौहार है, जो असौज) आश्विन सुदी दशमी को होता है, यह उक्त महाराजाधिराज मर्यादापुरुषोत्तम का स्मारक चिन्ह है जिसका नाम हर छोटे बड़े की जिह्वा पर बड़ी प्रतिष्ठा के साथ है, जिस समय में आपका जन्म हुआ था उस समय त्रिवाचा का प्रचार था, अर्थात् पक्की बात तब समझी जाती थी जब कि तीनबार

कह दी जाती थी, महाराज दशरथ और जनक के यहां त्रिवाचा का प्रचार था, परन्तु अपने मुंह से निकली हुई बात को ही पत्थर की लकीर वनादिया था और प्रसिद्ध होगया था कि (रामो दुर्नाविभाषते) राम दोवार नहीं कहता, कौन पुरुष होगा कि जिसको शाम को यह आज्ञा मिले कि प्रातः तुम राजा नियत होगे और राज-प्रवन्ध करोगे, पर प्रातः विना अपराध चौदह वर्ष को वनवासार्थ भेज दिया जावे और उसकी आकृति में कुछ भी अन्तर न पड़े। ऐसा पुरुष संसार में दुर्लभ नहीं तो वहुत ही कम प्राप्त है, इसको श्रीमहाराज ने ही आदर्श वनकर दिखाया था। लिखा है कि जव महाराज अभिषेक (राजातिलक) के लिये वुलाये गये और वनको भेज दिये गये, उस समय मैंने कुछ भी उनके आकार में विभ्रम विगाड़ नहीं पाया, जैसा कि—

आहूयतस्याभिषेकार्थं विसृष्टस्य वनाय च।
न मया लक्षितस्तस्मिन् किञ्चिदाकारविभ्रमः॥

राज छोड़ने का मन में किंचित् भी खेद नहीं लाये, वे राजको कोई वड़ी वस्तु नहीं जानते थे, दुःख तव होता जव वह राज पैदा करने में असमर्थ होते और उसको कोई वड़ी वस्तु समझते। कौन नहीं जानता कि उन्होंने विना सहायता भाई भरत के पंपापुर का राज्य छीनकर सुग्रीव को और लंका का विभीषण को जीतकर दे दिया, आपसे भाई भरत ने वन में आकर लौटचलने को निवेदन किया और वतलाया कि आपका प्रजापालन करना धर्म है, महाराज ने उत्तर दिया कि यदि प्रजापालन करना धर्म है तो माता पिता की आज्ञा मानना परम धर्म है। मैं परमधर्म को छोड़कर धर्म का

पालन नहीं करसकता, चौदह वर्ष से प्रथम कैसे लौट सकता हूं, जिस रावण के पराजय और रामचन्द्र के विजय पाने की यह तिथि दशमी स्मारक है, संग्राम भूमि में जब रावण रथपर चढ़कर बड़े समारोह से आया, उस समय विभीषण ने आपको पैदल देख अति प्रेम में डूबकर यह विचार कर कि ऐसे बलवान् शत्रु को कैसे विरथ जीत पावेंगे महाराज से कहा। महाराज ने सुनकर जो उत्तर दिया वह सब निम्न-लिखित चौपाइयों से विदित है जिसका अभिप्राय यह है कि संग्राम में विजय उसकी होती है जो धर्म कर्म रूपी रथपर सवार होता है, पापी और दुराचारी की नहीं। रावण यदि साधारण रथ पर सवार है तो मैं एक विचित्र रथपर सवार हूं जो इस रथपर से अधिक रक्षा में रख सकता है और शत्रु को दिखाई भी नहीं देता, जैसा कि—

प्रश्न विभीषण।

रावण रथी विरथ रघुबीरा। देख विभीषण भयो अधीरा॥
अधिक प्रीति उर भा संदेहा। बन्दि चरण कहि सहित सनेहा॥
नाथ निरथ नाहीं पदत्राणा। किहि विधि जीतव रिपु बलवाना॥

इसके उत्तर में श्री रामचन्द्र जी ने कहा—

सुनौ सखा कह कृपानिधाना। जेहि जय होय सो स्यन्दन आना।
शौर्य धर्म जाहि रथ चाका। सत्यशील दृढ़ ध्वजा पताका
बल विवेक दम परहित घोरे। दया क्षमा समता रजु जोरे
ईश भजन सारथी सुजाना। व्रत धर्म संतोष कृपाणा
संयम नियम शिलीमुख नाना। अमल अचल मन त्रोण समाना।
दान परशु बुधि शक्ति प्रचण्डा। वर विज्ञान कठिन कोदण्डा

कवच अभेद विप्र पदपूजा। यहि सम विजय उपाय न दूजा
सुनौ सखा कह अस रथ जाके। जीत न सकैं कवहुं रिपुताके

जिसका अन्तिम परिणाम यह हुआ कि रामने उसी दशा में समर भूमि में रावण को वध किया। वह ही दिन जिस दिन रावण का परलोक गमन हुआ आजतक स्मारकचिन्ह है, इसी को विजयदशमी भी कहते हैं। इस दिन पर प्रत्येक मनुष्य को जिसे कुछ भी ज्ञान है स्मरण आजाता है कि चाहे कोई कैसाही वलवान शक्तिवाला क्यों न हो अधर्म ऐसी वस्तु है जिसके कारण उसका एक दिन नाम मिट जाता है। परमात्मा उसके कर्मों का फल ऐसा ही प्रदान करते हैं जैसा रावण को प्राप्त हुआ कि सत्तर पूत बहत्तर नाती। तिन रावण घर दिया न वाती। किसी ने सच कहा है। कवित्त—

कंस तो कहत निरवंश वसुदेव करूं, रुक्म तो कहत शिशुपाल शिरमौर है। रावण तो कहत मीच बांधलई पाटी सों, मेघनाद कहत योधा मो समान कौन है॥ हरनाक्ष तौ कहत मार डालों प्रह्लादको ऐंचों जब खड्ग तब रक्षाकार कौन है। कहत कवि क्षेत्रपाल करते न लागे बार कहे कोई लाखों पर करैया कोई और है॥

यह विचारकर बुराई से बचने और भलाई की ओर झुकने का ध्यान इस दिन पर उत्पन्न होजाता है। आप में से बहुतसी ऐसा भी कह उठेंगी कि हमें तो नहीं होता, उनके उत्तर में निवेदन है कि यदि ऊसर में बीज नहीं जमता तो वर्षा को दोष नहीं, यदि कोइला और लोहा नहीं चमकता तो सूर्य्य का अपराध नहीं। द्वितीय आज ढंग ही बदल रहा है और का और ही दृश्य दिखाया जा रहा है। बहुत सी

भद्दी और धर्म भ्रष्ट करने वाली वार्त्तायें उत्पन्न होगई हैं और होती जाती हैं, जिन में शोधने की बड़ी आवश्यकताहै। इसी दिन को साहूकारों ने वर्ष भरके वहीखाते को समाप्त करने और नया बहीखाता आगामी वर्ष के लिये खोलने के लिये नियत किया है। राजेमहाराजे सेना को आज्ञा देते थे कि सब अपने वस्त्र शस्त्र साफ़ करलें और ऋषि, मुनियों के भ्रमण का एक मास शेष रहगया है, उस समय तक मार्ग साफ़ करा दिये जावें और सेतु अर्थात् पुल आदि यदि कहीं वर्षा में टूट वा विगड़ गये हों तो बँधवा दिये जावें जिस से उनको और यात्रियों को किसी प्रकार का कष्ट न हो और इसकी सूचना नगर नगर और ग्राम ग्राम ड्योढान तक तो अवश्य पहुँच जावे।

माताओ! श्रीराम जैसे सम्राट् जो उसकाल में अपना समान नहीं रखते थे, जो गोहील नामक निषाद को छाती से लगाते थे, जो शवरी नामक भीलनी का आदर, सत्कार स्वीकार करते थे, जिस का प्रजापर यह प्रभाव था कि आज लाखों वर्ष वीत जानेपर भी उनकी वही प्रतिष्ठा है, और हम आप सब को ही उनका अनुगामी होना चाहिये और किसी मनुष्य को नीच योनि में पैदा होने से ही नीच न जानना चाहिये। यदि वड़े और उत्तम पुरुष उन पर साधारण प्रेम का वर्त्ताव करते हैं तो वह उनके अर्थ प्राण देने को तत्पर होजाते हैं। निषाद के साथ रामचन्द्र के किञ्चित् प्रेम का यह प्रभाव पड़ा था कि जब भरत को आते देखता है तब मन में यह विचार करके कि यह अकेला जानकर रामपर चढ़ाई किये जा रहे हैं सो मेरे जीते जी तो यह नहीं हो सकता कि रामपर चढ़ाई कर सकें।

सम्मुख लोह भरत संग लीहौं। जियत न सुरसरि उतरन दीहौं
समरभूमि और सुरसरि तीरा। राम काज क्षणभंगु शरीरा

यही इस त्यौहार के मानने का फल है कि हम अपने वर्ष भर के किये हुये कर्मों की परताल करें कि कौन २ उचित और अनुचित काम इस वर्ष में हमसे हुये और आगामी वर्ष के लिये एक लिपि करने योग्य कामों की तैयार करें जिस में सीता और राम के जीवन का अनुकरण हो।

दिवाली वा दीपमालिका।

यह त्यौहार मिती कार्तिक अमावस्या को होता है। इस त्यौहार के आने के लिये बहुत दिन पहिले से तैयारी की जाती है। वर्षा के कारण जो गृह टूट फूट जाते वा भोंड़े हो जाते हैं उनको पुनः ठीक कराया जाता और अच्छे प्रकार सजाया जाता है अर्थात् इस त्यौहार तक पुनः संस्कार होकर गृहों का ठीक हो जाना अति आवश्यक है, इस त्यौहार के विषय में एक भद्दी कहानी शिवपुराण में इस प्रकार लिखी है कि एक दरिद्री ब्राह्मण ने विष्णु भगवान् की इस अभिप्राय से बड़ी सेवा की कि वह अपनी दरिद्रता से छूट धनी हो जावे और धनी की भांति चैन से अपना निर्वाह करे। अन्त को सेवा करते २ उस का परिश्रम सफल हुआ और एक दिन विष्णु भगवान् जो बड़े दयावान् हैं उस पर दयालु होकर पूछने लगे कि आप ने किस प्रयोजन से यह कष्ट सहन किया है, उस ने अपना प्रयोजन बताया जिसपर उन्हों ने प्रसन्नता पूर्वक उस को धनवान् बनने की एक अद्भुत बात बताई कि तुम जाकर अपने यहां के राजा से यह याचना करो कि कार्तिक की अमावस्या के दिन नगर भर में रात्रि

को कोई दीपक न जलावे और तुम अपने घर में खूब प्रकाश करना, उस दिन मेरी स्त्री लक्ष्मी देशाटन को उस नगर में जावेगी वह सारे नगर में अंधेरा घुप होने से तुम्हारे गृह में ठहरने को चाहेगी, जब वह तुम्हारे गृह में रहना चाहे तब उस से कहना कि तुम बड़ी चञ्चल हो कहीं ठहरती नहीं, मैं अपने घर भी नहीं रहने दूंगा तब वह सदैव के रहने की प्रतिज्ञा करके ठहर जावेगी और तुम उसके आने से धन सम्पत्ति से भरपूर हो जाओगे। अन्त को उस ब्राह्म ने वैसा ही किया और वह उनके पधारने से दरिद्रता से छूट गया और विष्णु भगवान् ने सदैव के लिये अपनी प्रिय स्त्री लक्ष्मी से पृथक्ता उस ब्राह्मण के अर्थ स्वीकार की और वह आकर उस ब्राह्मण के यहां रहने लगी। जब औरों को पता लगा, तब से सब लोग उस दिन पर रोशनी करने लगे। तब से यह दिवाली चली आती है।

माताओ! इस में कई शङ्कायें उत्पन्न होती हैं कि विष्णु भगवान् ने कोई दफ़ीना वा ख़ज़ाना क्यों न बता दिया वा अपनी स्त्री से अप्रसन्न थे जो इस बहाने से ही पृथक कर दिया, कोई अन्य उपाय उन्हें अपनी स्त्री के भेजने के अतिरिक्त और न सूझपड़ा। वह ब्राह्मण किस प्रकार लक्ष्मी नाम्नी स्त्री के आजाने से धन सम्पत्ति से भरपूर होगया। वह साथ तो कुछ लाई ही न थी। उस ब्राह्मण का कुटुम्ब कहां है जो उस समय से आज तक सब से बड़ा धनाढ्य है और उस ब्राह्मण का राज्य सब से बड़ा तो क्या, कहीं छोटासा भी राज्य दृष्टि नहीं पड़ता? यह पुराणों की लीला है, जिस में विष्णु का अपमान किया गया है और अन्य मतवादियों को उपहास्य का। मैंने आप को इस पुस्तक में कहीं पर पुराणों

का परस्पर विरोध नहीं दिखलाया है, इतना ही सङ्केत मात्र आप को बताये देता हूं कि अठारह पुराण जो कि बहुत निकट काल के बने हुये हैं उन में बहुत सी बातें सृष्टि नियम के विरुद्ध हैं और एक में दूसरे की निन्दा और एक की स्तुति है, कोई कोई बातें अच्छी भी हैं, आप यदि कभी उन्हें पढ़ेंगी तो आप ही पता लग जावेगा।

यह एक बीच में बात आगई, इन शंकाओं का उत्तर कोई ठीक नहीं देसकता, न यह बात ठीक है, जब यह ज्ञात होगया कि लक्ष्मी जी सदैव रहने की प्रतिज्ञा कर के वहां ठहर गईं तो फिर अन्यों के उस दिन पर प्रकाश करने से क्या लाभ होसक्ता है। बहुत से पुरुष इस बात का दृढ़ निश्चय रखते हैं कि इस रात्रि में सो जाने से दरिद्र आदबाता है, इस लिये जागना अच्छा है यहां तक ही नहीं उस दिन जाग कर कुछ पूजा पाठ योगाभ्यास परमेश्वर का गुण गान नहीं करते न कोई पुस्तक अवलोकन करते हैं वरन् सब खेलों से बुरे खेल जुआ को खेलते हैं और अपने अमूल्य समय को नष्ट करते हैं और आप ही नहीं इस महान् शत्रु के दांव में फँसे हैं और अपने पवित्र जीवन का खोज मारते हैं, किन्तु होनहार बच्चों के मन पर भी खेल में बिठला कर उन से दांव लगवा कर स्वयं खेलना सिखाकर उनके जीवन को बिगाड़ देते हैं। हा शोक! अज्ञानी पातकी पिता अपने आत्मज पुत्र, पुत्री को स्वयम् खिलाकर वा खेलने की आज्ञा प्रदान कर उसका संस्कार डालते समय यह नहीं जानते कि इसके अंकुर फूटने पर और इसके पूर्ण जुआरी होजाने पर हमें ही सारी आयु सर पीटना और रोना पड़ेगा। वह ही बच्चे जब उसका चस्का पड़ जाता है माता पिता स्त्री की और अन्यों की वस्तुयें चुरा

कर जुयेमें लगाते हैं,यहां तक देखा गया है कि छोटे २ खेलते बच्चों का मिठाई देकर लालच दिखाकर फुसला कर उनका माल उतार कर भाग जाते हैं,कोई २ निर्दई माल के लोभवश उनके प्राणों तक का घात करते हैं। यही नहीं घर वार भूमि सब हार जाते हैं, कोई २ अभागे तो स्त्री तक को हार अन्त को लंगोटा लगाये भीक मांगते फिरते हैं। यदि कोई उनका हितैषी दिवाली में जुआ खेलने को समझा कर मना करता है तो झट वेसोचे उत्तर दे देते हैं कि युधिष्ठिर और नल ने भी जुआ खेला था, जिन का प्रातःकाल उठकर नाम लेना शुभ समझा जाता है जैसा कि—

प्रात लीजे पञ्च नाम-हर, वल, करण, युधिष्ठिर, परशुराम। मैं नहीं जानता कि इनकी वुद्धि को क्या हो गया, मूर्ख यह नहीं सोचते कि जुए के कारण उनका परिणाम क्या हुआ, बारह वर्ष तक असह्य क्लेशों को सहना और वनवन मारे फिरना पड़ा। मुझे ध्यान है कि मैंने किसी जगह पढ़ा था कि जुआ व्यंभिचार से वुरा है, मैं विस्मित था कि यह क्यों कर हो सकता है। अधिक विचारने से पता लगा कि काम शक्ति प्रवल होने पर मनुष्य की वुद्धि विगड़ जाती है और जुआ खेलने से प्रथम उस की वुद्धि ठीक होती है, वह जानकर अन्यों का धन लेना चाहता है वरन् जिन पापों से वचता था जिन्हें अति घृणित जानता था जुआ खेलकर फिर उन के नशे में पाप ही नहीं जानता। एक कहानी है कि एक दरिद्री ब्राह्मण निर्धनता से पीड़ित होकर घर से परदेश को निकला चलते २ एक ऐसे नगर में पहुँचा जहां के राजा ने नगर में जाने के चार द्वार बनवा रक्खे थे, यह प्रथम द्वार पर पहुँचा तो उससे कहा गया कि यदि तुम प्रथम मांस, मछली कवा-

बादि खालो तब इस द्वार से भीतर जाने का नाम लो। उसने उत्तर दिया कि हमें परमेश्वर ने मनुष्य बनाया है, हम अपने में पशुओं का मांस खाकर उनकी क़लमें लगाकर पशुताको कदापि धारण नहीं कर सकते ऐसे अधम पातकी कैसे बन सकते हैं। पूछा और भी कोई द्वार है। कहा हां वह दूसरे द्वार पर पहुँचा तो वहां पर नाना प्रकार की मदिरा की बोतले दृष्टि पड़ी, किसी में विसकी, किसी में रम, किसी में बराण्डी किसी में ओलटाम आदि भरी थी, उससे कहा गया कि प्रथम इन शरावों का सेवन करलो तो भीतर जाने का नाम लो। यह छी छी करने लगे कि ब्रह्महत्या और सुरापान, चोरी और गुरनारी से संभोग और ऐसे पुरुषों के संग को महापातक बताया है, फिर इसको सेवन कर मैं महापापी कैसे बन सकता हूं, मेरे पढ़ने पर धिक्कार है। पूंछने से ज्ञात हुआ कि अभी दो द्वार अन्य भी हैं यह तीसरे द्वार पर पहुँचा वहां पर अति सुन्दरी भूषण वस्त्र से सुशोभित एक से एक बढ़िया रूपवती अप्सरायें दिखाई पड़ीं, इनकी ओर संकेत कर के इन से कहा गया कि यदि अन्दर जाने और राजा से मिलने की अभिलाषा है तो प्रथम इनके संग का स्वाद प्राप्त कीजिये, फिर हर्ष पूर्वक भीतर चले जाइये, इन्हों ने उत्तर दिया और सारा शरीर इनका कम्पायमान होगया पढ़ा हुआ स्मरण हो आया कि—

मातृवत्परदाराणि परद्रव्याणि लोष्ठवत्।
आत्मवत् सर्वभूतानि वीक्षन्ते धर्मबुद्धयः॥

अर्थात् धर्मज्ञ पुरुष माता के समान परदारा को और ढेले के समान पराये द्रव्य को और अपने समान सब प्राणियों

को जानते हैं विचार कर और यह कहकर चौथे द्वार पर पहुँचे कि—

काया से काम जात गांठहू से दाम जात नारिहू से नेह जात रूप जात अंग से। उत्तम सब कर्म जात कुल के सब धर्म जात गुरुजन से शर्म जात अपने मत भंगसे॥ गुण और रंग रीत जात ईश्वर से प्रीति जात वेद से प्रतीत जात मदन के उमंग से। जप तपकी आस जात सुरपुरको वास जात भूसुरकी वात जात वेश्या प्रसंग से॥

वहां पर पहुँच कर देखा तो कई स्थानों पर जुआ उटा हुआ है, इनसे पूछने पर तीन द्वारों से लौट आने का हाल विदित होगया, तब इनसे कहा गया कि महाराज यह अन्तिम द्वार है यहां से भी विना जुआ खेल हुये भीतर नहीं जा सकता, यदि जुआ खेलना चाहो तो खेल लो नहीं तो अपने घरको या अन्य स्थान को पयान करो। इन्होंने सोचा कि इस के लिये तो हमारे अण्ड बण्ड डुकरिया पुराण में भी आज्ञा है और हमने भी दिवाली को दो दिन अमावस परिवा को खेला है, आज दिवाली ही सही, निर्णयसिंधु द्वितीय परिच्छेद में तो लिखा है कि जो कार्तिक शुक्ल प्रतिपदा को प्रातःकाल जुआ खेले उसकी साल भर जीत रहे (तस्मिन् द्युतं प्रकर्त्तव्यं प्रभाते तत्र मानवै, तास्मिन् द्योते जया यस्य तस्य संवत्सरं जयः) अच्छा लाओ खेल लें यह कह कर खेलने लगे तो इनकी इतनी जीत आई कि सहस्रों रुपये मुहरों के इनके सम्मुख ढेर लग गये, अर्द्धरात्रि से अधिक बीत गई, पियास ने तोड़ किया तब पूछा कि कोई ऐसा पुरुष है जो हमें पानी पिलावे, उत्तर मिला उपस्थित। पण्डित जी ने झट उठाकर दो रुपये दिये कि पानी लाओ

उसने समझा कि दो रुपये का पानी बढ़िया मदिरा के अति-रिक्त और क्या होसकता है, झट दूसरे द्वार से लाकर गिलास भर उपस्थित किया, जिसे यह झट पीगये, जब उसने रंग जमाया और क्षुधा ने सताया तो झट पांच मुद्रा और दिये कि भोजन भी ले आओ तो उसी प्रथम द्वार से लाकर मांस, मछली आदि का भोजन कराया, इन्हें नशे में कुछ न सूझा जिससे बुद्धि और धर्म का नाश होकर पशुता आगई, फिर क्या था भला कोई शराबी, कबाबी भी इन्द्रियों के वेग को रोक सकता है वा स्वदारगामी और ऋतुगामी हो सकता है। दो बजे जुआ समाप्त हुआ नशे और कबाब के प्रभाव से प्रभावित हुए यह कैसे बच सकते थे, तीसरे द्वार पर भी पहुंच अपना मुँह काला किया। प्रातः उठकर उस दुष्टा वेश्या ने जब सब नशा उतर चुका पण्डित जी से पूछा कि पुनः अब कब मिलियेगा, उत्तर दिया कि अब कुम्भी नरक ही मिलूंगा, जब इस पापका फल भोगना पड़ेगा। इस से आपको निश्चय होगया होगा कि जुआ सर्वपापों का मूल है, जिस की जीत भी मीठी और हार भी मीठी। हारा ज्वारी जीतने की आशा से नहीं उठता, जीता हुआ इस ध्वनि में लगा है कि थोड़ा और बटोर लूं। वास्तव में यह त्यौहार खरीफ़ की फ़स्ल का उत्सव है। यह प्रथा तो आज तक देखी जाती है कि दीपक जलाते समय पुरोहित जी आकर अग्यारी अर्थात् छोटासा हवन कराते हैं, दीपक भी फ़स्ल की नई रुई और तिलके तेल के जलाये जाते हैं, दो चार घृत के भी जलाते हैं, हवन में खीलें और मिठाई डाली जाती हैं जिस से पता लगता है कि पूर्व पुरुषाओं ने यह त्यौहार इस लिये नियत किया था कि अब वर्षा निकल गई एक दिन ऐसा नियत होना चाहिये

कि उस समय तक सब कर्तव्य हो कि अपने गृहों का जो गिर गये हैं वा जिनकी दशा बिगड़ गई और शक्ल भोंडी होगई है उनको ठीक और सुथरा करलें। दूसरे जो नाज उत्पन्न हुआ है यज्ञ हो जाने पश्चात् उस के सेवन करने का अधिकार होजावे। गृहों की सीलादि से जो वायु में बिगाड़ हो रहा है वह भी दूर हो जावे और नई रुई को भी कपड़ों में भरा सकें। हवन करने और परमात्मा की आज्ञा पालने और उस का धन्यबाद देने और गुणानुवाद गाने से ऋतु के बदलने पर भी बुरे प्रभावों से बचे रहैं आज तो हर बात में परिवर्तन दिखाई पड़ता है, पण्डित जीने पाप करने की भी साइत बताने की एक बही बनारक्खी है, जिस पाप के करने की इच्छा हो उनसे जाकर पूछलीजिये और जुआ तो बहुधा जन पण्डितों से ही पूछकर खेलते हैं।

होली।

यह त्यौहार फाल्गुण पूर्णिमाको होता है। यह भारतवर्ष के त्यौहारों में सब से बड़ा माना जाता है, जिस को होली कुशल पूर्वक प्राप्त होती है वह अपने लिये बड़ा भाग्यशाली समझता है यह त्यौहार बसन्त ऋतु के आरम्भ में होता है पेड़ों में पतझाड़ के पश्चात् नई २ कोपल कलियां सुहावनी पत्तियां निकलनी आरम्भ होती हैं आम मौराते हैं, और अन्य वनस्पतियां भी फूलती हैं, वाटिकाओं में कुछ निराला ही जोवन दिखाई देता है, बेला निवाड़ी की भीनी भीनी महक की लपटों से मस्तक महर २ होता है। जाड़ा बहुत गुलाबी नाम मात्र रह जाता है, शरीर में रक्त के दौरेन्ने प्रफुल्लता पैदा होती है। जाड़ा गर्मी दोनों गले मिलते हैं, एक विदा होता है दूसरा उसका स्थानापन्न बनता है। मनुष्यों

के जीवन का आधार रबी की फ़सल का अन्न उत्पन्न होता है। चनों के बूटे जो कुछ कच्चे और कुछ पक्के होते हैं उन्हें जब भून लेते हैं तो होला कहते हैं (जो अर्द्धपक्वान्न होलिका) से बना है, जोकि यह त्यौहार फ़स्ल रबी का उत्सव है और अधपके नाज का हवन किया जाता है इस लिये इस विचार को लेते हुए इसका नाम होली वा होलिका रक्खा गया है। कोई हवन अधिक होने से हवनालय अर्थात् हवन का नियत स्थान बताते हैं, कोई होरी जिस के अर्थ खुशी का दिन है। हमारे पूर्व पुरुषा इतने विचारवान् और दूरदर्शी और अग्रशोची थे कि उन्हों ने जब ऋतु परिवर्त्तन के कारण रोगों के फैलने की सम्भावना समझी, उसी आवश्यकता के अनुसार उस के दुष्ट प्रभाव को हटाने और रोगों के न आने के अर्थ त्यौहार नियत कर दिये थे। जब तक उनके निर्धारित नियम के अनुसार लोग वर्त्ताव करते रहे और मुख्य तात्पर्य्य पर ध्यान रहा, सारे रोग यहां से पृथक रहे। जिन २ रोगों ने आज अपना डेराजमाया है उनका नाम तक न था। हमारे पूर्व पुरुषाओं ने सब रोगों के निवारणार्थ एक परम औषधि, जो सम्पूर्ण विपत्तियों की नाशक परोपकार की साधक थी एक मात्र हवन ही रक्खा था, वैसे तो प्रत्येक पुरुष नित्यकर्मों को करता हुआ नित्य हवन करता था परन्तु ऐसे नियत समयों पर यदि छोटा ग्राम हुआ तो सम्पूर्ण ग्राम निवासी मिलकर और यदि बड़ा नगर हुआ तो टोले २ के मिलकर एक पुष्कल सामग्री से बड़े बड़े यज्ञ किया करते थे, जिन में नवीन उत्पन्न हुये नाज की भी अन्य सामग्री औषधि मधु घृत आदि के सहित आहुतियां पड़ती थीं मौसम और जल वायु ऋतु के अनुकूल बड़े बड़े

वैद्यों और योग्य पण्डितों यज्ञ के मर्मों के जानने वालों के द्वारा राजप्रबन्ध से विशेषतया यज्ञ में डालना स्वीकृत की जाती थीं उनकी सूचना सर्वसाधारण को उसी राजप्रबन्ध द्वारा हो जाती थी, कोई नवीन नाजको बिना यज्ञ किये सेवन नहीं करता था, सब प्रीतिपूर्वक मिलकर एक स्वर से वेदमन्त्र उच्चारण करते थे, आज तक घर घर से नये नाज का पक्वान्न बनकर होली पूजने को जाता है जिसमें से कुछ होली में डाल दिया जाता है और कुछ घर को लौट जाता है, जिसे स्त्रियां घर में बल्ले जलाकर डालती हैं, पर शोक है कि आज उस उत्तम सामग्री की जगह पर समय के परिवर्तन चक्र से उपले जलाये और वेदमन्त्रों के स्थान पर अर-ररर कबीर गाये जाते हैं। जहां होली जलगई फिर अति सभ्यसुसाइटी में तो रंग चलता है, एक दूसरे पर पिचकारियां छोड़ी जाती हैं और भावजों, साली, सलहजों आदि के साथ पुरुषों को और देवर नन्दोई आदि के साथ स्त्रियों को होली खेलना और अपशब्द सुनना ही होली का मुख्य प्रयोजन समझा जाता है। बहुधा स्थानों पर एक दो पुरुषों का मुंह काला कर उलटी खाट वा गदहे पर चढ़ा जूतियों का हार पहिना कर हू हू हा हा करते हुये रंग कीच साथ लिये घूमते हैं। जिन्हीं कारणों से अन्य देश वासी इन्हें अर्द्ध पशु के नाम से पुकारते हैं। जिस प्रकार दिवाली आज जुआ सिखाने और ज्वारी बनाने का त्योहार है वैसे ही होली बच्चों को शराबी भंगी चर्सी अर्थात् मदमाता बनाने की मुख्य पाठशाला है, माता, पिता साथ बैठकर अपने हाथों से नशे खिलाते और पिलाते हैं। नशे की भी विलक्षण दशा है कि मुंह बिगाड़ते जाते हैं पर लाव की ध्वनि लगा देते हैं, जो मुंह से लगा

हुआ छूटता ही नहीं। होली में जितने स्त्री पुरुषों के चाल चलन बिगड़ते हैं अन्यथा नहीं, प्रत्येक ग्राम बस्ती में स्वांग होते हैं जहां स्त्री पुरुष रातों जागकर दुराचार की साक्षात् मूर्त्ति बनजाते हैं और नाना पाप कमाते हैं और वेश्याओं को भी जितना धन, योवन पर हाथ फेरने और नवयुवकों के रक्त चूसने का अवसर हाथ आता है, अन्यथा नहीं। हा! प्रथम समय में हवन यज्ञ होकर फूलों के हार पहिनाये जाते थे. चन्दन, केसर, कर्पूर घिसकर माथे पर लगाते थे, परम-प्रीति से लोग आपस में गले मिलते थे, नमस्ते करते थे, बढ़िया भोजन साथ बैठकर जेंवते थे। वह उचित और मुख्य प्रयोजन जाते रहे, अश्लील उपरोक्त बातें रहगई। वर्तमान काल में तो होली के अर्थ और ही विचार फैल रहा है कि होली प्रह्लाद की बुआ का नाम था, जिसको वरदान था कि वह अग्नि में जल नहीं सकती, प्रह्लात के नास्तिक पिताने उसको ईश्वर भक्ति से रोकने के अर्थ अति कष्ट दिये, पर न माना, तब यह अपनी बुआ की गोद में बिठा कर आग में डाला गया कि प्रह्लाद जल जावेगा और बुआ तो जलही नहीं सकती, परन्तु बुआ तो जलगई पर प्रह्लाद पर आंच तक न आई। उस समय कहा गया कि होली तो होली सो यह वही होली है, इसमें बहुत से आक्षेप उत्पन्न होते हैं।

१—सृष्टि क्रमानुसार अग्नि में जो दाहशक्ति है वह मित्र शत्रु सब ही को जलाती है, जो इसके विरुद्ध हो तो नियन्ता ईश्वर के नियम में बाधा पड़ती है, कोई साधारण पुरुष तक अपने नियम को आप ही नहीं तोड़ता है, यदि ईश्वर अपना नियम तोड़ दे तो सम्पूर्ण प्रबन्ध ही छिन्न-भिन्न और भंग

होजावे और ईश्वर का नाम जो नियामक और नाशायक है वह सार्थक न रहे।

२—हरिभक्तों को होली के दिन शोक करना चाहिये क्योंकि होली के जलने से प्रथम तो हरिभक्तों को यह भय था कि आज एक हरिभक्त जलाया जावेगा, परन्तु आज उसके विरुद्ध जलने के प्रथम हर्ष मनाया जाता है और जलने के पश्चात् धूल और खाक उड़ाई जाती है।

३—धूल उड़ाते तो राक्षस और नास्तिक उड़ाते हरिभक्तों को धूल उड़ाने से क्या प्रयोजन?

४—अर्द्धमनुष्य और अर्द्धसिंह की आकृति सृष्टि में देखी और सुनी नहीं जाती, यह विलक्षण रूप सृष्टिक्रम के विपरीत है।

५—ईश्वर ने अवतार न कभी लिया था न लेसकता है न लेगा। उपरोक्त लेखसे भलीभांति प्रकट हो चुका है।

इसी प्रकार और बहुत सी कपोल कल्पित बातें हैं, आप थोड़े से ही पता लगालें और काजल की डिबिया खोल बिसाती आदि गीतों के गाने से सर्वदा आप को और अमूल्य जन्म और समय को अच्छे कामों में ही व्यय करें।

नागपञ्चमी।

पांच उपप्राणों में नाग भी एक उपप्राण है, जिस के अर्थ डकार के हैं, डकार ऐसी दशा में आती है जब अजीर्ण होता है। आप अनुमान करें तो पता लगेगा कि वर्षा के कारण श्रावण के अर्द्धमास बीते भोजन के ठीक २ न पचने का शब्द कानों में गूंजने लगता है, इस लिये सूक्ष्म भोजन करने और पाचन शक्ति के उद्दीपनार्थ औषधि नियत कर सेवन कराने के लिये यह त्यौहार नियत किया गया था

आज के दिन यह भी देखा गया है कि बहुधा गृहों में बिनौले, हल्दी और दुग्ध मिलाकर छिड़के और धानों के खेतों में डाले जाते हैं, इसके विषय में बहुतों की यह सम्मति है कि इन दिनों में धान के खेतों में एक प्रकार का कीड़ा लगता है, दुग्धादि के डालने से प्रथम तो लगता ही नहीं और यदि लगता है तो दूर हो जाता है, पर यह बात अवश्य होगी कि प्रथम आज कल की अपेक्षा अधिक डाला जाता होगा, अब नाम मात्र रह गया है। तीसरी बात यह है कि सांपों को दूध पिलाया जाता है जिस से पता लगता है कि इस देश के स्त्री पुरुष इतने वैरत्यागी थे कि मनुष्य तो क्या सांपों तक को दूध पिलाते थे। जब उनको सांपों तक पर इतनी दया और प्रेम था तो वह किसी मनुष्य के कैसे बुराई से वर्त्ताव कर सकते थे। मैंने एक फ़क़ीर को देखा है और सुना है कि उसकी कुटिया में बहुत से सांप फिरते रहते हैं, पर वह किसी को नहीं मारता न कोई सांप उसे काटता है। विचारते २ पता लगा कि इस ने अपने मन से उन के सताने के विचार को हटा दिया है, इस लिये वह नहीं काटते। जितने सांप पानी बरसने पर आधे सावन के लगभग दिखाई देते हैं, अन्था नहीं। सांप भी दबने आदि पर ही काटते है जो पुरुष सांपों को मारते हैं उन्हें ही अधिक मिलते रहते हैं और वे ही अधिक सापों के काटने से मरते हैं, और जो उन्हें नहीं मारते उन पुरुषों को कम मिलते हैं। ऐसे लाखों पुरुष हैं जो सांपों को नहीं मारते हैं, इस में आप उचित जान कर बर्त्ताव करें।

नौव्रत।

यह व्रत आधे चैत्र और आधे असौज में होते हैं, सब

जानते हैं कि इन दोनों समयों पर ऋतुओं के बदलने के कारण शीतला और जाड़े बुखार की बीमारी (रोग) बहुत होते हैं, इसलिये उसके प्रभाव से बचने के अर्थ घर घर में यह नियम जारी कराया था कि सात*दिन तो हर स्त्री पुरुष अपने २ घर में यथाशक्ति स्वयं हवन किया करें और आठवें दिन पण्डित पुरोहित को बुलाकर बृहद् हवन कराया करें जो आज तक सब गृहों में साधारण रीति से प्रचलित है, कुछ न कुछ अन्तर तो पड़ ही गया है, क्योंकि उस में हवन को तो नाम रह गया है और माताओं ने मुख्य बात को न समझ कर नौ दिन तक घुय्यां, सिंघाड़ा खाकर रोग बढ़ा लिया है, जिस से कुछ का कुछ होकर लाभ के स्थान में हानि अधिक हो रही है। इसलिये प्रार्थना है कि विचार पूर्वक त्यौहारों को शोधकर उचित का ग्रहण और अनुचित का त्याग कर दो, और हर त्यौहार में परमात्मा का भय रखती हुई धर्मयुक्त कार्य्य करती हुई मग्न चित्त प्रसन्न चित्त रहो, चित्त की प्रसन्नता का प्रभाव स्वस्थता पर अधिक पड़ता है।

त्यौहारों और उत्सवों में ऐसे गीत भजन कभी न गाओ जो तुम्हारी सन्तानों पर वा तुम पर बुरा प्रभाव डालें। वर्त्तमान गीत जिन में कृष्ण को चोर, जारादि बताकर जो लोक हँसाई की जाती है, कदापि न गाया करो। कई भजन नीचे लिखे हैं तदनुसार ही भजन पुस्तकों से समय और अवकाश को देखकर गायन किया करो।

---

* विदित होता है कि उस समय जब यह व्रत जारी किया गया नित्य हवन करने का प्रचार कुछ न्यून होगया था।

भजन १

टेक—सुमिरन करले मेरे मना,
तेरी बीती जात उमरिया हर नाम बिना।

हस्ती दन्त बिना पक्षी पंख बिना, नारी पुरुष बिना।
वेश्या का पुत्र पिता बिन हीना, तैसेही प्राणी हरनाम बिना॥१॥

कूप नीर बिन धेनु क्षीर बिन, मन्दिर दीप बिना।
जैसे तरुवर फल बिन हीना, वैसे प्राणी हरनाम बिना॥२॥

देह नैन बिन रैन चन्द्र बिन, धरती मेघ बिना।
जैसे पण्डित वेद बिन हीना, तैसे प्राणी हरनाम बिना॥३॥

काम क्रोध मद लोभ सतावे, ईश्वर के भय ज्ञान बिना।
कहे नानक सुन भगवन्ता, या जग में नहीं कोऊ अपना॥४॥

भजन २

टेक सुनो ए भाइयो गृहस्थी लोगो, घरों की अपने दशा सुधारो॥

गृहस्थी रूपी है एक गाड़ी, हैं स्त्री पुरुषों के जिस में पहिये। चलती नहीं एक पहिये की गाड़ी, मिला के दोनों धुरे संभारो॥ १॥

यह हमने माना कि तुम पढ़े हो और कुछ न कुछ पदवी भी लिये हो। मगर हैं मूर्खा स्त्री तुम्हारी, घरों में चल कर ज़रा निहारो॥ २॥

पदार्थ जितने हैं इस जगत् में, दिये हैं ईश्वर ने तुमको इकसां। हैं स्त्री पुरुषों के हक़ बराबर, मनू ने क्या क्या लिखा विचारो॥ ३॥

किया न सत्कार देवियों का, घरों में देवी जो हैं तुम्हारे।

फिरो हो क़बरों को सर झुकाते, वृथा क्यों पथरों से मूड़ मारो ॥ ४ ॥

तुम्हारा आधा शरीर मृतक, हुआ पड़ा है ऐ प्यारे भाइयो। हुई है अर्धांग की बीमारी, दवा करा करके शीघ्र टारो ॥ ५ ॥

घर अपनी नारी चुड़ैल भुतनी बताके, राड़ों के पैर पूजो। फिर इससे बढ़ करके पाप क्या है, उस प्राणप्यारी को क्यों बिसारो ॥ ६ ॥

जो अपने पुत्रों को चाहते हो, ऋषी मुनी हम बनावें उनको। तो पहिले माता सुधरनी चहिये, कि जिसके सांचे में पुत्र ढालो ॥ ७ ॥

विनय यह वसुदेव कर रहा है, पढ़ाओ पुत्री बनाओ देवी। तभी यह सुधरेगा देश हमारा, गृहस्थाश्रम की नीव डालो ॥ ८ ॥

भजन ३

अमरनाथ गुजरात।

पुत्री कहे सुन प्यारी माता, तुम्हें हमरी ओर कुछ ध्यान नहीं।

पुत्र के जन्मे खुश होती हो, मेरे जन्मे छुप २ रोती हो। रो धोके नैनन खोती हो; क्या मुझ निगुरी में जान नहीं ॥१॥

मेरे कोमल अंग में छेद करो, मैं होऊं दुःखी नहीं खेद करो। पुत्र पुत्री में क्यों भेद करो, क्या मेरे नाक और कान नहीं ॥ २ ॥

मुझे सड़ गई मर गई कहते हो, सदा मुझ से जलते ही रहते हो। मेरी बात मूल नहीं सहते हो, क्या मैं भी इक इंसान नहीं ॥ ३ ॥

सब घर के काम करा लेवो, सब जूठे बर्तन मजालेवो। आखिर बासी रोटी देवो, क्या मैं पशु के भी समान नहीं ॥४॥

मुझे पढ़ने से नित बन्द करो, मेरा मूर्खपन ही पसन्द करो। मेरी तीक्ष्ण बुद्धी मन्द करो, क्या मेरी इस में हानि नहीं ॥ ५ ॥

लड़के पढ़ें एम० ए० जमाअत तक, फिर जांयें पढ़ने विलायत तक। सब इल्म पढ़ें वे गायन तक, मुझे अक्षरों तक का ज्ञान नहीं ॥ ६ ॥

मेरे पढ़ने को मत रोको जी, मेरी बात सुनों सब सज्जनों जी। मेरी बुद्धि में कील न ठोको जी, क्यों देते विद्यादान नहीं ॥ ७ ॥

मुझे सूखी ही चाहे देवो जी, मेरे भूषण भी ले लेवो जी। पर विद्या दान तो देवो जी, मुझे भाती आन और बान नहीं ॥ ८ ॥

मुझे दूसरे घर में जाना है, जहां सबका सब ही बेगाना है। कैसे जानूं ठीक निशाना है, जब नेको बदकी पहिचान नहीं ॥ ९ ॥

कहा मेरा माता मानो जी, मेरे पढ़ने की दिल ठानो जी। तुम बल बुद्धिकी खानि हो जी, मैं भी बिलकुल अंजान नहीं॥ पुत्री कहे सुन प्यारी जननी, तुम्हें मेरी ओर कुछ ध्यान नहीं ॥ १० ॥

भजन ४

टेक—भारत को फेर बनाओ जगत् गुरू।

जैसा कभी था यह देश तुम्हारा, देखो मनू जी में साफ़ इशारा। सब ने गुरू इसे कहके पुकारा, वैसे ही फिर बन जाओ जगत् गुरू ॥ १ ॥

जगत् गुरू थे पुरुषा तुम्हारे,जितने देश हैं देशान्तर सारे। वेद धर्म के थे मानन हारे.तुम क्यों शिष्य कहाओ जगत् गुरू ॥२॥

एतद्देश प्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः।
स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवाः॥

जितनी हुई हैं यह विद्यायें जारी, पहुंची निकल कर वेदों से सारी। आज कहां गई बुद्धि तुम्हारी,रेल देख घबराओ जग०॥३॥
राजा भागीरथ गंगा लाये,नल नील ने सेतु बँधाये। लंका से पुष्पक विमान में आये,राम चरित्र पढ़ि जाओ जगत् गुरू॥४॥
राजा युधिष्ठिर यज्ञ रचाए, देश देशान्तरसे राजा बुलाए। अर्जुन थे अमरिकामें विवाहे.तुम परदेश न जाओ जगत् गुरू ५
अत्रि ऋषिने दौरा लगाया, देश देशान्तरों में घूम के आया। आकर देशोंका हाल सुनाया, तुम सुन्ना भी न चाहो ज० गुरू ६
सब देशोंके रहने वाले, गेहूं उर्द के थे खाने वाले। सन्ध्या हवन रचाने वाले, तुम कुछ तो ध्यान में लावो जगत् गुरु ॥ ७ ॥

बाल्हीकाः पल्हवाश्चीना शुलीकाः यवनाशकाः
माषागोधूममहिद शास्त्रवैश्वानरोचते ॥

द्रोणाचार्य्य और अर्जुन प्यारे धनुर्वेद के थे जानन हारे। आज कहां गये योधा तुम्हारे तुम निर्बल कहलावो जगत् गुरू ८
कहां गये वह ऋषि तुम्हारे, व्यास कपिल और गौतम प्यारे। न्याय वेदान्त के रचने हारे, षट्दर्शन पढ़जावो जगत गुरू ९
कहांगई अब सीतासी नारी,नाम सभाओंमें जावे पुकारे। जिन की कीर्ति दुनियामें सारी,अब तुम भी पुत्रीपढ़ावो ज० गुरू १०
पुरुष तो पढ़ते हैं विद्यायें सारी,नारी विचारी हैं निपट अनारी।

इससे ही होरहीहानि तुम्हारी इनकोक्यों न पढ़ाओ ज० गुरू ११
जबतक वेद प्रचार न होगा, ब्रह्मचर्य्य उद्धार न होगा। तबतक देश सुधार न होगा फिर कैसे सुख पाओ जगत् गुरू ॥१२॥
गुरुकुलमें सन्तान पढ़ाओ, फिरसे जहां गुरूपदवीपाओ वासुदेव यही धर्म कमाओ, फिरतुम ऋषिसन्तान कहाओ जगत् गुरू १३

भजन ५

टेक-कैसी दुखिया हैं अबलातुम्हारी तुम्हारी, हमारी बल्कि देशों की सारी। रोती चिल्लाती सिसकती हैं फिरती, विद्या बिना हैं पशु बनती फिरतीं। करतीं हैं दर दर पै वे आहोज़ारी, कैसी दुखिया हैं ॥ १ ॥

प्रथम तो पैदा ही होना न चाहते, होते ही पहिले तो थे मारदेते। इस पर हुआ जुर्म कानून जारी, कैसी० ॥ २ ॥

बजाय उसके हा कष्ट दोनों हाथसे देते हैं पापी उन्हें कैसे २। जिन्हें देख फटती है छाती हमारी- कैसी० ॥ ३॥

तीन २ वर्ष की तुतलाती बोलें, विवाहों के मन्त्रों को वह कैसे बोलें। विवाह * है या कोई ज़बरदस्ती तुम्हारी कैसी० ४

बुड्ढे वा बच्चों के संग में विवाहते, बक़ौलेक गाड़ी से कटरा बंधाते। चलेकैसी गृहस्थीरूपी गाड़ी तुम्हारी, कैसी० ५

तिसपर भी बच्चे और बूढ़े की परवाह, न कर चुपके होलेतीं उसके हैं हमराह। बेटी है वा कोई वैरिन तुम्हारी कै० ६

लड़कों को एम० ए० बी० ए० तक पढ़ाओ, किसी को तो मुंसिफ़ बैरिस्टर बनाओ। फिर उनकी छः छः तक शादी रचाओ, विवाहों में वेश्या और भड़ुवे नचाओ, पुत्री जन्म भर तुम विधवा विठाओ। न हो, फिर क्यों ताऊन और हैज़ा जारी, कैसी० ॥ ७ ॥

---

* बहू है वा कपड़ों की गठिया तुम्हारी।

नाई ब्राह्मण के ऊपर है सारा, बेटी की क़िस्मत का दारोमदारा। लोभी निरक्षर जो है भटाचारा, बेटी के बरको वह है जांचनहारा। महाशोक लानत है बुद्धी तुम्हारी, कैसी०८

बेचें हैं लड़कियों को पशुओं की मानिन्द, उड़ाते दलाली में पांधे भी आनन्द। कन्या है वा कोई तिजारत तुम्हारी, कैसी० ॥ ६ ॥

मनूजी ने है साफ़ कैसा सुनाया, स्त्रियों का सत्कार करना बताया। इन्हींने है अर्जुन व भीषम सा जाया, करो इनका पूजन मनूने बताया। इनके बिना क्रिया निष्फल है सारी, कैसी० ॥ १० ॥

यूरुप की जो आज देखो यह हालत, जापान की आज दुनिया में शुहरत। सनअत और हिरफ़त इखलाक जुरअत, ज़रा मन में सोचो यह कैसी जिहालत। स्त्री तरक्की का मैयार भारी, कैसी० ॥ ११ ॥

पहाड़ों की कन्द्रा में दुःख उठाकर, यह माना कि पत्थर ढेले ईंट खाकर। यह माना कि ईसाई तक वह कहा कर, पर घोर निद्रा से तुमको जगा कर। सम्बन्ध स्त्री पुरुष का बताकर। मूर्ख से तुमको आलिम बना कर। सुधारी हैं हालत पशूवत तुम्हारी, कैसी दुखिया हैं ॥ १२ ॥

भजन ६

अयपिता हमको अविद्या से छुड़ाते क्यों नहीं। हम सुधारें देशको ऐसा बनाते क्यों नहीं ॥ आपने ही था किया सरताज इसको एक दिन। होगया अब है वही दुनिया के देशों से मलिन ॥ १ ॥ मूर्ख होकर करती हैं लाखों बुराई हाय अब। कुछ न परवा है तुम्हें है आपही का दोष सब ॥ आपने

हमको पढ़ाने से मना है कर दिया। हाय क्या था दोष हम लोगों का जो ऐसा किया ॥ २ ॥ एक है विद्या जिसे पढ़ परिडता कहलाती हैं। उससे जो बञ्चित रहें मूर्ख का दर्जा पाती है ॥ ऐ पिता कुछ सोचियो, यहतो कहां का न्याय है। किस क़दर हम दीन लोगों के लिये अन्याय है ॥ ३ ॥ हम रहें छोटी किया है प्यार लेकर गोद में। गहने कपड़ों से सजाया हमको आकर मोद में ॥ होश तक सम्हला न था कुछभी न थी हमको तमीज़। थी न यह भी जानतीं हैं ब्याह शादी कौन चीज़ ॥ ४ ॥ देखने के वास्ते आंखा का सुख अपने पिता। गुड्डों गुड़ियों की तरह था ब्याह मेरा कर दिया ॥ ब्याहने में भी नहीं कुछ आप रखते हैं विचार। हमको देकर भाड़ में खुद टालते हो सरका भार ॥ ५ ॥ जिसका फल यह होता है हमसे हैं लाखों ग़रीब। बनके बिधवा दिन बितायें सुख नहीं होता नसीब ॥ फिरतो कहिये ऐ पिताजी, उनमें जो होतीं ख़राब। दोष इसमें किसका है बस सोचकर दीजे जवाब ॥ ६ ॥ इक तरफ़ पढ़ने से हमको आप रखते दूर हैं। चाहते हमसे निभाना धर्म भी भरपूर हैं ॥ बीज बोकर पापका फल पुण्य की करते हो चाह। इस तरह अंधेर से होगा भला क्योंकर निबाह ॥ ७ ॥ ब्याह बचपन की प्रथा गर आप छोड़ेंगे नहीं। लाखहा विधवागणों के दुःख तोड़ेंगे नहीं ॥ तो फिर इन विधवागणों की आंसुओं की धार से। डूब जावेगा यह भारत शून्य हो संसार से ॥ ८ ॥ देश हितैषी सज्जनो कुछ दीजिये हम पर भी ध्यान। दीजिये हमको सुशिक्षा चाहिये गर अपना मान ॥ आप भूषण से सजावें यह नहीं मंजूर है। विद्या ही भूषण हमारे वास्ते भरपूर है ॥ ९ ॥ देशको उत्तम बनाना है अगर सबसे ज़रूर।

तो यक़ीनन शौक़को सब मनसे रखना होगा दूर॥ सैकड़ों रसमें हैं ऐसी जिनसे हम बदनाम हैं। और नहीं विद्या है इससे और भी बे काम हैं॥ १० ॥ हाल बिगड़े को हम अपने कर नहीं सकतीं सुधार। कर नहीं सकतीं बिना विद्या कोई हम अपना कार॥ इसलिये अपना न कोई खास मतलब ग़र्ज़ है। देश का कल्याण ही हम तुम सभों का फ़र्ज़ है॥११॥ दीजिये शिक्षा हमें दें अपनी हम संतान को। कर दिखायें एकता दुनियां में हिन्दुस्तान को॥

भजन ७

दोहा।

सीता बोली ज़ोर से ऐ पापी सुन बात,
पाप करे तज धर्म को क्या आवे तेरे हाथ।
थी कहां तलवार तेरी जब मेरी शादी हुई,
अबभी पापीमानजा नहीं तेरी बरबादी हुई॥

ऐ रावण तु धमकी दिखाता किसे, मुझे मरने का खौफ़ ख़तरही नहीं। मुझे मारेगा क्या अपनी ख़ैर मना, तुझे होनी की अपनी ख़बर ही नहीं॥ १॥

तू जो सोने की लंका का मान करे, मेरे आगे यह मिट्टी का घर भी नहीं। मेरे मनका सुमेरु डिगेगा नहीं, मेरे मनमें किसी का है डरही नहीं॥ २॥

आवें इन्द्र नरेन्द्र जो मिलके सभी, क्या मजाल जो शील को मेरे हरें। तेरी हस्ती है क्या सिवा रामपिया, मेरी नज़रोंमें कोई बशर ही नहीं॥ ३॥

तूने सहस्र अठारा जो रानी वरीं, तुझे इतने पै आया

सबरही नहीं। परतिरया पै तूने जो ध्यान दिया, हा! पापी नरक का खतर ही नहीं ॥ ४ ॥

क्यों न जीत स्वयम्बर लाया मुझे, मेरी चाह थी जो तेरे मन में बसी। वह था कौन शहर मुझे देतौ बता, जहां स्वयम्बर की पहुंची खबरही नहीं ॥ ५ ॥

जो हुआ सो हुआ अब मान कहा, मुझे जलदी राम पास दे तू पठा। कहे सीता बगरना तू देखेगा क्या, कुछ रोज़ों में तेरा यह सरही नहीं ॥ ६ ॥

औषधि विचार।

नारीधर्म-विचार के छपने के पश्चात् बहुधा महाशयों ने मुझे आज्ञा की कि यदि द्वितीय भाग बनाना तो उसमें एक भाग औषधियों का भी अवश्य रखना। इस में कोई सन्देह नहीं कि औषधियों की अवश्यकता मुख्य कर स्त्रियों को अधिक है, परन्तु मेरी सम्मति है कि जिन्हें इस ओर रुचि हो वे नियमानुसार पढ़ें बिना पढ़े और सीखे हुये निदान परीक्षा के जाने हुये यदि किसी पुस्तक में से दो चार पृष्ठ लिख भी दें तो कुछ लाभ नहीं होसकता है। इसके अतिरिक्त स्थान की जल वायु, रोगी का शारीरिक बल, आयु और रक्त, बात, पित्त, कफ़ की न्यूनता अधिकता जाने बिना औषधियों की तौल घटाये बढ़ाये और दशा अवस्थानुसार किसी औषधि के बढ़ाये निकाले बिना नियमविरुद्ध एक ही औषधि का सबको सेवन कराने से लाभ के स्थान में हानि होजाने की अधिक सम्भावना है। आज जो सम्पूर्ण देश रोगों से पीड़ित हो हाहाकार मचारहा है, इसका एक बड़ा कारण

अनाप-शनाप औषधियों का सेवन भी है, जो पुस्तक जिस समय में लिखी गई थी उस समय की शारीरिक दशा कुछ अन्य ही थी, जल वायु अन्य गुण रखती थी, मेरा विचार है कि थोड़े २ अन्तर पर जल वायु खानपान के कारण बड़ा अन्तर पड़ जाता है। इसलिये मेरा निवेदन अपनी बहिनों से है कि तुम इस प्रकार अपना आहार विहार खानपान चाल चलन रक्खो कि कोई रोग उत्पन्न ही होने न पावे। हमारे पूर्व पुरुषा भी तो यही विचार रखते थे, इस लिये कि अधर्म (बेईमानी) करना न पड़े, वे थोड़े ही आय में आनन्द करते थे। आज आवश्यकतायें बढ़ाते जाते हैं और नानाप्रकार छल कपट झूंठ घूंस से धन कमाकर भी दुःखी रहते हैं। यदि प्राप्ति हमारे आधीन नहीं, तथापि व्यय तो हमारे ही आधीन है। यही दशा औषधि की थी, उनका विचार था कि रोग मत लगाओ अर्थात् प्रथम से ही शरीर में बल पैदा करो कि औषधि की आवश्यकता न हो। पर आज यह विचार हो रहा है कि रोग बढ़ाओ, जिस से नई २ ईजादें (कलायें) प्रकाशित हों। आप सत्य विश्वास करें कि यदि स्त्री पुरुष यह विचार करके भोजन करें कि कोई पुरुष कमाने से धनाढ्य नहीं होता है, पर बचाने से हो जाता है। इसी प्रकार कोई पुरुष खाने से बलवान नहीं हो सकता है, पर पचाने से हो जाता है, एक भोजन के पकजाने पर और क्षुधा लगने पर भोजन करें और युवावस्था पर विवाह करें। उत्तम सन्तान के उत्पन्न करने के विचार को लेकर स्त्री पुरुषों का मिलाप हो, तो एक को भी दवा की आवश्यकता न हो और किसी को हो भी तो वह वैद्य डाक्टरों को भी ठीक तौर पर रोग के निदान का पता लगाने का अवसर और अवकाश मिले,

जिस से औषधि का पूर्णलाभ हो। हा! आज रोगियों की अधिकता के कारण वैद्यों डाक्टरों को बात करने, हाल पूंछने औषधि के विचार करने का भी तो अवकाश नहीं मिलता है।

दुसरी बात यह है कि मैं इस पुस्तक में जिसे कन्या तक पढ़ेगी ऐसे घिनौने रोगों का नाम और औषधि लिखना नहीं चाहता जो सभ्य पुरुषों की दृष्टि में असभ्य दिखाई पड़े, तथापि कई प्रसिद्ध रोगों के लिये जिन में कई जो मेरे अनुभव किये हुए नुस्खे थे जो कभी हानि उस दशा में न करेंगे यदि आप अवस्था का विचार करके अनुमान से सेवन करावेंगी, यह उस स्थान के लिये हैं जहां पर योग्य वैद्य डाक्टर न हो, नहीं तो आप उनसे ही पूछकर औषधि करावें। आज कल ऐसे भी पुरुष हैं कि जिनका यह विचार हो रहा है कि विदेशी दवायें न खाना, न खाना। अगर जान भी जाय बीमारियों में। उनका कथन है कि क्या हमारी वैद्यक ठीक नहीं है जो हम डाक्टरी औषधि करावें। हम कहते हैं कि नहीं, परन्तु हमारे लाल और मुक्ता, मोहरें मंजूसा अर्थात् सन्दूकचों में बन्द हैं, ताली पास नहीं हम भूखों मरते हैं तो वे हमारे किस काम की। इसी प्रकार उन में सब कुछ है, परन्तु बतलाइये तो सही कि कौन वैद्य आप की चीरफाड़ (आपरेशन) डाक्टरों से अच्छा कर सकता है। प्रथम चाहे वालों और सरको चीरने और आरोग्य करनेवाले भले ही हों, पर वर्त्तमान में तो ऐसे रोगी की सूरत देखकर घबड़ा नाक दबाकर परे हट जाते हैं, नियमानुसार पढ़ा और सीखा ही नहीं। आज निपट मूर्ख अनपढ़ जर्राहों नाई आदि के यहां जर्राही का काम पीढ़ी दरपीढ़ी होता चला आता है। आपको आवश्यकता है कि जबतक सीख न जावें तबतक डाक्टरी

इलाज से नितान्त बचना ठीक नहीं। हां जिन औषधियों में मदिरादि पड़ी है उनके सेवन से अवश्य बचना और जो डाक्टर शराब पीना बताये उसका इलाज छोड़ देना चाहिये (जो डाक्टर शराब के पीने की राय दे उसका इलाज यह है कि उसका इलाज छोड़ो)

देखो कोई डाक्टर ऐसा नहीं है जिसने नियमानुसार पढ़ा नहीं है, परन्तु वैद्य सैकड़ों ऐसे हैं जो अत्तारी करते करते पुड़ियां बांधते बांधते वैद्य और हकीम बन बैठे हैं, जब तक विद्वान् वैद्य न मिले तब तक डाक्टरों से घृणा करना मूर्खता है।

चक्षु–आंख।

नेत्र यह शरीर में बड़ी आवश्यक और प्यारी वस्तु है, इसकी रक्षा सब से आवश्यक है, इसके महाविकारों का इलाज वर्त्तमान समय में डाक्टरों से अच्छा नहीं होता है, बच्चों के नित्य प्रति काजल लगाने के लिये नींब के फूलों को रुई के फलीते में लपेट कर आरण्डी के तेल में जलाकर किसी पारे वा थाली पर पारलें फिर घृत वा मक्खन में धोकर मिलालें, यह बच्चों के पांच वर्ष की आयु तक हाथ के पोरे से लगाती रहें पश्चात् विना पीड़ा के पच्चीस वर्ष की आयु तक लड़कों और सोलह वर्ष की आयुतक कन्याओं के काजल वा सुर्मा अञ्जन कभी न लगावें, पश्चात् भी नेत्र रक्षार्थ और प्रकाश उत्पत्ति के अर्थ कोई ठण्ढा सुर्मा ममीरा मुक्तादि मिलाकर सफेद सौंफ काले भंगरे, गोमूत्र, कपूर में शोधकर बनाकर लगावें, यदि काला हो तो रात्रि में सोते समय लगाया करें और प्रातः मुँह, हाथ धोते समय धोदिया करें और नेत्रों की सारे रोगों से रक्षा रहे, यदि नित्य प्रति

स्त्री, पुरुष एक तो प्रातः और सायं शौचादि से निवृत्त हो कर जब कुल्ली करें तो शुद्ध और शीतल जल से मुंह में पानी भरें कुल्ली गरारा करते जावें और हाथों से थोड़ा २ जल आंखों पर छिड़कते जावें और पांच चार बार यह क्रिया नित्य कर लिया करें, द्वितीय भोजन करने के पश्चात् जब हाथ धोवें तो गीले भीगे हाथों को आपस में रगड़ कर ३ वा ४ बार नेत्रों पर फेर लिया करें, जिस से प्रकाश की अधिकता और नेत्रों की निरोगता होती रहेगी। यदि चश्मे की आवश्यकता हो तो पेबिल पत्थर का आंख और चश्मे को डाक्टरों को दिखाकर सेवन करें।

नासिका व कर्ण की चिकित्सा।

जब कान व नाक में फोड़ा निकल आवे तो उस में खालिस चोया की कई बूंद डालने वा फुरेरी से लगा देने से तुर्त ही लाभ होता है, यह फुड़ियों की सब से उत्तम औषधि है, कान के बहने पर घुलोन और मधु डालने और सीप को जलाकर डालते हैं उससे भी लाभ हो जाता है।

दांतों का मञ्जन।

त्रिकुटा त्रिफला तूतिया तीनों लवण पतंग।
दांत वज्र होजात हैं माजूफल के संग॥

त्रिकुटा (सोंठ, मिर्च, पीपल) २ तोला। त्रिफला (आंवला, हड़, बहेड़ा) २ तोला। तूतिया २ मासे को शोधले, नहीं तो जलाकर राख करलें। तीन लवण सेंधा, काला, खारा २ तोला। पतंग एक तोला जो लकड़ी होती है, इनको कूट छान कर माजूफल १ तोला में मिलाकर मञ्जन बनालें, दांत

दृढ़ हो जाते हैं और वात के विकार भी जाते रहते हैं। यदि दांतो में कीड़ा लगे वा मसूढ़े सूज जावें तो सेंधा नमक को पीसकर कढ़वा तेल मिलाकर मसूड़ों पर मलना चाहिये। और हींग को मसूढ़े में दबाकर लार टपकाना चाहिये और रात को दांतों में दबाये हुये सो रहना चाहिये।

दूसरा मञ्जन जो दांतों के सब दोषों को लाभकारी है और दांत उजले हो जाते हैं।

चमेली के पत्ते, विसखपड़े की जड़, गजपीपर, अण्डकी जड़, कूट, वच, सोंठ, बड़ी हड़, कपूर, दालचीनी, कालीमिर्च छोटीपीपर, कचूर, सब के बराबर भूनी फिटकरी, कूट छान कर मञ्जन बनाले और नित्य प्रातः भले प्रकार लगाया करे।

बच्चों को साधारण बुखार खांसी और दस्तों की औषधि।

ककरासिंघी, नागरमोथा, अतीस, पीपल बराबर लेकर कूट छान कर दो रत्ती से २ माशे तक शहद में मिलाकर बच्चों को दिन में चार बार चटावें।

उस ज्वर की औषध जो उतर जाता है।

करञ्जनकी गूदी १ तोला। पलासपापड़ा ६ मासे। फटकरी १ तोला। कालीमिर्च ६ माशे। इनको पीस कर मटर के बराबर गोली बनालो, बुखार चढ़ने से २ घंटा पहिले एक गोली और १ घंटा पहिले दूसरी गोली खिलादो। यह सर्दी, गर्मी प्रकार के बुखार को लाभ करेगी।

ज्वर जो किसी समय न उतरता हो उसकी औषधि।

धनियां, पद्माख, लालचन्दन, हरी गुर्च, नीम की छाल सब बराबर रात्रि को मिट्टी की हांडी में भिगोदे प्रातः औटा-

कर जब चौथाई रह जावे तो छान कर शहद वा मिश्री देशी सफ़ेद डाल कर प्रातः सायं पिलावे वा अर्क़ खींच कर रखलें पूरे युवा पुरुष के लिये तोला २ भर औषधि और आधसेर पानी भिगोने के लिये है।

पाचक चूर्ण।

त्रिकुटा ३ तोला, अजमोद १ तोला, सेंधा नमक १ तोला, दोनों ज़ीरे २ तोला, हींग ६ माशे घी में भून लें, कूट, छान कर रखलें, १ माशे पूरी खुराक है।

पेट के दर्द की गोलियां।

आक के फूल की दाल डेढ़ छटांक या पाव छटांक, लौंग पाव छटांक, सुहागा पाव छटांक, नौसादर पाव छटांक, काली मिर्च पाव छटांक, पीपल पाव छटांक, सेंधा लवण पाव छटांक। सबको पीसकर मटर के बराबर गोली बनाकर एक गोली खिलावे।

खांसी की औषधि।

मिर्च, मुनक्का, मौरेठी, मिश्री, मधुको मिलाकर मटर के बराबर गोलियां बनालें, दिनको चार छःबार मुंहमें डाललें रस चूसते रहें, इन्हीं चीजों को औटाकर पीनेसे जुकाम को भी लाभ होता है।

आक की जड़को लाकर कूटकर पाव भर, और सज्जी खाने की आधपाव एक मट्टी के छोटे पात्र में रखकर ऊपर सरवा से मुह बन्दकर और सरवा में ऊपर को छेद करके उपलों की आंच में फूंक दें पश्चात् उस भस्म को पीस कर तीन रत्ती से ३ माशे तक दिन में तीन वार मधु के साथ चटाने से पुरानी खांसी तक को लाभ होता है।

कई रोगों को लाभ करनेवाली औषधि ।

सत अजवायन १ तोला । कपूर १ तोला । पिपरमेण्ट ६ माशे इन तीनों को एक शीशी में मिलाकर धूप में रखने से पानीसा बनजाता है, इसको फुरेरी से लगाने से सरका दर्द जाता रहता है, सधारण फुड़िया पर लगाने से अच्छी हो जाती है, गिल्टी पर कई वार लगाने से बैठ जाती है, बताशे के साथ तीन व चार बूंद खाने से ज्वर दूर होजाता है । महामारी के रोगियों को तुर्तही से पांच पांच बूंद गुलाब में पिलाने और गिलटी पर लगाने से लाभ हुआ है, सौंफ़ के अर्क़ के साथ चार बूंद डालकर अजीर्ण को लाभ होता है ।

शरीर के किसी भाग में चोट लगजाने की परमौषधि ।

सड़ा खोपड़ा २ तोला । काला तिल २ तोला । मुसब्बर ६ माशा । तज २ तोला । रेह ५ तोला । आंबा हल्दी २ तोला । इन सबको पानी में पीस कर कड़वे तेल में पकाकर इनके बीच में मोम रखकर दो पोटली बनालें और तप्त तवे पर रखकर वारवार सेकें, यदि अधिक समय की चोट हो तो उपरोक्त चीजों में चन्दसुर २ तोला और मेथी २ तोला और पुरानी घुइयां को २ तोला बढ़ाकर पीसकर पकाकर लही सी बना लेवें और सेकने के पश्चात् गर्म २ लेप कर फिर भी दो चार वार उपरोक्त पोटली से सेंक दें और अरण्ड के पत्ते सेंक कर बांध दें ।

गठिया व आमवात से जोड़ों में पीड़ा होजाने का इलाज ।

रासन छिदामभर, गुखरू बड़े छिदाम भर, अरण्ड के जड़ की बकली छिदामभर, देवदारु छिदाम भर, बिसखपड़े की जड़ छिदाम भर, गुर्च पांच अंगुर, अमलतास की गूदी धेला भर, सोंठ दमड़ी भर, बिधारो छदाम भर, गुड़ पुराना धेला

भर, गूगल दमड़ी भर इन सबको १॥ डेढ़ पाव पानी में औटाकर जब छुटांक भर रह जावे मलकर छानकर गूगल सोंठ की बनी चने बराबर गोली खिलाकर पानी पिला देवें इस से पेट से आंव निकलती रहेगी; और निर्बलता न होगी खान पान में लालमिर्च तेल खटाई का बचाव रक्खें, जिन जोड़ों पर पीड़ा हो उसपर कैफ़रा, सोंठ, कुटकी, तमाकू, अजमोद, मेथी, अजवाइन को समभाग लेकर पीस छान अधूरा बनालें और कई बार मलकर अरण्ड के पत्ते सेंक कर बांध दें। एक मास पर्यन्त सेवन करें।

विष ज़हर यदि किसी को दिया गया हो वा उसने खालिया हो तो उतारने का उपाय।

संखिया, अफीमादि कोई विष किसी ने खालिया हो तो दरियाई नारियल की गूदी घिसकर पिलाने से कै होगी, बार २ घिस २ कर पिलाता रहे जब तक विष का प्रभाव रहेगा, वमन होता रहेगा, जब वमन होना बन्द होजावे तब जानले कि विषका प्रभाव जाता रहा।

पागल कुत्ते के काटने का इलाज।

कुत्ते के काटने का प्रभाव सात वर्ष तक होता है। कपास की जड़ ६ माशे काली मिर्च ५ दाने मिलाकर पीसकर ठण्डे पानी में पांच दिनतक एकबार पिलाने से यदि पेट में कुकरेला भी पड़गया हो तो निकल जावेगा। पुराने समय की लाल बनात का आध अंगुल का टुकड़ा कतर कर गुड़के साथ खिला देने से उसका असर जाता रहता है।

कुकरौंधा ६ माशे। और कालीमिर्च ५ दाने। पीसकर एकबार पांच दिन तक पिलाये और आक के पत्ते पीस कर

घावपर बांध देना चाहिये। धतूरे का चौथाई पत्ता तीन माशे साठी के पिसे हुए चावलों के साथ पिलाने से कुत्ते काटे को बड़ा लाभ होता है।

सांपके काटे की अकसीर और अनुभूत औषधि।

लाल फिटकरी, नौसादर, तूतिया तीनों सम भाग लेकर पीसकर रखलेवे जहां सांपने काटा हो यदि घाव हो तब तो उस घाव में भरदे यदि घाव न हो तो चाकू से नाममात्र आपरेशन करके इसको भरदेवे, तुर्त ही रक्त जारी होजावेगा और इसी प्रकार ४—५ वार ५ वा १० मिनट के अन्तर से भरता रहे और ४ रत्ती की मात्रा से पाव २ घण्टे पश्चात् जबतक न चेतजावे खिलादेवे और उस से बातें करता रहे सोने न दे।

बीछी के काटने की दवा।

संखिया वा सिंधिया घिसकर काटे पर लगाने से अच्छा होजाता है, परन्तु यह सबको मिल नहीं सकती। वैद्यों, हकीमों के पास रहती है, उनके पास जाकर लगवालेना चाहिये। यदि वह न मिले तो पके हुये गंगाफल गोल कद्दू का भिट्ठआ (डण्ठुर) घिस कर लगादे। एक घास जिसका नाम चिरचिरा प्रसिद्ध है जिस में बाली निकलती है उसको पीसकर लगाने से भी पीड़ा जाती रहती है। परन्तु यह दो प्रकार की होती है एक तो वह जिसकी बाली कुकनी सी होती है जो बहुधा कपड़ों में चिमिट जाती है उसको नहीं लगाना चाहिये। सबसे अच्छी औषधि यह है कि जब घोड़ों के सुम काटे जावें ज़रासा उठाकर रख छोड़े और उसी को घिसकर बीछी ने जहां काटा हो लगादे तुरन्त अच्छा हो जावेगा।

चेचक वा शीतला उठलगने रोग से बचने का उपाय।

जब इसका रोग फैलता है तो फिर बूढ़े युवक किसी को नहीं छोड़ता, उसके प्रभाव से बचे रहने के लिये ३ माशे आकाशवेल जिसे यों कहते हैं तीनदाने काली मिर्च के साथ ताज़े पानी में पीसकर पिलाने से चेचक नहीं निकलती है, यदि चेचक निकल आई हों और फफ़ोले पड़गये हों तो उस लकड़ी को घिसकर पिलाने से जो जगन्नाथ जानेवाले ले आते हैं जिसमें बहुतसी खुम्मियां सी होती हैं जो पद्म की लकड़ी कहाती है बड़ा लाभ होता है।

नोट-स्त्रियों के प्रसूता होने पर जो बत्तीसा था चारुआ में कई औषधियां औटकर पानी पिलाया जाता है वह जो दश पांच औषधियां स्मरण होतीं डालदी जाती हैं इससे पूर्ण लाभ नहीं होता, निम्न औषधियों को कूटकर सात पोटली बनाली जावें और एक पोटली तीन दिन तक चरुए में जो दिन भर गर्म होता रहता है पड़ी रहने दें, वह पिलाने से बड़ा लाभ होता है और कोई प्रसूत सम्बन्धी रोग नहीं होने पाते।

सतावर १॥ तो०, असगन्ध १॥ तो०, सालबमिश्री १ तो०, मूसली सफ़ेद १॥ तो०, बंसलोचन १ तो०, तोदरी सपेद १ तो० तोदरी सुर्ख १ तो०, बहिमन सुर्ख १ तो०, बहिमन सफेद १ तो०, जावित्री १ तो०, चुनियांगोंद १ तो०, तालमखाना २ तो०, इन्द्रजौ मीठा १ तो०, दाने छोटी इलायची १ तो०, मोचरस १। तो०, सतगिलोय १ तो०, गोखरू छोटे १ तो०, गोखरू बड़े १ तो०, समुद्र सोख १ तो०, बीजबन्द १ तो०, दारुचीनी १ तो०, मूसली सेमल २ तो०, गोंद बबूल २ तो०, गुलधावा

१ तो०, बांस के पत्ते २ तो०, कांस के पत्ते २ तो०, कौंचके बीज १ तो०, तीखुर १ तो०, कमरकस १ तो०, चिरया कन्द १॥ तो०, जायफल २ तो०, वायविडंग १ तो०, हालम १ तो०, नारजीलका छिक्कल २ तो०, सिंघाड़ा १ तो०, छोटी मायन १॥ तो०, बड़ी मायन १॥ तो०, मुलैठी १॥ तो०, छोटी पीपल १॥ तो०, वाय खुम्बा १॥ तो०, सुपारी के फूल १ तो०, क़लमीतज १ तो०,पतरज १ तो०,सोंठ १ तो०,कायफल १ तो०, मोथा १ तो०,धनियां १तो०,गजवेल १तो०, छोटी कटाई १तो०, बड़ी कटाई १ तो०, अतीस १ तो०, ककड़ासिंगी १ तो०, जयासा १ तो०,देवदारु १ तो०, मीठे कूट की जड़ १ तोला।

कलेजे और मस्तक की उष्णता दूर करने और पुष्टिवर्धक अजीर्ण नाशक क्षुधा उत्पादक औषधि।

गायका उष्ण दुग्ध पाव भर, आंवले का रस छटांक भर, मिश्री छटांक भर, गाय का ताजा और स्वच्छ घृत छटांक भर, शहद एक तोला, दाना इलायची छोटी ३ माशे, जायफल १ माशे, वंसलोचन ६ माशे. कालीमिर्च ४ माशे, प्रथम गर्म दूध में घृत डालकर हिलादो वा घृत को तपाकर दूधको छोंक दो फिर आंवले का रस मिला दो, और इसके पश्चात् शहद मिश्री मिला कर खूब मिला दो, जब यह चीजें अच्छी तरह मिलजावें तब इलायची और जाइफल वंसलोचन और मिर्च मिलादो और पीलो ४० दिन तक लालमिर्च खटाई गुड़ तेल बचाकर सेवन करने से अति बल प्राप्त होता है।

माताओ, जो यह अति आवश्यक थोड़ी बातें पुस्तक न बढ़जाने के कारण सूक्ष्मता से लिख दी हैं अधिक और विस्तार पूर्वक न लिख सकने के अपराध को क्षमा करना।

प्रदर ।

मैं इस रोग के विषय में लिखना अनुचित जानता रहा, क्योंकि मेरा यह विचार था कि इस रोग के कारण का ही नाश होना चाहिये, जिन कारणों अर्थात् कुपथ्य और अशुद्ध विचारों और न्यूनावस्था की असावधानियों से यह रोग उत्पन्न होता है उनका ही मूल से नाश कर देना मैंने अपना पुरुषार्थ समझा था, जैसा कि आप पर मेरे लेख से विदित हो चुका होगा। इस प्रकार के भयानक स्त्री पुरुषों के रोगों की औषधि मैंने अपनी पुस्तक में नहीं लिखीं, वरन् असभ्यता के विचार से मैं इस रोग की भी औषधि लिखने से रुकता था, पर पीछे एक पत्र में आप पर विदित हो चुका है कि ९८ प्रति सैकड़ा स्त्रियां इस रोग में इस अभागे देश की ग्रस्त हैं इस लिये बहुत मित्रों की सम्मति से वर्तमान् रुग्णा भगिनियों के हितार्थ एक अति सारगर्भित, बहुतों पर परीक्षा किया हुआ चरक का नुस्खा लिखा जाता है। आप इस को बनाकर चालीस दिन तक तो निरन्तर अवश्य सेवन कीजिये। और मिर्च, खटाई, तेल मिठाई और प्रसंग का बचाव रखिये और यदि रोग अधिक काल का हो और इतने समय में पूर्णतया न आराम हो तो अधिक समय तक सेवन कीजिये। यह औषधि सब प्रकार के प्रदर अर्थात् वातज, पित्तज, कफज और सन्निपातज चारों प्रकार के प्रदर को लाभकारी है। पर फिर भी आप सब माता और भगिनियों से सविनय प्रार्थना है कि आप इसको जानकर भी सदैव दुष्टाचरणों और कुसंस्कारों से बची रहिये, जो रोग एकबार हो जाता है वह तनिक सी असावधानी होने पर फिर लौट आता है।

सब प्रकार के प्रदर की औषधि अर्थात् पुष्पानुग चूर्ण ।

पाठा, जामुन की गुठली, आम की गुठली, पाषानभेद, (रसाञ्जन) रसौत, पाठा, मोचरस, लज्ज लू (मजीठ), कुड़ाकी छाल, हींग, अतीस, बेलगिरी, मोथा, लोध, गेरु, कायफल, कालीमिरच, सोंठ, दाख, रक्तचन्दन श्योनाक, इन्द्रजौ, अनन्तमूल (जवासा) धायके फूल, मुलहटी, अर्जुन । इन सबको समान समान भाग लेकर चूर्ण बना लेवें, पाठा दुगना है इस कारण दो जगह लिखा गया है, इस चूर्ण में शहत मिलाकर तंडुल जल के साथ सेवन करे। इस के सेवन से अर्श, अतिसार, जमा हुआ रुधिर बालकों के आगन्तुक दोष, योनि दोष, रजोदोष अच्छे होजाते हैं और सफेद नीला पीला श्याम और अरुण प्रदर तो अवश्य ही दूर होजाता है, ऋषि आत्रेय के इस प्रशंसित चूर्ण का नाम पुष्पानुग है, प्रथम दस दिन ३ माशे द्वितीय १० दिन ४ माशे तृतीय दस दिन ५ माशे चतुर्थ दसदिन ६ माशे आगे ६ माशे ही नित्य सेवन करे।

रजके शुद्ध होने की औषधि ।

तिल २॥ तोला, गुड़ २ तोला, त्रिकुटा ३ माशे, हींग १ माशे, बायबिड़ंग ३ माशे, घी २ तोला इन में तिलों को कूट कर पाव भर पानी में पकावें वा जल आधा रहे तब छान कर हींग को घी में भूनकर और शेष औषधियों का कपड़ छान चूर्ण कर छः माशे की फंकी लगाकर ऊपर से तिलों का शुद्ध किया हुआ पानी पिलावें, घी गुड़ भी काढ़े में डाललें रजस्वला होने से चार दिन पहिले पिलावें और चार दिन ऋतु में पीवें तो रज शुद्ध हो जावेगा।

एक बड़ा आवश्यकीय नोट।

आज कल स्त्रियां प्रायः रजस्वला होने के दिनों में नित्य नहाया करती हैं, परन्तु चरक शारीरिक स्थान अध्याय अष्टम में लिखा है जिस दिन से स्त्री ऋतुमती होवे उस दिन से उचित है कि तीन दिन पर्यन्त ब्रह्मचारिणी रहे अर्थात् सत्सङ्ग न करे और पृथिवी में सोवे हाथों का तकिया लगावे। जूंठे वर्तन में भोजन न करे और किसी प्रकार से अङ्ग का मार्जन अर्थात् स्नानादि कर्म न करे, चौथे दिन उवटन कराके सर सहित स्नान करे और सफ़ेद वस्त्र धारण करे।

नाक के रोग में पीनस की चिकित्सा।

दक्खिनी सफ़ेद मिरच, सरस के वीज, नकछिकनी, इन तीनों को वरावर सुखा और कूट कर नास वनालें और दिन में तीन वा चार वार सूंघे यदि कीड़े तक होंगे तो निकल जावेंगे।

वैद्यक की अति उपयोगी बातें।

१—भोजन के पचने में यदि कुछ भी अन्तर ज्ञात हो तो तुर्त औषधि उपाय करना चाहिये क्योंकि पुरुष के शरीर में मेदा (आमाशय) रसोई गृह के समान है, उस का स्वच्छ रहना परमावश्यक है।

२—कुपथ्य की दशा में विना भूख भोजन करना मानो रोग को दाम देकर मोल लेना है, कोई पुरुष खाने से वलवान् नहीं होता, वरन् पचाने से होता है, जैसे कोई कमाने से धनाढ्य नहीं होता वरन् वचाने से होता है।

३—रोग रहित होने पर अधिक खाना रोग को दुबारा बुलाने का सामान करना है।

४—भोजन शनैः शनैः निहायत महीन करके और चबा चबा कर खाना चाहिये ।

५—भोजन पाते समय किंचित्मात्र भी क्रोध चिन्ता क्लेश दुःख न करना चाहिये, ऐसा करने से भोजन नहीं पचैगा ।

६- दुग्ध या तो स्तनों से चूसना चाहिये अथवा कच्चा दूध केवल चन्द मिनट का दुहा हुआ पियें, यदि एक आध घंटा दूध निकाल कर रक्खा रहे तो विना जोश किये कदापि न पियें, क्योंकि हवा लगने से कई रोगों के परमाणु उसमें दाखिल हो जाते हैं ।

७- दूध को फूंक देकर कभी न पीना चाहिये क्योंकि जो कारबूनिक गेस स्वांस के साथ मुंह से निकलती है वह तुर्तही दूध में प्रवेशित होकर उसे जहरीला और कई रोगों का उत्पन्न कर्ता बना देती है ।

८- गर्म दुग्ध पीकर ठण्डे पानी से कुल्ली करना दांतों से हाथ धो लेना है ।

९—भोजन के पश्चात् मूत्र त्यागना बल वढ़ाता है और बायें करवट लेटना पाचन करता है ।

१०—भोजन के पश्चात् इलाइची चबाना पाचन और स्मरण शक्ति को बढ़ाता है ।

११—स्थायी पाचन दोष के रोगी को मोटे आटा की रोटी खाना और सोने से आध घंटा पहिले गुनगुना पानी पीना और भोजन के पश्चात् दो घंटा तक न सोना अधिक लाभकारी है ।

१२—दही के साथ तरबूज या खीरा ककड़ी खाने से कुलंज और गठिया हो जाने का सन्देह है ।

१३—रात्रि को मूली व ककड़ी अथवा खट्टा दही खाना अति हानिकारक है।

१४—मूली खाकर मूली के पत्ते खाने से मूली हज्म हो जाती है और पत्ते खाकर थोड़ा सा गुड़ खाने से पत्ते भी जल्द हज्म होजाते हैं।

१५—मूली खाकर यदि कई मटर के दाने चवाकर खायें तो डकार से वास नहीं आती।

१६—केला खाकर यदि चन्द माशा चावल खायें तो तुर्त ही हज़म होजाता है।

१७—चाय खाना खाने के वाद पीवें तो खाना हज्म कर देती है।

१८—कफ़-प्रवल मनुष्यों को चाय लाभ करती है परन्तु पित्तवालों को और निहारपेट पीने वालों के मस्तकादि में पीड़ा करदेती है। चाय का सुभाव डालना हरप्रकार हानिकार है, हां सफ़र से आकर पिये तो थकावट दूर करती है, मेदे में जलन हो अथवा मतली वा क़ै रोग हो अथवा ज्वर में प्यास न वन्द होती हो तो चाय अवश्य लाभ करेगी।

१९—खाना खाते समय यदि शराव पिये तो हाज़मा वढ़ाने के स्थान में उलटा और निर्वल करती है।

२०—शराव दिल दिमाग़ मेदा जिगर के लिये विष का काम देती है।

२१—जो स्त्री पुरुष शराव के अभ्यासी हो जाते हैं फिर वे विना शराव के खाना पीना लिखना पढ़ना चलना फिरना ठीक २ कुछ काम नहीं कर सकते।

२२—शरावी के दांत मसूढ़े सदा ख़राव रहते हैं, देखने और स्मरण करने की शक्ति अतिन्यून होजाती है ९४ प्रति

सैकड़ा शराबियों के बच्चे डब्बा के रोग में फंस कर मर जाते हैं। तुम इसे कभी न पीना, अधिक विस्तार से इस के दोष मदिरा पान विचार में लिखे हैं जो आध आने में मिलती है।

२३—पीतल और तांबे के बरतन में खाने की चीज कदापि न रखना चाहिये, प्रति मास क़लई करा लेना चाहिये, हां सर्द पानी तांबे के बरतन में रक्खा हुआ पानी लाभकारी है, गर्म विष समान है।

२४—मरी और महामारी जब फैल जावे तो दूध और घी को बिना भले प्रकार औटे हुये कदापि न खावें और ककड़ी खीरा खर्बूजा तरबूज का नितान्त सेवन न करें।

२५—बवाई समय में पानी को फिलटर करके वा उबाल कर पियें कच्चा पानी पीने में बड़ा भय है।

२६—और उस समय में अंगूरी सिरका, नींबू कागज़ी, संतरा, अमचुर, कमरख, आंवला, इमली, अनारदाना, पोदीना, लालमिर्च, अदरख और इसी प्रकार की चीजों का सेवन अवश्य करें।

२७—मरी आदि के दिनों में पपीता हर समय पास रक्खें, लड़कों बच्चों के गले में पपीते छेदकर धागे में पिरोकर लटका देना चाहिये, कभी २ रत्ती दो रत्ती घिसकर पीना और तमाम बच्चों को पिलाना अति लाभकारी है।

२८—और ऐसे मौसम में ही सिरका और गुलाब खूब हल करके घर की दीवारों पर छिड़कना और गंधक लोबान की धूनी देना हवन करना निहायत अच्छा है, और हवन में काफूर और शकर घी गुर्चादि का अधिक सेवन करें।

२६—चूंकि बालक और युवा पुरुषों में अधिक हरारत (गरमी) होने के कारण उनके शरीर और बालों के छिद्र (मसाम) खुले रहते हैं इस कारण प्लेग में वह बूढ़ों की अपेक्षा अधिक मरते हैं इस लिये लड़कों और युवकों को अधिक विचार रखना चाहिये पैरों को नंगा न रक्खें।

३०—प्रत्येक पुरुष के लिये चाहिये कि प्रातःकाल अपने गृह के सब द्वार दो घण्टे तक खुले रक्खे जिस से दुर्गन्धित वायु निकल कर शुद्ध और ताज़ी वायु भर जावे।

३१—नित्य प्रति प्रातःकाल बस्ती से बाहिर दूर हरी हरी घास पर एक आध घण्टा टहिलना और हरीहरी घास और पत्तों को गौर से देखना आंखों में रोशनी और मन में हर्ष शरीर में बल बढ़ाता है और सैकड़ों रोगों से बचाता है।

३२-नित्यप्रति व्यायाम करना शरीर को सुडौल पुष्ट और हृष्टपुष्ट बनाता है, व्यायाम गरमियों में प्रातःकाल बरसात में सायंकाल और जाड़ों में दशबजे के लगभग करना चाहिये।

३३—आग तापना हरतरह से हानिकारक है निर्बलता और सुस्ती पैदा करता है।

३४—शोक और क्रोध मनुष्य जीवन के लिये कुल्हाड़ा का काम करते हैं, जो पहिलवानों को भी बहुत शीघ्र मार डालते हैं।

३५—हर समय प्रसन्नचित्त और हसमुख (बश्शास) रहना आयु को बढ़ाता है।

३६—जब तुम सोना चाहो तो हर प्रकार के विचारों को मन से निकाल दो, यदि किसी प्रकार का ख्याल रहेगा तो नींद खराब होजावेगी।

३७—जाड़े के ऋतु में यदि रेल गाड़ी मोटरकार बग्घी

आदि में सफर करो तो सर्द हवा में बाहिर मुंह नहीं निकालना चाहिये नहीं तो लकवा और खांसी और जुकाम आदि हो जाने का डर है।

३८—भीगा हुआ कपड़ा पहिनना हर ऋतु में तबियत को खराब करता है, विशेष कर अति काल तक भीगा हुआ कपड़ा कमर में बंधा रहे तो दाद हो जाता है और पुरुष पन को भी हानि पहुंचाती है।

३६—मूत्र मल त्यागने की आवश्यकता के समय प्रसंग करना अति हानि कारक है।

४०—धूप वा सफ़र से आकर तुर्तही पानी या शर्बत पीना या हाथ पांव धोना और नहाना हानि पहुँचाता है।

४१—यदि रास्ता चलते समय कोई भुनगा आंख में पड़ जावे तो सांस बन्द करके चार छः पग पीछे हट कर चलने से स्वयं निकल जाता है।

४२—यदि मुँह के रास्ते मक्खी कंठ के भीतर चली जाय तो नाक और मुँह को बन्द करके तुर्त स्वांसा रोक लेने से मक्खी निकल जावेगी।

४३—दूध पीते बच्चों को बारबार आईना दिखाने से दस्त आने लगते हैं, रोगी को आईना देख कर शोक होता है और हानि होती है, तन्दुरस्त को आईना देखने से हर्ष होता है और खांसी का रोग नहीं होता।

४४—यदि लेम्प की बत्ती को आठ दिन तक सिरका अंगूरी में भिगो कर छाई में सुखा कर जलावें तो धुवां लेम्प में न होगा।

४५—मिट्टी का तेल जलाकर और दर्वाज़े बन्द करके बैठना, पढ़ना, लिखना, सीना, सोना, खांसी और जुकाम

पैदा करता है और आंखों की दृष्टि को हानि पहुंचाता है, विशेष कर विना चिमनी के जलाय तो बहुत ही हानि की सम्भावना है।

४६—पाप की कमाई, छल कपट घूसादि से पैदा किया हुआ धन, पुरुष के सम्पूर्ण अच्छे स्वाभावों लज्जा, दया, उपकार, अहिंसादि के भावों को दूर करके व्यभिचार, ईर्षा, द्वेष, अहंकार, हिंसा, छलादि दुष्टगुणों को उत्पन्न करदेता है

४७—बीज और संगत का प्रभाव कभी नहीं जाता।

४८—पाप की कमाई जितनी शीघ्र जमा होती है वैसे ही शीघ्र खर्च हो जाती है, कहावत है कि मरे कफ़न तक नहीं मिलता।

४६—पाप की कमाई खानेसे पापके विचार और पुरुषार्थ की कमाई खाने से शुद्ध और पवित्र विचार उत्पन्न होते हैं।

५०—ठाली रहने से बढ़ कर कोई दोष नहीं है ठाली रहना पुरुष को चोर रोगी व्यभिचारी आदि वना देता है।

५१—जो पुरुष अन्य की स्त्रियों को कुदृष्टि से देखते हैं उन्हें अपनी स्त्रियों के नेक होने की आशा कदापि न रखनी चाहिये।

५२—जो पुरुष अपनी सन्तान को गाली देता है, वह सन्तान को गाली देने का पाठ पढ़ाता है।

५३—जो पुरुष गर्भिणी स्त्री से भोग करता है वह गर्भपात हो जाने और सन्तान के निर्लज्ज और दुराचारी होने का कारण वनता है।

५४—जब तक बच्चा माता का दूध पीता है उस औरत से कदापि प्रसंग न करना चाहिये, क्योंकि, प्रसंग करने से स्त्री के शरीर का रक्त जोश खाता है जिस कारण दूध बिगड़

कर बच्चे को रोगग्रस्त कर देता है, बहुधा वह मृत्यु का कारण हो जाता है।

५५—जो स्त्रीपुरुष सन्तानके सामने बकवाद हंसी ठठोली करते हैं, वे सन्तान को निर्लज्ज और कुमार्गी बनाते हैं।

५६—दूध पीते बच्चों के जब दांत निकल रहे हों तो मसूढ़ों पर शहद और नमक मलते रहें तो दांत सहज से निकलेंगे।

५७—माता को चाहिये कि दूध पीते बच्चों को नित्य प्रति सौंफ चबाकर उसका रस कई माशा पिलायें तो बच्चे आमाशय के प्रत्येक रोगों से बचे रहेंगे।

५८—दूध पीते बच्चे के यदि कुपच से पेट में भारीपन हो तो कष्टग्राइलको गर्म करके मेदे पर मलनाही काफ़ी होगा।

५९—दूध पीते बच्चे की माता यदि चिन्ता व क्रोध करेगी, अथवा दुखित और क्लेशित होगी तो तुर्तही दूध पीने से बच्चे को कुपच का रोग हो जावेगा।

६०—प्रसंग के पश्चात ठंडा पानी पीना हानिकारक पर मधु शर्करा पड़ा दुग्ध लाभकारक है।

६१—पुरुष को अपने से अधिक आयुवाली स्त्री से भोग करना विष खाने के समान है।

६२—खट्टा दूध, पुराना शहद और घी खाना, प्रातःकाल का सोना, भोजन के पश्चात तुर्त ही प्रसंग करना, जीवन को नाश करता है।

६३—मूली के बीज शहद में रगड़कर मुख के दागों और काले धब्बोंपर रात को लेप करके प्रातःकाल धो डाले तो, थोड़े दिनों में दाग दूर होजावेंगे।

६४—गायके दूध की मलाई "काडलेवरआयल" से

अधिक पुष्टिकारक है, और स्वादिष्ट और मनको प्रसन्न करनेहारी और सस्ती है।

६५-चीनी वा शीशे के पात्र में दो सेर पानी डालकर पावभर रीठे भिगोदे, चारदिन के बाद मलकर रीठे निकालदें और वह पानी आगपर पकाकर लुआब की तरह का वनाकर रखलें प्रातः और सायं दो दो सलाई आंख में लगायें तो 'शबकोरी' का रोग दूर होजाता है।

६६-खांड की धूनी देने से जुकाम रोग निवृत्त होजाता है।

६७-यदि आक (मदार) के पत्तों का रस निकाल कर आगके जले हुए स्थान पर लगायें तो तुर्त जलन दूर होजाती है और फलका भी नहीं पड़ता।

६८-कंघी नित्य शिरपर फेरना चाहिये, इससे सरदर्द आदि को लाभ होता है।

६९-रात्रि को सोते समय पैर धोकर सोने से नींद अच्छी आती है।

७०-शौच फिरते समय दांतों को मींचे रहना चाहिये इससे दांतों को बड़ा लाभ होता है, दांत बहुत से रोगों से बचे रहते हैं।

७१-हकलापन वाला पुरुष यदि दो रातदिन लगातार चुपरहे और अति आवश्यकता के समय भी न बोले तो हकलापन दूर होजावेगा, यदि पूरा दूर न हो तो कुछ दिनों पश्चात् फिर ऐसाही करे।

७२-बच्चा यदि किसी औषधि से भी उत्पन्न न होता हो और स्त्री पीड़ा से अति व्याकुल हो तो अपने दायें पैर का अंगूठा चूसने से थोड़े मिन्टों में आसानी से बच्चा उत्पन्न होजावेगा।

७३-यदि नकसीर जारी हो जावे तो एक बालटी गर्म पानी से भर कर उस में पांव घुटनों तक डुबोदें तो तुर्त ही नकसीर बन्द हो जावेगी।

७४-आंखे दुखने के समय प्रातः और सायं दो समय पांव के तलवों में हरे कद्दू की मालिश कराता रहे और रात्रि को मिहँदी लगाकर सोजावे तीन दिन के अन्दर उस की आंखों का दर्द और लाली दूर हो जावेगी।

७५-दस्त जो किसी प्रकार न बन्द होते हों तो क़ै (मतली) की दवा पिलाने से तुर्त बन्द हो जावेंगे। आयु और बलको देखकर गर्म पानी में थोड़ा सा सिरका और नमक और मूली के बीज मिलाकर पिलाओ तुर्त क़ै हो जावेगी और दस्त उसी वक्त रुकजावेंगे।

७६-यदि किसी के दांत वा दाढ़ में दर्द हो, चाहे कैसाही सख्त दर्द हो तुम उस पर कोई दवा न लगाओ मगर एक माशे काली मिर्च महीन रगड़ कर थोड़े पानी में घोल कर जिस ओर दर्द हो उसकी विरुद्ध ओर कान में डालो, जैसे बाईं ओर की दाढ़ में दर्द हो रहा है तो तुम दायें कान में मिर्चें घोल कर डालो, तीन चार मिनट के अन्दर में ही तुम्हारे इस कान में दर्द होने लगेगा, परन्तु दाढ़ का दर्द तुर्त जाता रहेगा। उस वक्त दो चार बूंद घी अथवा बादाम का तैल इस कान में डालदो तो वह भी दर्द तुर्त ही शर्तिया दूर हो जावेगा।

७७-अकरकरहा, मूली का बीज, प्याज का बीज, गन्धक को पानी में मिलाकर दीवारों पर और सहन में छिड़कने से मक्खियां भाग जाती हैं।

७८-करौंद का गोंद जलाने या कनैर की पत्तियों का रस दीवारों पर छिड़कने से पिस्सू भाग जाते हैं।

७९-जब स्त्री का बच्चा मर जावे तो खरिया मिट्टी ८ माशे. कपूर १ माशे दोनों को पीस कर दिन में दो बार लगाने से दूध बन्द हो जावेगा।

विदेशी शक्कर।

आप पाकादि में कभी विदेशी बूरा खांड़ादि का सेवन न करें। बहुत से अमरीका आदि के सभ्य पुरुषों ने इस की वास्तविक दशा को डिक्शनरियों और पत्रों द्वारा दर्शाया है आप सब जान भी गई हैं, इस में गाय बैल और और मनुष्य आदि सब पशुओं का रक्त हाड़ मांस पेशावादि पड़ता है, मैं न मानने पर आप को बता सकूंगा। हा एक पत्र में बताया है कि अमरीका आदि में कोढ़ियों के मांस से साफ़ की जाती है और कंगालों के मुर्दे मोल लेलिये जाते हैं और इसी खांड़ के साफ़ करने में काम आते हैं। माताओ ? सारे जिह्वा के स्वादों के छोड़ने का समय है, परमात्मा को अपनी परीक्षा दो, धर्म से भ्रष्ट होने की हद होगई। हा! क्या करें; कहां जावें, मुहल्ले बस्ती घर बाज़ार में मांस पकते हैं, उसके विरान्द से नाक नहीं दी जाती, खाल निकली हुई नंगी मास रुधिर सम्मिलित सर और. धड़ों के टोकरे ढेल भरे जहां तहां देखे जाते हैं और इस शक्कर ने तो बिलकुल ही हमें भ्रष्ट कर दिया। हे परमात्मन्! धर्म से गिरने का भी अन्त हो गया, अब आप दया करके हमें हमारे धर्म पर स्थित कीजिये और अभक्ष्य छुड़ाकर सम्पूर्ण देश देशान्तर के पुरुषों की बुद्धि पवित्र कीजिये।

पहेलियां ।

माताओ ! आपको उचित है कि बालकों की बुद्धि वृद्धि के अर्थ पहेलियां पूछती रहा करो, यह प्रथा प्रथम माताओं में थी। आज वह जानती ही नहीं और जो जानती और पूछती हैं वह बड़ी अश्लील होती हैं, इस लिये कई नीचे लिखी हैं, उनके उत्तर भी लिख दिये हैं, इनको याद करा देना और आशय समझा देना तुम्हारा काम होगा, और भी इसी प्रकार की आपको मिल जावेंगी। इनका उत्तर तुर्त ही न बता देना चाहिये। वरन् अता पता देती हुई बुद्धि पर बल देकर बताना लाभकारी होगा।

१—बालरूप द्वै सुन्दर बारे, श्याम भवन में फिरें नियारे।
इक गुड़ी मिलि खेलत दोऊ, आंखिन देखि कहत सब काऊ ॥
(आंख की पुतली)

२—हेरत है सब जगत को, लखत न आपुन गाम।
एक पलमें फिर जात है, द्वै स्वरूप एक नाम ॥
(आंख)

३—शीश गरू तन दूबरा, खाली वाको पेट।
नर नारी अति चाव से, करे हाथ धरि भेट ॥
(अंगूठी)

४—एक अश्व की हैं छः टांगें।
पीठ में पूंछ और दो टापें ॥
(तराजू)

५—छुटी न तनकी श्यामता, गहे रहत नित मौन।
तिमिर देख भाजत तुरत, ऐसो कायर कौन ॥
(परछाहीं)

६—वाले थे तव सव मन भाये, वड़े भये फिर काम न आये।
उसे देख फिर सवको देखा, कहो वहिन यह किससे सीखा॥
(दीपक)

७—फले न फूलै लगै न डार, वाको लगत न लागे वार।
कवहूं आवत सवके द्वार, ताको वहिन करो विचार॥
(ओला)

८—वांवी वाकी जल भरी, ऊपर जारी आग।
जवहिं वजावै वांसुरी, निकले कारो नाग॥
(हुक्का)

९—एक चीज़ लोग खाते नहीं पर खाते हैं।
गोल पीली होती है वेसन की नहीं वनाते हैं॥
(अशर्फ़ी)

१०—वारे से वह सवको भावे, वढ़ा हुआ कुछ काम न आवे।
मैं कह दीया उसका नाम, अर्थ करो वा छोड़ो ग्राम॥
(दीपक)

११-एक ईंट नौलाख द्वारा। घाटै घाट भरै पनिहारा॥
(शाहिद्का छत्ता)

१२-श्याम वर्ण परिहरि नहीं, जटा धरे नहीं ईश।
जोगी जंगम है नहीं, पंख लगाये शीश॥
(कसेरू)

१३-श्याम वर्ण पीताम्वर कांधे, मुरलीधर नहिं होय।
विन मुरली वह नाद करत है, विरला वूझै कोय॥
(भौंरा)

१४-एक नारि वहुरङ्गी चंगी, घरसे निकलै वाहर नंगी।
ओह नारि कर रही सिंगार, सिरपर नथुनी मुंहपर वाढ़॥
(तलवार)

१५-एक नारि भौंरा सी काली, कान नहीं वह पहिने बाली।
नाक नहीं वह सूंघे फूल, जितनी अर्ज़ में उतनी तूल॥
(ढाल)

१६ आदि कटेते सजको पारै, मध्य कटेते सबको मारै।
अन्त कटेते सबको मीठा, सो खुसरो मैं आंखों दीखा॥
(काजल)

१७-जल में उपजै थल में रहै। आखों देखा खुसरो कहै॥
(काजल)

१८-खेत में उपजै सब कोई खाय। घरमें उपजे घर वहिजाय॥
(फूट)

१९-जलमें रहै भूठ नहीं भापै, रहै सु नगर मझार।
मच्छ कच्छ दादुर नहीं, पण्डित करो विचार॥
(जलघंटी)

२०-चार कान एक शीश है, एक टांग की नार।
श्यामवर्ण तामस भरी, वहिनो करो विचार॥
(लौंग)

२१-एक आंख तिस पर भी जाला, जब खोले तब करै उजाला।
घटै बढ़ै पन्द्रह दिन माहीं, दिन में वह देखत है नाहीं॥
(चांद)

२२-एक नगर में राजा आठ, जुदे २ सबही के ठाठ।
एक परेखा ऐसा देखा, एक बही में सबका लेखा॥
(गंजीफ़ा)

२३-नरनारी घर बैठा दीठा, ज्यों २ बोले त्यों २ मीठा।
एक नहाय इक सेंकन हारा, कह खुसरो न कीच नगारा॥
(नगारा)

२४-सुर्ख सफेद है वाको रंग, बना रहे सबही के संग।
चोरीकी नहिं खून किया, सर क्यों उसका काट लिया॥
(नाखून)

२५-एक गोरी एक काली नार, एक ही नाम धरा कर्त्तार।
दोनों एकही नाम विकाई, इक सस्ती इक महँगी आई॥
(इलायची)

२६-गर्मी में वह पैदा होवे धूप लगे लहरावे।
ऐ बहिनी वह ऐसा कोमल हवा लगे मुर्झावे॥
(पसीना)

२७-नर के पेट जो नारी बसे, पकड़ हिलावे खिल २ हँसे।
पेट फाड़ जब नारी गिरी, मोको लागे प्यारी खरी॥
(गरी)

२८-आधा मुख भक्षन बसे आधा गुनियन साथ।
ताहि पसारी देत है पुड़िया बांधे हाथ॥
(हरताल)

२९-पानी में निश दिन रहे ताके हाड़ न मांस।
काम करे तलवार को फिर पानी में वास॥
(कुम्हार का डोरा)

जापानियों की १२ शिक्षायें जो वह अपनी कन्याओं को रुखसत (विदा) करते समय करते हैं।

(१) जिस समय तुम्हारा विवाह हो गया फिर तुम मेरी कन्या नहीं रहीं, इस कारण तुमको अपने सास ससुर की वैसी ही सेवा करनी चाहिये जैसी तुम अब तक अपने माता पिता की करती थीं।

(२) जब तुम्हारा विवाह हो गया तो एक अनजान पुरुष अर्थात् तुम्हारा पति तुम्हारा स्वामी हो गया, पस तुम हलीम [सहनशील] और खलीक़ [सच्चरित्र] रहो, स्त्री की सब से बड़ी खूबी यह है कि वह अपने पति की आज्ञाकारिणी रहे।

(३) सदैव अपने सास ससुर से इस प्रकार वरतो कि वह तुम से प्रेमकरें, पति की ओर से कभी संदिग्ध न हो, यह दुष्ट विचार अर्थात् वदगुमानी तुम्हारे प्रेम को पति के मन से निकाल देगी।

(४) चाहे तुम्हारा पति कभी तुम पर क्रोध करे पर तुम न करो, वरन् सब्र करो और जब उनका क्रोध शान्त हो जावे तो नरमी से उन से बातें करो।

(५) बहुत बातें न करो, अपने पड़ोसियों की बुराई कदापि न करो, और स्मरण रक्खो कि झूंठ बोलने की कलौंछ निहायत ही लज्जाप्रद है, इस को विषवत् समझो।

(६) सवेरे उठो और देर से सोओ, दिन को कदापि न सोओ, शराब कदापि न पियो।

(७) निजूमियों, पत्रापांडों से क़िसमत का हाल मत पूछो, वह कुछ नहीं जानते और मन में निष्कारण (वहिम) संदेह उत्पन्न हो जाता है।

(८) अच्छी सलाह देनेवाली बनो और घर के खर्चों में जहां तक सम्भव हो किफ़ायत करो।

(९) सर्व प्रकार की सभाओं में सम्मिलित होना अच्छा है, परन्तु वहां कुछ बोलने के लिये पचास वर्ष की आयु का इंतज़ार करो।

(१०) चमकीले रंग के कपड़े मत पहिनो रोग़नी मज़ाक़ की चीज़ों से घृणा करो।

(११) साफ़ वस्त्र पहिनो, सफ़ाई से रहो, शर्मसार बनना अच्छा नहीं है।

(१२) अपने बाप की सम्पत्ति का घमंड मत करो, वह चाहे जितना बड़ा धनाढ्य और राजा क्यों न हो और सुस·

राल वालों के सामने उसके धन का वर्णन न करो क्योंकि ओछापन है।

❀ पाकविद्या विषय ❀

माताओ! नाना प्रकार के भोजन नाना प्रकार से बनाये जाते हैं। मैंने अपने भ्रमण में थोड़े २ अन्तर पर पदार्थों के मसाले के अधिक न्यून पड़ने और पृथक २ बनाने की रीति के कारण अन्तर पाया। कोई मिर्च, खटाई अधिक खाता है, कोई बिलकुल नहीं खाता। वर्त्तमान में डाक्टर लोहीकोहनी जर्मन निवासी जिन्होंने मांस भोजन को मनुष्य का स्वाभाविक भोजन न बताकर बड़े जोर से खण्डन किया है, जिन्होंने सारे रोगों की चिकित्सा का निर्भर केवल चार प्रकार के स्नान और स्वाभाविक फलों के आहार पर नियत किया है, वह अनेक भांति से बनाये हुये लौंग, मिर्च घृतादि मसाला डाले हुये भोजनों के सेवन का निषेध करते हैं, वह अधिकांश मूंग उड़दादि का साबित पकाकर मोटे और बेछने आटे की रोटी पकाकर खाने की आज्ञा देते हैं। आज मैंने उन्हें देखा है कि जो बिना चटपटी मसालेदार तरकारियों के ग्रास नहीं उठाते थे वे दो दो वर्ष से अधिक होगया है कि उन्हीं उपरोक्त साधारण भोजनों को बड़ी रुचि से सेवन करते हैं और बाथ लेते हुये अति बलिष्ट और स्वस्थ हैं, इसलिये आवश्यक है भोजन पचाने की शक्ति को बढ़ाना, और भूख लगने पर भोजन करना चाहिये और जहांतक हो सके फलों का अधिक सेवी बनना चाहिये। भाजियां रसेदर न हों और ग्रास को बहुत बार खूब चबा २ कर खाना चाहिये जो थूक कि ग्रास के साथ पेट में प्रवेश होता है वह पाचन में अति सहायक होता है। शीघ्र भोजन करने से दांतों का काम आंतों को करना

पड़ता है और मन्दाग्नि हो जाता है, इस विचार से कि जो रुचे वह पचे और पचाने से बल बढ़ता है और भूख लगने पर जो भोजन प्राप्त होजाता है वही प्रिय और स्वादिष्ट लगता है। साधारण दाल, फुलका, शाक, भाजी, पूरी, कचौरी, सेव, पापड़, कढ़ी, बरा, पकौड़ी, भात, खीर जो नित्य के भोजन हैं उनके बनाने की रीति आपको नहीं बताता हूं। आप इन्हें अपने घरों में देख भालकर अपनी प्राप्ति अनुसार घी मसालादि लगाकर बनाना सीखलें और अभ्यास से अच्छे से अच्छे पदार्थ बना सकेंगी। नाना भाजियां नाना प्रकार से बनती हैं, उन सब के बनाने की रीति लिख नहीं सकता, आप स्वयं मैके, ससुरे, तीर पड़ोस से पूंछकर और देखकर सीखलें। तथापि मैं एक प्रकार के मीठे चावल और मोहनभोग (हलुवा) और एक प्रकार की चटनी और बढ़िया बर्फी बनाने की रीति लिखता हुआ अन्तको बल बुद्धि वर्द्धक मोदक खिलाता आपसे विदा होता हूं। भूलचूक को आप क्षमा करें। और पुनः प्रार्थना है कि जो २ त्रुटियां आप को जान पड़े उनसे अवश्य सूचित करें मैं आपको बड़ा धन्यवाद दूंगा।

मीठे चावल।

सेरभर स्वदेशी बूरा का पतला क़िमाम (पाक) किया जावे, पाक के समय जो मैल आवे उसको साफ़ किया जावे पश्चात् किसी तांबे वा पीतल के पात्र में आधपाव घी गरम किया जावे, उसमें लौंग ३ माशे इलायची ३ माशे और किशमिश १ छटांक तप्त घृत में डाली जावे, जिस समय किशमिश फूल जावे और अधिक काली न होने पावे, उस समय उपरोक्त क़िवाम उसमें डाल दिया जावे और उतार

कर अलग रखलिया जावे और आधसेर महीन बढ़िया चावल पानी में उबालें, जब एक वा डेढ़ कनी गलने को शेष रह जावे तब उनको किसी छलनी वा बारीक वस्त्र में लौट लिये जावें, जिससे पानी उनका सब निकल जावे और ऊपर से दो चार लोटे पानी के और उनमें डाले जावें जिससे चिपक उनकी धुल जावे, जब वह चावल निचुड़ जावें तो किसी पात्र बटलोई, पतीली में वह क़िवाम इतना हो कि उसमें वह कनी गलजावे तब तो पानी डालने की आवश्यकता नहीं, नहीं तो थोड़ा पानी डाल दिया जावे और पकजाने पर उतार लिये जावें, यदि सुगन्धित करना हो तो थोड़ा सा केवड़े का अर्क उतारते समय डालदें, यदि पीले बनाना हो तो तीन चार रत्ती केसर पीस कर पानी में हलकर चावल और क़िवाम के बटलोई में डालते समय डाल देना चाहिये।

मोहन भाग वा हलवा।

दो सेर देशी कन्द वा बूरा को कढ़ाई में ६ सेर पानी डाल कर खौला कर एक ओर आग पर रखलें, फिर सेर भर सूजी को सेर भर घृत में खूब कौरलें जिस से उस का कच्चापन जाता रहे और कालापन न आजावे, जब कौर जावे तब उसी खौलते हुये शर्बत में डालकर करछी से चलादेवें और बादाम गिरी, पिस्ता, किशमिशादि जितनी चाहे डाल देवे, हलवा बन जावेगा।

द्राक्षा (मुनक्के की चटनी)*।

यह चटनी स्वादिष्ट, पाचक और ज्वर नाशक भी है। दाख (मुनक्का) १ सेर। लीमून (काग़ज़ी) का रस दो

* (नोट) चटनी, बर्फ़ी, लड्डू यह दवा की दवा हैं ओर स्वादिष्ट भी। यह आर्यमंत्री सं० १९०९ से लिखे गये हैं।

सेर। जीरा सफ़ेद ४ तोला। जीरा काला ४ तोला। लौंग ४ तोला। खांड़ सफ़ेद आठ तोला। सेंधालवण ८ तोला। बड़ी इलाइची के दाने चार तोला। हींग बढ़िया भुनी हुई ४ माशे। प्रथम दाख के बीज निकाल कर जल से शुद्ध करके वस्त्र से सुखाले और किसी क़दर लीमू के रस में रगड़ लेवे फिर शेष रस को मिट्टी वा क़लई की हांडी वा पटलोई में पकावें जब रस पकजावे तो रगड़े हुये दाख उस में डाल कर पकावें जब चटनी की भांति होजावें तो उपरोक्त जीरे आदि को कूटकर मिलादें और मिट्टी वा शीशे के पात्र में रखकर ६ माशे भोजन के साथ खावें। यह पेट के सर्व रोगों के लिये लाभकारी है।

बर्फी भिमरी गोंद की।

भिमरीगोंद ३२ तोला शुद्ध करके न्यून से न्यून ३२ तोले गाय के घृत में भली भांति तलकर पीसलो, इसके पश्चात् बादाम की छिलका निकाली हुई गरी ३२ तोला महीन पीसलो और इतना ही खोया मँगाओ जो गाय के ही दुग्ध का हो, उसको पाव भर पक्के घृत में अलग भून कर लाल करलो, फिर देशी मिश्री (२४०) तोला लेकर उसकी चाशनी बनाओ जब कि तार बंधजावे तो पिसे हुये बादाम की गूदी डाल कर खूब ही हिलाओ २ मिनट के पश्चात् पिसे हुए गोंद को खोया सहित डालदो और साथ ही १५ बूंद सौंफ़ का तेल अथवा पोदीना का तेल डालदो और ५ तोला लाल इलाइची के दाने महीन पीस कर डालदो, इस समय अति शीघ्रता से कार्य्य करो। चाशनी (पाक) कच्चा न रहे, परन्तु अधिक पक भी न जावे, तब सब कुछ डाल कर नीचे उतार लो और एक चौड़े थाल वा परात में जोकि प्रथम से ही घी लगाकर पास रखलिया हो उलटकर फैलादो और सब पर चांदी के पत्र चिपकादो, दो घंटा ठहरकर छुरी से कतरियां काटदो।

यह बर्फी ५ तोला प्रातः और ५ तोला सायं खाकर ऊपर से औटा गर्म दुग्ध ठण्डाकर मिश्री डालकर पीलो। यह बर्फी ४० दिन के लिये बनाई जावे. यह मस्तक और कमर पीड़ा को दूर करती है और बल वीर्य्य को बढ़ाती है। स्त्रियों को भी लाभ पहुँचाती है, परन्तु उनकी आधी खुराक है और खोया न डाला जावे। बच्चों के लिये इससे अच्छी और कोई मिठाई नहीं होसकती। यह अतिस्वादिष्ट होती है। भमिरी गोंद को गुग्गा गोंद भी कहते हैं, जैसी मुग्धां होती हैं वैसी ही यह गोंद होती है। अव्वल दर्जा का दो रुपया सेर बिकता है। दिमाग़ी काम करनेवालों को अवश्य सेवन करना चाहिये।

लड्डू।

इनके सेवन से मस्तक और शरीर में बल, आंखों में प्रकाश मुखड़े पर चमक, रक्त में लालीपन आता है और पाचन शक्ति बढ़जाती है। कद्दू, तरबूज, पेठा, घिया, खर्बूजा खीरा, ककड़ी, काहू, इन आठों के बीजों की गरी दो दो छटांक लेकर कीकर का गोंद आधसेर पक्का और मखाने की खील पाव भर पक्की इन सबको घी में तल लेवे, इतना भूने कि कूटने से महीन होजावें। आठों बीजों की गरी को एक साथ और गोंद मखाने को अलग अलग भूने फिर कूट कर सबको मिलालें। २ सेर पक्की मिश्री की चाशनी बनालें तार बँधने पर सब चीजें उसमें डालदी जावें और ४ तोला छोटी इलाइची के दाने पीस कर और पिस्ता बादामादि मेवा डालकर मिलादो। ठण्डा होने पर दो दो तोले के लड्डू बांधलो, एक लड्डू नित्य खावो, ऊपर से गर्म दूध मिश्री डालकर पीलो। यह सब के मिज़ाज के माफ़िक़ आते हैं और लाभदायक हैं। अधिक नमस्ते।

॥ ओं शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥

अन्तिम निवेदन ।

माताओ ! आज से ढाई सहस्र वर्ष पहले आपकी आज जैसी दशा न थी । आप आजकी भांति परदे और पिंजरे में भी बन्द नहीं रहती थीं, इसका परिचय आपको दुर्गा आदि मूर्तियों को मंदिरों में देखने से भी लगा होगा कि किसी मूर्ति के मुखपर परदा नहीं पड़ा हुआ ज्ञात होता है । आप का अमूल्य समय व्यर्थ नहीं जाता था । देखो बौद्धों के ग्रन्थ सद्धर्मपुण्डरीक नामक पुस्तक में लिखा है कि एक समय बुद्धभगवान् किसी पर्वत पर चौमासा व्यतीत कर रहे थे, उस समय अनुमान छः सहस्र स्त्रियां उनका उपदेश सुनने को उपस्थित हुई थीं । जब इतनी दृढ़ प्रतिज्ञा रखने-वाली देवियों को उपदेश मिलता था और उनके दुःख दूर करने का साहस होता था तो स्त्रियों पर किसी प्रकार का अत्याचार होने की सम्भावना भी न होसकती थी । मातायें अपने और अपनी अन्य भगनियों के सुधार में तत्पर रहती थीं परन्तु हा शोक ! कि उन्हीं माताओं की आज कैसी शोच-नीय दशा होरही है, कि प्रथम तो उनके दुःखों को दूर करने वालों का हा-अभावसा होरहा है, कन्यागुरुकुल अभीतक कहीं खुले ही नहीं, अकेले कन्यामहाविद्यालय जालन्धर ने अभी तक कुछ आंसू पोंछे हैं और छोटी २ पाठशालायें भी जहां तहां स्थापित हुई हैं, पर इस अकेले से कैसे काम चल सकेगा, तथापि उन महान् पुरुषों का धन्यवाद है, पर सोच तो यह है कि यदि दैवयोग से कोई इनका सच्चा हितैषी इनके हितार्थ कोई उपाय करता भी है तो उसको यह अपनी अज्ञानता के कारण अपना शत्रु समझती हैं और

अपनी वर्त्तमान दशा का परिवर्त्तन करना ही नहीं चाहतीं सच तो यह है कि जैसे अधिक समय तक निकम्मी पड़ी रहने से वस्तुयें खराब होजाती हैं वा मैल जमते २ कपड़े आदि मलीन होजाते हैं वैसे ही उनके हृदयों पर मलीनता के कारण प्रभाव पड़ता ही नहीं, वे अपनी उसी अवस्था में मग्न हैं, ऐसा उनका स्वभावसा होगया है जैसे जब कोई पुरुष अधिक समय तक अन्धकार में रहता है तो जब उसको फिर प्रकाश में लाया जाता है तो वह प्रकाश की ओर आने से मना कर देता है, पर मैं तो आपके हितकी बात को प्रकट ही करता रहूंगा और आप से सविनय प्रार्थना करूंगा कि आप मेरे पूर्व कथन पर ध्यान देकर पूर्व जैसी ही माता बनें और इन अन्तिम आठ बातों का भी ध्यान रक्खें।

(१) आपने सुना होगा कि "ऋणहत्या न मुच्यते" हमारे यहां का यह पवित्र कथन है कि ऋण (क़र्ज़) और हत्या (वध) से उऋण नहीं होता, इन में तमादी नहीं होती, कभी स्वप्न में भी किसी का धन धोखा आदि से मारने वा किसी लोभ वा वैर से किसी के घात करने का यत्न न करना।

(२) ईश्वर और जीव को स्वरूप और वैधर्म्य से भिन्न और व्याप्य व्यापक और साधर्म्य से अभिन्न जानना अर्थात् परमेश्वर को व्यापक जीव को व्याप्य, ईश्वर को उपास्य जीव को उपासक, ईश्वर को पिता जीव को पुत्र आदि सम्बन्ध वाला जान सदैव उसकी आज्ञा पालन में लगी रहना। कभी ऐसा न जानना कि ईश्वर ही केवल था उसी से जीव बनगये, यह बात पापयुक्त और असत्य है, यदि कोई कहे कि एक बाट था उसी से भूषण बन गये तो जब भूषण बने

जावेंगे तो वाट नहीं रहेगा और यदि फिर भूषण तोड़ फोड़ वाट बना दिया जावेगा तो भूषण नहीं रहेंगे, इस लिये या तो ईश्वर समाप्त वा जीव समाप्त अर्थात् एक समाप्त मानना पड़ेगा।

(३) विद्वानों को देव, और अविद्वानों को असुर, पापियों को राक्षस अनाचारियों को पिशाच जानना और विद्या साथ ही सदाचार का पूर्ण ध्यान रखना और निम्न श्लोक के अनुसार उत्तम बनने का ध्यान रखती हुई शील (सदाचार) को परम भूषण जानना।

पाण्डित्यस्य विभूषणं मधुरता शौर्यस्य वाक् संयम। ज्ञानस्योपशमः श्रुतस्य विनयो वित्तस्य पात्रे व्ययः॥

अक्रोधस्तपसः क्षमा प्रभवतो धर्मस्य निर्व्याजता। सर्वस्यास्य पुनस्तथैव जगतः शीलं परं भूषणम्॥

पण्डित के लिये मधुर वाणी का प्रयोग, शूर पुरुष के लिये वाणी का संयम, ज्ञानी के लिये शान्ति, विद्वान् के लिये नम्रता, धनी के लिये पात्र को दान, तपस्वी के लिये अक्रोध, सामर्थ्यवान् के लिये क्षमा और धार्मिक के लिये निष्कपटता ही भूषण है, परन्तु सब से बढ़कर शील (सदाचार) की उपस्थिति परम भूषण है, इस से उत्तम भूषण अन्य कहीं नहीं प्राप्त हो सकेगा

(३) विद्वानों, माता पिता, आचार्य्य, अतिथि राजा और धर्मात्मा जन, पतिव्रता स्त्री, स्त्री व्रत पति का सत्कार करना ही देव पूजा कहाती है, इसको आप भी करना और अन्यों से भी कराना और इन की रक्षार्थ बड़े २ मन्दिर आदि बनवाना और भोजनादि का यथाशक्ति प्रवन्ध करना, कराना। इनके अतिरिक्त धातुओं की मूर्तियों के अर्थ न कभी मन्दिर बनवाना न द्रव्य खर्च करना। देखो लाखों रुपया खर्च करके धातु के मन्दिर बनवाना धातु की मूर्ति स्थापित करके सैकड़ों वर्ष में भी संस्कृत न बुलासके गुरुकुलादि मन्दिरों की ५ वर्ष रहनेवाली सच्ची मूर्तियों ने संस्कृत में व्याख्यान दिये। अब देश में सच्ची ईश्वरकृत मूर्तियों का मान होगा और गुरुकुल और महाविद्यालय, ऋषिकुल स्थापित होगये और होंगे भी।

(४) धर्म से प्राप्त किये हुये अर्थ को बड़े विचार से व्यय करना, अधर्म कार्य्य में व्यय होजाने और अनधिकारी को मिलजाने से बड़ा पाप होता है, जैसा कि—

दोहा।

पालनकर दीन हीनको, दान धनी में व्यर्थ।
उसको औषधि पथ नहीं, जो हो आप समर्थ॥

स्मरण रखना—

अन्नदानसमं नास्ति विद्यादानं ततोधिकम्।
अन्नेन क्षणिका तृप्ति र्यावज्जीवन्तु विद्यया॥

अन्न के तुल्य कोई दान नहीं है, विद्या का दान उससे

भी बड़ा है। अन्नसे थोड़े काल के लिये तृप्ति हो जाती है और विद्या से जब तक जीता है। इसलिये विद्या के दानको मनु भगवान् ने सब दानों से श्रेष्ठ, बतलाया है जैसा कि—

सर्वेषामेव दानानां ब्रह्मदानं विशिष्यते।
वार्यन्नगोमहीवासस्तिलकाञ्चनसर्पिषाम् ॥

मनु० अ० ४। श्लो० २३३॥

अर्थात्—विद्याका दान जल, अन्न, गौ, पृथिवी, वस्त्र, तिल, सुवर्ण, घी सबसे उत्तम है. संसार में और दानों का फल अन्य योनियों में भी मिल जाता है, पर विद्यादान का फल भोगने के लिये उसे सर्वोत्तम मनुष्य योनि में ही आना पड़ता है। अमीरों के कुत्ते रथ हाथियों पर चढ़ते और अन्यान्य सब पदार्थ प्राप्त करते हैं, यदि नहीं मिलती तो विद्या ही नहीं मिलती। इस लिये गुरुकुल संयुक्तप्रान्त वृन्दावन और पंजाब कांगड़ी और महाविद्यालय जालन्धर अनाथालयों आदि में जहां तक हो सके दान भेजती और भिजवाती रहो।

(५) आप यह समझ कर कि रेल पर बैठे हुये पुरुष का पता स्थानादि का इसलिये पूछ लेते हैं कि उसके साथ दो घण्टा व्यतीत करना है, कितने शोक का स्थान होगा कि जिसके साथ जन्मभर रहना है उसका सम्पूर्ण वृत्तान्त पूछे विना ही सम्बन्ध कर बैठे, इस लिये आप मेरे प्रथम भाग में लिखे हुये इन दोहों का कि (वृद्ध रोगवश जड़ धन हीना। अन्ध बधिर क्रोधी अति दीना॥) आदि का यह अर्थ न समझ लेना कि अन्धे, बहिरे के साथ एक उत्तम कन्या को विवाह कर लेना चाहिये, वरन् यदि विवाह के पश्चात्

भाग्यवश अन्धा बहिरा होजावे तो जन्म पर्यन्त उसको निवाहना ही धार्मिक स्त्री पुरुषों का कर्त्तव्यकर्म है। वे पुरुष बड़े पापी हैं जो सन्तान न होने पर स्त्रियों का ही दोष बताकर विना परीक्षा कराये दूसरा, तीसरा विवाह सन्तान के बहाने से कर लेते हैं। परमात्मा ऐसे दुष्ट विचारों से हमारी माताओं को सदा बचाये, उनका निम्न विचार से कल्याण होगा, यदि पुरुष अधर्मी होगा तो उसका अवश्य नाश होगा, इस लिये दोनों ही अपने को गृहस्थी के घर रूपी चूल्हे की दो ओर के पाखे समझकर ध्यान रक्खें कि बराबर होने से ही काम चलता है, कैसा उत्तम धर्म बताया है।

पतिव्रता को सुख घना, जाके पती है एक।
मन मैली व्यभिचारिणी, जाके पती अनेक॥

अर्थात् जो एक की होकर रहती है उसको अति सुख मिलता है, पर व्यभिचारिणी जिसके पति बहुत होते हैं वह सदा दुःखी और मलीन रहती है।

कबीर सीप समुद्र की, रटे पियास पियास।
और बूंदको ना गहे, स्वाति बूंद की आस॥

जैसे समुद्र की सीप प्यास २ रटती हुई भी और बूंद को ग्रहण नहीं करती केवल स्वाति बूंद की आशा लगाये रहती है, ऐसे ही पतिव्रता स्त्री सदैव अपने पुरुष की ओर ध्यान रखती है।

पतिव्रता मैली भली, काली कुचिल कुरूप।
पतिव्रता के रूप पर, वारौं कोटि स्वरूप॥

यदि पतिव्रता काली और कुरूपा हो मैली भी हो तो कोई हानि नहीं, ऐसी पतिव्रता के ऊपर करोड़ो रूप निछावर कर देना चाहिये।

पतिव्रता मैली भली, गले कांच की पोत।
सब सखियों में यूं वरे, ज्यूं रविशशि की जोत॥

पतिव्रता नारी निर्धनता के कारण गले में कांचकी पोत पहिननेवाली अपने समूह की सखियों में यूं प्रकाशित होती है जैसे सूर्य चन्द्र की ज्योति प्रकाशित होती है। दुराचारिणी चाहे जैसी धनवती क्यों न हो पर वह सदा प्रतिष्ठा हीन ही रहती है। रामायण में भी बताया है कि जो पुरुष पर स्त्री की ओर अपने चित्त को नहीं चलाते उनके मन उत्साहित और प्रफुल्लित रहते हैं और वे किसी बात में अपने शत्रुओं से नहीं झेंपते न उनकी पीठ रण में शत्रु देखते हैं।

जो न लावें परत्रिय मन धीठी।
उनके रिपु रण देखें न पीठी॥

आप सब परस्पर एक ही विवाहित पति और पत्नी की पूजा कीजिये और इन दोनों से परमेश्वर की पूजा में भी किसी अन्य के सम्मिलित न करने की आज्ञा का ग्रहण कीजिये। परमेश्वर भी हम आप सब स्त्री पुरुषों का पति स्वामी है, उसको छोड़कर अन्य की पूजा करने में भी उपरोक्त पाप होना रामायण भी आप को प्रत्यक्ष बता रही है। आपने चाहे उस ओर ध्यान न दिया हो, देखिये श्रीभरतजी ने रामचन्द्रजी के सन्मुख शपथ खाई है कि यदि आप के वन-

चास होने में मेरी सम्मति हो तो मुझे उन पापियों की गति प्राप्त हो जो एक ईश्वर के चरणों को छोड़ कर अन्य भूतगणों अर्थात् मृतक पुरुषों को भजते अर्थात् उनको पूजते हैं, जैसा कि –

जो परिहरि हरहरि चरण, भजें भूतगन घोर।
उनकी गति मोहिं देहु शिव* जो यह सम्मति मोर॥

(६) संसारी पुरुष बल प्राप्त्यर्थ अपना अधिक समय धन प्राप्ति में लगाते हैं पर आप अपना समय योग्य बनने में लगाना। गुण कर्मानुसार वर्ण व्यवस्था का ध्यान रखना। धन से बल, और बल से विद्या बड़ी होती है।

१–विद्या आत्मा का गुण है, वह इस जन्म से अगले जन्म में जासक्ती है, बल और धन नहीं जासकता, बल शरीर के साथ जाता है, धन शरीर के रहते हुये ही जासकता है, इसलिये धन का दर्जा सब से नीचा है।

आंख को हाथ की आवश्यकता नहीं, पर हाथ को आंख की आवश्यकता है, इस से पता लगता है कि बल विना विद्या के काम नहीं कर सकता, पर विद्या विना बल के करसक्ती है।

२–चक्रवर्ती राजा किसी अन्य को चक्रवर्ती नहीं बना सकता। करोड़पती दूसरे को करोड़पती नहीं बना सकता, यदि बनादे तो आप नहीं रहेगा, पर एक विद्वान स्वयम् विद्वान् रहता हुआ लाखों को विद्वान् बना सकता है।

---

* शिव कल्याणकर्त्ता परमात्मा का नाम है।

४—व्यास विद्या का राजा था, युधिष्ठिर बल का। युधिष्ठिर का राज आज कोई नहीं मानता, आज महाराज एडवर्ड जी का राज है, पर व्यास की शक्ति विद्वता को सब ही विद्वान् शिर झुकाते हैं इस लिये उनका राज आज भी विद्यमान है। इसी लिये 'विद्याऽंसोऽहं देवा' बताते हुये देवतों को अमर बताया है। कौन नहीं जानता कि गौतम का न्याय दर्शन आज भी वैसा ही काम कर रहा है जैसा उनके समय में था, इस लिये विद्या को ही मुख्य जानना।

(७) देखो चार तरह के पेड़ होते हैं, एक वह जो न फूलते हैं न फलते हैं, जैसे बेद का पेड़। दूसरे वह जो फूलते हैं पर फलते नहीं, जैसे गुलाब का पेड़। तीसरे वह जो फूलते भी हैं,और फलते भी हैं जैसे आम का पेड़। चौथे जो फूलते नहीं पर फलते हैं, जैसे गूलड़ का पेड़। इनमें प्रथम से दूसरा दूसरे से तीसरा तीसरे से चौथा उत्तम कहाता है। ऐसे ही चार प्रकार के मनुष्य होते हैं एक वह जो न कहते हैं न करते हैं चाहे संसार नरकमें जाय चाहे स्वर्गमें, उन्हें कुछ प्रयोजन नहीं। दूसरे वे होते हैं जो कहते तो सब कुछ हैं पर करते कुछ भी नहीं,जैसे एक हम हैं जो बातें बताकर करते समय कतरा जाते हैं। सच है—

करनी बिन कथनी कथे अज्ञानी दिन रात।
कूकरसम भूंसत फिरत सुनी सुनाई बात॥

पानी मिले न आप को औरन बख़्शत छीर ।
आपुन मन निश्चित नहीं और बँधावत धीर ॥
कथनी वदनी छोड़कर करनी से लौ लाय ।
नरको नीर पिलाय विन कबहूं प्यास ना जाय ॥

तीसरे वे होते हैं जो जैसा कहते हैं वैसा ही करते हैं, वह प्रथम के दोनों से अच्छे होते हैं। पर चौथे क्या कहना सबसे ही उत्तम गिने जाते हैं जो कहते कुछ नहीं पर करके दिखा देते हैं। आप धीरे धीरे अपने को सब से उत्तम बनाने का यत्न करना।

(८) आठ अन्तिम निवेदन प्रथम भाग में भी किये थे इस लिये आठ ही पर इसको समाप्त करता हूं। आठवां यह है कि आप महान् कष्ट पड़ने और निष्प्रयोजन डांडे और सताये जाने पर भी धर्म को न त्यागना और द्रौपदी के भाव से काम लेना।

जब द्रोणाचार्य्य के पुत्र अश्वत्थामा ने द्रौपदी के सोते हुये पांच पुत्रों को मारडाला, उस समय द्रौपदी को महान् दुःख हुआ अर्जुन ने द्रौपदी से कहा हे भद्रे ! जब मैं तेरे पुत्रों के वध करनेवाले को मारकर उसके सरको अपने बाण से छेदन करूंगा और तू उस पर बैठकर स्नान करेगी तब मैं तेरे दुःख के आंसूओं को पोछूंगा। इतना कहकर चला और

रण में जीत कर पकड़ लिया. उस समय श्रीकृष्ण ने कहा कि हे अर्जुन, इसकी रक्षा करनी योग्य नहीं, तू इस धर्मच्युत ब्रह्मण का प्राणान्त कर, क्योंकि इसने रात्रि के समय सोते हुये निरपराधी बालकों को विना कारण मारा है, वीरपुरुष के लिये ऐसा करना महान् पाप है।

नैनं पार्थार्हसित्रातुमब्रह्मबन्धुमिसंजहि।
यो असावनागसः सप्तान्वधीन्निशिबालकान्॥

उन्मादक वस्तु के सेवन से मस्त हुये, असावधान, उन्माद से पीड़ित सोते हुये बालक, स्त्री, उद्योग न करनेवाले शरण आये हुये, रथसे रहित हुये, और भयभीत हुये इतने प्रकार के शत्रुओं को धार्मिक पुरुष नहीं मारते जैसा कि—

मत्तं प्रमत्तमुन्मत्तं सुप्तबालंस्त्रियं जड़म्।
प्रपन्नं विरथं भीतं नरिपुं हन्ति धर्मवित्॥

उस समय द्रौपदी कहती है—

मारोदीदस्य जननी गौतमी पति देवता।
यथाऽहं मृतवत्साती रोदिम्यश्रुमुखीमुहुः॥

हा! जैसी मैं अपने मृत बालकों के दुःख में दुःखी हो कर वारंवार मुख पर आंसुओं की धारा बहाती हुई रुदन कर रही हूं वैसे ही अपने पुत्र के मारे जाने पर गौतम की पुत्री अश्वत्थामा की मां कृपी भी दुःखी होकर रुदन करेगी।

जब तुम्हारी यह दशा होगी कि तुम धर्मके लिये इतना बड़ा कष्ट सहन कर सकोगी और अपना सर्वस्व दूसरों के अर्थ अर्पण करसकोगी, तब तुम्हारे धर्म का नाद संसार में बजेगा और कोई सांसारिक शक्ति तुम्हारे चरणों को हिला न सकेगी, जो धर्म के लिये अपने प्राणों पर खेलने को तत्पर होते हैं, परमात्मा उनकी सहायता अवश्य करता है।

ओ३म् शम्।

नज़्म मुं० भैरोंप्रसाद दक्षिण हैदराबाद ।

यह न समझो पढ़ के हो जायँगी खुदसर औरतें ।
मुनक्कासिर हो जायँगी पहले से बढ़ कर औरतें ॥
कौम की खिदमत करेंगी बन के लीडर औरतें ।
धर्म की रक्षा करेंगी जान दे कर औरतें ॥
देखना सबकुछ करेंगी हम से बढ़कर औरतें ।

इल्म वह जौहर है जिस के आगे सब जौहर हैं गर्द ।
इल्म वह ताक़त है चेहरा जिससे गैरों का है ज़र्द ॥
इल्म वह दारू है जिससे नफ़्स पड़जाता है सर्द ।
इल्म से गर इल्ह बेहतर है तो क्यों पढ़ते हैं मर्द ॥
इल्म बेहतर है तो क्यों बिगड़ेंगी पढ़कर औरतें ।

नुकता रस यह है बलाकी क़ाबलीयत इन में है ॥
हैं यह हमदर्द खलायक़ और मुरव्वत इन में है ।
पारसाई है शुजाअत है शराफ़त इन में है ॥
सच तो यह है हमसे बढ़कर आदमीयत इन में है ।
बल्कि हर शोबेमें हैं मर्दोंसे बेहतर औरतें ॥

सर झुका देते हैं आलिम सरस्वती के नाम पर ।
हिन्दसह को फ़ख्र है लीलावती के नाम पर ॥
शायरी को नाज़ है विद्यावती के नाम पर ।
कांपही जाते हैं पण्डित गार्गी के नाम पर ॥
सैकड़ों गुज़री हैं वेदों की मुफ़स्सिर औरतें ।

गान्धारी कारोबारे सलतनत में ताक़ थी ।
द्रोपदी फ़न्ने स्यासत में अजब मश्शाक़ थी ।

कौन्चवानी केकई की शुहरये आफ़ाक़ थी ॥
खुशब्यानी तेगरानी में निहायत चाक थी।
सब यह अल्लामा थीं जितनी थी बहादुर औरतें ॥

देखलो सीता ने क्या २ दुःख सहे पत के लिये।
जंगलों जंगल फिरी शौहर की ख़िदमत के लिये ॥
कैद भुगती दुःख उठाये हिफ्ज़ अस्मत के लिये।
आखिरश मर भी गई इसबात इफ़्फ़त के लिये।
पूजती हैं अबभी इस देवी को घर २ औरतें ॥

आग में कूदी सती शौहर की इज़्ज़त के लिये।
नार दोज़ख़ में फंसी सावित्री पति के लिये ॥
बिक गई तारामती हरिश्चन्द्र के सत के लिये।
ज़हर कृष्णा पीगई मां बाप की पति के लिये ॥
आसमाने सिद्क़की यहसब थी अख़तर औरतें।

हां यह मुमकिन है कि होगा कोई लिटरेचर ख़राब ॥
होगये हों उन को पढ़कर मर्दोज़न अकसर ख़राब।
इस साबित है कि था वह कोर्स सरतासर ख़राब ॥
वरनाक्या मुमकिन कि हो विद्या कोई पढ़कर ख़राब।
देवियां बनजाती हैं तालीम पाकर औरतें ॥

कोर्स ऐसा हो कि जिससे शास्त्र की ज्ञाता बनें।
ज्ञान का भण्डार हों और धर्म की शैदा बनें ॥
शौहरों पर जान तक देदें पती ब्रता बनें।
कोई अनसूया कोई तारा कोई सीता बनें ॥
वेदमंत्रों का करें उच्चारण घर घर औरतें।

मां नहो आलिम तो लड़के अहिलेफन क्योंकर बनें।
क्षत्री क्योंकर बनें और ब्राह्मण क्योंकर बनें॥
पांणिनी गौतम कपिल अहिले सखुन क्योंकर बनें।
भीमसेन अर्जुन करन से पीलतन क्योंकर बनें॥
अपनेलड़कों को बनातीं हैं बहादुर औरतें।

रूठना रोना मचल जाना सिखाती हैं यही॥
भूत से जिन से चुड़ैलों से डराती हैं यही।
कान शेरों के पकड़ लेना सिखाती हैं यही॥
अलग़रज़ बच्चों का मुस्तकबिल बनाती हैं यही।
इससे साबित है कि मरदों की हैं रहबर औरतें॥

राम को लाना है दुनिया में तो कौशल्या बनाओ।
कृष्ण की इच्छा अगर है देवकी माता बनाओ॥
नस्ल काबिल चाहते हो मांको अल्लामा बनाओ।
अलग़रज़ जो कुछ बनाओ पेश्तर सांचा बनाओ॥
नस्ल काबिल लीजिये काबिल बनाकर औरतें।

——:o:——

पुस्तक मिलने का पता—

मुं० इन्द्रजीत जी व लक्ष्मीदत्त,

बाज़ार बहा[illegible]गंज, शाहजहांपुर

यू० पी०